महाशयो !

यह पुस्तक श्री १०८ स्वामी चिदानन्दस्वामीजीने समस्त जैन म
दर्शनदीक स्याद्वाद मार्गमें निर्मल किया ओर उनके शिष्य लक्ष्मीच
न्दजी अजमेरनिवासीजीने छपाकर प्रकाशित किया ॥

इसके सिवाय उक्त स्वामीजीने "दयानन्दमतनिर्णय" अर्थात नवी
आर्यमतका भ्रमोच्छेदन कुठार भी देश सुधारके लिये रचनाकर अ
शिष्योंको परमर्षीनिषे छपवानेको तैयारकर गये हैं, यह भी शीघ्र
दृष्टिगोचर होगा ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

लक्ष्मीचन्दजैन

[illegible]

प्रस्तावना।

भो पाठकगणो! स्याद्वादानुभवरत्नाकर नाम का ग्रंथ कि जो यथा नाम तथा गुण करिके संयुक्त है, ऐसे उत्तमोत्तम महाग्रंथके कर्त्ता महा मुनि महात्मा और पूर्ण अध्यात्मी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री चिदानन्दजी महाराज हैं जो सदा आत्म कल्याण करनेके और किसी वस्तु का अभ्यास नहीं करते और रात्रीको जङ्गलादि में रहते हैं और आत्मध्यान में मग्न होकर रात्री विताते हैं ऐसे २ अनेक आत्मार्थ के कार्यों से अपना अमूल्यसमय कि जिसका मूल्य ही नहीं है और जो गये के बाद पश्चात् कभी आताभी नहीं है सफलताके साथ विताते हैं॥

सिवाय इसके कृपा कर्म आदि में भी इस प्रकार कष्टताके साथ प्रवर्त होते हैं कि जिसमें इस पञ्चम कालमें अन्य मुनि आदिकों के लिये सामान्य नहीं है अर्थात् अतिकठिन है यथा एक पात्र रखना अर्थात् उसी हीमें आहारादि लाना और सर्व को एकत्र करके भोजन करना परन्तु भोजन अर्थात् आहारभी एक ही दफै करना नतु दूसरी वक्त, इस प्रकार प्रति दिन आहार करना और उसका लाना भी ४२ दूषणों करके रहित है अर्थात् जैसे शास्त्र में कहा है उसी ही विधिपूर्वक आहार कर्म करते हैं, और शीतकालमें जैसे और साधु आदि ऊन का कम्बल तथा बनात आदि वस्त्र रखते हैं तैसे यह मुनिमहाराज नहीं रखते किन्तु दो चद्दर और एक लोवड़ी ही रखते हैं उसके सिवाय कोई भी अन्य वस्त्र ओढ़ने के वास्ते कितना ही शीत क्यों न पड़े नहीं रखते और प्रायः करके मौन भी कई महीनों तक रखते हैं और भव्यप्राणियोंको शास्त्र का रहस्य समझाकर उनको आत्मस्वरूप इस प्रकार दरसाते हैं कि जिसका वर्णन करना मुझ अल्प बुद्धिवाले के लिये सामान्य नहीं है अर्थात् बहुत कठिन है और व्याख्यान में भी श्रीमुख से अध्यात्म ही वाक्य निकलते हैं और श्रोत्रों कोभी श्रोत्र इन्द्रीसे इस प्रकार पान होताहै कि मानों अध्यात्मरूपी अमृतरस का पान, इत्यादि अनेक कष्ट

कृपाओं और नियमों करके संयुक्त है कि जिनका वर्णन करना मुझ अ
बुद्धिवाले के लिये सामान्य नहीं है ॥

अहो! इस ग्रंथ कर्त्ता की तीव्रता और बुद्धि की विचक्षणताको धन्यव
देताहूं कि जिन्होंने भोले प्राणियों के हितके लिये यह ग्रंथ रचा और
क मतको उसीहीके मतानुसार निर्णय करके दिखाया,नतुः अन्य मत
स्वमतसे निर्णय करना, परन्तु किसी भी अन्य वा स्वमत के शास्त्रका
स्य इस प्रकार समझते हैं कि मानो सरस्वती ही हृदय कमलपर स्थ
तहै और इनके रचित ग्रंथकी शोभा तो हम कहांतक करें पाठकगण
यही निपंक्षहोकर पठनपाठन से नकि प्रबल युक्ति निर्पक्षता शास्त्र र
जानीकार और अध्यात्मी जान लेंगे मुख्य अभिप्राय इस ग्रंथ रचने
यही है कि भोले प्राणियोंको अपनी बुद्ध्यनुसार ज्ञान होकर स
सत्यका निर्णय, जीव अजीवका स्वरूप, निर्द्वेष पना और आत्मस्वरू
जानना प्राप्त होजाय, यद्यपि इस ग्रंथमें अनेकानेक बारीकियां ऐसी है
जिसको आजतक किसी भी पण्डितने नहीं खोली सोभी तुच्छ लेख
लिखी हैं और अनेकानेक अमूल्य रसों करके संयुक्त यह ग्रंथ सर्व पुरु
लिये हितकारी है और इसके पठनपाठन से अल्पकाल में ही हरेक
सर्व मतों का निर्णय करसकता है ॥

इस ग्रंथके किञ्चित् विषय ये हैं—

प्रथम प्रश्नके उत्तरमें ग्रंथ कर्त्ताने अपने जीवन चरित्रका वर्णन स
त्न तौरपर किया है।दूसरे प्रश्नके उत्तरमें न्याय वैशेषिक वेदान्त आ
सनातनी ईसाई और मुसल्मान इन्हींके शास्त्र और कुरान अंजील अ
पुस्तकोंने इनके माने हुए पदार्थ वा ईश्वर कर्त्ता होनेके दूषण दि
कर मतोंकी अशुद्धता बताई है. अनेक ग्रंथ कर्त्ताओंने अपनी २
इन्होंके मतका खंडन किया है परन्तु इस ग्रंथ कर्त्ताने इन्हींके ग्र
के मतका खंडन किया है और अपने शास्त्रको लेकर नहीं,
बताई है. पाठकगण बांचकर देखें में पूरा वर्णन नहीं कर स

ांकि देखने और सुननेमें बड़े अन्तर पड़ जाते हैं पश्चात् सर्वज्ञ मत
ादि सिद्ध किया है।तीसरे प्रश्नके उत्तरमें जो जैनियोमें दिगम्बर आ-
ा है उसमें और स्वेताम्बर आपनामें फर्क बहुत बातोंका है परन्तु इस
में उनमेंसे पांच मुख्य बातोंका निर्णय किया है १ केवलीका आहर
ना २ स्त्रीको मोक्ष ३ वस्त्रमें केवल ज्ञान ४ जैनलिङ्गके अलावे अन्य
ङ्गकोभी मोक्ष ५ काल द्रव्यकी उपचारिता इन पांच बातोंको सिद्ध
के केसर आदि चढ़ाना उनहींके शास्त्रानुसार किया है, इसके पीछे
ढयोंका मत दिखाय कर मूर्तिपूजन सिद्ध किया है, मूर्ति और तीर्थादि
तो आर्य्यसमाज मत निर्णयमे सिद्ध किया है परन्तु ईश्वरकी मूर्तिसे
नन इस जगह सिद्धकी है फिर गच्छादिककी व्यवस्था कही है, इसके
द एक समाचारी शास्त्रानुसार सिद्धकी है चौथे प्रश्नके उत्तरमें प्रथमही
ंध, विषय प्रयोजन और अधिकारीका वर्णन किया है उस अधिका-
के विषय में अनेक बातें कह कर सिद्धान्त और कर्म ग्रंथका जो आप
ा कर्मबंधनमें विरोध था सोभी अनुभव युक्तिसे मिटाया है फिर परीक्षाके
स्ते कुदेवका स्वरूप कहकर सुदेवका स्वरूप दर्शाया है फिर ५७ बोल
र्थात् निश्चय, व्यवहार, नय, निक्षेपा, कार्कादि अनेक रीतिसे आत्म
वरूप ओलखनेके लिये ऐसा समझाया है कि आजतक ऐसा वर्णन हरे-
ग्रंथमें न होगा फिर गुरुका स्वरूप और धर्मका लक्षण कहा है. अब
सारकी जो अनित्यता कहते हैं उसमें कोई तो जगत्को मिथ्या कहता
, कोई सत्य कहता है इसके ऊपर ६ ख्याति दिखाई हैं, उनमेंसे पांच
ा खंडन करके सत्यख्यातिको सिद्ध की है सो इस ख्यातिका वर्णन
पूर्व है क्योंकि भाषा ग्रंथमें ख्यातिका वर्णन आजतक किसीने
सा न किया होगा किसी संस्कृत ग्रंथमें होय तो मैं नहीं कह सक्ता.
न्तु इस ख्यातिकी हरेक मनुष्यको खबरभी न होगी इस अपूर्व
थनको पाठकगण बांचेंगे तबहीं मालूम होगा, इसके बाद ६ द्रव्यका
रूप कहा उसमेंभी जीव द्रव्यके ऊपर ५७ बोल उतार कर भव्यजीवों
आत्मस्वरूप दिखाया है; फिर समकित दृष्टिके कथनमें शास्त्रानुसार
न्दिरके पूजनेकी विधी मंत्रसहित कहकर उसमें एकान्त निर्जरा ठह-

राई है और जो अल्प पाप कहनेवाले हैं उनका अज्ञान दर्शाया है; फि पञ्चखाणकी विधी कहकर गुणठाणेके कथनमें ज्ञानगुणठाणे आदि लाया है और गुणठाणा कृपा करने से आताहै या गुणठाणे आये बाद कृपा करते हैं इस रीति के अनेक प्रश्नोत्तर हैं॥ पंचमें प्रश्न के उत्तर में जैन मत की रीति से ही योग सिद्ध किया है उसमें स्वर साधने की विधि और आसनादि कहेहैं फिर प्राणायाम मुद्रा और शास्त्र की रीति से चक्रों का ध्यान करना और पांखडी अक्षर आदि और उस ध्यान का फल अच्छीतरह से खुलासा वर्णन किया है फिर ग्रंथ कर्त्तापर प्रश्नों का आक्षेप किया है उनका ऐसी रीति से उत्तर दिया है कि जिसमें अहंकार क्लेश नहीं इस रीति से पंचमें प्रश्न का उत्तर पूरा करके ग्रंथकर्त्ताके बनाएहुए अध्यात्मी पद कवित्त और कुंडली दिखाईहैं और उनमें मन ठहरनेकी रीति भी दर्शाई है इस रीति से इस ग्रंथमें नानाप्रकार के अमोलक रत्नभरे हैं जैसा इस ग्रंथका नाम है तैसाही इसमें लेख है इस ग्रंथकी सम्पूर्ण शोभा करने की शक्ति मेरी बुद्धि में नहीं, पाठकगण इस ग्रंथको बांचेंगे तो फिर अन्य ग्रंथ रखने की अभिलाषा नहीं रहेगी और पढ़कर कल्याण प्राप्त करेंगे ॥

पाठकगण महाशयों को नम्रता पूर्वक किञ्चित् हाल विदित करताहूं कि इस ग्रंथ में कई तरहके विघ्न हुए परन्तु आपके अत्युत्तम अदिष्ट (प्रबलपुण्य) ने इस ग्रंथके आशय को नष्ट न होने दिया हां [illegible] चार फार्म अर्थात् ३२ पेज तक अनुमान १०० अशुद्धियां छपगई हैं सो शुद्धाशुद्धि पत्र में देखलें और इन अशुद्धियां का रहने का कारण यह कि जिस वक्त में यह ग्रंथ परिपूर्ण बनगया तब मैंने इस [illegible] को देखकर सोचा कि यह ग्रंथ शीघ्र छपकर इस [illegible] होयतो पाठक गणोंको बहुत लाभ होगा ऐसा समझकर [illegible] विन्तीकर छपाने का उद्यम किया और अजमेर में इस [illegible] (अर्थात् मतमतान्तर के विषय) का शोर हुवा कि यह है सो इधर तो मैं छपाने का बन्दोबस्त कररहा, परन्तु इस [illegible]मान २० तथा २२ वर्ष से दयानन्दमत अर्थात् [illegible]

ो कि अपनेको अति उत्तम सत्यवादी प्रगट करते हैं सो उन आर्य्य स-
ाजिओंकी सत्यता और नियम उपनियम आदिका वर्णन तो इसी ग्रंथ
र्त्ताने एक "दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज भ्रमोच्छे-
न कुठार" नाम का ग्रंथ रचा है उसमें वर्णन किया है सो इस ग्रंथ रचने
े बाद वो ग्रंथभी छपकर पाठकगणों के अवलोकन में आवेगा परन्तु
स जगह जो उन्होंने इस ग्रंथ में विघ्न किया है उसको किञ्चित् लिखताहूं
के जिस वक्त में इस ग्रंथ के छपाने का प्रबंध करताथा उस वक्त में दया-
न्द सरस्वतीजीके निज शिष्य पण्डित ज्वालादत्त ग्रंथ कर्ता के पास
आयकर अपनी मायावृत्तिसे उस करुणानिधि ग्रंथकर्त्ता को अपने
वश लेकर ग्रंथ छपने को लिया और लिखापढ़ी अन्यके नाम से
वत १९५० आसोज सुदी में ग्रंथ छापनेको लिया और तीन
किया परन्तु आपाढ़ तक उसके छापनेका कुछ प्रबंध उन-
ड देखकर अन्तरंगमें द्वेषबुद्धिसे
र ग्रंथको नष्ट करनेके वास्ते उस
रायकर छापनेका बन्दोबस्त किया
ापकर झगड़ा उठाया और मूषक
न्द काटफांस अपनी बुद्धि अनुसार
करनेको उनका जोर न चला क्यों
क्टोरियाका प्रबल प्रताप होनेसे कि
ते हैं उनका कुछ जोर न चला आ-
मासमें पुस्तक लोटा दी तब मैंने
कापी मुम्बईको रवाने की और उन-
उन्होंने कापीमेंसे शब्दोंको अदल
२ फार्म अर्थात् १६ पृष्ठ छपगये
आये तब उसको देखा तो पहिले
उसमें शब्दोंका फर्क देखा तो
ना बन्द करो और पीछेसे उस
पत्रद्वारा लिखा और आर्य्य-

राई है और जो अल्प पाप कहनेवाले हैं उनका अज्ञान दर्शाया है; फिर पच्चखाणकी विधी कहकर गुणठाणेके कथनमें ज्ञानगुणठाणे आदि बतलाया है और गुणठाणा कृपा करने से आताहै या गुणठाणे आये बाद कृपा करते हैं इस रीति के अनेक प्रश्नोत्तर हैं॥पंचमें प्रश्न के उत्तर में जैन मत की रीति से ही योग सिद्ध किया है उसमें स्वर साधने की विधि और आसनादि कहेहैं फिर प्राणायाम मुद्रा और शास्त्र की रीति से चक्रों का ध्यान करना और पांखडी अक्षर आदि और उस ध्यान का फल अच्छीतरह से मुल्लाग वर्नन किया है फिर ग्रंथ कर्त्तापर प्रश्नों का आक्षेप किया है उनका ऐसी रीति से उत्तर दिया है कि जिसमें अहंकार क्लेश नहीं इस रीति से पंचमें प्रश्न का उत्तर पूरा करके ग्रंथकर्त्ताके बनाएहुए अध्यात्मी पद कवित्त और कुंडली दिखाईहै और उनमें मन ठहरनेकी रीति भी दर्शाई है इस रीति से इस ग्रंथमें नानाप्रकार के अमोलक रत्नभरे हैं जैसा इस ग्रंथका नाम है तैसाही इसमें लेख है इस ग्रंथकी सम्पूर्ण शोभा करने की शक्ति मेरी बुद्धि में नहीं, पाठकगण इस ग्रंथको बांचेंगे तो फिर अन्य ग्रंथ रखने की अभिलाषा नहीं रहेगी और पढ़कर कल्याण प्राप्त करेंगे॥

पाठकगण महाशयों को नम्रता पूर्वक किंचित् हाल विदित करताहूं कि इस ग्रंथ में कई तरहके विघ्न हुए परन्तु आपके अत्युत्तम अधिष्ट (प्रबलपुण्य) ने इस ग्रंथके आशय को नष्ट न होने दिया हां अलबत्ता चार फार्मे अर्थात् ३२ पेज तक अनुमान १०० अशुद्धियां छपगई हैं सो शुद्धाशुद्धि पत्र में देखलें और इन अशुद्धियां का रहने का कारण यह है कि जिस वक्त में यह ग्रंथ परिपूर्ण बनगया तब मैंने इस ग्रंथके आशय को देखकर सोचा कि यह ग्रंथ शीघ्र छपकर इस आर्य्यावर्त्त में प्रसिद्ध होयतो पाठक गणोंको बहुत लाभ होगा ऐसा समझकर प्रश्न कर्त्ताओंसे विन्तीकर छपाने का उद्यम किया और अजमेर में इस ग्रंथ की अपूर्व रचना (अर्थात् मतमतान्तर के विषय) का शोर हुवा कि यह अपूर्व ग्रंथ बना है सो इधर तो मैं छपाने का बन्दोबस्त कररहा, परन्तु इस आर्य्यक्षेत्रमें अनुमान २० तथा २२ वर्ष से दयानन्दमत अर्थात् आर्य्यसमाजवाले

ो कि अपनेको अति उत्तम सत्यवादी प्रगट करते हैं सो उन आर्य्य स-
ाजिओंकी सत्यता और नियम उपनियम आदिका वर्णन तो इसी ग्रंथ
र्त्ताने एक "दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज भ्रमोच्छे-
दन कुठार" नाम का ग्रंथ रचा है उसमें वर्णन किया है सो इस ग्रंथ रचने
के बाद वो ग्रंथभी छपकर पाठकगणों के अवलोकन में आवेगा परन्तु
इस जगह जो उन्होंने इस ग्रंथ में विघ्न किया है उसको किञ्चित् लिखताहूं
कि जिस वक्त में इस ग्रंथ के छपाने का प्रबंध करताथा उस वक्त में दया-
नन्द सरस्वतीजीके निज शिष्य पण्डित ज्वालादत्त ग्रंथ कर्ता के पास
आयकर अपनी मायावृत्तिसे उस करुणानिधि ग्रंथकर्त्ता को अपने
विश्वास में लेकर ग्रंथ छपने को लिया और लिखापढ़ी अन्यके नाम से
कराई सो सँम्वत १९५० आसोज सुदी में ग्रंथ छापनेको लिया और तीन
मासका करार किया परन्तु आषाढ़ तक उसके छापनेका कुछ प्रबंध उन-
से न हुवा और आर्य्यसमाजका खंडन देखकर अन्तरंगमें द्वेषबुद्धिसे
वैदिकयन्त्रालयके मेम्बरोंसे मिलकर ग्रंथको नष्ट करनेके वास्ते उस
छापेखानेमें दूसरीबार लिखापढ़ी करायकर छापनेका बन्दोबस्त किया
सो उस जगहभी उन्होंने २० पृष्ट छापकर झगड़ा उठाया और मूषक
वृत्तिसे उस ग्रंथमें अनेक तरहके शब्द काटफांस अपनी बुद्धि अनुसार
कर दिये आखिरको उस ग्रंथके नष्ट करनेको उनका जोर न चला क्यों
कि इस वर्त्तमानकालमें महारानी विक्टोरियाका प्रबल प्रताप होनेसे कि
सिंह और बकरी एक जगह पानी पीते हैं उनका कुछ जोर न चला आ-
खिरको सँम्वत् १९५१ कार्तिकके मासमें पुस्तक लौटा दी तब मैंने
शीघ्रतासे छपनेके वास्ते पुस्तककी कापी मुम्बईको रवाने की और उन-
की मूषकवृत्तिका खयाल न किया कि उन्होंने कापीमेंसे शब्दोंको अदल
बदल करादिया है परन्तु जब मुम्बईमें २ फार्म अर्थात् १६ पृष्ठ छपगये
और उनके प्रूफ और कापी अजमेरमें आये तब उसको देखा तो पहिले
की कापीसे अर्थात् खरा लिखा गयाथा उसमें शब्दोंका फर्क देखा तो
उसीवक्त मुम्बईमें तार दिया कि छापना बन्द करो और पीछेसे उस
पुस्तकका हाल उस छापेवाले महाशयको पत्रद्वारा लिखा और आर्य्य-

पांचवे प्रश्नके उत्तरकी अनुक्रमणिका।

श्रीवीतरागायनमः ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर।

उपोद्घात।

छप्पय।

मंगलमय मंगलानन्द,-प्रद परम शान्त जू ॥
सिद्धि शिरोमणि वीर, तरन तारन अशान्त जू ॥ १ ॥
जिनवर पंकज चरण, शरण गहि रहत दिवस निशि ॥
ध्यान क्रियादत्त चित्त रखत, इन्द्रिय सदा वशि ॥ २ ॥
ऐसे सतगुरु पूज्यश्री,-चिदानन्द महाराज ॥
तिन्हैं विनय युत वन्दना, करि हम पूछत आज ॥ ३ ॥

श्रीमहाराज !

वर्तमान समयके नाना प्रकारके मतमतान्तरोंके भेद और वाद विवाद सुनकर हम दीन जिज्ञासुओंके चित्त मलीन और विश्वासहीन हो गये । जिधर गये जिधर देखा जिधर सुना और जिससे पूछा यही कहते सुना कि, हमारा मत ईश्वरीय और सत्य तथा अनादि है, और सम्पूर्ण मतानुयायी अपनेही मतसे मोक्षका प्राप्त होना कथन कर अन्योन्य मतोंकी निन्दा करते और उनको असत्य बताते हुए पाये गये, जब यह देखा कि अपने तईं सब बड़े और सच्चे कहते हैं तथा मानते हैं तो इससे अनुमान किया कि कोई सत्यवादी नहीं, क्योंकि जब अपने मुख अपनाही विरद बखान कर रहे हैं, तो किस २ को सच्चा कहा जावे । दूसरी बात यह है कि यदि सबके वचन माननीय ठहराये जावें तो यह भ्रम रहता है कि इनमें परस्पर द्वेषने प्रवेश कहांसे किया ? कारण यह कि सचके भेद नहीं होना चाहिये और यदि सबही ठीक मार्गपर हैं तो जिसका जिसपर विश्वास है वही ठीक है । तो फिर दूसरे मतोंका खण्डन, और अपनेका मण्डन करनाही ठीक नहीं ॥ प्रायः देखा गया है कि जब ये मतवाले अपने मतकी सिद्धि करते हैं, तो दूसरे मतोंके दोष दिखलाकर ऐसी ऊटपटाङ्ग गाथा गाते हैं कि जिससे पूरा २ खण्डन तो होता नहीं केवल फूट फैलती है-यथार्थ खण्डन वही समझा जाता है कि जिसका खण्डन किया जाय उसी-का परस्पर विरोध प्रबल युक्ति और प्रमाणोंसे दिखलाकर भली भाँति प्रतिपक्षीका मुख बंदकर दिया जावे । आज वर्तमान समयमें इस खण्डन मण्डनके झगड़े रगड़े ऐसे बढ़ गये

पांचवे प्रश्नके उत्तरकी अनुक्रमणिका।

श्रीवीतरागायनमः ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर ।

उपोद्घात ।

छप्पय ।

मंगलमय मंगलानन्द,—प्रद परम शान्त जू ॥
सिद्धि शिरोमणि वीर, तरन तारन अशान्त जू ॥ १ ॥
जिनवर पंकज चरण, शरण गहि रहत दिवस निशि ॥
ध्यान कियादत्त चित्त रखत, इन्द्रिय सदा वशि ॥ २ ॥
ऐसे सतगुरु पूज्यश्री,—चिदानन्द महाराज ॥
तिन्हैं विनय युत वन्दना, करि हम पूछत आज ॥ ३ ॥

[illegible]!

वर्तमान समयके नाना प्रकारके मतमतान्तरोंके भेद और वाद विवाद सुनकर हम दीन जिज्ञासुओंके चित्त मलीन और विश्वासहीन हो गये । जिधर गये जिधर देखा जिधर सुना और जिससे पूछा यही कहते सुना कि, हमारा मत ईश्वरीय और सत्य तथा अनादि है. और सम्पूर्ण मतानुयायी अपनेही मतसे मोक्षका प्राप्त होना कथन कर अन्योन्य मतोंकी निन्दा करते और उनको असत्य बताते हुए पाये गये. जब यह देखा कि अपने तई सब बड़े और सच्चे कहते हैं तथा मानते हैं तो इससे अनुमान किया कि कोई सत्यवादी नहीं. क्योंकि जब अपने मुख अपनाही विरद बखान कर रहे हैं. तो किस २ को सच्चा कहा जावे । दूसरी बात यह है कि यदि सबके वचन माननीय ठहराये जावें तो यह भ्रम रहता है कि इनमें परस्पर द्वेषने प्रवेश कहांसे किया ? कारण यह कि सबके भेद नहीं होना चाहिये और यदि सबही ठीक मार्गपर हैं तो जिसका जिसपर विश्वास है वही ठीक है । तो फिर दूसरे मतोंका खण्डन, और अपनेका मण्डन करनाही ठीक नहीं ॥ प्रायः देखा गया है कि जब ये मतवाले अपने मतकी सिद्धि करते हैं. तो दूसरे मतोंके दोष दिखलाकर ऐसी ऊटपटांग गाथा गाते हैं कि जिससे पूरा २ खण्डन तो होता नहीं केवल फूट फैलती है—यथार्थ खण्डन वही समझा जाता है कि जिसका खण्डन किया जाय उसी-का परस्पर विरोध प्रबल युक्ति और प्रमाणोंसे दिखलाकर भली भांति प्रतिपक्षीका मुख बं-द कर दिया जावै । आज वर्तमान समयमें इस खण्डन मण्डनके झगड़े रगड़े ऐसे बढ़ गये

हैं कि जिनका वर्णन करनाहीं कठिन है ॥ अस्तु इन झगड़ोंसे ऐसा चित्त हटने लगा कि सत्य धर्मका अभावही समझने लगे—परन्तु फिर जब आपके पधारनेके समाचार और आपकी प्रशंसा सुनी तो आपके दर्शन करनेकी लालसा हुई, और यथावकाश आने जाने लगे । इस अल्पकालीन श्रीमद्राजके सतसङ्गसे यह अनुमान हुवा कि आपसे कदाचित् हमारी अभिलाषा पूर्ण हो सकेगी और आपका सदाचार और निष्पक्ष व्यवहार ऐसा देखा गया कि यद्यपि आप जैन धर्माचार्य्य हैं तथापि वैश्नव शैव शाक्तादि किसी मतावलम्बीसे आपको द्वेष नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्रावक (सरावगी) ओसवाल सबपर समान दृष्टि और सबके साथ उचित प्रेमका जो वर्ताव आपका है, वह हमारी आशालताको हरी भरी करनेके लिये पवित्र निर्मल जलके समान हुवा, उपदेश जो आपकी ओरसे अबतक दिया गया वहभी अपूर्व है, क्योंकि सबसे प्रथम आप दश बातकी सौगन्ध दिलाते हैं द्यूत, चोरी, मांस,मदिरा (शराब), परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, शिकार और अपने किये उपदेशका किसीसे प्रगट करनेका त्याग तो प्रायः सबही कराते हैं पर विलक्षणता जो आपके उपदेशमें पाई गई वह यह है कि, एक तो आप यह फरमाते हैं कि जबतक हम यहते इस साधु वृत्तिमें रहें अर्थात् धन और स्त्रीका संसर्ग न रक्खें तबतक तो हमको गुरु मानना और भिक्षा देना और दूसरे यदि हमारी किसी साधुसे किसी कारणसे अन बनत हो जाय तो उससे द्वेष न कर जैसा हमें मानते हो वैसा उसभी मानों । जहांतक हमने इन सब बातोंको विचार कर देखा यही उत्तम और उपयोगी दीख पड़ीं । यद्यपि सबही बातें उत्तम तथापि अन्तिम उपदेश, जिसके विरुद्ध कहना सब मत धारियोंका मुख्य सिद्धान्त है अति विचित्र है कि जो किसीके मुखसे नहीं सुना गया और जिसने फूटकी बीजकोही जला डाला—

अब हमारी अभिलाषा है कि, श्रीमुखसे कुछ धर्ममर्म श्रवण कर, अपनेको कृतार्थ करें-इसलिये आप हमपर अनुग्रह कीजिये । साथही इसके हमारी यहभी अभिलाषा है कि जो वाक्य श्रीमुखसे प्रगट होवें लेखनी बद्ध होजाय ताकि उनसे अन्यान्य जिसासु कि भव्य जीवोंकोभी लाभ पहुंचे । आपने जो यह कहा कि, लिखनेका अभ्यास हमारा न्यून है सो इस विषयमें हमारी यह प्रार्थना है कि, हममेंसे जिस २ को जैसा अवकाश मिलेगा वो इस कार्य्यको किया करेगा और इस प्रकार हमारा मनोरथ और आपका परिश्रम सफल होगा ॥ इसलिये हम विनय पूर्वक निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर चाहते हैं और वो प्रश्न यह है—

प्रथम प्रश्न—हे स्वामिन् ! पहले आपका कौनसा देश क्या जाति और क्या नामथा सो सब वृत्तान्त अपनी उत्पत्ति आदिका कहिये तथा साथही यहभी कृपाकर बतलाइये कि किस प्रकारसे आपको वैराग्य उत्पन्न होकर यह गति प्राप्त हुई ?

द्वितीय प्रश्न—वर्तमान कालमें जो मत मतान्तर हैं सो सब अपनेको सत्य और दूसरोंको असत्य कहते हैं सो आप कृपा करके प्रसिद्ध मतोंके जो उपदेशक जगह २ उपदेश देते हैं उन्हीके शास्त्रानुकूल उनके पदार्थोंका यथायोग्य निर्णय कर दीजिये जिससे हमलोग इन झगड़ोंसे आनन्द होजांय किन्तु उन्हींके अनुकूल होकर आपका कहना ठीक है ?

तृतीय प्रश्न—जैन मतमेंभी कई भेद १ दिगाम्बर जिसके कई भेद हैं २ स्वेताम्बर इसमेंभी कई प्रकारके भेद हैं। जैसे प्रतिमाको नहीं माननेवाले बाईस टोला, तेरह पन्थी और मन्दिरके माननेवाले जिनमेंभी गच्छादिकके कई भेद हैं और सब अपनेको जैनीही कहते हैं परन्तु इनमें परस्पर भेद होनेसे सबके जैनी होनेमें शङ्का होती है और आगे समाचारी एकथी कि जुदी २ थी इसलिये शुद्ध जैनी कौन सो कृपा करिके प्रमाण सहित बतलाइये?

चतुर्थ प्रश्न—वीतरागका जिनधर्म स्याद्वाद रीतिसे अनंत धर्म वस्तु, कारण, कार्य्य, साध्य, साधन, वीतरागकी आज्ञा, गुरु, शुद्ध उपदेशादि चिह्नोंसे जिन मार्गकी उत्सर्ग अपवाद करके समकितकी प्राप्तिका मूल कारण हमारे लिये कहिये?

पञ्चम प्रश्न—हठयोग किसको कहते हैं और उससे क्या प्राप्त होता है और वह जिन मतमें है या नहीं और जो जिन मतमें है तो इस योगकी प्रवृत्ति क्यों नहीं। तथा दूसरा जो राजयोग है वह क्या है और उसका फल क्या है तथा वर्तमान कालमें है वा नहीं सोभी हमें समझाइये?

आपके चरणसेवक प्रश्नकर्ता—

कल्यानमल ओसवाल भड़गत्या अजमेर, हीराचन्द सचेती ओसवाल अजमेर, सोभागमल वेद मोहता ओसवाल अजमेर, देवकरण वेद महता अजमेर, हमीरमल साह ओसवाल अजमेर, नत्थमल गादिया ओसवाल रतलाम, जवाहरमल कठारिया ओसवाल रतलाम, हस्तीमल मूहता ओसवाल मेहता निवासी रतलाम, भगवानचन्द अग्रवाल वासल गोती आगरा, हर्षचन्द धारीवाल ओसवाल अजमेर, सौभाग्यमल हर्षावत् ओसवाल अजमेर, कन्हैयालाल हूंगर अलवर, लक्ष्मीचंद भणोत ओसवाल अजमेर, बीसूलाल गुर्जरगौड ब्राह्मण अजमेर.

श्रीवीतरागायनमः।

अथ स्याद्वादानुभवरत्नाकर

ग्रन्थारंभः।

दोहा—सम्यक दर्शनमें नमूं शासनपति श्रीवीर।
स्याद्वाद प्रभु सुमरतां, मिटे सकल भवपीर ॥ १ ॥
गौतम स्वामी सुमिरिके नमि सुधर्म पद माथ।
आगम अनुभव कहत हूं, स्याद्वाद गुणसाथ ॥ २ ॥
पुनि गुरु चरण मनायके, श्रुति देवी मनलाऊं।
स्वपर समयहिं जानके, वस्तु धर्म गुण गाऊं ॥ ३ ॥
सर्व मित्र मिल प्रश्न किय, सुनि उपजो आनन्द।
पूछो मारग मोक्षको, तजि भवसागर फन्द ॥ ४ ॥
सुनों मित्र उत्तर कहूं, सुनत टलें भ्रम जाल।
श्रद्धा भापण अरु किया, कर सब होहु निहाल ॥ ५ ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तरः—भद्रानुप्रिय! प्रथम प्रश्नका उत्तर सुनो—कि मैं जिले [illegible] (बंगाल) [illegible] देशमय। उस [illegible]के पास एक हरदर्शी गंज कसबा अर्थात् स्वामियोंकी मंडीथी उसमें एक लोढियोंकी जाति अगरवाले संवत् १७२४ की सालमें गुजराती लोगोंके मस्तक [illegible] नगरजनोंने प्रति बांधकर उन अग्रवाले लोढियोंको जैनी श्वेताम्बर आम्नायवाले बनाये यती लोगोंके शिथिलाचार होनेसे ढूंढिया मतमें प्रवृत्त हो गये थे. उनमें एक मतका धारक [illegible] एक कल्याणदास नाम करके वैश्य उस कसबेमें प्रसिद्ध और सबका माननीयथा उसकी स्त्रीका नाम ललितकुमारी था जिसके एक देवकुमारि नाम कन्या प्रथम हुई थी और उसके पश्चात् दो लड़के उत्पन्न हुये, परन्तु वे दोनों अल्प कालहीमें मृत्यु हो गए. तब वे पुत्रके लिये अनेक प्रकारके यत्न करने लगे [illegible] उनके धर्म कर्म [illegible] किया परन्तु वे अनेक प्रकारके रोगोंमें प्रायः दुःखी [illegible] मान लिया [illegible] मिथ्या देवी देवताओंको पूजने लगे तो कि इस [illegible] इस कारण कोई [illegible] नहीं हुआ [illegible]

१ [illegible]

हुये कपड़े पहनाये जातेथे, इसी कारण मेरा नाम फकीरचन्द रक्खा गया, मेरे पीछे उन-
के एक पुत्र और हुआ जिसका नाम अमीरचन्दथा जब मैं कुछ बड़ा हुवा तो एक पाठशा-
लामें बैठाया गया और कुछ दिनमें होशियार होकर अपनी दुकानोंके हानि लाभ और
व्यापार आदिको भली प्रकारसे समझने लगा स्वामी संन्यासियों और बैरागियोंके पास
अकसर जाया करताथा और गांजा, तमाखू आदिका व्यसन भी रखताथा गंगास्नान और
राम कृष्णादिकोंके दर्शन करना मेरा नैत्यक कर्मथा और हरेक मतकी चर्चाभी किया
करता था एक समय एक संन्यासी मुझको मिला और उसने कहा कि, कुछ दिन पीछे
तुमभी साधु होजाओगे, मैंने यह उत्तर दिया कि मैं बंधा हुवा हूं और पैदा करना मुझे
याद है फकीर तो वह बने जो पैदा करना न जाने इतनी बात सुनकर वह चुप हो गया पर
कुछ देर पीछे फिर बोला कि होनहार (जो होनेवाला है) मिटनेका नहीं तुमको तो भीख
(भिक्षा) मांग कर खानाही पड़ेगा तब तो मुझको उन लोगोंकी सङ्गतिमें कुछ भ्रम पड़
गया पर जो बातें उसने कहीथीं उनको हृदयमें जमा रक्खीं अब ढूंढियोंकी संगति अधिक
करने लगा और इससे जैनमतमें श्रद्धा बंधी परन्तु मंदिरके मानने अथवा पूजनेसे चित्त
उखड़ गया थोड़े दिन बीतनेपर एक रत्नचन्दजी नामक साधु जिनको हम विशेष मानतेथे
उन्हींके चेले चतुर्भुजजी उस बस्तीमें आये और "दशवैकालकसूत्र बांचने लगे मैं भी
वहां व्याख्यान सुननेको जाया करता था सो एक दिन सुनाताकि, जिस जगह स्त्रीका चित्र हो
वहां साधु नहीं ठहरे कारण कि, उसके देखनेसे विकार जागता है यह बात सुनकर मैंने
अपने चित्तमें विचार किया कि जो साधुको स्त्रीके देखनेसे विकार पैदा होता है तो भगवान्
को देखनेसे हमको शांतिरूप अनुराग पैदा होगा इतना मनमें धारकर फिर ढूंढिये
चतुर्भुजजीसे चर्चा की तो उन्होंने भी शास्त्रके अनुसार मूर्त्तिपूजा करना गृहस्थोंका मुख्य
कर्त्तव्य बताया, और मुझको नियम दिलाया परन्तु उस देशमें तेरहपंथियोंका बहुत चलन
था इस लिये उनके मन्दिरमें जाताथा और उन्हींकी संगति होने लगी जिससे तेरहपंथी
दिगम्बरियोंकी श्रद्धा बैठने लगी कारण यह कि, भगवानने अहिंसा धर्म (अहिंसापरमोधर्मः)
कहा है सो मूर्त्तिका दर्शन करना तो ठीक है परन्तु पुष्पादिक चढ़ानेमें तो हिंसा होती है
ऐसी श्रद्धा हो गई इसी हालमें उस संन्यासीकाभी कहना मिलने लगा और बंधनसेभी
छूटने लगा तब तो मुझको निश्चय हुवा कि मैं किसी समय में साधु हो जाऊंगा कुछ
दिवस पीछे एक दिन मेरे पिताने मुझे कुछ बुरा भला कहा जिसपर मैंने यह कहा कि मुझे तो
(यथा नाम तथा गुणः) प्रगट करना है इसलिये आपके जालमें नहीं फंसना मुझे तो
फकीर बनना है फकीरोंको इससे क्या मतलब, उनका कहना न मानकर मैं विदेश
(परदेश) को चला गया और कई महीने तो कानपुरमें रहा तदनन्तर प्रयाग, काशी आदि
नगरोंमें होकर पटने जाकर रहा कुछदिन पीछे वहांके बड़े मुन्नूलालसे जो दिगम्बरीथा
मेरी मुलाकात हो गई उसके कहनेसे मैं दो वर्षतक वहां रहा इसी अवसरमें [illegible] और
[illegible]को गये तो मैंभी उनके साथ गया वहां तेरह पंथियोंका अधिक जोर था सो उनकी
संगतसे कुछ मजबूती हुई [illegible] उनमेंसे द्यानतराय दिल्लीवालेकी बनाई हुई
पूजन जिससे तेरह पंथकी ज्यादा मजबूती हुई उसमें लिखाथा कि भगवान्की
केशर चन्दन पुष्पादिक अष्ट द्रव्यसे पूजा करना यह देखकर मेरी श्रद्धा [illegible]

गई कि भगवत्‌का पुष्पादिकसे पूजन करना चाहिये ऐसा तो मेरे चित्तमें जम गया परन्तु दिगम्बर मतकी कई बातें मेरे चित्तमें नहीं बैठीं जिनका वर्णन तीसरे प्रश्नके उत्तरमें करूंगा इसके बाद उन सदर मुन्सिफकी बदली पुर्नियांको हो गई है मैं भी वहांसे कलकत्तेको चला गया दो चार महीने निठल्ला बैठा रहनेके पश्चात् बंगाली लोगोंके 'हाउस' में रुई व सोरेकी दलाली करने लगा और बंगाली लोगोंके मोहब्बत पाकर जातियमके सिवाय और धर्मका लेशभी नहीं रहा कई तरहके रंग ऐसे हो गये कि मैं वर्णन नहीं कर सकता कारण कि कर्मोंकी विचित्र है उन दिनोंमेंही मेरे हाथ एक शोरा रिफाइन करनेकी कल लगीथी उसमें हजा शोरा रुपया जियादह पैदा होने लगा जिसका यह प्रभाव हुआ कि मद [illegible] और दिन जियादा बुरा सिवाय नरकके कर्म बंधनके और कुछ न था सो रविवारके दिन कलकत्तेसे बाहिर गयाथा वहां खाना पीना और नशे आदिके पीछे नाच रंग हो रहाथा समय मेरे कोई शुभकर्मका उदय हुआ कि जिससे तत्काल मेरे मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ सो तुरन्त उस रंगमें भंग डाल अपने घर चला आया दूसरे दिन प्रातःकाल जो कुछ माल असबाबथा सो लुटा दिया फिर उस बंगालीके पास गया जिसका मैं काम करताथा और जाकर कहा कि मुझसे अब तेरा काम नहीं होगा मैंने संसारको छोड़ दिया और मैं साधु बनता हूं हां तूने मेरे भरोसेपर यह काम कियाथा इस लिये एक और मातिबर दलाल मेरी साथ है सो मैं उससे तुम्हारा सब बन्दोबस्त (प्रबंध) करवा देता हूं यह सुनकर वह बंगाली बहुत खुश और लाचार होने लगा मैं उसको समझाकर दूसरे दलालके पास लेगए और दिन भरमें उसका सब काम दुरुस्त कराकर संवत् १९३३ की साल जेठके महीनेमें सूर्यग्रहण (जाप) के समय कलकत्तेसे रवाना हुआ उस समय जो २ लोग मेरे साथ थे. पीना नशा आदिक करते थे सब साथ होगये और मेरा इरादा पैदल चलनेकाथा पर [illegible] हावड़ेसे बर्द्धवानका टिकट मैंने लिया उसी समय मैंने अपने घरवालोंको चिट्ठी दीनी कि मैं अब फकीर हो गया हूं तुम्हारी आनिकुल सब छोड़ दिया और जैसा कहताथा वह दिखलाता हूं. जब मैं साधु हुआ तब एक लोटा जिसमें आधसेर जल समाते हो चदर एक लंगोटी और दो ढाई तोले अफल (अफीम) इसके सिवाय कुछ पास नहीं रक्खा और चित्तमें ऐसा विचार किया कि जबतक ये अफीम पासमें है तब तक तो खाऊंगा पश्चात् मैं न खरीदूंगा और कदापि लेकर नहीं ग्रहण करूंगा. तमाखू जो पीताथा उसी समय छोड़दी और अन्न (भिक्षा) मांगनेके लिये यह नियम कर लिया कि कहीं मिल जाय तो लेऊंगा। बर्द्धवान उतर कर बंगालियोंके साथ मांगकर खाने लगा दो तीन दिन पीछे वा अफीम भी खतम हुई जिससे खाना बन्द कर दिया, दो तीन दिन पीछे संन्यासियोंके साथ कर लिया वा वह विचार करनेलगा कि कोई २ मुझे मेरा मत पूछेगा तो मैं क्या बतलाऊंगा [illegible] करते हैं और [illegible] निन्दा करते हैं इस लिये इन [illegible] ठीक नहीं और [illegible] विचार किया कि जो कुछ उस पर [illegible] फिर [illegible] फिर

बैठा रहा, मैंने अपना सब वृत्तान्त उससे कहा तो उसने धैर्य दिया और कहनेलगा कि घबरावो मत जो कुछ कि तुमने किया वह सब अच्छाहोगा उसने हठयोगकी सारी रीति मुझे बतलाई, वह मैं पांचवें प्रश्नके उत्तरमें लिखूंगा, एक बात उसने यह कही कि जिस रीतिसे मैं बतलाऊं उस रीतिसे श्रीपावापुरीमें जो श्रीमहावीर स्वामीकी निर्वाण भूमि है वहां जाकर ध्यान करोगे तो किंचित् मनोरथ सफल होगा पर हठ मत करना उस आसनसे चले जावोगे तो कुछ दिन बाद सब कुछ हो जायगा और जो तुम इस नवकारको इस रीतिसे करोगे तो चित्तकी चंचलता भी मिटजायगी और हम लोग जो इस देशमें रहते हैं सो यही कारण है कि यह भूमि बड़ी उत्तम है जब मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम जैनके साधु हो? परंतु लिंग तुम्हारे पास नहीं उसका क्या कारण है तो कहने लगा कि भाई! हमको श्रद्धा तो श्रीवीतरागके धर्मकी है परन्तु तुमको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है जो बात हमने तुमको कहदीनी है यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही वीतरागके धर्मका अनुभव होजायगा किन्तु हमारा यह कहना है कि परवस्तुको त्याग स्ववस्तुको ग्रहना और किसी भेषधारीके जालमें न फँसना इतना कहकर वह वहांसे चलागया मैंभी वहांसे सवेरा होनेपर नीचे उतरा और आस पासके गांवोंमें फिरता रहा पीछे दो तीन महीनोंके पिछाड़ीमें आकर श्रावकोंसे प्रबंध करके पावापुरीमें चौमासा किया [illegible] थे कि पाना पूगरा पुजारीया उसकी सहायतासे जिस मांडियेमें कपूरचन्दजीने ध्यान किया था उसीमें मैंभी ध्यान करने लगा दशदिन तक मुझको कुछ नहीं मालूम हुआ और ग्यारहवें दिन जो आनन्द मुझको हुआ सो मैं वर्णन नहीं कर सकता और चित्तकी चंचलता ऐसे मिट गई जैसे नदीका चढ़ा हुआ पूर एक संग उतर जाय बाद इसके ध्यानमें विघ्न होने लगे सो कुछ दिनके बाद ध्यान करना तो कम किया और "गुरु अवलम्ब निवारन आतम अनुभव रस मांहि छाकाजी। पावापुर निर्वाण भवनमें बाद चिदानन्द पायाजी" इस नामको पाकर चौमासेके बाद वहांसे विहार कर चलता हुआ बनारस (काशी) में आया और जगहकी भी यात्रा करी और उसी जगह [illegible] वहां कुछ दिन पीछे केसरीचन्द गोदिया जयपुरवाला मुझे मिला उसने मुझसे पूछा कि आप किसके शिष्य हो और आप किधरसे आये? मैंने कहा कि मैं श्रीशिवजी रामजीका शिष्य हूं तब उसने यह कहा कि महाराज! मैं तो श्रीशिवजी रामजीके सब शिष्योंसे वाकिफ हूं आप कबसे हुए तब मैंने उत्तर दिया कि भाई! मैं उनकी मूरतसे तो वाकिफ नहीं पर अपनेसे कुछ जानता हूं तब वह [illegible] मुझको मारवाड़में ले आया और फिर [illegible] वहां [illegible] मिले आठ दिन वहां रहा और फिर अजमेर [illegible] पहुंचा वहां श्रीशिवजी रामजी महाराजके दर्शन किये उस समय [illegible] इस [illegible] फिर श्रीशिवजी रामजीने अजमेर आकर मुझे [illegible] कोठीमें [illegible] संवत् १९३४ का असाढ़ सुदी बीज मंगलवारके दिन इस समय जब श्रीशिवजी रामजी महाराजने मुझे [illegible] मुझको [illegible] कहा कि मैं [illegible] करता हूं उस समय [illegible] मौजूद था तब मैंने कहा कि महाराज मस्तक

मेरेको इन्द्रीका विषय भोगनेका जावोजीका त्याग है परन्तु प्रवृत्तिमार्ग अथवा कारण पड़ेतो गृहस्थियोंसे कहकर कर्म कराय लेना इसका वृत्तान्त चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखूंगा फिर मुझको दिक्षा देकर उन्होंने नये शहरमें चौमासा किया परन्तु मेरी उनकी प्रकृ- ति नहीं मिलनेसे मैं अजमेर चला आया पश्चात् चौमासाके श्रीसुखसागरजी महाराज जय- पुरसे आये और मैं उनसे मिला और उन्होंने मुझसे कहा कि भाई छः महीनेके भीतर जोग नहीं वहे तो समायक चारित्र गल जाता है जब मैं उनकी आज्ञासे श्रीभगवान् सागरजीके साथ जाकर नागोरमें योगविद्या और वड़ी दिक्षा की उस समय मोहनजीभी मोजूदथे वड़ी दिक्षाका गुरु मैं श्रीसुखसागरजी महाराजको मानता हूं फिर वहांसे फलोदी जाकर चौमासा किया और उस जगह सारस्वतभी की, फिर नागौरमें चतुरमासा किया और उस जगह मैंने चंद्रिकाभी देखी और फेर अजमेरमें आयकर वेदभी पढ़े और धर्मशास्त्रभी देखा वखान वानाभी वांचने लगा तथा श्रावकोंका व्यवहार उनको करने लगा मैं अनेक स्वामी संन्यासी और ब्राह्मण लोगोंसे जो कि विद्वान् थे मिलता रहा और स्वमतके जती वा समे- गी लोगोंसे वा ढूंढियोंसे सबसे मिलता रहा परन्तु उनके आचरण देखे तिनका हाल तो तीसरे वा चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहूँगा लेकिन यहां कुछ कवित्त कहता हूँ ॥

कवित्त—चौवे चले छव्वे होन, छवेनकी वड़ाई सुननिश्चयमें ढुवे वसे दु- वेही वनावे हैं। पक्षपातरहितधर्मभाषोसर्वज्ञआप, सोतो पक्षपातकरि स- वही धर्मको डुवावेंहैं ॥ पंचमकालदोषदेतइंद्रिनकाभोगकरे, भीतर न रुचि क्रिया वाहरदिखलावेंहैं । चिदानन्द पक्षपातदेखी अव मुल्कवीच समझै नहीं जैन नाम जैनको धरावेंहैं॥ १ ॥ पांचसात वरस क्रियाकरिके उत्कृष्टी आप वनियेको वहकाय फिर माया चारी करतहै। मंत्र यन्त्र हानि लाभ कहै ताको वहु मान करे झूठ सुन आये तो आगे लेन जातहै॥ सुध प्रणति साधु रंजन ना करसके लोगोंको याते कोई मतलव विन कवहुं पास नहिं आवतहै। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क वीच समझै नहीं जैन नाम जैनका धरावै है॥ २॥ पंचम काल दोष देत जैना उन्मत्त भये थापत अपवाद करै मौंडेकी कहानी है। द्विई विधि धर्म कह्यो निश्चय व्यवहार लियो कारण अपवाद ऐसी प्रभु आपही वखानी है ॥ प्रायश्चित्त करै गुरु संग शुद्ध होय चित्त चारित्र धरे श्रद्धा और ज्ञान यही स्यादवादकी निशानी है। चिदानन्द सार जिन आगमको रहस्य यही आज्ञा विपरीत वोही नरककी निशानी है॥ ३॥

दिङ् इति अलम् विस्तरेण—इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य्य मुनिचिदानंद स्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे प्रथम प्रश्नोत्तरं समाप्तम्।

अथ द्वितीय प्रश्नका उत्तरः—जो तुमने मत मतान्तरके बावत पूछा उसमें क्रिया वादी, अक्रिया वादी, अज्ञान वादी और विनय वादी इनके तीनसो त्रेसठ ३६३ भेद होते हैं सो अगाडीके गीतार्थोंने कई ग्रन्थोंमें उनकी प्रक्रिया लिखी परन्तु मैं जो कि वर्तमान कालमें नैयायिक वैशेषिक सांख्यी वेदान्ती, मीमांसक बौध चारवाक्य अर्थात् नास्तिक मत प्रसिद्धमें हैं इनमेंभी वैशेषिक और वेदान्ती दयानन्द मुसलमान और ईसाई ये मत प्रसिद्ध है इन पांचोंहीके जो भेद हैं उन्हींको मैं तुम्हारे लिये वर्णन करता हूं सो तुम ध्यान कर सुनों. प्रथम नैयायिक सोलह पदार्थ मानते हैं सो वे वैशेषिकके पदार्थोंमें अन्तर्भावित हो जाते हैं इसलिये वैशेषिक कणादमुनिके रचेहुवे सूत्रोंमें जितने पदार्थ हैं उनका नाम द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय है—१ पृथ्वी, २ अप, ३ तेज ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिग (दिशा) ८ आतमा, ९ मन, यह नव द्रव्य मानते हैं और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये चौवीस गुण हैं, और उत्क्षेपण १ अवक्षेपण आकुंचन प्रसारण गमन पांच कर्म हैं और सामान्य नाम जातिका है जैसे द्रव्यमें द्रव्यपन, गुणमें गुणपन ऐसे जाणों, और नित्य द्रव्योंमें रहकर उनको जुदे बतलाने वाले विशेष पदार्थ हैं और नित्य सम्बंधको समवाय कहते हैं इस रीतिसे नैयायिक इतनी वस्तुवोंको मानते हैं सो उनका मानना ठीक नहीं है. गुणको जो जुदा पदार्थ मानते हैं सो विना गुणके तो द्रव्य बनताही नहीं है और कर्मको जो पदार्थ माना है सो यह तो जीवोंके विभावका फल कर्म होता है सो कुछ पदार्थ नहीं और सामान्य विशेष दोनों कुछ पदार्थ नहीं हैं एक विवक्षा मात्र है, समवाय जो है सो तो गुण गुणीका सम्बन्ध है. सो सम्बंधको पदार्थ मानना ठीक नहीं है, जब तुम्हारे पदार्थही ठीक नहीं ठेहरे? द्रव्यादिकभी ठहरते नहीं हैं क्योंकि जो द्रव्य तुम मानते हो सो तो जीवोंका अशुभ कर्म होनेसे, १ पृथ्वी २ तेज, ३ अप ४ वायु होता है इनको द्रव्य मानना यह कोई प्रमाणका वचन नहीं है और दिशाको जो पदार्थ मानते हो सो यह तो आकाशकेही अन्तर्गत है इसलिये पदार्थ मानना ठीक नहीं है अस्तु अब यह बात और समझो कि आदिके चार द्रव्य प्रमाणरूप सो नित्य हैं और कार्य्यरूप अनित्य हैं और पांचवे द्रव्यसे आठवें द्रव्यतक व्यापक और नित्य है और मन द्रव्य प्रमाणरूप है, इन सो द्रव्योंमें चौबीस गुण रहे हैं सो द्रव्योंका सो आपसमें संयोग सम्बन्ध होता है और कार्य्यरूप द्रव्य अपने कारण द्रव्यसे समवाय सम्बंधसे रहते हैं और सामान्य नाम, जाति, द्रव्य, गुण, कर्म, इन तीनोंमें समवाय संबन्धसे रहते हैं और विशेष नित्य द्रव्योंमें समवाय संबंधसे रहे हैं अब हम तुमको पूछते हैं कि ये पदार्थ कोई प्रमाणसे सिद्ध हैं वा प्रमाण विनाही सिद्ध हैं जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध हैं तो ऐसे तुम्हारे कहनेको तो तुम्हारे घरकेही मानेंगे बुद्धिमान् तो कोई नहीं मानेगा और कहो कि प्रमाणसे सिद्ध हैं तो ये तुम्हारे पदार्थ प्रमेय हुवे सो प्रमेय इस पदका अर्थ प्रमाणका विषय ऐसा है सो हम पूछते हैं कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होती है कि प्रमाणको पैदा करे है जो तुमको कहना पड़ेगा कि प्रमाणसे प्रमा पैदा होती है तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमाण तो प्रमाको पैदा करे है और प्रमा पदार्थको सिद्ध करे है तो हम पूछे हैं कि

प्रमाण और प्रमा यह दोनों पदार्थोंके अंतरगत हैं अथवा नहीं तो तुमको कहनाही पड़े-गा कि मानें पदार्थोंके अंतरगतही हैं क्योंकि तुम्हारे मानें पदार्थोंसे कोई वस्तु नहीं तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत हुई तो प्रमाकोभी प्रमेय माननाही पड़ेगा हम पूछें हैं कि प्रमा जो प्रमेय हुई तो इसको विषै करनेवाली पदार्थोंसे माननी चाहिये जो कहो कि माने पदार्थोंसे पदार्थ नहीं तो यहभी प्रमा इन पदार्थोंके अंतरगतही है उस प्रमाको प्रमेय कहनाही पड़ेगा इस प्रकार तो प्रमा मानते मानते अनवस्था होगी इसलिये प्रमाको प्रमेय नहीं माननी चाहिये तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमा प्रमेय नहीं है और प्रमासे सब पदार्थ प्रमाके विषय हुए इसीलिये प्रमेय हैं तो हम पूछें हैं कि प्रमा प्रमाणसे होवे है या स्वतःसिद्ध है जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध है तो प्रमाणसे सिद्ध न हुई तो प्रमा अप्रमाणिक हुई तो अप्रमाणिक प्रमासे सिद्ध सारे पदार्थ अप्रमाणिक होगये जो कहोगे कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होवे है तो हम पूछें हैं कि प्रमाण तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत है या नहीं कहनाही पड़ेगा कि मानें पदार्थोंके अंतरगत है तो प्रमाणकोभी प्रमेय कहनाही पड़ेगा जो प्रमाणको प्रमेय कहोगे प्रमाण प्रमाका विषय है यह सिद्ध हो गया तो प्रमाण प्रमाके विषय होनेसे प्रमाण प्रमाको पैदा करनेवाला मानो तो सर्वथा असङ्गत है जो जिसका विषय हो सो उसको पैदा नहीं करै जैसे घट नेत्रोंका विषय है तो घट नेत्रोंको पैदा नहीं करैहै जो कहो कि प्रमा तो प्रमाण और विशेष इन दोनोंसे पैदा होती है यह अनुभव सिद्ध है तो हम कहें हैं कि प्रमाणका प्रमेयपणाही गया क्योंकि प्रमाणको विषय करनेवाली प्रमा तो केवल प्रमाणरूप विषयसे ही पैदा हुई इसलिये प्रमा नहीं जो ये प्रमा नहीं हुई तो इसका विषय प्रमाण जो है सो प्रमेय न हुवा इसलिये माने पदा-र्थोंके अन्तर्गत प्रमाणको प्रमेय सिद्ध करनेवाली प्रमाका प्रमापणां सिद्ध होणेके अर्थ प्रमा-ण मानना ही पड़ेगा जब इस प्रमाणको भी माने पदार्थोंके अंतर्गतही मानना पड़ेगा तो अनवस्था होगी इसलिये प्रमाणकोभी प्रमेय नहीं मानना चाहिये जो प्रमाण प्रमेय न हु-वा तो प्रमाण सिद्ध न हुवा इसलिये अप्रमाणिक हुवे जो कहो कि इस सामान्य कथनसे तो अर्थकी विधि समझ में आई नहीं इस लिये विशेष कथनसे समझाइये तो तुम्ही ही क-हो कि तुम्हारे माने पदार्थ कौन प्रमाणसे सिद्ध हैं और तुम प्रमाण कितने मानते हो जो कहो कि हम १ प्रत्यक्ष. २ अनुमान. ३ उपमान, ४ शब्द यह चार प्रमाण मानते हैं तहां घट आदिक पदार्थोंका ज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानते हैं और धूम हेतु देख करिके परव-तमें अग्निका ज्ञान अनुमान प्रमाणसे मानें हैं और गोसादृश्य ज्ञानसे गवयको उपमान प्र-माणसे माने हैं और गो लावो ऐसा शब्द सुनके जो ज्ञान होवे है उस ज्ञानको शब्द प्रमाण से माने हैं सो घटादिकके समान तो सारे पदार्थोंका ज्ञान होय नहीं इसलिये माने पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो सिद्ध नहीं हैं और कोई हेतु देख करके इनका ज्ञान होवे नहीं इस लिये यह अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं है और यह कोईके सदृश्य नहीं है इसवास्ते उप-मान प्रमाणसेभी सिद्ध नहीं है अब शेष रहा शब्द प्रमाणसे सारे माने पदार्थ सिद्ध हैं श-ब्द प्रमाणसे शाब्दी प्रमा होय है सो प्रमा माने पदार्थोंको विषय करै है इसलिये सारे प-दार्थ प्रमेय हैं तो यह सिद्ध हुवा कि शब्द प्रमाणसे तो शाब्दी प्रमा और शाब्दी प्रमास

उपादान कारण आपसे विलक्षण पट स्वरूप कार्यको पैदा करता है और आप तंतु स्वरूपसे रहते हैं सो तंतु पटके शरीरमें मालुम होता है, ये आरंभवादमते है इस तंतुओंने पट स्वरूप कार्यका आरम्भ किया इसलिये तन्तु औरभी कारण हुये पटकार्य आरम्भ हुआ और परिणामवाद मत जिनका है वे ऐसा कहे हैं कि कारणहीका कार्य्य स्वरूप परिणामकूं प्राप्त हो जाता है और कार्य्य अवस्थामें स्वरूपमें नहीं रहता है जैसा दहीका उपादान कारण दुग्ध है सोही स्वरूप प्राप्त होता है और दधि (दही) अवस्थामें दुग्ध अपने स्वरूपसे नहीं है इससे ही दहीके स्वरूपमें दुग्ध नहीं मालुम होता है यह परिणामवाद मत है इस दुग्धरूप कारण दहीरूप परिणामको प्राप्त हुआ सो दुग्ध परिणामी कारण हुआ दही रूप कार्य्य दुग्धका परिणाम हुवा ऐसे उपादान कारण मात्रको परिणामवाद और आरम्भवाद मतमें आरम्भ माने हैं अब कहो तुम कौनसा मानोगे जो कहो कि घटरूप कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिमें आरम्भवाद मत मानते हैं तो हम कहते कि आरम्भवाद मतमें अवयवरूप कारण कार्य्यको पैदा करे है सो कार्य्य अपने जुदाही मानना पड़ेगा तो कारण जैसे कार्यको आपसे जुदाही पैदा करै है यहभी वैसे कारणके गुण कार्यमें आपसे जुदे आपके सजातीय गुणोंको पैदा करै है यहभी तुमको माननाही पड़ेगा तो हम तुमको पूछे है कि पटके अवयव दो कपाल हैं तो यही पटके उपादान कारण होंगे अब कहो कि प्रत्येक कपाल पटका कारण है वा दोनों कपाल मिले पटका कारण है जो कहो कि प्रत्येक कपाल पटका कारण है तो हम कहेंगे कि प्रत्येक कपालसे एकएक कार्य्य होना चाहिये जो कहोकि प्रत्येक कपालसेही पट होता है तो हम कहे हैं कि प्रत्येक कपाल दो है सो दो पट होने चाहियें दो पट होवे तब तुम्हारा यह नियम बने कि परमाणुका स्वभाव यह है कि आपके समान जाती और आपसे अधिक ऐसे परमाणु को कार्यमें पैदा करे है परन्तु यह नियम तब बने कि वे दोनों पट अपने कारण कपालोंकी अपेक्षा कुछ परमाणवाले होवें देखो कल्पना करो कि मानो कपाल १० दश अंगुल के हो उससे पट पैदा हुआ तो पटमें २० बीस अंगुलसे अधिक परमाण ज्ञान होना चाहिये क्योंकि १० अंगुलसे कुछ अधिक तो होगा पटका परमाण और आरम्भवाद मतमें कारण अपने स्वरूपका त्याग नहीं करके कार्य्यके शरीरमें मौजूद रहे है सो १० अंगुल कुछ कपालका परमाण येह पटमें २० बीस अंगुलसे कुछ अधिक परमाण ज्ञान होना चाहिये और सो पट दो कपालोंसे बने नहीं इसलिये प्रत्येक कपालको कारण मानो हो सो अयुक्त है जो कहो कि उपादान कारण तो प्रत्येक कपालही है परन्तु अवयव संयोग यह दूसरा असमवायि कारण होता है सो अवयव संयोग १ एक कपालमें होवे नहीं सो दूसरे कपालके अवयव संयोगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेकेलिये द्वितीय कपाल है और उपादान कारण एक कपाल है इसलिये एकही पट कार्य्य हुआ और द्वितीय कपाल तो केवल असमवायि कारण सिद्धि करनेके अर्थ अपेक्षित है इसलिये दो पट होवेंगे कहांसे ही सो असंभव है अजी कुछ विचार तो करो कि द्वितीय कपाल जो अपेक्षित है क्योंके उसनकी अपेक्षा द्वितीय होता है और फिर मानना अ-

तु एक पक्षको सिद्ध करनेकी कोई युक्ति है नहीं सो तुम असमवायि कारण सिद्ध
नेके अर्थ जिस कपालकी अपेक्षा कीहै उस कपालको तो हम घटका उपादान कारण
नेंगे और तुम्हारे मानें उपादान कारणको उसकी अपेक्षा द्वितीय मान करिके अवयव
योगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेवाला मानेंगे तो १ एक घट तो प्रथम प्रक्रिया
। तुमने कही उससे सिद्ध हो गया और दूसरा घट हमारे कहीं दुसरी प्रक्रियासे सिद्ध
गा प्रत्येक कपालको कारण माने तो दो कपालोंसे दोही घट होने चाहिये और पहले
है तुम्हारे नियमसे प्रत्येक घटमें एक कपालके परिमाणकी अपेक्षा दूनेसे अधिकही
रिमाण मालुम होना चाहिये इसलिये प्रत्येक कपाल घटका कारण माननाही
संगत हुवा जो कहो कि, दोनों कपाल मिले घटका कारण मानेंगे तो हम तुमको पूछें
कि दोनों कपाल मिले घटके उपादान कारण हैं तो दोनों कपाल मिले इसका
र्थ क्या है जो तुम कहो कि संयोगवाला ऐसा अर्थ है तो हम कहें कि जैसे कपालोंमें
पालोंका रूप विशेषण है वैसे संयोगभी कपालोंका विशेषण हुवा तो तुम कपालोंके रूपको
टकाकारण नहीं मानों हो तैसे संयोगकोभी घटका कारण नहीं मानसकोगे क्योंकि तु-
ने पांच प्रकारकी अन्यथा सिद्धि मानी वो अन्यथा सिद्धि जिसमें रहे उनको अन्यथा सिद्ध
ता करके कारण नहीं माने हैं वहां दूसरा अन्यथा सिद्ध कारणके रूपको कहा है तहां का-
णके रूपको अन्यथा सिद्ध इस प्रकारसे बताया है कि जो अपने कारणके साथही कार्य्यके पूर्व
र्त्ती होय और आपने कारण विना जो कार्य्यके पूर्ववर्त्ती नहीं हो सो उस कार्य्यके प्रति अन्यथा
सेद्ध होय है सो रूपके कारण होंगे दण्डकपाल चक्र चीवरादिक उनके साथही रूप घट
ार्य्योंके पूर्ववर्त्ती हो सके है और उनके विना घटकार्योंके पूर्ववर्त्ती हो सके नहीं इसलिये
ण्डकपाल इत्यादिकका रूप घटकार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण न-
ीं तो हम कहें है कि कपालोंका संयोगभी अपने उपादान कारण जो कपाल उनके साथ-
ी घटकार्य्य पूर्ववर्त्ती हो सके है उनके विना पूर्ववर्त्ती हो सके नहीं इस लिये कपालोंका
संयोग घट कार्य्यकेप्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण नहीं मानसकोगे जो कहो कि य-
ह कथन अनुभव विरुद्ध है क्योंकि दोनों कपालोंका संयोग होतेही घटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष दी-
खे है इसलिये दोनों कपालोंका संयोग घटका कारण नहीं मानें यह नहीं हो सके तो हम
कहें हैं कि कपालोंके संयोगकोही घटका कारण मानों कपाल तो अन्यथा सिद्ध है जो कहो
कि कपाल तो घटका कारण है यह कौनसा अन्यथा सिद्ध होगा तो हम कहें हैं कि कपा-
लोंको तीसरा अन्यथा सिद्ध मानों क्योंकि जिसको औरके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करके कार्य्य
के प्रति पूर्ववर्त्ती जानें वो उस कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है जैसे आकाश शब्दका समवा-
य कारण है इसलिये आकाशको शब्दके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करिकेही घटके पूर्ववर्त्ती
जानते हैं इसलिये आकाश घट कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है तैसेही कपालोंको जो सं-
योग उसका समवाय कारण कपाल है इसलिये कपालोंको संयोगके पूर्ववर्त्ती जान करकेही
घटके प्रति पूर्ववर्त्ती जाने हैं इसलिये घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा सो घ-
टका कारण नहीं हो सके और जिस प्रक्रियासे घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा
उसीमें क्रियासे दंड कुलाल इत्यादिकभी अन्यथा सिद्धही होंगे तो तुमने जिनको घटके

कारण कल्पना कियेथे सो अन्यथा सिद्ध होनेसे कारण नहीं होसके जो कारण नहीं हो स-
के तो कार्य्यको कैसे पैदा करे तो कार्य्य मानना सिद्ध न हुवा औरभी सुनो कि तुम ऐसा
मानों हो कि कार्य और कारण एक देशमें रहे तब कारण कार्य्यको पैदा करे है और एक
देशमें न रहे तो कारण कार्यको पैदा कर सके नहीं इसलिये वनमें कहीं पडा हुवा जो दंड
उससे कार्य पैदा नहीं होवे है और घट जहां रहते हैं वहांही दंड रहे तब दंड घटको
पैदा करे है इसलिये दंड और घट इन दोनोंको एक जगह रखनेके अर्थ ऐसा कहा है कि
कपालोंमें घट तो समवाय संबंध करके रहे है और दंड जन्य भ्रमत कपाल द्वै संयोगवत्त
संबंध करके कपालोंमें रहे है तो दंड और घट एक देशमें रह गये इसलिये दंड स्व-
रूप कारणसे घट कार्य हुवा और तुम इतना तो विचार करो कि यह संबंध तो गुरुभया-
नक है अर्थात् इस संबन्धको यह सामर्थ नहीं है कि सर्व कारणको कपालमें रख देवे ऐसेर
सम्बन्धोंसे तुम कारण और कार्य्यको एक जगह रखोगे तो तुम्हारा परमेश्वर और उस-
की इच्छा, ज्ञान, यत्न और दिशाकाल जीवोंके अदृष्ट घटका प्रागभाव और प्रतिबन्धकका
अभाव ए नव संख्या तो साधारण कारण और कुलाल दंड सूत्र, जल चक्र इत्यादिक निमित्त
कारण और कपाल समवाय कारण और दोनों कपालोंका संजोग असमवाय कारण है यह
सब कपालों में स्थित मानने पडेंगे तो घटकार्य्य होगाही नहीं क्योंकि कुलाल चक्रादिकके
भारसे कपालोंका [illegible] हो जायगा जब जो कपालही न रहे तो घट कैसे होय इसलिये
कार्य्य मानना असंगत है और जो पहिले कहा कि कपालोंका संयोग होनेही घट हो-
ते है सो कपालोंके संयोगको कारण न मानोगे तो अनुभव विरोध होगा तो हम क्या कहें
तुमको तो वहां कुलाल चक्र दंड आदिक पर्यन्त कपालोंमें दीखे है हमको दीखे नहीं इसलि-
ये तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी हम क्या शोभाकरें परन्तु यथार्थकी छीयाँभी ऐसा कहती
होगी कि न्यायको वैशेषिकोंने पदार्थका निर्णय करनेकेलिये ऐसी तरह की है कि मानो
पहाडको खोद करके चूंदर (चूहों) के पगोंको निकासना इससे तुम्हारी तर्कको देखकर
हम तुम्हारेसे अनुभवकी बात नहीं करते हैं कारणके पदार्थके निर्णयमें तुम्हारी बुद्धि नहीं
पहुंचती अनुभवका विषय तो बहुत दूर है अब इतना तुमकूंभी विचार करना चाहिये कि
कपालोंसे घट पदार्थ जुदा होय तो आरंभ वाद मतमें होय सेरके दो कपालोंका बनाया
घट चार सेर होय क्योंकि दो सेर भार तो कपालोंका और दो सेर भार घटका होगा
ऐसे घट चार सेर होना चाहिये इसलिये उपादान कारणसे भिन्न कार्य्य मानना असं-
गत् हुवा जो कहो कि आरम्भवाद मतमें स्वरूप सिद्ध न हुवा तो हम परिणाम वाद मत
मान करके घट कार्यकूं कारणसे जुदा सिद्ध करेंगे क्योंकि परिणाम वादमें दुग्धरूप
उपादान कारण नहीं दधीरूप परिणामकूं प्राप्त होय है इसलिये कार्य और कारणके
जुदे जुदे नहीं होनेसे घट कार्यमें द्विगुण होनेकी आपत्ति नहीं क्योंकि कपालरूप उपादान
कारणही घट आकारकूं प्राप्त हुवा है । अब जैसे कपाल घट आकारको प्राप्त हुवा तो
[illegible] तुम्हारी दुग्धको जैसा कहिया और [illegible] आपके [illegible] कपालके
[illegible] घट कार्यमें आपकेसे जुदेही हुवे [illegible] [illegible] आपके [illegible]
[illegible] घट कार्यमें द्विगुण [illegible] आपत्ति नहीं है जो ऐसा मानोगे तो कारण और कार्य जुदे

हम अवयव और अवयवी इन दोनोंसे एक समयमें परिणाम मानेंहै तो हम कहेंहैं कि परिणामवाद मतमें अवयवीरूप कार्य अवस्थामें अवयवरूप कारण अपने स्वरूप रहै नहीं इसलिये यह कथनभी असंगत है जो कहो कि यह कथन असंगत हुवा तो हमारा पहिला माना हुवा स्थूल दूधमें दहीरूप परिणाम सिद्ध होगया तो हम कहेंहैं कि दूधमें निरवयव होनेसे नित्य पणेकी आपत्ति हुई और प्रमाण तथा आकाश इनकी तरह अप्रत्यक्ष होनेकी आपत्ति हुई इसलिये परिणाम वादसेभी कार्य मानना असंगतहीहै अब न तो परमाणु स्वरूप मान उपादानकारण सिद्ध हुवा न घटादि स्वरूप सिद्धहुवा सो नित्य और अनित्यरूप करके माने जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सिद्ध न हुये अब कहो तुम आकाश कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि आकाश नित्य है और व्यापक है और नित्यरूप है इसलिये आकाशका प्रत्यक्ष तो नहीं इसलिये अनुमानसे आकाश सिद्धि होयहै तो तुह्मारा अनुमान कहो कि जिससे आकाश सिद्ध होय जो कहो कि जैसे स्पर्श चक्षुसे जाननेके अयोग्य होता हुवा बाहिरकी इंद्रियों करिके जाणांजाय ऐसी जातिवाला गुण है तैसे शब्दभी इसलिये गुण है ऐसे अनुमानसे शब्द गुण सिद्ध हुवा और जैसे संयोग गुणहै इसलिये द्रव्यमें रहे है तैसे शब्दभी गुणहै इसलिये द्रव्यमे रहे है इस अनुमानसे शब्दका द्रव्यमें रहना सिद्ध हुवा पीछे निर्णय किया तो शब्द पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनका गुण सिद्ध न हुवा और दिशाकाल आत्मा मन इनकाभी गुण शब्द सिद्ध न हुवा इसलिये इस गुणका आधार आकाश सिद्ध हुवा सो हम कहे हैं कि ऐसे आकाशकी सिद्धि "विश्वनाथ पञ्चाननभट्टाचार्य" ने अपने बनाये मुक्तावली नाम ग्रंथमें लिखीहै सो ही तुमने मानी है परंतु विचार करो कि स्पर्शके दृष्टान्तसे शब्दको गुण मानों तो स्पर्शको किसके दृष्टान्तसे गुण मानोंगे जो कहो कि रसके दृष्टान्तसे स्पर्शको गुण मानोंगे तो हम रसमें ऐसेही पूछेंगे अन्तमें मूल दृष्टान्तको गुण सिद्ध करनेको समर्थ कोई नहीं होगा जो मूल दृष्टान्त नहीं सिद्ध हुवा तो शब्द कूँभी गुणपणां सिद्ध न हुवा जो शब्द गुण न हुवा तो उसके रहनेके अर्थ आकाशका मानना असंगत हुवा जो कहो कि शब्दमें गुण पणां सिद्ध न हुवा तो शब्दतो श्रोत्रसे प्रत्यक्ष सिद्धहै इसलिये शब्दका आधार आकाश सिद्ध होगया तो हम कहेंहैं कि तुम कानके छिद्रमें वर्त्तमान आकाश को श्रोत्र कहोहो और शब्दका आश्रय मान करके आकाशको सिद्ध करोहो तो शब्दको तो प्रत्यक्ष सिद्ध करनेके अर्थ श्रोत्ररूप आकाशकी अपेक्षा होगी और आकाशको सिद्ध करनेके अर्थ शब्दकी अपेक्षा होगी इसलिये आकाश और शब्द दोनों अन्योन्य सापेक्ष होनेसे इनमें एकभी सिद्ध नहीं हो सके, जो कहो कि शब्दको तो हम स्पर्शके दृष्टान्तसे गुण सिद्ध करें हैं, क्योंकि हमारे मतमें शब्द गुणहै, और स्पर्शको गुण माननेमें तो किसीकोभी विवाद नहीं, इस लिये स्पर्शको गुणसिद्ध करना आवश्यक नहीं. तो हम कहे है कि तुम जो गुण मानों हो, सो व्यवहारसे मानों हो, या संकेतसे मानोहो जो कहो कि व्यवहारसे मानें हैं, तो यह कथन तो असंगत है, क्योंकि व्यवहारमें सत्यभाषण भोळपणों, उदारपन, दया, शीलपणा, तप, दान, मान, इत्यादिकोंको गुण मानें है. और बालक ऐसे वेदनके कुचोंका स्पर्श चुम्बन समयमें इसके अधरोंका संयोग इत्यादिकोंको गुण नहीं मानें है

जो कहो कि हम संकेतसे गुण मानते हैं तो तुमही कहो कि तुमारा संकेत शास्त्र सिद्ध है वा नहीं, जो कहो कि शास्त्र सिद्ध है तो तुम कहो कि कौन शास्त्रको मानते हो, जो तुम कहो कि हम श्रुति सिद्धमानें हैं क्योंकि श्रुति नाम वेदका है इसलिये वेद हमको प्रमाण हैं तो तुम्हारेको वेद प्रमाण है तो हम कहें हैं कि वेदमें तो कहीं भी रूपादिकोंको गुण नाम करिके कहें नहीं जब तुम्हारे माने वेदसे सिद्ध न हुवे तो अप्रमाणीक होनेसे शब्दमें गुण पणा मानना असंगत हुवा इसलिये शब्दका आश्रय आकाशस्वरूप द्रव्य मानना असंगत है और देखो कि लोकमें भी यह पृथ्वीका शब्द है, यह जलका शब्द है यह वायुका शब्द है और यह अग्निका शब्द है ऐसा व्यवहार है और यह आकाश का शब्द है ऐसा तो कोई नहीं कहता इसलिये शब्द आकाश का गुण नहीं हो सके यह तुम्हारा आकाशका मानना असंगत हुवा अब जैसे आकाश सिद्ध न हुवा तैसेही काल और दिशा भी सिद्ध न होगी क्योंकि देखो शिरोमणिभट्टाचार्यनेभी पदार्थ तत्वनामग्रंथमें " दिक्कालनेश्वरादतिरिच्येत " ऐसा लिखा है इसका अर्थ यह है कि दिश और काल यह ईश्वरसे जुदे नहीं हैं और यह भी लिखा है कि " शब्द निमित्त कारणत्वेन कल्पितस्य ईश्वरस्यैव शब्द समवायिकारणत्वम् " इसका अर्थ यहहै कि शब्दका निमित्त कारणमाना जो ईश्वर सोही शब्दका समवायिकारण है इससे यह सिद्ध हुवा कि आकाश भी ईश्वरसे जुदा नहीं है इस में विशेष विचार देखनेकी इच्छा होय तो पं० रघुदेवजीकी की हुई पदार्थतत्वकी टीका है उसमें देखो इसलिये आकाश काल और दिशा यह मानना असंगत है अब कहो तुम आत्मा किसको कहो हो जो कहो कि हम आत्मा दोप्रकारकी मानें हैं तहां एक तो परमात्मा है और दूसरा जीवात्मा है तहां परमात्मा तो एकही है और जीवात्मा प्रतिशरीर जुदा है और व्यापक है और नित्य है और परमात्माभी व्यापक है और नित्य है और परमात्मा में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा यत्न, ये आठ गुण हैं और जीव में आठ, तो परमत्मामें गुण बताये सो रहें हैं और सुख दुःख द्वेष धर्म अधर्म भावना नाम संस्कार ये छः गुण सर्व मिलकर चतुर्दश गुण रहेंहैं और परमात्मामें ज्ञान, इच्छा, यत्न नित्य हैं और जीवमें ये गुण अनित्य हैं और परमात्मा कर्त्ता है और भोक्ता नहीं है, और जीवात्मा कर्त्ता भी है और भोक्ता भी है, तो हम पूछें है, कि ईश्वरको तुम कौन प्रमाणसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करें हैं तो हम पूछें हैं कि बाह्य इंद्रियोंसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है वा मनसे जो कहो कि बाह्यन्द्रियोंसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तो ये कथन असंगत है क्योंकि तुम बाह्यन्द्रियोंसे सावयव द्रव्यका प्रत्यक्ष मानो हो ईश्वर तुम्हारे मतमें निरवयव द्रव्य है जो कहो कि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तोभी कथन असंगत है क्योंकि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय तो ईश्वरमें सुखादिककी तरह अनित्यपणां मानणां पड़ेगा क्योंकि तुम्हारे मतमें सुख अनित्य है और मनसे जाना जायहै जो कहो कि अनुमानसे ईश्वरकूं सिद्ध करें हैं तो तुम्हारा अनुमान ऐसा है कि जैसे घट कार्य है इसलिये कर्त्तासे पैदा हुवा है तैसेही पृथिव्यादिक भी कार्य है इस लिये कर्त्तासे पैदा हुये हैं इस अनुमानसे पृथिव्यादिकमें कर्त्तासे पैदा होना सिद्ध करो हो क्योंकि और तो कर्त्ता पृथिव्यादिकका कोई बनसके नहीं इस लिये इनका कर्त्ता ईश्वर मानों हो तो हम पूछे हैं कि तुम कर्ता किसको कहो हो जो कहो कि कृतिका

अर्थात् यत्नका आश्रय होय सो कर्त्ता तो हम पूछे हैं कि जीवका यत्न तुम अनित्य मानों हो तो उस यत्नकी उत्पत्तिभी तुम मानोंहीगे तो यत्न भी कार्य ही होगा जो यत्न कार्य हुवा तो यत्न कर्त्ता जीवको ही मानोगे जो जीव कर्त्ता हुवा तो जीवमें कर्त्ता पना सिद्ध करनेके अर्थ इस यत्नसे जुदा और ही यत्न मानोंगे वा उस ही यत्नसे जीवको कर्त्ता सिद्ध करोगे जो कहो कि और ही यत्न मानेंगे तो उस यत्नको भी कार्य मानना पड़ेगा तो अनवस्था होगी इस लिये जीवको कर्त्ता मानना सिद्ध न हुवा, जो कहो कि उसी यत्नसे जीवको कर्त्ता सिद्ध करे तो वह यत्न तो कार्यहै और कर्त्ता कार्यसे पूर्व सिद्ध होजाय तब कार्यको पैदा करैहै यह तुम्हारा नियमहै और यत्न विना कर्त्ता हो सके नहीं इस लिये जीव कर्त्ता सिद्ध न हुवा जो जीव कर्त्ता न हुवा तो ईश्वरमें कर्त्तापणा सिद्ध करनेका दृष्टान्त सिद्ध न हुवा इसलिये ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करनेका अनुमान किया था सो सिद्ध न हुवा और भी तुम कहो कि ईश्वरमें यत्न मान करिके कर्त्तापणा मानों होतो वह यत्न एक मानों हो वा नाना यत्न मानो हो जो कहो कि एकही यत्न माने हैं तो सृष्टि स्थिति प्रलय इनमें से एक ही निरंतर सिद्ध होना चाहिये जो कहो कि नाना यत्न माने हैं तो सृष्टि यत्न, स्थिति यत्न, प्रलय यत्न ये नित्य मानणे पड़ेंगे तो यह परस्पर विरुद्ध होनेसे सृष्टि स्थिति प्रलय इनमे से एकभी नहीं सिद्ध हो सके जो कहो कि यत्न तो एकही मानें हैं परंतु जिस क्रमसे सृष्टि स्थिति प्रलय होती है उनके अनुकूल उस यत्नका स्वरूप मानेंगे तो हम पूछें हैं कि तुम सृष्टि स्थिति प्रलय इनको देखि करिके ईश्वरमें उनके अनुकूल यत्न कल्पना करो हो वा ईश्वरमें वैसा यत्न है इसलिये उसके अनुकूल सृष्टि स्थिति प्रलय मानो हो जो कहो कि इन तीनोंको देख करके इनके अनुकूल यत्न कल्पना करे हैं तो हम कहे हैं कि परमेश्वरके अचिंत्य अलौकिक ज्ञान जिस प्रकारसे सृष्टि स्थिति प्रलय इनको विषय कियेहै तैसेही यह तीनोंकी होयहै ऐसा ही कल्पना करोतो क्या हानिहै जो कहो कि हानितो नहीं किन्तु गुणभी नहीं कि जिसे ऐसा कल्पना करे तो हम कहे है कि देखो ईश्वरमें यत्नभी नहीं मानना पड़ा और सृष्टि स्थिति प्रलयभी सिद्ध होगये लाभभी हुवा और कार्यभी होगया और ईश्वरको कर्त्ता भी नहीं मानना पड़ा और ईश्वर विना कार्य भी नहीं हुवे इसके सिवाय अधिक तुम और कोनसा गुण चाहो हो सो कहो जो कहो कि इस कल्पनामें गुण तो बहुतहैं परन्तु हमारे मतमें ईश्वरमें नित्य यत्न होनेसे कर्त्तापणा माना है सो सिद्ध न हुवा इतनी हानि है तो हम कहे हैं कि बहुगुण लाभमें अल्प हानिकी दृष्टि कोई विवेकी मनुष्य करे नहीं इस लिये ऐसी दृष्टि तुम्हारेको भी नहीं होनी चाहिये जो कहो कि इस कल्पनामें तो हमारा मत नष्ट होय इस लिये ऐसे मानेंगे कि ईश्वरमें जैसा यत्न है उसके अनुकूल सृष्टि स्थिति प्रलय होवहै तो हम कहे है कि उस यत्नका प्रत्यक्ष तो होयनहीं इस लिये जीवको दृष्टान्त बना करिके ईश्वरमें यत्न सिद्ध करोगे सो जीवमें कर्त्तापनां पहिलो कही युक्तिसे सिद्ध नहीं इस लिये ऐसे मानना असंभव है और भी विचार करो कि जीवकूं कर्त्ता मानभी लो तो भी जीवके दृष्टांतसे ईश्वरमें कर्त्तापणां मानना तुम्हारे मतमेंही सिद्ध न होसके क्योंकि तुमनेही ऐसे माना है कि जीवमें प्रथम इष्टसाधनताज्ञान अर्थात् मेरा सुख साधन है ऐसा ज्ञान होयहै पीछे इच्छा होयहै तापीछे यत्न होयहै पीछे कार्य होयहै अब ईश्वरमें जीवके दृष्टान्तसे

कर्त्तापणा सिद्ध करोगेतो प्रथम इष्टसाधनता ज्ञान ईश्वरमें मानणा पड़ेगा सो ज्ञान ईश्वरमें बनसके नहीं क्योंकि ईश्वरमें तुम सुख मानों नहीं और इष्टनाम सुखकाहै सो ईश्वरमें सुख साधनताज्ञान कैसे होसके अब जो ईश्वरमें इष्टसाधनताज्ञान नहीं तो इच्छा कहां जो इच्छा नहीं तो यत्न कहां जो यत्न नहींतो ईश्वर तुह्मारे मतसेही कैसे कर्त्ता सिद्ध होसके और कहो कि तुम ईश्वरमें जो ज्ञान इच्छा यत्न हैं उनको समुदाय कारण मानोहो वा असमुदाय कारण मानो हो जो कहो कि असमुदाय कारण माने हैं तो ज्ञान, इच्छा, यत्न, इनमेंसे एकसेही जगत् होजायगा तो दो व्यर्थ होंगे अर्थात् ज्ञानसेही जगत् सिद्ध होगातो इच्छा और यत्न यह अर्थ होंगे और इच्छासेही जगत् होगा तो ज्ञान और यत्न व्यर्थ होंगे जो यत्नसेही जगत् होगातो ज्ञान और इच्छा यह व्यर्थ होंगे जो कहो कि दो व्यर्थ होते हैं तो हम एकसेही जगत्की उत्पति मानेंगे तो ईश्वर कर्त्ता सिद्धि होगया तो हम कहें हैं कि विनिगमना अर्थात् प्रमाण नहीं होनेसे इन ज्ञान इच्छा यत्नोंमें किसीभी एकसे जगत्की उत्पत्ति नहीं होसके जो कहो कि ईश्वरके ज्ञान इच्छा यत्न यह समुदाय कारण है तो हम पूछें हैं कि तुमही कहो इनको समुदाय कैसे मानोहो क्या ज्ञान इच्छा यत्न ऐसा मानोहो वा इच्छा यत्न ज्ञान ऐसे मानोहो अथवा यत्न ज्ञान इच्छा ऐसे समुदाय मानोहो वा इच्छा ज्ञान यत्न ऐसे मानोहो वा ज्ञान यत्न इच्छा ऐसे मानोहो वा इच्छा ज्ञान ऐसे मानोहो तो विनिगमनानहीं होनेसे इनमेंसे कोई प्रकारसेभी समुदाय कारण नहीं मान सकोगे इसलिये ज्ञान इच्छा यत्न इनको समुदाय कारण मानना नहीं बनसके तो ईश्वर कर्त्ता कैसे होसके जोकहो कि हम शास्त्रके प्रमाणसे कहेंगे तो हम तुमको पूछें हैं कि वह शास्त्र कौनसे हैं तो तुम श्रुति-काही प्रमाण दोगे सो उन श्रुतियोंमें आपसमेंही विरोधहै जो विरोधनहीं होतातो तुह्मारे जो श्रुतिके मानने वाले हैं वे आपसमें उपदेश जुदा २न करते हमरेको तो आप्तके वचनका प्रमाण है सो इसका खंडन तो वेद अर्थात् श्रुतिके खंडनमें लिखेंगे परंतु तुम तुह्मारी श्रुति-सेभी ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध न करसकोगे जो तुम कहो कि "सत्यंज्ञान मनंतं ब्रह्म" ऐसे तैत्तिरीयोपनिषद्में श्रुति है तो सत्यनाम नित्यकाहै. और ज्ञान नाम चेतनका है और अनंत शब्द व्यापकको कहै है तो इस श्रुतिका यह अर्थ हुवा कि ब्रह्मजो परमात्मा सो नित्य है और चैतन्य और व्यापकहै तो परमात्मामे ज्ञानसिद्ध होगया और ऐतरेय उपनिषदमें "स ईक्षत लोकानुसृजा" ऐसे लिखा है इसका अर्थ यह है कि वह देखता हुवा लोकोंको रचनेकी इच्छा करके तो परमात्मामें इच्छा सिद्धि होगई और तैत्तिरीयोपनिषद्-में लिखा है कि "सतयो ऽप्यतससतयस्त स्वा सर्वमसृजत यदिदं किंचन्" इसका अर्थ यह है कि वह तप करता सो तप करिके सबको पैदा करता हुवा इससे परमात्मामें यत्न सिद्ध हो गया इसलिये ईश्वरमें ज्ञान इच्छा यत्न मानें हैं तो हम कहैहैं कि ऐसे श्रुतिके कथनसे ज्ञान इच्छा यत्न मानों तो हम पूछें हैं कि तुम अपने मतलबकेही वासते इन उपनिषदोंमेंसे एक एक श्रुति मानों हो अथवा सर्व उपनिषदोंकी सर्व श्रुतियां मानोंहो जो तुम कहो कि हम तो सबहीको माने है तो हम कहें हैं कि उनही उपनिषदोंमें ऐसा लिखा है कि "श्वताश्वतर शाखा है तहां कित सस्मा-न्मायी सृजते विश्वमेतत्" इसका अर्थ यहहै कि माया करिके युक्त परमात्मा इस विश्वको

पैदा करे है सो इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि परमात्माके निजरूप करतापणां नहीं है मायारूप उपाधिकी दृष्टिसे ईश्वरमें कर्तापणांहै और तैत्तिरीयोपनिषदमें लिखाहै कि " सो ऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय " इसका अर्थ यहहै कि वह इच्छा करताहुवा बहुत होऊं तो इसश्रुतिका यह तात्पर्यहुवा कि परमात्माही बहुत जगत् रूप करके पैदा हुवा और मुण्डकोपनिषदमें लिखा है कि " तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवंते सरूपास्तथा क्षराद्विविधाः सौम्यभावाः प्रजायते तत्र चैवा पिलियन्ते " इसका अर्थ यह कि सो यह सत्या है जैसे प्रज्वलित अग्निसे विस्फुलिंग अर्थात् तणगारा हजारों पैदा होय हैं सदृश तैसे परमात्मासे नाना प्रकारके सौम्य भाव पदार्थ पैदा होय है उसी में प्रवेश करजाय हैं इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि जैसे अग्निसे उत्पन्न अग्निके कण जो है सो अग्निही हैं तैसे परमात्मासे उत्पन्न जो जगत् सो परमात्माही है और उन्हीं श्रुतियोंमें ऐसा लिखा है कि उसी परमात्मानेही जीव हो करके देहमें प्रवेश किया जीव शब्दका अर्थ प्राणोंका धारण करनेवाला ऐसा है इस लिये शरीरमें प्रवेश किया परमात्माने जीव नामको पाया अब जो श्रुतिके कथनसे परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न मानोंतो श्रुतिसे ही जीव और जगत् इनको परमात्माही मानों इसीलिये हम तुम्हारे को कहेंहैं कि सर्वज्ञके वचनको मानों तो परमानंदसे पूर्ण होजावो परंतु जिनके अज्ञानके संस्कार दृढ़हैं तिनको ऐसा मानना कठिन है कदाचित् कोई शुभ कर्मके उदयसे कोई प्रकारसे मानभी लेवेतो ऐसा जानना अत्यन्तही कठिन है अब कहो तुमने तुम्हारे मरजीके माफिक परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न माने सो इनको नित्य कैसे कहोहो जो कहो कि जीवके ज्ञान इच्छा यत्न अनित्य है इसलिये परमेश्वरमें जीवकी अपेक्षा यहही विलक्षण पणाहै कि इसमें यह गुण नित्यहैं तो हम कहें हैं कि तुम ईश्वर नया बनाते हो वा ईश्वर जैसा है तैसा वर्णन करो होजो कहो कि हम तो ईश्वर बनाते नहीं किन्तु ईश्वर है तैसा वर्णन करेंहैं तो हम कहेहैं कि तुमही विचारकरो एकमें बहुत हो जाऊं यह इच्छा ईश्वरमें प्रलय समयमें कैसे बण सके जो प्रलयसमयमें यह इच्छा ईश्वरमें रहे तो प्रलय होवेही नही क्योंकि श्रुति परमेश्वर को सत्य संकल्प वर्णन करेंहै इस लिये प्रलयकालमे सृष्टि होजाय जो कहो कि प्रलय कालमें सारे पदार्थोंके अभाव रहें हैं इस लिये अभावोंकी सृष्टि मान लेवेंगे तो हम कहें हैं कि प्रलय कालमें तो अभाव और भाव तुम्हारे मानें दोनोंही रहें नहीं क्योंकि सृष्टिका पूर्वकाल और सृष्टिका उत्तर काल इनका नाम प्रलय है तो सृष्टिके आदिकी ये श्रुति है कि " सदेव सौम्येद मग्र आसीत् " इसका अर्थयेहै कि पूर्व कालमें हेसौम्य ये जगत् सत्नामपरत्माही हुवा तो इस श्रुतिमें एव शब्दहै इसका अर्थ भाषाके मांहिही ऐसा है तो इस शब्दके यह स्वभाव है कि यह शब्द जिस शब्दके आगाड़ी होय उस शब्दका जो अर्थ उससे जुदे पदार्थोंको निषेधको कहे है जैसे यहां घटही है इस वाक्यमे ही शब्द घट शब्दके अगामी है तो घट पदार्थसे जुदे पदार्थोंके निषेधको कहे है तैसे सृष्टिके आदिकी श्रुतिमें यह शब्द अर्थात् "ही" इस अर्थका कहनेवाला एवशब्द सत् शब्दके अगाडी है तो सतसे जुदे सर्व पदार्थोंके निषेधको कहेगा तो प्रलयमें अभावोंकी सृष्टि कैसे होसके और " सर्वे आत्मानः समर्पिता निरंजन पारसाम्य मुपैति ये प्रलय कालकी श्रुति है इसका अर्थ यह है कि सारे आत्मा अर्पण किये परमा-

माका पारसाम्य अर्थात् परमात्माका अभेद प्राप्त होयहै जो कहो कि साम्य शब्द तो सादृश्यपने को कहै आप इसका अभेद अर्थ कैसे कहो हो तो हम कहै हैं कि साम्य शब्दका अभेद नहीं कहें किन्तु परमसाम्य शब्दका अर्थ अभेद कहें हैं उससे भिन्न और उसके बहुत धर्मो करके युक्त होय सो तो सम और जीवोंही होय सो परमसम जो कहो कि यह अर्थ आप को न अनुभव से करोहो तो हम कहें हैं कि सृष्टिके आदिकी श्रुतिके अर्थके अनुभवसे करैहै जो ऐसा अर्थ न करैं तो सृष्टिके आदिकी श्रुति और प्रलयकी श्रुति इन दोनों श्रुतियोंकी एक वाक्यता अर्थात् एक अर्थ होय नहीं जो कहो कि यह दोनों श्रुति तो भिन्न समयकी है इसलिये एक अर्थ करना निष्फल है तो हम कहैं हैं कि सृष्टिका आदि और सृष्टिका अन्त सृष्टिके न होनेमें बराबर है जो कहो कि आदि और अन्त कैसे बराबर होसके तो हम कहैहैं कि आदि अन्त व्यवहार तो आपेक्षिक है सृष्टिके न होनेकेकाल तो दोनोंही है जो कहो कि आदि अन्त व्यवहार आपेक्षित हैं तो आदि अन्तमें अन्तादि व्यवहारभी होणाचाहिये तो हम कहैहैं कि देखो सृष्टिका पूर्व काल पूर्व सृष्टिकी अपेक्षा प्रलयकाल है और इस सृष्टिकी अपेक्षा सृष्टिका आदिकाल है ऐसेही भविष्यत् प्रलयमें समझो जोकहो कि इस सृष्टिके पूर्वभी सृष्टिरही इसमें क्या है प्रमाण तो हम कहैं है कि " धाता यथा पूर्वमकल्पयत् " श्रुतिका प्रमाण हैं इसका अर्थ यह है कि परमेश्वरने जैसे पहले जगत् रचा है तैसेही जगत् रचदिया जो कहो कि भविष्यत् प्रलयके पीछे भी सृष्टि होगी इसमें क्याप्रमाण तो हम कहैं हैं कि भूत प्रलयके पीछे यह सृष्टि हुई तैसेही सृष्टि भविष्यत्प्रलयके पीछे भी होगी ये अनुभवही प्रमाण है अब विचार करिकै देखो कि प्रलय कालमें परमात्मामें इच्छा सिद्ध न हुई तो ईश्वरकी इच्छा नित्य कैसे मानीजाय ईश्वरकी इच्छा नित्य सिद्ध न हुई तैसे ईश्वरका यत्नभी नित्य सिद्ध नहीं होगा जो कहो कि ईश्वरका ज्ञान भी इच्छा और यत्न इनकी तरह है अनित्य मानणा पडेगा तो हम कहैं हैं कि परमात्माका ज्ञान अनित्य नहीं है किन्तु नित्य है जो कहो कि न्याय शास्त्रका मत यह है कि विषयके नहीं होनेसे ज्ञानका ज्ञानपना रहै नहीं तो प्रलय कालमें कोईभी भाव अभाव नहीं होनेसे ईश्वरका ज्ञान नित्य कैसे मान्या जाय तो हम कहैं हैं कि ईश्वरका ज्ञान प्रलय कालमें ईश्वरकोही विषय करेगा इसलिये विषयका न होना न हुवा इसलिये ईश्वरका ज्ञान नित्य है जो कहो कि परमात्माका ज्ञान परमात्माको विषय करै है इसका प्रमाण क्या तो हम कहैहैं कि गीताकी दशवीं अध्यायमें अर्जुनने कहा है कि " स्वय मेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम " अर्थ यहहै कि हे पुरुषोत्तम आपही आपसे आपको जानो हो जो कहो कि इस कथनसे तो परमात्मा ज्ञान रूप सिद्धि होता है क्योंकि इस कथनमें जानना और जानने वाला और जान्यागया ये तीनूं एक मालूम होय हैं तो ईश्वरमें ज्ञान सिद्ध न हुआ किंतु ईश्वर ज्ञानरूप सिद्ध हुवा तो न्याय शास्त्रमें ईश्वरको नित्य ज्ञानका आश्रय कहा है सो कैसे होसके इसका उत्तर क्या तो हम कहैं हैं कि इसका उत्तर तो न्याय शास्त्रके आचार्योंको पूछो उन्होंनेही ईश्वरको ज्ञानका आश्रय कहा है अब देखो उनको इतना भी विचार न हुवाके ईश्वरको ज्ञानका आश्रय मानेंगे तो ईश्वर जड़ सिद्धि होगा क्योंकि उन्होंने ज्ञानको गुण माना है और ईश्वरको द्रव्य माना है तो ईश्वर चैतन्यसे जुदा पदार्थ होनेसे जड़ हो सिद्ध होय जैसे उनके मतमें ज्ञानसे जुदा पदार्थ होनेसे जीव जोहै सो जड़है

इसीसे मुक्त अवस्था जीवकी जड़रूप करके स्थिति न्याय शास्त्रमें मानें हैं हम मुक्तिके ..
हम पदार्थ निरणय करके पश्चात् मुक्तिका स्वरूप लिखेंगे इस जगह तो हमको ..
ज्ञानरूप सिद्ध करना था सो हो गया अब हम यह और पूछें हैं कि तुम परमात्मामें
नहीं मानोंहो सो किस प्रमाणसे नहीं मानोहो जो कहो कि हमारे यहां श्रुति ..
"असुखम्" इसका अर्थ यह है कि परमात्मामें सुख नही है तो हम कहेंहैं कि ..
मानंदं ब्रह्म" ये बृहदारण्यककी श्रुति है इसका अर्थ यहहै कि ब्रह्म जो परमात्मा
ज्ञानरूप है और आनंदरूपहै तो परमात्मामें आनन्द सिद्ध होगया जोकहो "असुखं
इस श्रुतिकी क्या गति होगी तो हम कहें हैं कि इस श्रुतिकी एक गतितो यह कि ..
नाम विषय सुखका है तो असुख शब्द करके श्रुति परमात्मामें विषय सुखका निषेध
है.जो कहो कि सुख आनन्द यह दोनों शब्द परयाय वाची हैं अर्थात् एकही अर्थके कहने
वाले हों तो इस श्रुतिकी दूसरी गति यह है कि परमात्मामें सुखके आधारपनेका निषेध
करे हैं अर्थात् परमात्माको सुखरूप कहें हैं ऐसे परमात्मा सच्चिदानन्दरूप सिद्ध हुवा जो
कहो कि परमात्मा सच्चिदानन्दरूप हुवा तो जीव सच्चिदानन्द कैसे होय यहतो अनित्य
ज्ञानवाला है नाना प्रकारके दुःखोंको भोगनेवाला है तो हम पूछेंहैं कि तुम जीवका
स्वरूप जड़ मानोंहो तो तुमने जीवका जड़पणा देखा है वा नहीं जो कहो कि जीवका जड़पणा
हमने देखा है तो हम पूछेंहैं कि तुमने जड़पणा किस समयमें देखा है जो कहो कि सुषु-
प्तिमें देखा है तो हम कहें हैं कि सुषुप्तिमें ज्ञान सिद्ध हो गया क्योंकि जो सुषुप्तिमें ज्ञान
न होता तो जड़पणाको कैसे जानते जो कहो कि नही देखा है तो सुषुप्तिमें जीवको जड़
कहना असंगत हुवा क्योंकि जागनेके पीछे तुमको ऐसा ज्ञान होय है कि मैं जड होकर
सूता रहा तो ये ज्ञान अनुभव है अथवा स्मरण है जो कहो कि अनुभवहै तो ये कथन
असंगत है क्योंकि अनुभव तो विषय मौजूद होय तब होय है सो जीवका जड़पणा जाग्रत
अवस्थामें मौजूद नहीं इस लिये जड होकर सूता रहे यह ज्ञान अनुभव होसके नहीं जो
कहो कि स्मरण है तो हम पूछें हैं कि स्मरण अनुभव होय है तिसकाही होय है वा जिसका
अनुभव न होय उसकाभी स्मरण होय है जो कहो कि जिसका अनुभव न होय उसकाही
स्मरण होयहै तो हम कहें हैं कि तुमको सारे जगत्के पदार्थोंका स्मरण होना चाहिये
क्योंकि तुमको सारे जगत्के पदार्थोंका अनुभव नहीं है जो कहो कि अनुभव होय उसकाही
स्मरण होय है तो तुम्हारा जड़पणा सुषुप्तिमें नहीं दीखा है ये कथन असंगत हुवा क्योंकि
जो सुषुप्तिमें जडपणेका अनुभव न होय तो जाग्रत् अवस्थामें जड़पणाका स्मरण कैसे हो
सके इसलिये सुषुप्ति समयमें तुम्हारे कथनसेही जीवमें ज्ञान सिद्ध होगया अब कहो
तुम जीवके ज्ञानको अनित्य मानोंहो तो जीवमें ज्ञानकी उत्पत्तिभी मानोंहोगे तो हम पूछें
हैं कि तुम ज्ञानके कारण किनको मानोहो जो कहो कि ज्ञानका समवायीकारण तो जीव
है और असमवायीकारण जीवका और मनका संयोग है और ईश्वरको आदि
लेके ज्ञानके निमित्त कारण है तो हम कहें हैं कि सुषुप्तिमें ज्ञान होना चाहिये क्योंकि
सुषुप्तिमें सारे कारण मौजूद हैं जो कहो कि और कारण तो सब मौजूद है परंतु चर्मका
और मनका संयोग ज्ञान सामान्य अर्थात् सर्व ज्ञानोंका कारणहै सो सुषुप्तिमें बणसके नहीं

क्योंकि उससमयमें मन पुरीततिनाम नाडी जिसमें प्रवेश करजाय है उसनाडीमें चर्म नहीं है तो हम पूछें कि जब मनपुरीततिमें प्रवेश करजावैहै तब ज्ञान और नहीं तो अज्ञान रहैगा तो अज्ञानका प्रत्यक्षतो तुम सुषुप्तिमें मानोंगेनहीं क्योंकि बाह्य प्रत्यक्षमें तुम इन्द्रिय और मन इनके संयोगको कारण मानोंहो और मानस प्रत्यक्षमें आत्मा और मन इनका संयोग और चर्म और मन इनका संयोग ऐसे दोय संयोगोंको कारण मानों हो तो अज्ञान बाह्यपदार्थतोहै नहीं इसलिये इंद्रिय और मन इनके संयोगकी अपेक्षा तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें है नहीं तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें मानस प्रत्यक्षकी जो सामग्री उसकी अपेक्षा होगी सो बणसके नहीं क्योंकि यद्यपि पुरीततिमें मन प्रवेश कर गया तब आत्माका और मनका संयोग तो है परन्तु चर्मका और मनका संयोग नहीं मानों हो तो कहो तुम सुषुप्तिमें अज्ञान कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष सामग्री नहीं है तो सुषुप्तिमें अनुमान सिद्धि करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम वह अनुमान कहो परन्तु दृष्टान्त ऐसा कहो कि जो तुम्हारे और हमारे दोनोंके सम्मत होय जो कहो कि जैसे मूर्छा में द्वैतकी प्रतीति नहीं है इसलिये मूर्छामें अज्ञान है तैसे सुषुप्तिमेंभी द्वैतकी प्रतीति नहीं है इस लिये अज्ञान है इस अनुमानसे सुषुप्तिमें अज्ञान सिद्ध हो गया तो हम पूछें हैं कि तुम मूर्छा जो अज्ञान है उसकाभी प्रत्यक्ष तो मानोंगे नहीं इसलिये मूर्छामें किसके दृष्टान्तसे अज्ञानको सिद्ध करोगे जो कहो कि सुषुप्तिके दृष्टान्तसे सिद्ध करेंगे तो हम पूछें हैं कि तुम्हारी सुषुप्तिको दृष्टान्त करोगे वा अन्यकी सुषुप्तिकूं दृष्टान्त करोगे जो कहो कि हमारी सुषुप्तिमें तो विवाद है इस लिये अन्यकी सुषुप्तिको दृष्टान्त करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम्हारा अनुभव विलक्षण है कि अपनी सुषुप्तिको तो जानोंनहीं और अन्यकी सुषुप्तिको जानो हो जो कहोकि अन्यकी सुषुप्तिका प्रत्यक्ष अनुभव तो हैनहीं इसलिये ऐसा अनुमान करेंगे कि जैसे चेष्टा करके रहित हूं इसलिये सुषुप्तिवाला हूं तैसे अन्य पुरुषभी चेष्टा करके रहित है इस लिये सुषुप्तिवाला है ऐसे अनुमानसे अन्य पुरुषमें सुषुप्तिको सिद्ध करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम्हारी सुषुप्तिका अनुभव मानों सुषुप्तिका तुम अनुभव नहीं मानोंगे तो इसको दृष्टान्तसे अन्यकी सुषुप्तिको कैसे सिद्ध करोगे इसलिये अपनी सुषुप्तिमें अनुभव मानना ही पडेगा कारण सुषुप्तिमें अनुभव मानो तो उसको नित्य भी मानना ही पड़ेगा क्योंकि तुमनें जो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण माना है वो सुषुप्तिमें नहीं है अर्थात् चर्मका मनका संयोग सुषुप्तिमें है नहीं अब जो सुषुप्तिका अनुभव नित्य सिद्ध हुवा तो जिसकूं जीव माना सो परमात्मा ही सिद्ध हुवा क्योंकि परमात्मा पहिले नित्य ज्ञान रूप सिद्ध हो गया है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानवाला हुवा तो भी परमात्मासे तो भिन्न ही है ऐसे मानेंगे तो हम पूछें हैं कि तुम भेद कितने प्रकारके मानों हो जो कहो कि भेद हम तीन प्रकारके माने हैं जिनमें एक तो स्वगत भेदहै जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादिकके कमती ज्यादा होनेसे भेद मालूम होय है और दूसरा सजातीय भेद जैसे एक वृक्षमें दूसरे वृक्षका भेद है और तीसरा विजातीय भेदहै जैसे वृक्षमें पाषाणादिक का भेद है अब देखो कि जीव सावयव नहीं इस लिये जीवमें स्वगत भेद बनसके नहीं और जीव परमात्मासे विजातीय नहीं इस लिये भी जीवमें विजातीय भेद नहीं है किन्तु सजातीय

इसीसे मुक्त अवस्था जीवकी जड़रूप करके स्थिति न्याय शास्त्रमें माने हैं इस मुक्तिके
हम पदार्थ निरणय करके पश्चात् मुक्तिका स्वरूप लिखेंगे इस जगह तो हमको
ज्ञानरूप सिद्ध करना था सो हो गया अब हम यह और पूछें हैं कि तुम परमात्मामें
नहीं मानोहो सो किस प्रमाणसे नहीं मानोहो जो कहो कि हमारे यहां श्रुति
"असुखम्" इसका अर्थ यह है कि परमात्मामें सुख नही है तो हम कहेंहैं कि
मानंदं ब्रह्म" ये बृहदारण्यककी श्रुति है इसका अर्थ यहहै कि ब्रह्म जो परमात्मा
ज्ञानरूप है और आनंदरूपहै तो परमात्मामें आनन्द सिद्ध होगया
इस श्रुतिकी क्या गति होगी तो हम कहें हैं कि इस श्रुतिकी एक गतितो यह कि
नाम विषय सुखका है तो असुख शब्द करके श्रुति परमात्मामें विषय सुखका निषेध
है जो कहो कि सुख आनन्द यह दोनों शब्द परयाय वाची हैं अर्थात् एकही अर्थके
वाले हों तो इस श्रुतिकी दूसरी गति यह है कि परमात्मामें सुखके आधारपनेका
करे हैं अर्थात् परमात्माको सुखरूप कहें हैं ऐसे परमात्मा सच्चिदानन्दरूप सिद्ध हुवा जो
कहो कि परमात्मा सच्चिदानन्दरूप हुवा तो जीव सच्चिदानन्द कैसे होय यहतो अनित्य
ज्ञानवाला है नाना प्रकारके दुःखोंको भोगनेवाला है तो हम पूछेंहें कि तुम जीवका
स्वरूप जड़ मानोहो तो तुमने जीवका जड़पणा देखा है या नहीं जो कहो कि जीवका जड़पणा
हमने देखा है तो हम पूछेंहें कि तुमने जड़पणा किस समयमें देखा है जो कहो कि सुषु
प्तिमें देखा है तो हम कहे हैं कि सुषुप्तिमें ज्ञान सिद्ध हो गया क्योंकि जो सुषुप्तिमें ज्ञान
न होता तो जड़पणाको कैसे जानते जो कहो कि नहीं देखा है तो सुषुप्तिमें जीवको जड़
कहना असंगत हुवा क्योंकि जागनेके पीछे तुमको ऐसा ज्ञान होय है कि मैं जड होकर
सूता रहा तो ये ज्ञान अनुभव है अथवा स्मरण है जो कहो कि अनुभवहै तो ये कथन
असंगत है क्योंकि अनुभव तो विषय मौजूद होय तब होय है सो जीवका जडपणा जाग्रत
अवस्थामें मौजूद नहीं इस लिये जड होकर सूता रहे यह ज्ञान अनुभव होसके नहीं जो
कहो कि स्मरण है तो हम पूछें हैं कि स्मरण अनुभव होय है तिसकाही होय है वा जिसका
अनुभव न होय उसकाभी स्मरण होय है जो कहो कि जिसका अनुभव न होय उसकाही
स्मरण होयहै तो हम कहें हैं कि तुमको सारे जगत्के पदार्थोंका स्मरण होना चाहिये
क्योंकि तुमको सारे जगत्के पदार्थोंका अनुभव नहीं है जो कहो कि अनुभव होय उसकाही
स्मरण होय है तो तुम्हारा जड़पणा सुषुप्तिमें नहीं दीखा है ये कथन असंगत हुवा क्योंकि
जो सुषुप्तिमें जड़पनेका अनुभव न होय तो जाग्रत् अवस्थामें जड़पणाका स्मरण कैसे हो
सके इसलिये सुषुप्ति समयमें तुम्हारे कथनसेही जीवमें ज्ञान सिद्ध होगया अब कहो
तुम जीवके ज्ञानको अनित्य मानोहो तो जीवमें ज्ञानकी उत्पत्तिभी मानोहोगे तो हम पूछें
हैं कि तुम ज्ञानके कारण किनको मानोहो जो कहो कि ज्ञानका समवायीकारण तो जीव
है और असमवायीकारण जीवका और मनका संयोग है और ईश्वरको आदि
लेके ज्ञानके निमित्त कारण हैं तो हम कहे हैं कि सुषुप्तिमें ज्ञान होना चाहिये क्योंकि
सुषुप्तिमें सारे कारण मौजूद हैं जो कहो कि और कारण तो सब मौजूद हैं परंतु जीवका
और मनका संयोग ज्ञान सामान्य अर्थात् सारे ज्ञानोंका कारणहै सो सुषुप्तिमें मनसंयोग नहीं

क्योंकि उससमयमें मन पुरीततिनाम नाडी जिसमें प्रवेश करजाय है उसनाडीमें चर्म नहीं है तो हम पूछेंहैं कि जब मनपुरीततिमें प्रवेश करजायहै तब ज्ञान होवे नहीं तो अज्ञान रहेगा तो अज्ञानका प्रत्यक्षतो तुम सुषुप्तिमें मानोंगेनहीं क्योंकि बाह्य प्रत्यक्षमें तुम इन्द्रिय और मन इनके संयोगको कारण मानोंहो और मानस प्रत्यक्षमें आत्मा और मन इनका संयोग और चर्म और मन इनका संयोग ऐसे दोय संयोगोंको कारण मानों हो तो अज्ञान बाह्यपदार्थतोहै नहीं इसलिये इंद्रिय और मन इनके संयोगकी अपेक्षा तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें है नहीं तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें मानस प्रत्यक्षकी जो सामग्री उसकी अपेक्षा होगी सो बणसके नहीं क्योंकि यद्यपि पुरीततिमें मन प्रवेश कर गया तब आत्माका और मनका संयोग तो है परन्तु चर्मका और मनका संयोग नहीं मानों हो तो कहो तुम सुषुप्तिमें अज्ञान कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष सामग्री नहीं है तो सुषुप्तिमें अनुमान सिद्धि करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम वह अनुमान कहो परन्तु दृष्टान्त ऐसा कहो कि जो तुम्हारे और हमारे दोनोंके सम्मत होय जो कहो कि जैसे मूर्छा में द्वैतकी प्रतीति नहीं है इसलिये मूर्छामें अज्ञान है तैसे सुषुप्तिमेंभी द्वैतकी प्रतीति नहीं है इस लिये अज्ञान है इस अनुमानसे सुषुप्तिमें अज्ञान सिद्ध हो गया तो हम पूछें हैं कि तुम मूर्छा जो अज्ञान है उसकाभी प्रत्यक्ष तो मानोंगे नहीं इसलिये मूर्छामें किसके दृष्टान्तसे अज्ञानको सिद्ध करोगे जो कहो कि सुषुप्तिके दृष्टान्तसे सिद्ध करेंगे तो हम पूछें हैं कि तुम्हारी सुषुप्तिको दृष्टान्त करोगे वा अन्यकी सुषुप्तिकूं दृष्टान्त करोगे जो कहो कि हमारी सुषुप्तिमें तो विवाद है इस लिये अन्यकी सुषुप्तिको दृष्टान्त करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम्हारा अनुभव विलक्षण है कि अपनी सुषुप्तिको तो जानोंनहीं और अन्यकी सुषुप्तिको जानो हो जो कहोकि अन्यकी सुषुप्तिका प्रत्यक्ष अनुभव तो हैनहीं इसलिये ऐसा अनुमान करेंगे कि जैसे चेष्टा करके रहित हूं इसलिये सुषुप्तिवाला हूं तैसे अन्य पुरुषभी चेष्टा करिके रहित है इस लिये सुषुप्तिवाला है ऐसे अनुमानसे अन्य पुरुषमें सुषुप्तिको सिद्ध करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम्हारी सुषुप्तिका अनुभव मानों सुषुप्तिका तुम अनुभव नहीं मानोंगे तो इसको दृष्टान्तसे अन्यकी सुषुप्तिको कैसे सिद्ध करोगे इसलिये अपनी सुषुप्तिमें अनुभव मानना ही पडेगा कारण सुषुप्तिमें अनुभव मानो तो उसको नित्य भी मानना ही पडेगा क्योंकि तुमनें जो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण माना है वो सुषुप्तिमें नहीं है अर्थात् चर्मका मनका संयोग सुषुप्तिमें है नहीं अब जो सुषुप्तिका अनुभव नित्य सिद्ध हुवा तो जिसकूं जीव माना सो परमात्मा ही सिद्ध हुवा क्योंकि परमात्मा पहिले नित्य ज्ञान रूप सिद्ध हो गया है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानवाला हुवा तो भी परमात्मासे तो भिन्न ही है ऐसे मानेंगे तो हम पूछें हैं कि तुम भेद कितने प्रकारके मानों हो जो कहो कि भेद हम तीन प्रकारके माने हैं जिनमें एक तो स्वगत भेदहै जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादिकके कमती ज्यादा होनेसे भेद मालूम होय है और दूसरा सजातीय भेद जैसे एक वृक्षमें दूसरे वृक्षका भेद है और तीसरा विजातीय भेदहै जैसे वृक्षमें पाषाणादिकका भेद है अब देखो कि जीव सावयव नहीं इस लिये जीवमें स्वगत भेद बनसके नहीं और जीव परमात्मासे विजातीय नहीं इस लिये भी जीवमें विजातीय भेद नहीं है किन्तु सजातीय

भेद है तो हम कहे हैं कि यह कथन तुम्हरा असंगत है क्योंकि किंचित् विलक्षणता विना भेद हो सके नहीं जो किंचित् विलक्षणता विनाभी भेद होय तो आपका भेद आपमें भी रहणा चाहिये इसलिये जीव परमात्मा ही है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानरूपहै तोभी जन्य ज्ञानका आश्रय है यही जीवमें परमात्मासे विलक्षणता है तो हम पूछें हैं कि तुम जन्य ज्ञानकिसकूं कहो हो जो कहो कि पुरीतति नाडीमेंसे जब मन बाहिर आवे है तब आत्माका और मनका संयोग होय है उससे जो ज्ञान पैदा होयहै सो जन्य ज्ञान है तो हम कहेहै कि आत्माका और मनका संयोगतो बनेही नहीं क्योंकि आत्मा और मन इन दोनों द्रव्योंको तुम निरवयव मानों हो और संयोगको तुम अव्याप्य वृत्ति मानो हो अर्थात् संयोगका यह स्वभाव है कि यह जहां होवे उसके एक देशमें तो आप रहे है और उसहीके अन्य देशमें संयोगका अभाव रहेहै जैसे वृक्षमें वानरका (वन्दर) संयोग है सो शाखा देशमेंहै और मूलदेशमें नहीं है अब जो आत्मा और मन इनका संयोग मानोंगे तो संयोग अव्याप्यवृत्ति नहीं हो सकेगा क्योंकि तुम्हारे मतमें आत्मा और मन इनको निरवयव मानो हो इसलिये इनमें देश वण-सके नहीं अब जो आत्मा मनका संयोग नहीं होसका तो मनका मानना भी असंगत हुवा कि तुमने मनके संयोगसे आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति मानी है सो मनका संयोग आत्मामें बनसके नहीं इसलिये मनका मानणा व्यर्थ है अब देखो कि जो तुम मनको द्रव्य मानते हो सो नहीं बनता क्योंकि आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ तुमने मनको माना है सो ज्ञान तो नित्य सिद्ध हो गया आत्मा इसमें जुदा सिद्ध हुवा नहीं और जो इस ज्ञानमेंही मनका संयोग मान करके कोई अनित्य ज्ञानकी कल्पना करलेवो सो बने नहीं क्योंकि मनतो तुम्हारे मतमें द्रव्य है और ज्ञान जो है सो गुण है इनका संयोग बनसके नहीं द्रव्योंकाही संयोग होय है ये न्यायवालोंका नियम है इसलिये मनका मानणा व्यर्थहै और कहो कि तुम चर्म और मनके संयोग करके आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति मानोहो तो यह कहो कि सुषुप्तिके अव्यवहित उत्तर क्षणमें प्रथम चर्मसे मनका संयोग कौनसे देशमें होयहै चर्मतो पुरितति के विना सर्व शरीरमें है जो कहो कि मनके प्रथम संयोगका देशतो लिखा नहीं तो हम कहें है कि कोइ देश मानलेवो तो मन तुम्हारे मतमें परिमाणु रूप है तो ये मन जिस दे-शमें चर्म संयुक्त होगा उसही देशमें आत्मामें ज्ञानको पैदा करेगा अथवा अन्य देशमें भी ज्ञानको पैदा करेगा जो कहो कि उसही देशमें ज्ञानको पैदा करेगा तो हम कहे हैं कि ऐसे मानणा तो असंगत है क्योंकि ज्ञानकी प्रतीति सर्वशरीरमें होय है जो कहो कि अन्यदेशमें भी ज्ञानको पैदा करे है तो हम कहे है कि आत्मा तुम्हारे मतमें व्यापक है इसलिये घट दे-शमें भी ज्ञानकी प्रतीति होनी चाहिये ये जो कहो कि जितने देशमें चर्म है उतनेही में ज्ञा-नको पैदा करे है जैसे पृथ्वी घटके पैदा करनेके योग है परन्तु जितने देशमें स्निग्ध है अर्थात् चिकनी है उसमेंही घट होय है तो हम कहे है कि पृथ्वीको तो तुम सावयव मानों हो इस लिये कोई देशतो घट होनेके योग्य मान सकोगे और कोई देश घट होणेके अयोग्य मान सकोगे आत्मा तो तुम्हारे मतमें निरवयव है इसके दोभाग कैसे हो सकें इसलिये ऐसे मा-नना भी असंगतही है जो कहो कि आत्मामें आरोपित देशमानेंगे तो हम कहे हैं कि आरोपित नाम तो मिथ्याका है जो आत्मामें देश मिथ्या हुवा तो उस देशमें ज्ञानका मानणा भी मि-

ध्याही होगा जैसे रज्जुमें सर्प आरोपित है तो उसमें नीलपणा आदि लेकरके सारे धर्म आ-रोपित ही हैं अब कहो आत्मामें ज्ञान और देश इनका आरोप कौन करेगा अर्थात् आत्मा आरोप करेगा अथवा कहो कि दोनूंमें से चाहै जिसकों आरोपका कर्त्ता मानि लेवेंगे तो हम कहें हैं कि न्यायके मतमें तो आत्मा और मन दोनोंही जड़ हैं ये आरोपके कर्त्ता कैसें होसकें अब जो आरोपका कर्त्ता कोई सिद्ध न हुवा तो आत्मामें आरोपित देश मानणा असंगत हुवा आरोपित देश मानणा असंगत हुवा तो उस देशमें ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ मनका मानणां असंगत हुवा ऐसें पृथ्वीको आदि लेके मनपर्यन्त द्रव्योंका मानणा असंगतही हैं अब हम तुमको पूछेंहें कि गुण जो तुम मानों हो सो प्रथमरूप किसको कहो हो जो कहो कि रूप शब्द करके कहाजाय सो रूप तो हम कैहेंहें कि रूप शब्द करके तो रूप शब्दभी कह्याजाय है इसलिये रूप शब्दको रूप मानणा चाहिये जो कहो कि रूप शब्दसे भिन्न और रूप शब्द करिके कहाजाय सो रूप तो हम कहें हैं कि रूप शब्द करके तो रूप नाम जो पुरुष सोभी कहा जाय है और वो रूप शब्दसे भिन्नभी है तो उस पुरुषको रूप मानना चाहिये और विचार करो कि व्यवहार और लक्षणतो पदार्थ होय तवही होय है सो रूपके उपादान कारण तो है पृथ्वी जल तेज और असमवायकारण है उपादानोंके अवयवोंका रूप सो न तो उपादान कारण सिद्ध हुवे और न उपादानोंके अवयव सिद्ध हुवे तो कारणोंके विना रूपकी सिद्धि कैसे मानी जाय इसलिये रूपका-मानना असंगत है ऐसेही रसना इन्द्रियों करके जानाजाय ऐसा जो गुण सो रस और घ्राण इन्द्रियों करके जाणा होय ऐसा जो गुण सो गंध और केवल त्वगिन्द्रिय करके जाणा जाय ऐसा जो गुण सो स्पर्श इन लक्षणो करके इन रसगंध स्पर्शोंका मानणाभी असंगतही है अब कहो तुम संख्या किसको कहो हो जो कहो कि वह एक है येदोय है इत्यादिक जो व्यवहार तिनका जो असाधारण. कारण सो संख्या तो हम पूछेंहें कि तुम असा धारण कारण किसको कहो हो जो कहो कि जो एक कार्यका कारण होय सो असाधारण कारण है तो हम पूछें हें कि यह एक है येदोय हैं इत्यादिक जो ज्ञान तिनका कारण संख्या है अथवा नहीं तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि ये एकहै दोय है इत्यादिक जो ज्ञान तिनका कारण संख्या है तो हम कहें हैं कि संख्याको यह एकहै ये दोय है इत्यादिक व्यवहारोंका असाधारयकारण मानना चाहिये क्योंकि यह तो अपने ज्ञानकीभी कारण हुई इसलिये यह एककी कारण न हुई किन्तु व्यवहार और ज्ञान दोनोंकी कारण हुई जो कहो कि व्यवहार और ज्ञान दोनोंकी कारण हुई तोभी व्यवहारकी कारण हुई इस लिये व्यवहारकी असाधारण कारण है तो हम कहेंहें कि तुमने परमेश्वर काल इत्यादिकको भी असाधारण कारण क्यों नहीं मानें सो कहो यह परमेश्वर और काल इत्यादिकभी सर्व कार्योंके कारण हैं तोभी एक एकके कारण होंगे जो कहो कि एक एक कार्यकी दृष्टि साधारण कारणोंकोभी असाधारण कहेंगे तो हम कहें हैं कि सर्व कार्योंकी दृष्टिसे साधारण कारण मानोंगे और एक कार्यकी दृष्टिसें असाधारण कारण मानोंगे तो स्वरूपसे कारण नहीं है ऐसेभी कहना पड़ेगा तो संख्याभी स्वरूपसे कारण नहीं है ऐसेभी कहणा पड़ेगा तो संख्याको स्वरूपकारण नहीं होने संख्याका मानना असंगत होगा तो परमात्माका

माननाभी असंगत होगा क्योंकि परमात्माभी स्वरूपसें कारण नहीं है तो हम कहें हैं कि परमात्माको तो तुम्हारी मानी हुई श्रुति सत्यरूप वर्णन करे है इस लिये परमात्मा तो है और संख्याको स्वरूपसे कुछभी कही नहीं इसलिये संख्याको स्वरूपसे कुछभी कही नहीं इसलिये संख्याका मानणा असंगतही है ऐसेही यह इतने प्रमाणवाला है इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परिमाण वाला और यह इससे जुदा है इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो पृथक् और यह इससे संयुक्त है इस व्यवहारका जो असाधारण सो संयोग और ये इससे परे है इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परत्व और यह इससे अपर है इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो अपरत्व इनका माननाभी असंगतही है और विभागका मानणाभी असङ्गतही है क्योंकि संयोगका नाशकरनेवाला जो गुण सो विभाग है जो संयोगही नहीं तो इस संयोगका नाश करनेवाला गुण मानणा असंगतही है अब कहो कि तुम गुरुत्व किसको कहते हो जो कहो कि प्रथम जो पतन क्रिया तिसका जो असमवायि कारण सो गुरुत्व. तो हम पूछे हैं कि तुम असमवायिकारण किसको कहते हो तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि कार्यके समवायि कारणमें समवायिसम्बन्धकरके रहे और उस कार्यका कारण हो सो असमवायिकारण तो हम कहेहैं कि वायुतो हुवा और तुम्हारी मानी क्रिया उसके उपादानकारण होगी तो पृथ्वी और जल सिद्ध हुये नहीं तो आधार विना गुरुत्व गुणका मानना असंगत हुवा ऐसेही द्रव्यत्वका माननाभी असंगतही है क्योंकि आद्यस्यन्दनका अर्थात् प्रथम झरणेका जो असमवायि कारण सो द्रव्यत्व ये द्रव्यत्वका लक्षण है तो झरणारूप जो क्रिया है सो यहां कार्य्य मानी जायगी उसके उपादान होगी तो पृथ्वी, जल, तेज, सोतो सिद्ध हुये नहीं इसलिये आधारविना द्रव्यत्वका मानणा निष्फल है ऐसेही चूर्णके पिण्ड होणेका कारण गुण स्नेह मान्याहै और यत्नमें उसकी स्थिति मानी है तो यत्न सिद्ध हुवा नहीं इसलिये स्नेहका मानणा असंगतही है और शब्दके गुणपणेका खण्डन आकाशके खण्डनमें विस्तारसे लिखा है इसलिये शब्दगुण का मानना व्यर्थ है और ज्ञान जो है सो परमात्मारूप सिद्ध हो चुका है इसलिये ज्ञानको गुण मानना असंगत है और सुखभी आत्मारूप है इस लिये इसको गुण मानना असंगत है और आत्मा नित्यसुखरूपहै इस लिये इसमें दुःख और द्वेष येभी बन सके नहीं और पहिले आत्मामें इच्छा और यत्न इनके सिद्ध नही होनेसे कर्त्तापणां सिद्ध हुवा नहीं इसलिये इसमें धर्म और अधर्म्म मानना असंगत है और संस्कार तुमने तीन माने है १ वेग २ भावना ३ स्थितिस्थापक इनमें वेग तो तुम पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन इनमें मानोंहो सो ये सिद्ध हुये नहीं और स्थितिस्थापकको तुम पृथ्वीमें मानोंहो सो सिद्ध हुये नहीं भावना तुम अनुभवसे जन्य मानोंहो और अनुभवको तुम जन्य मानोंहो सो अनित्य ज्ञान सिद्ध हुवा नहीं और विषय कोईभी सिद्ध नहीं हुवा इसलिये इन तीनों प्रकारके संस्कारोंका मानणाभी असंगत हुवा अब जो कहो कि गुणोंका मानना असंगत हुवा तो हम कर्मको अर्थात् क्रियाको सिद्ध करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम्हारी क्रियाका लक्षण यह है कि संयोगसे भिन्न और संयोगका असमवायिकारण होय सो कर्म तो जो संयोगही सिद्ध न हुवा तो उसका कारण कर्म माननाभी असंगतही हुवा अब देखो जो तुमारे माने

वे पदार्थ द्रव्य गुण कर्म कोई भी सिद्ध न हुवा जो कहो कि गौतम ऋषिजी सर्वज्ञ हुएथे और कणादि मुनिनेभी पदार्थके निर्णयके अर्थ तप कियाथा फेर तुमने इनके माने पदार्थोंको युक्ति और इनके माने प्रमाणसेही तुमने खण्डन करदिया तो पदार्थ तो हमारा सिद्ध न हुवा परन्तु मोक्ष उनका कहाहुवा सिद्ध होगया तो हम कहें हैं कि तुम मोक्ष किसको मानोंहो और तुम्हारे ऋषियोंने मानी जो मोक्ष सो कहो जो तुम कहो कि इक्कीस गुणोंका ध्वंस अर्थात् नाश होना उसीका नाम मोक्ष है तो हम तुमको पूछें हैं कि तुम्हारे सर्वज्ञोंने आत्माको मोक्षमें गुणोंके नाश होनेसे जड़ वनाया अर्थात् पाषाण वनादिया जैसा तुम्हारे सर्वज्ञोंने पदार्थोंका निर्णय किया है तैसाही मोक्षभी हुवा परंतु उनके चित्तमें विवेक शून्य विचार हुवा क्योंकि ऐसा कोई विवेकी पुरुष नहीं होगा कि अपने को आप सत्यानाशमें मिलावे क्योंकि इस तुम्हारी मोक्षमें जाकर जड़ वनना अर्थात् पाषाणवत् होजाना इससे तो देवलोक आदिकभी अच्छे हैं इसीलिये श्रीहेमाचार्यकी कीहुई स्याद्वाद मंजरीकी टीकामें ऐसा उपहास किया है कि "वृन्दावनमें रमणकरण गोपियोंके साथ रहनेकी वाञ्छा करता हुवा और वैशेषककी मानी मुक्ति गौतम ऋषि जानेकी इच्छा नहींकरता हुवा" अव देखो कि आत्मा ज्ञानरूप तो पहलेही सिद्ध हो चुकी है और सुखरूपभी सिद्ध होचुकीहै तो मोक्षमें जड़रूप आत्मा कैसे वनसकेगी और जो तुमने कहा कि वे ऋषि सर्वज्ञ थे तो हम कहें हैं कि सर्वज्ञ होते तो कदापि ऐसा नहीं कहते कि पदार्थका निर्णय होनेसे तत्व ज्ञान होता है सो तत्व ज्ञान तो न हुवा परन्तु उलटा भ्रम ज्ञान तो फैल गया इस लिये वे सर्वज्ञ नहीं किन्तु आत्माके सर्व नाश करनेवाले थे जो तुम कहो कि आत्माका नाश कैसे किया तो हम कहें हैं कि पक्षपात छोड़कर विवेकसे विचार करो कि आत्मा ज्ञानमई आनन्दरूप परमात्म स्वरूपसे मोक्षमे विराजमान सिद्ध होना चाहिये तिसको उन्होंने जड रूप वना दिया इसलिये वे सर्वज्ञ नहींथे जो कहो कि ये तो सर्वज्ञ न ठहरे और इनके कहे हुये पदार्थ भी सिद्ध न हुये और मोक्ष भी सिद्ध न हुई तो दूसरा सर्वज्ञ कौन है सो कहो तो हम कहें हैं कि सर्वज्ञका वर्णन हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहेंगे अव ग्रन्थके वढ़ जानेके भयसे विस्तार नहीं किया कारण यह कि पाठक गण आलस्यके वश हो पढ़ न सकेंगे

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीय प्रश्नके अन्तर्गत न्यायमत निर्णय समाप्तम् ॥

वेदान्तमत मर्दन अर्थात् खण्डन ॥

अव वेदान्तकी प्रक्रिया दिखाते हैं, जो कि वे पदार्थ मानते हैं उनकी रीतिसे ही उनकी प्रक्रिया सिद्ध नहीं होती "अध्यारूपो अपवादाभ्यां निस प्रपञ्चो प्रपंचते" ॥ दूसरे ऐसी श्रुति कहते हैं "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापीसर्व भूतान्त रात्मा कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" ॥

इसका अर्थ ऐसा लिखते हैं कि अध्यारोप करके अपवाद
गज बाजूदका बनाय करके और उड़ाय देनाहि ऐसे ही ब्रह्मका
होना चाहिये तो अब तुमको पूछें हैं कि जैसे तुमने अध्यारोप
रीतिसे तो जो ब्रह्म निःप्रपंचया उसका तुमने निःप्रपंचपना
अध्यारोपका जब अपवाद किया तो प्रपंच सिद्ध हो चुका तो
कि जो अध्यारोप कियाथा सो अध्यारोप तो अनहुई वस्तुका करते हैं
समझावने वास्ते किसीमें किसी वस्तुका अध्यारोप करके समझाते हैं
ह्म निः प्रपंचका अध्यारोप अर्थात् मिथ्या आरोप कियाथा उसका
ब्रह्ममें प्रपंच जो कहिये जगत् अनादि कालका सिद्ध हो चुका क्योंकि
मानते हो जो वह अपने स्वरूपमें स्थित होता तो कदापि प्रपंचमें नहीं
कि पहले ज्ञानवान था और पीछे ज्ञानका आवरण हुवा तो अब जो
ज्ञान होकर जगत् मिथ्या जानकर ब्रह्मरूप हो जायगा सो हम कहें हैं
हले ब्रह्म निःप्रपंचया अर्थात् अज्ञान नहींथा सो फिर पीछेसे अज्ञान
लिया तो फेर भी ऐसा ही कर लेवेगा इस लिये तुम्हारे मतमें श्रुति,
सर्व निष्फल होंगे इसी लिये हम तुमको कहते हैं कि जगत् अनादि
आत्मा प्रपंचमें सिद्ध हो गया और देखो तुम्हारेभी यही सिद्धान्त
हैं क्योंकि यह वेदान्तियोंका सिद्धान्त है कि १ ब्रह्म, २ ईश्वर, ३ ज
ज्ञान, ५ अविद्याका अर्थात् अज्ञानका चेतनसे संबंध ६ अनादि पर
यह पट्वस्तु स्वरूपसे अनादि हैं जिस वस्तुकी उत्पत्ति होवे
अनादि कहिये है इस लिये यह छः वस्तु स्वरूपसे अनादि हैं अब
कि अविद्याका चेतनसे संबन्ध अनादि मान करके फिर तुमही क
या सो यह तुम्हारा कहना ऐसा हुवा कि "मन्मुखे जिह्वा नास्ति"
अब देखो दूसरा विचार करो जो तुम "एकोदेवः" इत्यादि श्रुतिका
प्रकाश परमात्मा एक है सो सर्व भूतोंमें गूढ है अर्थात् गुप्त है सर्व
अन्तरात्मा है, कर्मका अध्यक्ष है अर्थात् साधक है, सर्व भूतोंका
रूप है, केवल है निर्गुण है, तो यह श्रुति शुद्ध ब्रह्मका प्रतिपादन
है कि "एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।एकधाबहुधा चैव
अर्थ यह है कि सर्व भूतोंका आत्मा एक ही है सर्व भूतोंमें स्थित है जल
करके और बहुत प्रकार करके दीखे है तो प्रथम श्रुतिमें निर्गुणकार
पन है और गूढ शब्दका अर्थ गुप्त है तो ब्रह्ममें आवरण सिद्ध होवे
चन्द्रके दृष्टान्त करके ब्रह्मका एक प्रकार करके और बहुत प्रकार
तो ब्रह्मज्ञान रूप है और साक्षी है अर्थात् ब्रह्म जो है सो द्रष्टा है
श्रुतिमें एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके ब्रह्मका दीख
प्रकार करके तो ब्रह्मका दीखना बनसके नहीं इसलिये जीव
आभास है जैसे जलमें चन्द्रमाका आभास होयहै जो कहो

तो हम कहें हैं कि एक तो श्रुति यह है कि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णांबह्वीः प्रजाः सृजमानाम्" ॥ और दूसरी श्रुति यह है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" ॥ तो प्रथम श्रुतिमें तो मायाका वाचक अजा शब्द है तहां एक वचन है और दूसरी श्रुतिमें मायाभिः यहां बहु वचन है । तो मायाके अंशोंकी दृष्टि करके तो बहुवचन है और अंशिरूप जो माया तिसकी दृष्टिमें एक वचन है ये जो माया सो जलकी तरह है तो अंशिरूप जो माया सो तो समुद्रकी तरह है और अंशरूप जो माया सो तरंगोंकी तरहहै और जैसे समुद्र एकहै तैसे तो अंशिरूप माया एक है और जैसे तरङ्ग बहुत हैं तैसे अंशरूप माया बहुत है उसको ही अविद्या कहें हैं उस मायामें जो आभास है सो तो ईश्वर है और अविद्यामें आभास जीव है और माया और अविद्या यह अनादि हैं ईश्वर और जीव आभासरूप है और माया कल्पित हैं इसमें माया और अविद्या यह स्वतःसिद्धहै इसमें श्रुतिप्रमाणहै कि "जीवेशावाभासेन करोति मायाचाविद्याच स्वयमेव भवति" इसका अर्थ यहहै कि जीव और ईश्वर इनको आभास करके करे है और माया और अविद्या आपही होय हैं तो यह सिद्ध हुआ कि सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म अविद्या करके आवृत है सो अविद्या अनादि है और जीव और ईश्वर अविद्या कल्पित हैं तो हम तुमको पूछें हैं कि तुम्हारी श्रुतिमें तो जीव और ईश्वर आभास कहे हैं तो देखो जिसजगह आभास होता है उस आभासको मिथ्या कहते हैं क्योंकि जिसजगह सत्य हेतु होता है उस जगह तो सत्य वस्तुहै और जिसजगह असत् हेतु होता है उस जगह असत् वस्तु कहते हैं तो अब तुमही अपने हृदयमें नेत्रमींचकर विचार करो कि तुम्हारे उस आभासके सिद्धान्तमें जोकि वेदान्तियोंके ग्रंथोंको देखो तो तुमको आपही इनके जालकी खबर पड़ जायगी देखो कोई तो जीव ईश्वर इनको आभास मान करके मिथ्या कहे हैं और कोई २ आभास शब्दका अर्थ प्रतिबिम्ब मानकरके जीव और ईश्वर इनको तो सच्चिदानन्दरूपही कहें हैं और बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्व जो धर्म तिनको कल्पित मान करके मिथ्या कहेंहैं और कोई ऐसे कहे कि निरवयवका प्रतिबिम्ब होवे नहीं इसलिये जैसे महाकाशमें मठाकाश और घटाकाश ये कल्पित हैं तैसे ईश्वर और जीव यह कल्पित हैं और कोई यह कहे कि अविद्यासे ब्रह्मही एक जीवहै जैसे कुन्तीका पुत्र कर्णही राधेका पुत्र हुआ है ऐसेही जीव हुआ है जो ब्रह्म उसनेही ईश्वर और जीव यह कल्पित किये हैं जैसे निद्रामें पुरुष ईश्वरको तथा अनन्त जीवोंको कल्पित करे है तो स्वप्नके कल्पित ईश्वर तथा जीव यह जैसे ईश्वराभास और जीव आभास हैं तैसेही आभास ईश्वर जीवहैं अब विचार करके देखो जो ईश्वर और जीव ब्रह्म अर्थात् आत्मासे भिन्न कुछ होते तो यह वेदान्ती आपसमें विवाद नहीं करते परन्तु ये आपसमें विवाद करके अपने अपने मत सिद्ध किये चाहें इसलिये ऐसा सिद्ध होवे है कि इन्होंनेही अनहुवे जीव और ईश्वरको कल्पित किया है सो इनकी कल्पना करना असिद्ध हुई और हम जाने हैं कि ऐसेही अज्ञानियोंके वास्ते कठोपनिषद्की यह श्रुतिहै कि "अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । दन्द्रम्यमानाः परियंति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" ॥ इसका अर्थ यहहै कि अविद्याके मध्यमें वर्तमान और आपमें हम धीर हैं हम पण्डित हैं ऐसे अभिमान करें वे अत्यन्त कुटिल हैं और अनेक प्रकारकी जो गति तिसको प्राप्त होतेहुए दुःखों

इसका अर्थ ऐसा लिखते हैं कि अध्यारोप करके अपवाद करना है जैसे एक हाथी व
गज बारूदका बनाय करके और उड़ाय देनाहै ऐसे ही ब्रह्मका जो प्रपञ्च सोनिस प्राप्त
होना चाहिये तो अब तुमको पूछें हैं कि जैसे तुमने अध्यारोप करके अपवाद किया तो इस
रीतिसे तो जो ब्रह्म निःप्रपंचथा उसका तुमने निःप्रपंचपणा अध्यारोप किया उस
अध्यारोपका जब अपवाद किया तो प्रपंच सिद्ध हो चुका तो जगत् सिद्ध हो गया क्यों
कि जो अध्यारोप कियाथा सो अध्यारोप तो अनहुई वस्तुका करते हैं अथवा किसी जिज्ञासु
समझावने वास्ते किसीमें किसी वस्तुका अध्यारोप करके समझाते हैं सो तुमने भी उस ब्र
ह्म निः प्रपंचका अध्यारोप अर्थात् मिथ्या आरोप कियाथा उसका अपवाद करनेसे तो ग
ब्रह्ममें प्रपंच जो कहिये जगत् अनादि कालका सिद्ध हो चुका क्योंकि जिस ब्रह्मको तु
मानते हो जो वह अपने स्वरूपमें स्थित होता तो कदापि प्रपंचमें नहीं पड़ता जो तुम कहे
कि पहले ज्ञानवान था और पीछे ज्ञानका आवरण हुवा तो अब जो तुम्हारे महा वाक्यों
ज्ञान होकर जगत् मिथ्या जानकर ब्रह्मरूप हो जायगा तो हम कहें हैं कि जैसे तुम्हारा
हले ब्रह्म निःप्रपंचथा अर्थात् अज्ञान नहींथा सो फिर पीछेसे अज्ञान हो करके जगत् र
लिया तो फेर भी ऐसा ही कर लेवेगा इस लिये तुम्हारे मतमें श्रुति, स्मृति, उपनिषदआदि
सर्व निष्फल होंगे इसी लिये हम तुमको कहते हैं कि जगत् अनादिसे है ब्रह्म जो कहि
आत्मा प्रपंचमें सिद्ध हो गया और देखो तुम्हारेभी यही सिद्धान्त है कि षट् वस्तु अन
हैं क्योंकि यह वेदन्तियोंका सिद्धान्त है कि १ ब्रह्म, २ ईश्वर, ३ जीव, ४ अविद्या, या
ज्ञान, ५ अविद्याका अर्थात् अज्ञानका चेतनसे संबंध ६ अनादि परस्पर इन वस्तुओंका भे
यह षट्वस्तु स्वरूपसे अनादि है जिस वस्तुकी उत्पत्ति होवे नहीं सो वस्तु स्वरूप
अनादि कहिये है इस लिये यह छः वस्तु स्वरूपसे अनादि हैं अब देखो तुमही विचार क
कि अविद्याका चेतनसे संबन्ध अनादि मान करके फिर तुमही कहो हो कि ब्रह्म निःप्रपं
था सो यह तुम्हारा कहना ऐसा हुवा कि "मन्मुखे जिह्वा नास्ति" ऐसा तुम्हारा वचन हु
अब देखो दूसरा विचार करो जो तुम "एकोदेवः" इत्यादि श्रुतिका अर्थ ऐसा कहो हो कि स्
प्रकाश परमात्मा एक है सो सर्व भूतोंमें गूढ़ है अर्थात् गुप्त है सर्वमें व्यापक है सर्व भूतों
अन्तरात्मा है, कर्मका अध्यक्ष है अर्थात् साधक है, सर्व भूतोंका आधार है, साक्षी है, ज्ञ
रूप है, केवल है निर्गुण है, तो यह श्रुति शुद्ध ब्रह्मका प्रतिपादन करे है और दूसरी श्रुति य
है कि "एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्" इसक
अर्थ यह है कि सर्व भूतोंका आत्मा एक ही है सर्व भूतोंमें स्थित है जलमें चन्द्रमाकी तरह एकप्रक
करके और बहुत प्रकार करके दीखे है तो प्रथम श्रुतिमें निर्गुणकारके परमात्माका गूढ़ यह वि
षण है और गूढ़ शब्दका अर्थ गुप्त है तो ब्रह्ममें आवरण सिद्ध होगया और दूसरी श्रुतिमें ज
चन्द्रके दृष्टान्त करके ब्रह्मका एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके दीखना वर्णन किया
तो ब्रह्मज्ञान रूप है और साक्षी है अर्थात् ब्रह्म जो है सो द्रष्टा है और दृश्य नहीं है और इ
श्रुतिमें एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके ब्रह्मका दीखना वर्णन किया है तो अ
प्रकार करके तो ब्रह्मका दीखना बनसके नहीं इसलिये जीव और ईश्वर जो है सो ब्रह्म
आभास है जैसे जलमें चन्द्रमाका आभास होयहै जो कहो कि यहां जलकी तरह कौन

तो हम कहें हैं कि एक तो श्रुति यह है कि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णांवह्वीः प्रजाः सृजमानाम्" ॥ और दूसरी श्रुति यह है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" ॥ तो प्रथम श्रुतिमें तो मायाका वाचक अजा शब्द है तहां एक वचन है और दूसरी श्रुतिमें मायाभिः यहां बहु वचन है । तो मायाके अंशोंकी दृष्टि करके तो बहुवचन है और अंशिरूप जो माया तिसकी दृष्टिमें एक वचन है ये जो माया सो जलकी तरह है तो अंशिरूप जो माया सो तो समुद्रकी तरह है और अंशरूप जो माया सो तरंगोंकी तरहहै और जैसे समुद्र एकहै तैसे तो अंशिरूप माया एक है और जैसे तरङ्ग बहुत हैं तैसे अंशरूप माया बहुत है उसको ही अविद्या कहें हैं उस मायामें जो आभास है सो तो ईश्वर है और अविद्यामें आभास जीव है और माया और अविद्या यह अनादि हैं ईश्वर और जीव आभासरूप है और माया कल्पित हैं इसमें माया और अविद्या यह स्वतःसिद्धहै इसमें श्रुतिप्रमाणहै कि "जीवेशावाभासेन करोति मायाचाविद्याच स्वमेव भवति" इसका अर्थ यहहै कि जीव और ईश्वर इनको अभास करके करे है और माया और अविद्या आपही होय हैं तो यह सिद्ध हुवा कि सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म अविद्या करके आवृत है सो अविद्या अनादि है और जीव और ईश्वर अविद्या कल्पित हैं तो हम तुमको पूछें हैं कि तुम्हारी श्रुतिमें तो जीव और ईश्वर आभास कहे हैं तो देखो जिसजगह आभास होता है उस आभासको मिथ्या कहते हैं क्योंकि जिसजगह सत्य हेतु होता है उस जगह तो सत्य वस्तुहै और जिसजगह असत् हेतु होता है उस जगह असत् वस्तु कहते हैं तो अब तुमही अपने हृदयमें नेत्रमींचकर विचार करो कि तुम्हारे उस आभासके विलासमें जोकि वेदान्तीयोंके ग्रंथोंको देखो तो तुमको आपही इनके जालकी खबर पड़ जायगी देखो कोई तो जीव ईश्वर इनको आभास मान करके मिथ्या कहे हैं और कोई २ आभास शब्दका अर्थ प्रतिबिम्ब मानकरके जीव और ईश्वर इनको तो सच्चिदानन्दरूपही कहें हैं और बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्व जो धर्म तिनको कल्पित मान करके मिथ्या कहेहैं और कोई ऐसे कहे कि निरवयवका प्रतिबिम्ब होवे नहीं इसलिये जैसे महाकाशमें गृहाकाश और घटाकाश ये कल्पित हैं तैसे ईश्वर और जीव यह कल्पित हैं और कोई यह कहे कि अविद्यासे ब्रह्मही एक जीवहै जैसे कुन्तीका पुत्र करणही, राधेका पुत्र हुवा है औरवो जीव हुवा है जो ब्रह्म उसनेही ईश्वर और जीव यह कल्पित किये हैं जैसे निद्रामें पुरुष ईश्वरको तथा अनन्त जीवोंको कल्पित करे है तो स्वप्नके कल्पित ईश्वर तथा जीव यह जैसे ईश्वराभास और जीव आभास है तैसेही आभास ईश्वर जीवहै अब विचार करके देखो जो ईश्वर और जीव ब्रह्म अर्थात् आत्मासे भिन्न कुछ होते तो यह वेदान्ती आपसमें विवाद नहीं करते परन्तु ये आपसमें विवाद करके अपने अपने मत सिद्धकिये चाहें इसलिये ऐसा सिद्ध होवे है कि इन्होंनेही अनहुवे जीव और ईश्वरको कल्पित किया है सो इनकी कल्पना करना असिद्ध हुई और हम जानें हैं कि ऐसेही अज्ञानियोंके वास्ते कठोपनिषदकी यह श्रुतिहै कि "अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्य मानाः । दन्द्रम्यमानाः पूरियंति मूढा अन्धेनैव नीय मानायथान्धाः" ॥ इसका अर्थ यह है कि अविद्याके मध्यमें वर्तमान और आपमें हम धीर है हम पण्डित हैं ऐसे अभिमान करें वे अत्यन्त कुटिल हैं और अनेक प्रकारकी जो गति तिसको प्राप्त होतेहुए दुःखों

करके व्याप्त होते हैं जैसे अन्यके आश्रयसे चले अंध. खैर ! अब हम तुमको यहभी कहते हैं कि ईश्वर और जीवको आत्मासे भिन्न मानभी लेयो तो भी तुमारे कहनेसेही वो ईश्वर वा जीव आत्मासे अभिन्नही ठहरता है.तुम ऐसा कहते हो कि ईश्वरको मैं ब्रह्म हूं ये अखण्ड ज्ञान है और जीवको मैं ब्रह्म यह ज्ञान है नहीं और ब्रह्मको नहीं जानों यह ज्ञान है इस लिये जीव अविद्या अभिमानी है तो. हम तुमको पूछें है कि तुम जीव समष्टिकोंही ईश्वर मानों हो वा जीव समष्टि से विलक्षण मानों जो कहो कि जीव समष्टि जो है सो ईश्वर है तो हम पूछें है कि जीव समष्टि जो है सो ईश्वर है तो जीव समष्टिकों सर्वज्ञ मानोंगे जो जीव समष्टि सर्वज्ञ मानों तो हम पूछें है कि यह सर्वज्ञता प्रत्येक जीवकी है वा सर्व जीवोंकी मिली सर्वज्ञताहै जो तुम कहो कि प्रत्येक जीवोंमें तो सर्वज्ञता नहीं है यह अनुभव सिद्ध है किन्तु जीव समष्टिमें सर्वज्ञता होसके है क्योंकि जैसे एक २ शास्त्रके पढेहुये छः पुरुष है तहां प्रत्येक पुरुष पट्शास्त्रज्ञ नहीं है तोभी पट्समुदाय जो है सो पट् शास्त्रज्ञ कहावै है तैसेही सर्वज्ञता ईश्वरमेंभी है तो हम तुमको पूछें हैं कि प्रत्येक जीवोंको तो तुम अल्पज्ञता मानों हो और समुदायमें सर्वज्ञता मानों हो और छः शास्त्रोंका दृष्टान्त देकरके जो सर्वज्ञता सिद्ध करी सो दृष्टान्त विषम है क्योंकि पट्शास्त्रका विषय जुदा है जिसका विषय जुदा है उसकी समुदायकी एकता होना नहीं बनसके विचार करके देखो नींबू, आम, नीम, जामुन, अमरूद, अनार इन छवोंके समुदाय मिलकर एक रस होना ऐसेही प्रत्येक जीव अल्पज्ञ अविद्याभिमानीको प्रत्येक जीव माना है कि जिसको ऐसा ज्ञान है कि मैं ब्रह्मको नहीं जानूं हूं ऐसी समुदायको जो तुम सर्वज्ञ मानों हो तो हम कहें हैं कि धन्य है ! अद्वैतवादी वेदान्तियों की ऐसी मूर्ख मण्डलीको परमेश्वर मानरक्खा है अजी विचारतो कुछ करो कि एकही मूर्ख अनन्त अनर्थोंका हेतु होय है तो मूर्खमण्डलीरूप ईश्वर कितने अनर्थोंका हेतु होगा ऐसा परमेश्वर माननेका इनको यही है कि इनको आत्मज्ञानका शुद्ध अनुभव न होगा इस जन्ममें ये ऐसेही भटकते रहें तो अब जो कहो कि ईश्वरमें सर्वज्ञता है सो विलक्षण है तो हम कहें हैं कि मायाकी वृत्तिरूप कहोगे तो माया जो है सो अविद्या समष्टिरूप मानों हो तो अविद्या समष्टिकी वृत्तिरूपही होगीतो ईश्वरकी सर्वज्ञता पूर्वकही सर्वज्ञतासे विलक्षण न हुई किन्तु तद्रूपही हुई जो कहो कि ईश्वरके उपाधि तो माया है सो शुद्धसत्वप्रधान है और जीवके उपाधि अविद्या है सो मलीनसत्वप्रधान है मायामें जो आभास सो ईश्वर और अविद्यामें जो आभास सो जीव है तो शुद्धसत्वप्रधान माया ईश्वरकी उपाधि है सो उस उपाधिकी शुद्धतासे ईश्वर सर्वज्ञ है और मलीनसत्वप्रधान अविद्या जीवकी उपाधि है तो उस उपाधिकी मलीनतासे जीव अल्पज्ञ है तो ईश्वरमें जो सर्वज्ञता है सो शुद्धसत्वप्रधानमाया तिसकी वृत्तिरूप है इसलिये विलक्षण है और माया और अविद्या इनमें सत्वकी शुद्ध और अशुद्धता इनकरकेही भेदहै और वस्तुगत्या यह दोनों एकही है प्रत्येक अंशकी दृष्टिसे इसको अविद्या माने हैं और अंश समुदायकी दृष्टिसे माया माने है तो हम कहें हैं कि तुम इस कथनका विचार तो करो कि जैसे एक नीमका पेड कडवा है तो हजार दो हजार नीम मिलकर उन पेडोंको समुदाय मिलकर वो कडवापन मिटकर एक मीठापन होजाय ऐसा कदापि नहीं होगा तैसेही प्रत्येक अंश मलीन है तो

उनका समुदाय शुद्ध कैसे होसके इसीलिये सांख्यमतवाले ऐसा कहते हैं कि "ईश्वरासिद्धेः" यह सांख्य सूत्र है इसका अर्थ यह है कि ईश्वर कोईभी युक्तिसे सिद्ध नहीं होता तो अब हम कहते हैं कि तुम्हारी माया और अविद्याका कल्पना हुवा ईश्वर और जीव तो सिद्ध न हुवा अब तुम यह औरभी कहो कि अद्वैत क्योंकर सिद्ध करते हो सो कहो जो तुम कहो कि "एकोदेवः" इस श्रुतिको लेकर एक ब्रह्मको सिद्ध करो हो तो हम तुमको पूछे हैं कि ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थ हैही नहीं ऐसा तुम्हारा सिद्धान्त है तो माया और अविद्या कहांसे उत्पन्न हुई? जो कहो कि ब्रह्मने उत्पन्न करी तो ब्रह्मको तो तुम निर्गुण मानते हो तो निर्गुणमें उत्पन्न करनेका गुण क्योंकर संभव हो सक्ता है जो तुम कहो अज्ञान अविद्या माया उत्पन्न कीहुई नहीं है तो तुमने अपने हाथसेही अपने अद्वैत मतकी जड़को उखाड़के फेंक दिया दूसरा भी विचार करो कि अद्वैतकोभी सिद्ध करना और षड्वस्तुको अनादि मानना अनादि शब्दका अर्थ तो तुम यही करोगे कि जिसके उत्पन्न होनेकी कोई आदि नहीं अर्थात् उत्पन्न हुवाही नहीं सनातनसे है तो जब तुम्हारे ब्रह्म ईश्वर जीव और अविद्या अर्थात् अज्ञान और चेतनका आपसमें संबंध और इन पांचोंका परस्पर भेद इसको अनादि मानते हो तो अब तुमही विचारकरो कि एक ब्रह्मके अतिरिक्त कोई पदार्थ नहींहै और अपनेही सिद्धान्तमें छः वस्तु अनादि मानना यह वचन तुम्हारा कहना कैसाहुवा कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरी माता बांझ थी ऐसाहुवा अब देखो हम तुमको जगत्के मध्य पूछते हैं कि जगत् क्या चीज़ है और जगत् कैसे हुवा? जो तुम कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे हैं कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है ऐसा कैसे माना जाय देखो इसजगत्के कैसे २ विचित्र पदार्थोंकी रचनाहोरही है तो यह रचना ज्ञानसे हुई है अथवा अज्ञानसे हुई है तो ऐसा कोईभी विवेकी पुरुष नहीं होगा जो अज्ञानसे कहेगा किन्तु ज्ञानसेही कहेगा तो हम वेदान्ती लोगोंकी बुद्धिको धन्यवाद देते हैं कि देखो यह लोग कैसे बुद्धिके तीक्ष्ण हैं कि जगत्को अज्ञानसे कल्पित माने हैं तो अब हम तुम्हारेसे यह बात और पूछे हैं कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है तो किसके अज्ञानसे कल्पित है जीवके अज्ञानसे कल्पित है वा ईश्वरके अज्ञानसे वा ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है जो कहो कि जीवके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे हैं कि अनन्त जीवोंसे कल्पित अनन्त जगत् मानोगे तो यह जगत् जो तुमको और हमको दीखे है सो किसकी इच्छा कल्पित जगत् है यह कहो तो विलक्षणता नहीं होनेसे किसीभी एक जीवके अज्ञानसे कल्पित नहीं मान सकोगे और जो ऐसे कहो कि ईश्वरके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे हैं कि ईश्वरको तो तुमभी अज्ञानी नहीं मानोगे इसलिये ईश्वरके अज्ञानसे जगत् कल्पित है ऐसे मानना अयुक्त है और जो यह कहो कि ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है क्योंकि जीव और ईश्वर यह तो जगत्के अन्तर्गत हैं इसलिये ये तो आपही अज्ञान कल्पित हैं तो हम पूछे हैं कि ब्रह्ममें अविद्या जो है सो कल्पित अथवा स्वभावसिद्ध है जो कहो कि स्वभावसिद्ध है तो हम कहे हैं कि स्वभावसिद्धकी निवृत्ति होवे नहीं इसलिये इसके अर्थ ज्ञानके साधन सर्व व्यर्थ होंगे क्योंकि ज्ञान साधनोंसे ज्ञान पैदा करनेका प्रयोजन इसके पेटे है कि अविद्या निवृत्ति होय सो अविद्या स्वभाव सिद्ध मानो तो स्वभाव सिद्धकी निवृत्ति होवे नहीं जो स्वभाव सिद्धकीभी निवृत्ति होय तो ब्रह्मके

सच्चिदानन्द स्वभावकी निवृत्तिभी होनीही चाहिये इस लिये ब्रह्ममें अविद्याको स्वतःसिद्ध मानना असंगतही है जो कहो कि कल्पित है तो हम पूछें हैं कि ब्रह्ममें अविद्या जो है सो अज्ञानसे कल्पित है या ज्ञानसे ? जो कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछें हैं कि ब्रह्ममें अविद्या जीवाज्ञान कल्पित है अथवा ईश्वराज्ञान कल्पित है अथवा ब्रह्माज्ञान कल्पित है जो कहो कि जीव अज्ञान कल्पित है तो हम पूछें हैं कि जीव और ईश्वर यह अविद्या कल्पित हैं यह तुम्हारा मत है तो यह कहो कि जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिस ब्रह्ममें अविद्या जो है सो कल्पित है या जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिससे भिन्न जीवमें ब्रह्म वृत्ति जो अविद्या तिसकी कल्पिक अविद्या मानोंहो जो कहो कि ब्रह्ममें जो अविद्या है सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है तो हम पूछें है कि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवकी कल्पिक अविद्या ये भिन्न हैं या एकही हैं ? तो तुम यहही कहोगे कि एकही हैं क्योंकि वेदान्त वादी जीवको ब्रह्माश्रित जो अविद्या तिससेही कल्पित माने हैं तो हम कहें हैं कि ब्रह्माश्रित जो अविद्या सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है यह कथन असंगत हुवा क्योंकि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवकी कल्पिक अविद्या तो एकही हुई इसलिये आपसेही आप कल्पित है ये अर्थ सिद्ध हुवा तो ऐसे मानना अनुभव विरुद्ध है आपसे आप कल्पित होय तो जगत् का कल्पिक ईश्वर तुम मानो हो सो बन सके नहीं और जो यह कहो कि जीवमें ब्रह्मवृत्ति जो अविद्या ताकी कल्पिक अविद्या जीवकी कल्पिक अविद्यासे भिन्न मानें हैं तो हम कहें हैं कि रज्जु का जो अज्ञान तिसकरके कल्पित जो सर्प उस सर्पमें जो अज्ञान उस अज्ञान करके रज्जुमें अज्ञान कल्पित है ऐसा अर्थ सिद्ध हुवा तो तुम ही विचार दृष्टिसे देखो इस कल्पनासे अविद्या ब्रह्ममें सिद्ध होय है या असिद्ध होय है और जो ये कहो कि ईश्वर के अज्ञान से कल्पित है तो हम कहें हैं कि ये कथन तो सर्वथा असंगत है, क्योंकि देखो! निश्चल दासजीने "विचारसागर"की चतुर्थ तरङ्गमें लिखा है कि जैसे जीवन्मुक्त विद्वान्को आत्म का विषय करनेवाली अन्तःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति होय है तैसे ईश्वर को भी माया की वृत्ति रूप "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान होय है और यह कही है कि आवरण भङ्ग इस का प्रयोजन नहीं है तो यह सिद्ध होय है कि ईश्वरको अज्ञानका आवरण नहीहै अब जो ईश्वर में अज्ञान है ही नहीं तो ब्रह्ममें अविद्या ईश्वर के अज्ञान से कल्पित है ये कैसे होसके परन्तु हम यहां यह और पूछें है कि विद्वान् को जो "अहं ब्रह्मास्मि" ये वृत्ति होयहै तो यह वृत्ति अन्तःकरणकी परिणामरूप होगी तो अन्तःकरण जो है सो सावयव है तो ये वृत्ति भी सावयवही होगी जो वृत्ति सावयव भई तो अवयवीरूप वृत्तिमें आवरण भङ्ग करता होणे से वृत्तिके अवयवभी आवरण भञ्जक मानणेही पड़ेंगे जैसे सूर्यमें तमोनष्टकता होणेसे तेजः पिंडरूप जो सूर्य्य तिस अवयवो को आवरण भञ्जकता सिद्ध होगई तो ऐसे ही मायाकी वृत्तिके अवयवरूप होंगे वे जिन को तुम व्यष्टि अज्ञान मानों हो उनको आवरण भञ्जकता होगी तो ब्रह्म में आवरण कैसे सिद्ध होगा इसका समाधान क्या है सो कहो ? क्यों कि इस प्रश्नका तात्पर्य्य ये है कि ईश्वर मे तो तुम अविद्या मानोंही नहीं क्योंकि ईश्वर को तुम सर्वज्ञ मानों हो और उसमें अविद्याका आवरण मानो नहीं तो उसमें जो सर्वज्ञता सो मायाकी वृत्तिरूप मानोंहो सो उस मायाको शुद्धसत्त्वप्रधान मानोंहो और उस

मायाको व्यष्टि अज्ञानकी समष्टिरूप मानों हो तो वह माया उपाधि जिसमें रहेगी उसमें स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहेगा जो माया में स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहा तो उसमायाकी अंशरूप है जीवोंकी उपाधि तो उसमें भी स्वभावसिद्ध आवरणका अभाव मानना पड़ेगा तो हम कहेंहैं कि ब्रह्म में जीव वा ईश्वरसे कल्पित अविद्या माननी बनसके नहीं जो कहो कि ब्रह्ममें अविद्या ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछें हैं कि उस अविद्याका कल्पिक अज्ञान उस अविद्यासे भिन्न है वा उस अविद्यारूप है जो कहो कि उस अविद्यासे भिन्न है तो हम कहेंहैं कि उस अविद्याके कल्पिक अज्ञानकोभी कल्पित ही मानोगे तो अनवस्था होगी जो कहो कि वो अज्ञान है सो कल्पित अविद्या रूपही है तो हम कहें हैं कि इससे तो ऐसा सिद्ध होय है कि अविद्या स्वतः सिद्ध होगई स्वतः शब्दका अर्थ स्वाभाविक है ये अपना जो भाव तो इसका अर्थ निष्कृष्ट अर्थ होगया कि स्व सत्तासे जन्य होय सो स्वाभाविक तो स्व सत्ता रन्द करके अविद्यावाली हुई तो हम पूछें हैं कि अविद्याके ब्रह्मको सत्ता करके सत्तावाली मानों हो वा इसमें जो सत्ता है सो ब्रह्म सत्तासे भिन्न है जो कहो कि अविद्या जो है सो ब्रह्मसत्तासे सत्तावाली है तो हम कहें हैं कि ये तुम्हारी मानी अविद्या ब्रह्मरूपही भई ब्रह्मसे विलक्षण नहीं हुई जैसे घट जो है सो पृथ्वी की सत्ता से सत्तावाला है तो घट पृथ्वी है जो कहो कि घट जो है सो पृथ्वी है तोभी पृथ्वीसे जलानयनादिक कार्य होवे नहीं और घटसे जलानयनादिक कार्य होवे है तैसे ही अविद्या जो है सो ब्रह्म ही है तो भी ब्रह्म से जगत् होवे नहीं और अविद्या से जगत् होय है ऐसे मानोगे तो हम कहें हैं कि इतना और मानों कि जैसे घट जो है सो कुम्हारके ज्ञानसे मट्टीके घटकी उत्पत्ति होती है रज्जु सर्पकी तरह भ्रम ज्ञान जैसे नहीं है तैसे ही अविद्या जो अज्ञान है सो भी परमात्मा जो सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मके अलौकिक ज्ञानसे जो अनादि उसी रीतिसे मानो तो सारे विवाद मिटजांय क्योंकि छः वस्तु तुम भी अनादि मानते हो जो तुम कहो कि हमारे तो अद्वैत ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थही नहीं है तो हम तुमको कहें हैं कि तुम ब्रह्मके स्वरूपभूत अलौकिक ज्ञानसे रचित मानलो तो तुमको कहना ही पड़ेगा कि अविद्याको ब्रह्मरचित मानो तो कार्यकी उत्पत्ति उपादान कारण विनाहीं माननी पड़ेगी सो बनसके नहीं क्योंकि घट आदिक कार्य जो है सो मट्टीरूप उपादान कारण विना और निमित्तकारणविना घट उत्पत्ति होय नहीं इसलिये निमित्तभी कार्य होवे नहीं अब जो अविद्याको ब्रह्म रचित मानो तो ये ब्रह्म अविद्याका उपादान कारण मानो तब तो निमित्त कारणके विना निरानिमित्त उत्पत्ति माननी पड़ेगी और जो ब्रह्म अविद्याका निमित्त कारण मानों तो निर उपादान कार्यकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी और उपादान कारण और निमित्त कारण इन दोनों कारणोंके विना कार्य होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है इसलिये ब्रह्मसे अविद्याकी उत्पत्ति मानना असङ्गत है तो हम तुमको पूछें हैं कि अहो अद्वैतवादियो! जगत्को ईश्वर करके रचित मानो हो तहां दोय कारण कैसे बने हैं सो कहो जो कहो कि हम माया विशिष्ट चेतनको ईश्वर माने हैं और ईश्वरसे जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति मानें हैं तहां ऐसे कहें हैं कि ईश्वर जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वरको जगत्का कारण माने तहां जैसे घटादिक कार्यके कारण कु-

दण्ड और मृत्तिका ये भिन्न निमित्त उपादान कारण बने हैं तैसे तो बन सके नहीं किन्तु उपाधि प्रधानता करके तो उसही ईश्वरको जगत्‌का उपादान कारण माने हैं और उसही ईश्वरको चेतनप्रधानता करके निमित्तकारण माने हैं और हम यह दृष्टांत देते हैं कि मकड़ी अपने रचित तन्तुकी कारण होय है तो शरीररूप उपाधिको प्रधानता करके तो स्वतः तन्तुकी उपादान कारण होय है और चेतनप्रधानता करके वही मकड़ी स्वतः तन्तुकी निमित्त कारण होय है तो ये मकड़ी रचित तन्तुकी अभिन्न निमित्त उपादान कारण सिद्ध हुई है तैसे ही ईश्वर जो है सो जगत्‌का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है तो हम तुमको इतना और पूछें हैं कि जीव और ईश्वर इनको अविद्याके कार्य मानों हो तहां निमित्त कारण और उपादान कारण किसको मानों हो तो तुम यह श्रुति प्रमाण देते हो कि "जीवेश्वराभासेन करोति" इसका अर्थ यह है कि जीव और ईश्वर इनको आभास करके अविद्या करे हैं जीव और ईश्वर ये अविद्या रचित हैं यह अर्थ श्रुति सिद्ध हो गया तो हम इनके कारणोंका विचार करते हैं तो जीव और ईश्वर इनके कारण दोय होंगे १ तो ब्रह्म अविद्या तो इनको तुम उपादान कारण ही मानों हो तहां ब्रह्मको तो विवर्त उपादान मानों हो और अविद्याको परिणामी उपादान मानों हो और निमित्त कारण यहां कोई बनता नहीं इसलिये यहां निर्निमित्तही जीव ईश्वरकी उत्पत्ति मानणी पड़ेगी तो हम कहें हैं कि यह नियम तो रहा नहीं कि निरनिमित्त कार्य होवे नहीं इसलिये अविद्याकी उत्पत्ति भी निर्निमित्त ही मानों, अब देखो जो तुम ब्रह्म अविद्यासे उसकी उत्पत्ति मानकर जो अद्वैतको सिद्ध करो हो तो तुम्हारा षट्‌वस्तु अनादि मानणा ये वचन अन्यथा होगा और जो षट्‌वस्तु अनादि मानोगे तो अद्वैत सिद्ध कदापि नहीं होगा अब इन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होनेसे एकवचनमें भी प्रतीति विवेकी पुरुष न करेंगे और भी देखो कि ब्रह्मके अतिरिक्त जगत् आदिक कुछ भी पदार्थ नहीं जगत् आदिक सब आत्मासे उत्पन्न हुवा, तो हम पूछें हैं कि इसमें प्रमाण क्या है तो तुम इस श्रुतिको कहो हो कि "आत्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुः" इत्यादि श्रुतिको प्रमाण देवो हो तो इस श्रुतिका अर्थ यह है कि आत्मासे आकाश पैदा हुवा और आकाशसे वायु पैदा हुई जो ऐसा अर्थ है तो हम तुम्हारेको पूछें हैं कि आकाश तुम किसको कहो हो तुमको कहनाही पड़ेगा कि आकाश नाम अवकाश अर्थात् जगह देनेका है तो अब तुमही नेत्र मीचकर हृदयमें विचार करो कि आकाश तो पीछे उत्पन्न हुवा तो आत्माको अवकाशके बिना जगह ठहरी बिना आकाशके आत्माका ठहरना ऐसा हुवा कि जैसे कोई विचार शून्य पुरुष कहने लगा कि मेरे मुखमें जीभ नहीं है अब न तो तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारा अविद्या कल्पित जगत् सिद्ध हुवा किन्तु ये जगत् अनादि स्वतःसिद्ध हो गया अब देखो जो तुम जगत्‌को रज्जु सर्पका दृष्टान्त देकर मिथ्या कहते हो सो जगत् मिथ्या नहीं ठहरता है जो तुम कहो कि जगत् सत् असत्‌से विलक्षण है इसलिये मिथ्या जैसे सत् असत्‌से विलक्षण रज्जुमें सर्प पैदा होता है जो तुम ऐसा कहो हो तो हम तुमसे पूछें हैं कि तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्यातिकी व्यवस्था क्या है? सो कहो। तो तुम अनिर्वचनीयकी व्यवस्था इसरीतिसे करोगे कि अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकलके विषयाकार होय है जिसमें आवरण भंग होकर विषयका प्रत्यक्ष ज्ञान होय है और जहां सर्प भ्रम हो

तो ये रज्जु सर्पके दृष्टान्तसे मिथ्या कैसे होगा जैसे जगत् परमार्थसे सत्य है तैसेही सर्प और स्वप्न पदार्थभी परमार्थ सत्य है जो कहो कि परमार्थ सत्य है तो इनकी कैसे हो जाय है तो हम कहें हैं कि तुम सारे जगत्की अज्ञान कल्पित मानों हो तो आदिक निरवयव और अविनाशी कैसे प्रतीत होय हैं और घटादि पदार्थ चिरस्थायी प्रतीत होय हैं और चातुर्मास (वर्षा ऋतु) में अनन्त जीव क्षिण विणसी कैसे होय हैं जो कहो कि ये अविद्या मायाकी महिमा है तो हम कहें हैं कि यह परमात्मा अलौकिक केवल ज्ञानकी महिमा है कि जिनने अपने ज्ञानसे जैसी रचना देखी रचना भव्य जीवोंके लिये वर्णनकी है जिनको तुम रज्जु सर्पादिक कहो हो और प्रति भासित मानोंहो वे शीघ्रही निवृत्त हो जांय हैं और तुम्हारे माने व्यावहारिक सर्पका जैसे मरनेके पश्चात् शरीर प्रतीति होय है तैसे रज्जु सर्पका शरीर प्रतीत होवे नहीं और स्वप्न पदार्थकोभी तुम प्रतिभास मानोंहो और स्वप्नके पुरुषका शरीर मरनेके अनन्तर प्रतीति होय नहीं और मरु भूमि अर्थात् मारवाड़के जलको तुम प्रातिभासक मानोंहो और भ्रम निवृत्तिभी हो जाय है तो भी तुमको उसकी प्रतीति होती रहे और इसी विचित्रताको तुम्हारे बाह्य नेत्र मूंदकर ज्ञानरूपी चक्षुसे विचार करके देखो और सर्वज्ञके कहेहुये वचनके ऊपर प्रतीति करो तो तुम्हारा उसी समय अज्ञान दूर होकर तुम सच्चिदानन्दरूप शान्ति अनन्त सुखको प्राप्त हो जावो जो तुम ऐसा कहो कि सर्व ये मिथ्या हैं ऐसी दृष्टिसे मुक्ति प्राप्त होय है इस कारणसे जगत्को मिथ्या कहे हैं तो हम तुमको पूछें हैं कि तुम्हारा जगत्का मिथ्या कहनेमें अभिप्राय क्या है ? तो तुमयेही कहोगे कि ज्ञानके साधनोंमें वैराग्यभी बताया है तो वैराग्यकी कारणता है और दोष दृष्टि सो जगत्में मिथ्यात्व कहनेके बिना बनसके नहीं इस लिये शिष्यके ऊपर अनुग्रह करनेके अर्थ दयालु जो आचार्य तिन्होंने जगत् जो सत्यस्वरूप है तो भी अविद्याकी कल्पना करके उसको कल्पित रचित बताया है क्योंकि पुरुष जिसको मिथ्या कल्पित मान लेवे है उसकी इच्छा करे नहीं जैसे मरुस्थलके जलको मिथ्या जाननेवाला पुरुष जलकी इच्छा करे नहीं इसलिये शिष्यकोभी ये लाभ होय है कि वैराग्यके बलसे भोग दृष्टि निवृत्त होकरके शिष्यकी बुद्धि अन्तरमुख होजायहै उस अंतर मुखहोनेसे शुद्ध चिद्रूप आत्माका उसको साक्षात्कार जीवन मुक्तिका आनन्द प्राप्त होय है आचार्योंका ये अभिप्राय है, जो तुमने ऐसा निर्णय किया है तो हम कहे हैं कि आचार्योंने ऐसा लिखा है कि अधिष्ठानके ज्ञानसे कल्पित पदार्थका त्रैकालिक अभाव होय है तो आचार्योंको सर्व अधिष्ठान सच्चिदानन्द परमात्माका साक्षात्कार रहा है ये तो तुम्हारे भी अभिमत है क्योंकि आपही उनके वचनोंको प्रमाण मानोंहो अब आपही विचार करो जिन पुरुषोंको जिस वस्तुका त्रैकालिक अभाव न होवे वे पुरुष उस वस्तुको कैसे मानसकें इसलिये शिष्योंके अनुग्रहके अर्थही अलीक अविद्याको कल्पित करके उस करके कल्पित जगत् को बनाय करके मिथ्या कहकरके शिष्योंको वैराग्य करावे है जो कहो कि जिस समय में उन आचार्यों को अज्ञान रहा उस समय में थो अज्ञान अलीक कैसे होगा सो हम कहे हैं कि उनके गुरुने अलीक अज्ञान कल्पित किया है ऐसा मानों ऐसे परम्परा गुरु जो हैं तिन में मुख्य गुरु परमात्मा है और वेद उसका उपदेश है तो वेदमें अविद्या वर्णन की है

अब अविद्या को अलीक नहीं मानो तो वेद अज्ञानीका किया हुवा उपदेश सिद्ध होगा जो ये उपदेश अज्ञानी का किया सिद्ध हुवा तो प्रलाप वाक्य होगा जो प्रलाप वाक्य होगा तो इस में आत्मविद्या के लाभका असम्भव होने से ब्रह्मविद्या की सम्प्रदायका उच्छेद होगा इसलिये अविद्या अलीक ही कल्पित है जो कहो कि अलीक अविद्या प्रथम तो कल्पित करणी और पीछे इसको निवृत्ति करणे में आचार्योंका अभिप्राय कहा है देखो ये शिष्टपुरुषों का वाक्य है कि "प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूराद्स्पर्शनं वरम्" इसका अर्थ यह है कि कर्दम को स्पर्श करके प्रक्षालन करे इसकी अपेक्षा कर्दमका स्पर्शही नहीं करे ये उत्तम है तो हम कहें हैं कि जैसे भार धारण करके निवृत्त करणे से पुरुष के अपना आनन्द अभिव्यक्त होय है तैसे सदा भाररहित पुरुष के आनन्द अभिव्यक्त होवे नहीं यह सर्वके अनुभव सिद्ध है इसलिये दयालु आचार्यों ने जगत् को अज्ञानकल्पित बताय करके मिथ्या कहा है और उनकी दृष्टि तो ब्रह्ममें ही है देखो आप उनका ये वाक्य है कि "देहाभिमाने गलिते विज्ञात परमात्मनीतियत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः" इसका अर्थ येहै कि देहाभिमान निवृत्त होकर जब परमात्म ज्ञान हो जावे तब जहां जहां मन जावे है तहां तहां समाधि होय है अर्थात् परमात्मा भिन्न दृष्टि उनकी नहीं होयहै तो हम कहें हैं कि जगत् में मिथ्यात्व की भावना करानेसे जैसे वैराग्य होय है तैसे परमात्म दृष्टि करानेसे भी वैराग्य होय है इसलिये जिस उपासकों की सर्वमें परमात्म दृष्टि है वो अत्यन्त विरक्त होय है क्योंकि विरक्तमें भोग्याभाव बुद्धिकारण है सो जैसे मिथ्यात्व बुद्धिसे होयहै तैसे सर्व आत्मा भावसे भी होय है देखो ऐसे उपासकोंके अर्थ श्रीकृष्णजीने नवम अध्यायमें प्रतिज्ञा कीहै कि "अनन्या श्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम्" इसका भावार्थ ये है कि सर्वमें भाव मेरा करके उपासन करै है उनका योगक्षेम मैं करूंहूं अलब्धका लाभ योग है और लब्धकी रक्षा जो है सो क्षेमहै और येभी भगवान् ने कहीं आज्ञा नहीं की है कि सर्वमें मिथ्यात्व दृष्टि करनेवाले को मैं योग क्षेम करूं हूं ऐसा नहीं कहाथा इसलिये वैराग्यके अर्थभी सर्व आत्मदृष्टिकी कर्त्तव्य है अब हम ये पूछें हैं कि तुमने जो रज्जु सर्प को भ्रम कल्पित कहा है और उसके दृष्टांतसे जगत् को आत्मा में कल्पित बताया है तहाँ दृष्टान्त दार्ष्टान्त का साम्य कहा नहीं सो कहो परन्तु पहले ये कहो कि वृत्तिविषय देशमें गई और तिमिरादिक देशसे रज्जु समानाकार भई अर्थात् रज्जु के सामान्य अंश के आकार को तो प्राप्त हुई और रज्जु के विशेष अंश के समानाकार भई नहीं तब रज्जु चेतनाश्रित अविद्यामें तथा साक्षी चेतनाश्रित अविद्यामें क्षोभ हो करके अथवा इदमाकार वृत्तिमें स्थित अविद्या में क्षोभ करके उस २ अविद्या का तमोंश तथा सत्वांश सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणाम कूं सम कालमें प्राप्त होय है और रज्जु का विशेष रूप करिके अज्ञान अविद्यामें क्षोभ द्वारा दोनों की उत्पत्ति में निमित्त है और रज्जु का विशेष रूप करिके ज्ञान दोनों की निवृत्ति में निमित्त है ऐसे मान करिके सर्प और सर्प के ज्ञान को तुम ने भ्रम कहा है और रज्जु का जो विशेष रूप करि के ज्ञान तिसकरके सर्प और ज्ञान दोनों की निवृत्ति कही है परन्तु रज्जुसर्पमें तो इदन्ता प्रतीति होय है सो सर्प की तरह कल्पित है अथवा नहीं ये तुमने पूर्व कही नहीं सो कहो जा

कहो कि रज्जु सर्प में इदन्ता कल्पित नहीं है किन्तु रज्जु की ही इदन्ता सर्प में प्रतीति होय है सर्पके विषय से अनिर्वचनीय इदन्ता रज्जु की इदन्ता के समान जातीय उत्पन्न होवे ... विचारसागरके षष्ठ तरङ्गमें ऐसे लिखा कि जहाँ दोष पदार्थ समीप देशस्थ होवें तहां स्थलमें अन्यथा ख्याति माननी और तहां अनिर्वचनीय ख्याति नहीं माननी चाहिये कहो कि अनिर्वचनीय ख्याति नहीं मानेंगे और इस स्थलमें अन्यथा ख्याति मानेंगे तो म्हारे सिद्धान्तमें हानि होयगी क्योंकि तुम्हारे मतमें अन्यथा ख्याति नहीं मानी है इस तो न्यायके मतवाले मानें हैं तो हम कहें है कि ऐसे स्थलमें हमारे मतमें अन्यथा ख्याति ही अङ्गीकार है परंतु पूर्व दो प्रकारकी अन्यथा ख्याति कही हैं एक तो अन्य देश ... दार्थ की अन्य देशमें प्रतीति ये अन्यथा ख्याति है और दूसरी अन्यथा ख्याति ये है कि अ न्यकी अन्य रूपसे प्रतीति इनमें प्रथम अन्यथा ख्यातिको तो हम नहीं मानें हैं और ... अन्यथा ख्याति हम मानें हैं क्योंकि सन्मुखमें पदार्थ तो सुक्ति है और रजतका ... है तो यहां तो हम दोनों ही अन्यथा ख्याति माने नहीं किन्तु अनिर्वचनीय ख्याति ... हैं इसमें कारण ये है कि नहीं होय उसकी भी प्रतीति यदि होय तो वन्ध्या पुत्रकी भी प्रती ति होणी चाहिये परन्तु जहां सन्मुख देशमें दोय पदार्थ होवें तिनमें एक पदार्थमें अन्य प दार्थका धर्म प्रतीति होय तहां अन्यथा ख्यातिका अङ्गीकार है जैसे स्फटिकमें जपा पुष्प सन्निधानसे रक्तताकी प्रतीति होयहै तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीय रक्तता उत्पन्न होवे किन्तु जपा पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीति होय है तो अन्यका अन्यरूप करके भान इसलिये अन्यथा ख्याति है परंतु स्फटिकमें जहां जपा पुष्पका सम्बन्ध होय तहां ... रक्तताका भान स्फटिकमें होय है इसमें कारण यह है कि जहां अन्तःकरणकी वृत्ति रक्तपु ष्पाकारहोय है तहांही वृत्तिका विषय रक्तपुष्प सम्बन्धी स्फटिक है इसलिये ... ताकी स्फटिकमें प्रतीति होयहै ऐसे ही जहां रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तहां तो ... ख्याति सम्भव नहीं क्योंकि भिन्न देश स्थित होनेसे रज्जुका सर्प सम्बन्ध नहीं है ... अनुसार ही ज्ञान होय है ये नियम है तो ज्ञेय रज्जु और ज्ञान सर्पका यह कथन ... है इसलिये रज्जु देशमें अनिर्वचनीय सर्प उत्पन्न होय है ऐसे मानणा उचित है और ... सर्पमें इदन्ता प्रतीति होय है सो अनिर्वचनीय नहीं है क्योंकि रज्जु और ...र्वचनी... ये दोनों एक देशमें स्थित हैं इसलिये रज्जुकी ही इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है ऐसे ... णे में कारण यह है कि परमात्मा सत्ता सर्व पदार्थोंमें प्रतीति होयहै तो स्वप्न पदार्थों में ... प्रतीति होय है अब उस सत्ता को स्वप्न के पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय तो म... नहीं क्योंकि सत्ता परमात्मारूप है इसको स्वप्न पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय मानणे सत्यजो है सो मिथ्याहै ऐसा मानणा होगा सो विरुद्ध है इस लिये ऐसे मानेंहै कि ... रूप जो स्वप्नाधिष्ठान तिसकी सत्ता ही स्वप्न पदार्थों में प्रतीति होय है ऐसे विचारस षष्ठ तरङ्गमें लिखा है इसलिये रज्जुकी इदन्ता ही अनिर्वचनीय सर्प प्रतीति होय है ये तुम्ह मत है तो हम पूछे हैं कि रज्जु की जो इदन्ता सो अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका वि है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका विषय है तो तुम येही कहो गे कि अन्तः करण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका ...

य है तो तुम ये ही कहोगे कि अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है क्योंकि रज्जुकी इदन्ता व्यावहारिक है और प्रातिभासिक पदार्थ तिनका ये भेद है कि व्यावहारिक पदार्थ तो अन्तःकरण की वृत्ति के विषय होय हैं और प्रातिभासिक पदार्थ अविद्याकी वृत्ति के विषय होय हैं और व्यावहारिक पदार्थ तो प्रमातृ वेद्यहैं अर्थात् इनका ज्ञाता तो चिदाभास है और प्रातिभासिक पदार्थ साक्षिभास्य है अर्थात् इनका ज्ञाता साक्षी है तो हम पूछें हैं कि रज्जुको देख करके अल्पान्धकारावृत रज्जु देशमें अन्तःकरणकी वृत्ति गई और रज्जुके सामान्यांशाकार तो भई और रज्जुके विशेषाकारको प्राप्त भई नहीं तब "अयं सर्पः" अर्थात् ये सर्प है ऐसा भ्रमात्मक ज्ञान होय है ऐसे तुम मानों हो तहां दोय ज्ञान मानो हो वा एक ज्ञान मानो हो जो कहो कि दोय ज्ञान मानें हैं तिनमें रज्जु के समान्य अंश को विषय करनेवाला तो अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानहै और सर्प को विषय करनेवाला अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान है तो हम कहें हैं कि तुम्हारा ऐसा मानणां तो असंगत है क्योंकि तुमही ऐसे कह आये हो कि ये सर्प है यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है इसलिये आख्याति मतका मानणा भी असंगतही है कदाचित् ऐसा कहो कि स्मरणात्मक और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान "अयं सर्पः" ऐसे दोय ज्ञानोंका निषेध अभिमत है और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान तो तो हमारे अभिमत हैं तो हम पूछें हैं कि अन्तःकरणकी जो वृत्ति सो इदन्ताको विषय करेगी तो रज्जुमें विषय करेगी सर्पमें विषय नहीं करसके क्योंकि अनिर्वचनीय सर्प अन्तःकरणकी जो वृत्ति तिसका विषय नहीं है किन्तु अविद्याकी जो वृत्ति तिसका विषय है ऐसा तुम मानोहो अब जो धर्मी प्रातिभासिक सर्प सो तो अन्तःकरणकी वृत्तिका विषयही नहीं तो रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होय तब तुम्हारे दृष्टान्तको स्मरण करो पुष्पकी जो लाली सो तदाकार वृत्तिनेही पुष्प संबन्धी स्फटिकको विषय किया है इसलिये पुष्पकी लालीका स्फटिकमें प्रतीति होय है और यहां तो इदन्ताकार वृत्तिने इदं शब्दका अर्थ जो रज्जु उसके सम्बन्धी सर्पको विषय किया नहीं इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होवे सो कहो १ और अयं सर्प यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है दोय ज्ञान प्रतीति होवे नहीं और यहां दोय ज्ञान मानो हो तो अनुभव विरोध होय है इस विरोधका परिहार क्या है सो कहो २ और जब रज्जु ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होय है तहां रज्जुका ज्ञाता तुम परमात्माको मानोंहो तो परमात्माको ज्ञान भय साक्षीको ज्ञान जो सर्प तिसकी निवृत्ति कैसे होय सो कहो जो अन्यको रज्जुका ज्ञानभये अन्यको भ्रमको निवृत्ति होय तो हमारेको ज्ञानभये तुम्हारेको भी भ्रमकी निवृत्ति होनी चाहिये ३ और जो सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नहीं है और साक्षीका विषय है तो प्रमाताको भय नहीं होणा चाहिये किन्तु साक्षीको भय होणा चाहिये सो साक्षीको भय होवे नहीं ये तुम भी मानो हो ४ और जैसे व्यावहारिक सर्पका ज्ञान प्रमाताको होवै है उस समयमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप जो त्रिपुटी तिसको साक्षी प्रकाश करता हुवा स्वः प्रकाश करके प्रकाश करै है तैसेही प्रातिभासिक सर्पका जो ज्ञान होवैहै तबभी साक्षी त्रिपुटीका ही प्रकाशक प्रतीति होय है ये तुमही रज्जु सर्प भ्रम होय तब अनुभवसे विचार करके देखलेवो क्योंकि जब यहां दोय ज्ञान मानो और उनके विषय दोय मानोंगे तो ये भये और एक प्रमाता है ऐसे पांचको साक्षी प्रकाशक मानना पड़ेगा तो हम तुनको पूछें हैं कि ऐसा

कोई ग्रन्थमें लिखा है कि नहीं क्योंकि आजतक ऐसा लेखदेखा सुनाभी नहीं कि पक्ष पुटीका प्रकाशक है ५ अब जो तुम ऐसा कहो कि प्रमाताको जब अन्धकार वृत्त इदन्ताका ज्ञान हुवा उस समयमें इदमाकार वृत्युपहित साक्षीको भी विषयता इदन्तामें है तो जैसे रज्जुकी इदन्ता प्रमाताको विषय भई तैसे साक्षीको भी विषय भई अब जो अनिर्वचनीय सर्प और उसको विषय करनेवाला ज्ञानये सम कालमें उत्पन्न भये उसकालमें वोही साक्षी सर्प और ज्ञान दोनोंका प्रकाश करै है इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है जैसे प्रमाताकी विषय पुष्पकी लाली स्फटिकमें प्रतीति होय है ऐसे इदन्ता और सर्प एक चिद्विषय होनेसे अन्यथा ख्याति है इस प्रकारसे अन्यथा ख्याति माननेमें स्फटिकमें भी लालीकी अन्यथा ख्याति बन जायगी क्योंकि एक प्रमातृ रूप जो चित्त तिसकी विषयता लाली और स्फटिक दोनोंमें है ऐसे तो प्रथम प्रश्नका समाधान हुवा १ और द्वितीय प्रश्नका समाधान ये है कि ज्ञान में स्वरूपसे तो भेद है नहीं किन्तु विषय भेदसे भेद है तो यहां विषय है दोय एक तो रज्जुकी इदन्ता है । और दूसरा प्रातिभासिक सर्प है ये दोनों साक्षीरूप जो ज्ञान तिसके विषय हैं यातें हमने आरोप बुद्धिसे ज्ञानदोय कहे हैं और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एकही है इसलिये एकही ज्ञान प्रतीति होय है २ और तृतीय प्रश्नका समाधान यह है कि यद्यपि आवरण भंग होकरके रज्जुका विशेष रूप करके ज्ञान प्रमाताको हुवा है तथापि साक्षी त्रिपुटीका प्रकाशक है इसलिये साक्षीकाभी विषय रज्जु है तो जैसे रज्जुका ज्ञान प्रमाताको हुवा तैसे साक्षीको भी हुवा इसलिये अन्यको ज्ञान हुये अन्यके भ्रमकी निवृत्ति नहीं भई किन्तु जिसको ज्ञान हुवा उनकेही भ्रमकी निवृत्ति भई इस कारणसे अन्यको ज्ञान भये अन्यके भ्रमकी निवृत्तिकी आपत्ति नहीं है ३ और चतुर्थ प्रश्नका समाधान यह है यद्यपि सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नहीं है साक्षीकाही विषय है तथापि अन्तःकरणकी उपादान भूत जो अविद्या तिसका परिणाम सर्प और तिसका ज्ञान है और अन्तःकरणकी उस अविद्याका परिणाम है तो उपादान ते भिन्न कार्य्य होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है जैसे घटकी उपादान मृत्तिका है तो घट जो है सो मृत्तिकाहीहै तैसे अन्तःकरण और सर्पज्ञान ये भी अविद्याके परिणाम हैं तो अविद्या इनकी उपादान भई जो अविद्या इनकी उपादान भई तो ये अविद्यारूप भये जो ये अविद्यारूप भये तो अन्तःकरणकी वृत्ति जो है तिसका उपादान अन्तःकरण है तो अविद्याही वृत्तिकी उपादान भई तो अविद्याकी वृत्तिका विषय सर्प है तो अन्तःकरणकी वृत्तिका विषय सर्प हुवा इसलिये प्रमाताको भय होय है ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर यह है कि अविद्याकी सर्पका विषय करनेवाली जो वृत्ति सो तो सूक्ष्म है इसलिये प्रतीति होवे नहीं और रज्जुकी इदन्ता पूर्वोक्त प्रकारकरके सर्पका धर्म प्रतीति होय है इस लिये इस स्थलमें साक्षी पक्षपुटी प्रकाशक है तो भी त्रिपुटी प्रकाशकताभेही प्रकाश है ५ यह तुमने जो हमारे पांच प्रश्नोंके उत्तर दिये सो तुम्हारे सब उत्तर अशुद्ध हैं देखो तुमने इदन्ता और अनिर्वचनीय सर्प इनको एक चिद्विषय मान करके प्रथम प्रश्नका उत्तर कहा है तहां हम यह पूछें हैं कि एक चिद्रूप जो साक्षी सो जो विषयका प्रकाश करै हैं सो वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है अथवा वृत्तिकी सहायता विना प्रकाश करै है जो कहो कि वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है तो हम पूछें हैं कि साक्षी जिस वृत्तिका सहायतासे जिस विषयका प्रकाश करै है यह उसही वृत्तिकी सहायतासे

इस विषयमें अन्य विषयकाभी प्रकाशक होय है अथवा नहीं जो कहो कि अन्य विषय काभी प्रकाशक होय है तो हम कहें हैं कि जैसे साक्षी अविद्याकी वृत्तिसे सर्पका प्रकाश करता है वा इदन्ताका प्रकाशक है ऐसे मान करके तुम अन्यथा ख्याति बनावोगे तो तैसे जीव साक्षीमें सर्व ज्ञाताकी आपत्तिभी मानना पड़ेगा क्योंकि जैसे सर्पसे भिन्न इदन्ताहै तैसे अन्य सारे पदार्थ सर्पसे भिन्न हैं तो उनका प्रकाशक भी जीव साक्षीको मानना पड़ेगा ऐसे जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति होगी जो कहो कि ऐसे माननेमें आपत्ति है तो ऐसे मानोगे कि साक्षी जिस वृत्तिसे जिस विषयका प्रकाशक होय है उस वृत्तिसे अन्य विषयका प्रकाश होवै नहीं इस लिये जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं है तो हम कहें हैं कि इदन्ता जो है सो अविद्याकी वृत्ति करके सर्पका प्रकाशक जो साक्षी ताकी विषय नहीं होगी तो सर्पमें इदन्ताकी प्रतीति असिद्ध होगी तो अन्यथा ख्यातिका मानना असंगत हुवा जो कहो कि साक्षी वृत्तिकी सहायता बिनाही विषयका प्रकाश करै है तो हम कहेंहैं कि शुद्ध चिद्रूप जो आत्मा तिसमें साक्षी भाव जो है सो वृत्ति उपाधिसे कल्पितहै और वृत्ति निरपेक्ष जो आत्मा तिसमें साक्षीभाव नहीं है इसलिये वृत्तिकी सहायता बिना साक्षीके विषय का प्रकाशक मानना असङ्गत है और जो प्रौढ़ वादसे वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माको विषयका प्रकाशक मान लेवे तो वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माही ब्रह्म है सो ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशक है तो ये ब्रह्मरूप शुद्धात्मा जैसे रज्जुकी इदन्ताको विषय करता हुवा रज्जु सर्पको विषय करेगा इस लिये अन्यथा ख्याति सिद्ध होगी तो हम ऐसा कहेंगे कि ये ब्रह्म-रूप शुद्धात्मावल्मीकादि स्थानमें स्थित जो सर्प तिसका विषय करता हुवा रज्जुको विषय करै है इस लिये रज्जु सर्प भ्रमस्थलमेंभी अन्यथा ख्यातिही मानो अनिर्वचनीय ख्यातिका उच्छेदही होगा जो कहो कि रज्जु और सर्प एकदेश स्थानही हैं इसवास्ते रज्जु सर्प स्थलमें अन्यथा ख्याति सम्भव नहीं तो हम तुमको पूछे हैं कि जहां एक देश स्थित दोय पदार्थ प्रतीयमान होवैं सो भी एकके विषय होवैं तहां अन्यथा ख्याति मानो हो वा भिन्न विषय होय है तहां भी अन्यथा ख्याति मानो-हो तो तुम ऐसी कहोगे कि विषय होवैं तहांही अन्यथा ख्याति होवैहै क्योंकि स्फटिकमें लाल रंगकी प्रतीति होय है जहां पुष्पकी लाली और स्फटिक एक वृत्ति विषय होय है इस लिये स्फटिकमें लालीकी अन्यथा ख्यातिहै तो हम पूछें हैं कि जहां लालपुष्पसंबन्धी पाषाणहै तहां पाषाणमें लालीकी प्रतीति होवै नहीं इसमें कारण क्या है सो कहो तो तुम ये कहोगे कि पाषाण मलिन है इसलिये पाषाण में पुष्प की छाया होवै नहीं तो हम कहैं हैं कि अन्यथा ख्यातिके मानने में छाया भी निमित्त सिद्ध भई अब हम पूछें हैं कि स्वच्छ वस्तुमें छाया होय है ये तो तुमको अनुभव सिद्ध है सो जहां पुष्पका सम्बन्ध तो स्फटिक से नहीं है और पुष्पकी छाया स्फटिकमें है तहां पुष्प और स्फटिक एक देशस्थ नहीं है तोभी लाली का प्रतीति स्फटिकमें होवै इसलिये एक देशस्थता जो है सो अन्यथा ख्याति में निमित्त नहीं है किन्तु छाया जो है सोही निमित्त है ऐसा मानना पड़ेगा तो जहां रज्जु सर्प भ्रम होय है तहां भी रज्जु और सर्प दोनों एक देशस्थ नहीं है तो भी जैसे स्फटिक में लाली की छाया तैसे रज्जुमें सर्पका आरोप है

इस लिये अन्यथा ख्याति ही मानों अनिर्वचनीय सर्पकी उत्पत्ति माननेमें गौरव दोष इस कारण से अनिर्वचनीय ख्याति का उच्छेदही होगा इस तुम्हार प्रथम प्रश्नके उत्तर तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति मानणा असङ्गत है ॥ और द्वितीय प्रश्नका उत्तर तुमने ये क है कि आरोप बुद्धि से दोय ज्ञान कहे हैं और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एक है इस लि ज्ञान एकही प्रतीति होय है तो हम कहें है कि जैसे ये रज्जु है इस ज्ञानको तुम अन्त करणकी जो वृत्ति तद्रूपज्ञान मानों हो और इसको साक्षी भास्य मानो हो क्यों कि वृत्तिरूप ज्ञान घटको तरह स्पष्ट प्रतीति है तैसे ही ये सर्प है ये ज्ञानभी अन्तःकर की जो वृत्ति तिसकी तरह साक्षी का विषय होकरके प्रतीति होय है इस लिये इस को सा रूप मानणा अनुभव विरुद्ध है और जो प्रौढिवादसे इसको ही साक्षीरूप ज्ञा मानों गे तो वृत्तिरूप जो ज्ञान तिसका उच्छेदही होगा क्योंकि विषय भेद से ही ज्ञान भेद सिद्ध होजायगा तो वृत्ति ज्ञान मानणा व्यर्थ ही है इसलिये द्वितीय प्रश्नका समाधा भी असङ्गत ही है ॥ और तृतीय प्रश्नका समाधान तुमने ये कहा है कि जैसे रज्जु जो सो विषय रूप करके प्रमाता का विषय है तैसे साक्षीकाभी विषयहै इसलिये अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्ति की आपत्ति नहीं है तो हम पूछें हैं कि उपाधि भेद से तुम उपहि में भेद मानों हो अथवा नहीं जो कहो कि उपाधि भेद से उपहित में भेद मानें हैं क्योंकि विचारसागरकी द्वितीय तरङ्ग में लिखा है कि अन्तःकरणरूप उपाधियोंके भेदसे जीव साक्षी नानाहै इसलिये अन्यके सुखदुःखोंका अन्यको भान होवेनहीं और सो साक्षी जो सुखदुःखोंको प्रकाश करे है सो भी वृत्ति की सहायता से ही प्रकाश करैहै इस लिये जब अन्तःकरणमें सुख दुःख पैदा होय है उस कालमें अन्तःकरणकी सुखाकार दुःखाकार वृत्ति होय है उन वृत्तियों से साक्षी सुखदुःखोंका प्रकाश करे है कि उपाधि भेदसे उपहित में भेदहै तो अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्तिकी आपत्ति दूर होवेही नहीं क्योंकि अन्तःकरण वृत्त्युपहित साक्षीको तो विशेष रूप करके रज्जु का ज्ञान होगा और अविद्या वृत्त्युपहित साक्षीका भ्रमनिवृत्त होगा उपाधि भेद वा साक्षी में भेद है ये तुम्हारे कथन से सिद्ध हैइस लिये तृतीय प्रश्नका उत्तर भी असङ्गत ही है ३ और चतुर्थ प्रश्नके समाधान में तुमने ऐसे कहाहै कि उपादान कारण एक अविद्या है इसलिये अन्तःकरणकी वृत्ति और अविद्या की वृत्ति एकहीहै तो सर्प अविद्याकी वृत्ति का विषय है तो अन्तःकरणकी वृत्तिका ही विषय है इस लिये प्रमाता को भयहोय है तो हम कहें है कि तुम्हारे कहे प्रकार करके तो सर्व जीवोंके अन्तःकरण कीवृत्ति सर्प विषय वृत्ति से अभिन्न है इस लिये सर्व जीवों को भय होना चाहिये सो होवे नहीं इस हेतुसे चतुर्थ प्रश्नका उत्तर असङ्गत हीहै ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर तुमने ये कहा है कि सर्प की विषय करणे वाली अविद्या की वृत्ति तो अति सूक्ष्म है इस लिये प्रतीति होवे नहीं और पूर्वोक्त प्रकार ... की इदन्ता जो है सो सर्पको धर्म प्रतीति होवे है इसलिये साक्षी पञ्चपुटिका ... त्रिपुटी मरादाकही प्रतीति होय है तो हम पूछें हैं कि अविद्याकी प्रतीतिमें सो किंम्प्रयुक्तहै जो कहो कि अविद्या अतिसूक्ष्म है सो इसवृत्तिकी उपा- ... लिये ये वृत्ति अति सूक्ष्म है तो हम कहें हैं कि ये कथन तो तुम्हारा

हारे मतसे ही असङ्गत है क्योंकि तुम्हारे मतमें सर्व जगत् अज्ञान कल्पितहै तो सर्व
तकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये जो कहो कि साक्षात् अविद्याका कार्य्य अतिसूक्ष्म
है जैसे साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये आकाश जो है सो अतिसूक्ष्म है तैसे ही
विषयक वृत्ति भी साक्षात् अविद्याकी कार्य है इसलिये अविद्या सूक्ष्म है तो हम कहें हैं
रज्जु सर्प जो है सो भी तुम्हारे मतमें साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये इसका भी प्र-
क्ष नहीं होणा चाहिये अब विचार करो कि तमोगुण कार्य्य रज्जु सर्प ही प्रतीति होय है
वृत्ति जो है सो तो सत्वगुणकी कार्य्य है इसकी अप्रतीति तो कैसे हो सके और रज्जुकी
इदन्ता है उसकी सर्पमें प्रतीति पूर्वोक्त होय करके दुर्घटहै इसलिये पञ्चम प्रश्नका स-
धान भी असङ्गत ही है जो कहो कि दोय ज्ञान माननेमें पूर्वोक्त दोष होय है तो "अयं सर्पः"
ां ज्ञान एकही मानेंगे तो हम कहें हैं कि रज्जुकी जो इदन्ता उसकी प्रतीति सर्पमें हो स-
नहीं इसलिये सर्पमें जो इदन्ता है उसकूं रज्जुकी इदन्तासे भिन्न मानों क्योंकि इदन्ता
है सो पुरोदेश वृत्ति धर्म से विलक्षण नहीं है रज्जुजोहै सो तो पुरोदश जो भूतल तद्वृत्ति है
र सर्प जो है सो पुरोदश जो रज्जु तद्वृति है इसलिये दोनों की इदन्ता भिन्न २ हैं अब जो
नों इदन्ता भिन्न भई तो इदन्ता विशिष्ट सर्पको विषय करणेवाली जो वृत्ति सो अविद्या
वृत्ति नहीं होसके किन्तु अन्तःकरणकी ही वृत्ति होगी क्योंकि सर्पदर्शन से प्रमाताको
भय होय है ये अनुभव सिद्ध है अब जो सर्प विषयक वृत्ति अन्तःकरणकी वृत्तिरूप
ई तो रज्जु जैसे प्रातिभासिक नहीं है तैसे सर्पभी प्रातिभासिक नहीं होगा जो सर्प प्राति-
ासिक नहीं होगा तो ये अज्ञान कल्पित नहीं होगा जब अज्ञान कल्पित नहीं होगा, जब
ज्ञान कल्पित नहीं ठहरा तो तुमने जो अज्ञान कल्पितरूप जगत् मानाथा उसमें तुम्हारी
ानी हुई अनिर्वचनीय ख्याति उच्छेद हो गई जैसे बारूदके उड़नेसे गोलीका उच्छेद हो
ाता है जो तुम ऐसा कहो कि अपने पञ्चविधि ख्यातिमेंसे कोई भी ख्याति अङ्गीकार नहीं
री सो तुम कौनसी ख्याति मानोंगे तो हम कहें हैं कि जैसे अनादि स्वास्त सत्ता रूप जो जगत्
द्ध हुआ है उसको स्मरण करके सत् ख्यातिको अंगीकार करो यही उत्तम सिद्धान्त है जो
हो कि इस सत् ख्यातिकी व्यवस्था कैसे है तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां वीतराग
र्वज्ञकी वाणीरूप अमृतसे भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित किया जायगा उसजगह वर्ण-
करेंगे वहां से देखना, अब हम तुमको ऐसा कहें हैं कि रज्जु सर्परूप जो दृष्टान्त सो तो
ाज्ञान कल्पित सिद्ध हुवा नहीं तो इसके दृष्टान्तसे आत्मामें अज्ञान कल्पित भी सिद्ध न हुवा
ो जगत् अज्ञान कल्पित न हुवा तो तुम दृष्टान्त दार्ष्टान्तका सम्भव कैसे बतावो हो सो क-
। तुम ऐसा कहोगे कि आत्मा जो है सो सत्‌चित्‌आनन्दअसंग कूटस्थ नित्य मुक्त है
ो जैसे रज्जुको दोय अंश हैं इदं रूप तो रज्जुका सामान्य अंश है और रज्जु जो है सो
िशेष अंश है जो भ्रांति कालमें मिथ्या कल्पित पदार्थसे अभिन्न हो करके प्रतीति होवे सो
ो सामान्य अंश कहिये है और जिस अंशकी भ्रांति कालमें प्रतीति होवे नहीं सो विशेष
ंश कहिये है जैसे जहां रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तो उस भ्रमका आकार ये सर्प है ऐसा है
ो इस शब्दका अर्थ इदम्पदार्थ सर्वमें अभिन्न हो करके भ्रांति कालमें प्रतीति होवेहै इस-
लिये ये रज्जुका सामान्य अंशहै तैसेही स्थूल सूक्ष्म संघात है ऐसे स्थूल सूक्ष्मकी भ्रान्ति

समयमें मिथ्या संघातसे अभिन्न हो करके सत् प्रतीति होय है इसलिये आत्माका सत्यरूप सामान्य अंश है और जैसे सर्पकी भ्रांति कालमें रज्जुके विशेष अंशका प्रत्यक्ष होवे नहीं किन्तु रज्जु की विशेष रूपसे प्रतीति भये सर्प भ्रमदूर होवे है इसलिये रज्जु विशेष अंश है तैसे स्थूल सूक्ष्म संघातकी भ्रान्ति समयमें आत्माका असंकूटस्थ नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीति होवे नहीं किंतु असंगादिरूप आत्माकी प्रतीति भये संघातकी भ्रांति दूर होवेहै इसलिये असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक जो हैं सो आत्माके विशेषरूप है जैसे भ्रान्ति समयमें सर्पका आश्रय जो रज्जु तिसका सामान्य इदंरूप सर्पका आधार है और विशेषरूप अधिष्ठान है तैसे मिथ्या प्रपंचका आश्रय जो आत्मा तिसका सामान्य सत्रूप स्थूल सूक्ष्मका आधार है और असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है जो कहो कि सर्पका आधार और अधिष्ठान तो रज्जु है और रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मा जगत्का आधार और अधिष्ठान है तो इससे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु सो सर्पका द्रष्टा नहीं है किंतु रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मासे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा सो कहो तो हम कहैं हैं कि मिथ्या वस्तु अधिष्ठानमें कल्पित होय है सो अधिष्ठान दोय प्रकारका होय है एक तो जड़ अधिष्ठान होय है और दूसरा अधिष्ठान चेतन होय है सो जहां अधिष्ठान जड़ होय है तहां तो द्रष्टा अधिष्ठानसे भिन्न होय है जैसे सर्पका अधिष्ठान रज्जु है सो जड़ है तो इस रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है और जहां चेतन अधिष्ठान होय है तहां अधिष्ठानसे भिन्न द्रष्टा होवे नहीं जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी चेतन है सोही स्वप्नका द्रष्टा है तैसे जगत्का अधिष्ठान आत्मा है सोही जगत्का द्रष्टा है ये व्यवस्था स्थूल दृष्टिसे कही है क्योंकि सिद्धांतमें तो सर्पका अधिष्ठान साक्षीही है सोही द्रष्टा है इसलिये पूर्वोक्त शंका ससाधान हेही नहीं ऐसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीति होय है जिसके अज्ञानसे प्रतीति होय है जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्प प्रतीति होय है सो रज्जुके ज्ञानसे निवृत्त होय है तैसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीत होय है सो आत्माके ज्ञानसे निवृत्त होय है इसलिये आत्मा ज्ञान सिद्ध करने योग्य है ऐसा विचारसागरके चतुर्थ तरङ्गमें दृष्टांत दार्ष्टांतका साम्य कहा है तो हम तुमको पूछें हैं कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण है वा अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है वा अधिष्ठानका सामान्यरूपकरके ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान ये दोनोंका कारण है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप ज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहैं हैं कि अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञानभये भी भ्रम होना चाहिये क्योंकि रज्जुका विशेषरूप करके जो ज्ञान तिसका आकार ये है कि ये रज्जु है तो इस ज्ञानमें ये इतना अंश सामान्य ज्ञान है सो तुमने भ्रमका कारण माना है इसलिये तुमको अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञान होय तिससमयमेंभी सर्पभ्रम होणा चाहिये सो होवे नहीं इस कारणसे अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण मानना असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका शेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहै हैं कि जिस समयमें रज्जु सर्वथा अज्ञात है उस समय मेंभी तुमको सर्प भ्रम होना चाहिये क्योंकि उस समयमें तुम्हारा मान्या हुवा भ्रमका कारण जो अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान सो मौजूद

है इसलिये अधिष्ठानका विशेषरूप करके जो अज्ञान उसको भ्रमका कारण माननाभी असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान और विशेषरूप करके अज्ञान ये दोनों कारण हैं तो हम पूछें हैं कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण हैं वा ये दोनों अज्ञातही कारण हैं वा दोनों में एक तो ज्ञात हुवा और द्वितीय अज्ञात कारण है जो कहो कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण हैं तो हम कहें हैं कि तुमको सर्पभ्रम होणाही नहीं चाहिये क्योंकि तुमही अनुभवसे देखो जहां तुमको सर्पभ्रम होय है तहां रज्जुका सामान्यरूप करके ज्ञानतो प्रतीति होय है और विशेषरूप करके अज्ञान प्रतीति होवेनहीं इसलिये दोनो ज्ञात हुये कारण हैं ऐसे मानणा असंगत है जो कहो कि दोनों अज्ञातही कारण हैं तो हम कहें हैं कि जिस समयमें तुमको रज्जुका सामान्यरूप करकेभी ज्ञानही है और विशेषरूप करकेभी ज्ञानही है उस समय में भी तुमको भ्रम होणा चाहिये क्योंकि उससमय में रज्जुका सामान्यरूप ज्ञान और विशेष रूप अज्ञान ये दोनोंही अज्ञान हैं जो कहो कि दोनोंमें एक तो ज्ञात और दूसरा अज्ञात हुये भ्रमके कारण हैं तो हम तुमको पूछें हैं कि सामान्य रूप जो ज्ञान सोतो ज्ञात और विशेष रूपकरके अज्ञान जो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो विशेष रूप करके जो अज्ञान सो ज्ञात और सामान्य रूप जो ज्ञान सो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो जो कहो कि प्रथम पक्षमानें हैं तो हम कहें हैं कि प्रथमपक्ष बनजायगा क्योंकि वहां सामान्य रूप सो ज्ञात है और विशेष रूप जो अज्ञान सो अज्ञात है परन्तु इसके दृष्टान्तसे जो तुम आत्मामें जगत्को अज्ञान कल्पित बतावो हो सो कैसे होगा क्योंकि आत्माका विशेषरूप जो अज्ञान सो अज्ञात नहीं है क्योंकि मैं मेरेको नित्य मुक्त असङ्ग कूटस्थ नहीं जानूं हूं ऐसी प्रतीति होय है इस लिये दृष्टान्त दार्ष्टान्तका साम्य हुवा नहीं तो आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित मानणा असङ्गतहुवा औरभी देखो कि आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित होय तो जैसे रज्जुका विशेष रूप करके ज्ञान होनेसे सर्प जो है सो सर्वथा निवृत्त होजाय है तैसे आत्माका विशेष ज्ञान होनेसे जगत् निवृत्त हो जाना चाहिये सो होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है जो कहो कि हम अध्यास दो प्रकारके मानें हैं १ एक तो सोपाधिक अध्यास मानें हैं और दूसरा निरुपाधिक अध्यास मानें हैं जहां भ्रमकी निवृत्ति होनेसे भी अध्यस्तकी प्रतीति उपाधिके सद्भावपर्यन्त मिटे नहीं उस स्थानमें तो हम सोपाधिक अध्यास कहें हैं जैसे नदी के तट उपर स्थित जो पुरुष तिसको अपना शरीर जलमें प्रतीत है सो मिथ्या है वहां पुरुषके चित्तमें भ्रम नहीं है आपने तटस्थ शरीरमें ही तो पुरुषकी सत्य बुद्धि है और जलमें प्रतीयमान जो शरीर तिसमें मिथ्या बुद्धि दृढ़ है तथापि जलमें प्रतीत जो आत्मा शरीर तिसका अधिष्ठान होवे नहीं क्योंकि यहां जो अध्यास है सो सोपाधिक है जो कहो कि यहां उपाधि क्या है तो हम कहें हैं कि यहां जल है सो उपाधि है सो ये उपाधि जहांतक बनी रहे तहांतक शरीरका अदर्शन होवे नहीं और जहां रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है तहां निरुपाधिक अध्यास कहें हैं कि सर्पभ्रम निवृत्ति भये सर्पमें मिथ्या बुद्धि होनेसे सर्पकी प्रतीति होवे नहीं क्योंकि यहां कोई उपाधि ऐसी नहीं है कि जिसके रहनेसे भ्रमकी निवृत्ति होनेसेभी सर्प प्रतीति होतीरहे तो आत्मामें जगत्की प्रतीति है यहां सोपाधिक अध्यास है इसलिये आत्माका विशेष रूप ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होवे नहीं तो हम कहें हैं कि आत्मामें

जगत्को अज्ञान कल्पित सिद्ध करनेके अर्थ रज्जु सर्प दृष्टांत न हुवा और जब दृष्टान्तका और दार्ष्टान्तका साम्य कहने लगे तब सोपाधिक भ्रमको दृष्टान्त कहा है ऐसे उपदेश करनेसे शिष्य को संतोष कैसे होया ऐसे उपदेश करने वाले गुरुको तो आत्मा अर्थी बुद्धिमान् जो शिष्य है सो भ्रान्त समझैं और कुगुरु मानकरके छोड़देते हैं जो कहो कि भ्रम स्थलमें भ्रमको दृष्टान्त कहें तो क्रम विरुद्ध उपदेश नहीं है इस लिये सोपाधिक दृष्टान्त भ्रमको कहें तो कुछभी हानि नहीं है तो हम कहें हैं कि जहां तीरस्थ पुरुषको जलमें अपने शरीरका भ्रम होय है तहां भ्रमाधिष्ठान जल है उसका ज्ञान पुरुषको समान रूप करकेभी है और विशेष रूप करकेभी है आत्माका तो तुम सामान्य रूप ज्ञान और विशेषरूप अज्ञान मानो हो इस लिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त विषम है जो कहो मरुभूमिका जो जल तिसको दृष्टान्त कहेंगे क्योंकि मरुभूमिका सामान्यरूप ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान इनके होनेसेही जल भ्रम होय है और मरुभूमिका विशेषरूप करके ज्ञान होनेसे जलका भ्रम रहे नहीं परन्तु जलकी प्रतीति होती रहे है तैसे ही आत्माका सामान्य रूप ज्ञान और विशेष रूप अज्ञान इनके होनेसे तो आत्मामें जगत् भ्रम हुवा है और आत्मा विशेष रूप ज्ञान होनेसे जगत् भ्रम निवृत्त हो जाता है परन्तु जगत्की प्रतीति होती रहे ऐसे आत्मामें जगत्का सोपाधिक अध्यास सिद्ध होगया तो हम तुम को पूछें हैं कि आत्मा में जगत् अज्ञान कल्पित है इसलिये तुम दृष्टान्तों करके आत्मामें जगत् को अज्ञानकल्पित सिद्ध करते हो या तुम अपना मत अन्य शास्त्रों से विलक्षण दिखाने को और अपना मत सिद्ध करने के अर्थ आत्मा में जगत् को अज्ञान कल्पित बताते हो सो कहो जो कहो कि आत्मा में जगत् अज्ञान कल्पित है इसलिये हम दृष्टान्तों करके जगत् को अज्ञान कल्पित बतावें हैं तो हम पूछें हैं कि आत्मा में अज्ञान जो है सो कल्पित है या नहीं तो तुम यही कहोगे कि कल्पित ही है सो हम तुम को पूछें हैं कि किससमयमें कल्पित हुवा है तो तुम ये कहोगे कि अनादि कल्पित है तो तुमही कुछ बुद्धि का विचार करो कि जो वस्तु अनादि होय सो कल्पित कैसे होसके इसलिये जगत् अज्ञानकल्पित नहीं है क्योंकि तुम जगत् का उपादान कारण मानो हो परन्तु जो जगत् का उपादान होय तो आत्मज्ञान होनेसे तुम को जगत् की प्रतीति नहीं होनी चाहिये क्योंकि उपादानकारणके नाशहोनेसे कार्य रहे नहीं ये सर्व के अनुभव सिद्ध है और जो कहो कि सोपाधिक अध्यास होय तहां उपादान के नाश होने सेभी जबतक उपाधि की स्थिति होय तब तक कार्यप्रतीति रहे है तहां मरु जल का दृष्टान्त कहा है सो हम तुम को पूछें हैं यहां उपाधि है सो कहो जो कहो कि यहां अन्तःकरण जो है सो उपाधि है तो हम कहें हैं कि अन्तःकरण जो है सो तो जगत् के अन्तर्गत है इसलिये ये तो उपाधि होसके नहीं इसलिये जगत् से भिन्न कोई उपाधि कहो सो जगत् से भिन्न कोई उपाधि कह सकोगे नहीं इसीलिये तुम लोग अज्ञान अर्थात् अविद्या के कहने से रहित हो सकते नहीं जो कहो कि हमारे अद्वैत मतके सिद्ध करनेवाले आचार्य लोग जिन्हें निश्चित सिद्धान्त समझके अज्ञान कल्पित मान कर जगत् की निवृत्ति के अर्थ ज्ञान को लिखा इसवास्ते "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञान से अविद्याको दूर कर ब्रह्मरूप हो रहे और जो इनके अज्ञा को मानेगा सो भी ब्रह्मरूप ज्ञानको प्राप्त

होकर जन्म मरणसे मिट जायगा अहो ! अद्वैतवादियो ! यह तुम्हारा कहना कैसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरे बापने घी (घृत) बहुत खायाथा नहीं मानोंतो मेरा हाथ सूंघ कर देखलो ऐसा ही मसले वा दृष्टान्तसे तुम्हारे शंकरस्वामीको ब्रह्म ज्ञान होने से ब्रह्म रूप होगये अजी कुछ नेत्र मीचकर हृदय कमल ऊपर वीतराग वचन को स्मरण करके विचार तो करो कि शंकर दिग्विजयमें शंकरस्वामीका हाल जो आनन्ददगिरिने लिखा है उसकोतो विचार दृष्टिसे देखो तो तुमको आप ही मालूम हो जायगा कि इस स्थूल शरीरमें ब्रह्मज्ञान कहने मात्र ही होगा नतु कारण शरीरे तो जब कारण शरीरमें ही नहीं तो आत्मामें ब्रह्मज्ञान होना असम्भव ही है जो तुम कहो कि आनन्दगिरि महाराज ने शंकर दिग्विजयमें क्या वात लिखी है सो तुम कहो तो अब हम तुम को तुम्हारे शंकरस्वामी का हाल सुनाते हैं सो तुम एकाग्र चित्त होकर पक्षपात छोड़कर नेत्रों को मीच कर श्रवण करो–

जब शंकरस्वामी ने मण्डन मिश्रको जीता तब मण्डन मिश्रने पतिव्रत लिया उसकी स्त्री जिसका नाम सरसवानीथा सो अपने पतिको पतिव्रत लिया देखकर आप ब्रह्म लोकको चली उसको जाती देखकर शंकरस्वामी जीवन दुर्गा मंत्रकरके दिग्वन्दन करते हुवे तिसके पीछे हे सरसवाणी ! तू ब्रह्म शक्ति है ब्रह्मके अंशभूत मंडनमिश्रकी भार्य्याहै उपाधि करके सर्वको फलित है तिस कारणसे मेरे साथ प्रसंगकरके फिर तुमको जाना योग्यहै ऐसे शंकरस्वामीने कहा पीछे सरसवाणी शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई कि पतिके सन्याससे प्रथमही विधवा होनेके भयसे मैंने पृथ्वी त्यागीहै तिसकारणसे मैं फिर पृथ्वीका स्पर्शन न करूँगी, हे ! पति तू तो पृथ्वीमें स्थितहै कैसे तेरे प्रसंगके ताईं एक विषय स्थिति होवे ऐसे शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई, फिर शंकरस्वामी कहते भये कि हे माता तूभी भूमिकाके ऊपर छः हाथ प्रमाण ऊँची आकाश में रहो मेरे साथ सर्व वचनोंका प्रपंच संचार करके पीछेसे जावो इतने आदरपर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषय वेद, इतिहास, पुराणों विषय समय प्रसंग करके पीछे शंकरके तिरस्कारके ताईं जिसमें दुःखमें प्रवेश हैं ऐसा जो काम शास्त्र तिसके विषय नायका और नायक इनके भेद विस्तारसे सरसवाणी शंकरको पूछे तब तो शंकर स्वामी इस विषयको जानते नहींथे इसलिये शंकर स्वामी उत्तर न देसके और मौन होतेभये तिस पीछे सरसवाणी शंकर स्वामीको सत्य करके कहती हुई कि तुम्हारे जानने में यह शास्त्र नहीं आया निश्चय करके तिस शास्त्रकोंमेंहीं जानतीहूं कालका जानकर शंकरस्वामी सरसवाणीको कहते हुये हे माता ! तुम इस जगह छः महीने रहो पीछे मैं सर्व अर्थोंका निश्चय करके उत्तर कहूंगा ऐसा कहकर शंकर स्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीको उसी आकाशमंडलमें स्थापन करके सर्व शिष्येंको यथास्थाने करके चार शिष्योंके सहित १ हस्तामलक २ पद्मपाद ३ विधीवद ४ आनन्दगिरि ये चार प्रधान शिष्योंके साथ नगरसे पश्चिम दिशि नामगढ़में गये सरस वाणीके प्रश्नोंके उत्तर जानणेके लिये, उस नगरका राजा मरगयाथा उसका शरीर चितामें जलानेके वास्ते रक्खाथा उसको देख शङ्करस्वामीने अपना शरीर उस नगरके एक पर्वतकी गुफामें

स्थापन करके शिष्योंको कहा कि तुम इस शरीरकी रक्षा करना शङ्करस्वामी परकाय प्र-वेश विद्याकरके लिङ्गशरीर संयुक्त अभिमानसहित राजाके शरीरमें ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करा तब तो राजा जी उठा सो वो उपचार करा उसवक्ते नगरमें ले आये राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध होगई तब तो शङ्करस्वामीको लोगोंने राज गद्दीपर बिठलाया पश्चात् सिंहासनसे उठकर वहीं रानीके घरमें गये तहां जाकर उस रानीसे काम क्रीड़ा करने लगे उस वक्त शङ्करस्वामी कुशलतासे उस रानीको आलिङ्गन करनेसे उत्पन्न हुवा जो सुख स-म्भोग ता करके शंकरस्वामीने उस रानीके मुखके साथ तो अपना मुख जोड़ा अर्थात् एक शरीर गत होगये दोनों जने बहुत आलिंगन करनेमें तत्पर हुये तो शङ्करस्वामी रानीके कुच स्थनोंपर किये हाथों करके स्पर्श करते हुये सुखमें मग्न हो गये तब रानी उनकी अलाप च-तुराई देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह मात्र मेरा भर्ता है परन्तु इसका जीव मेरा भर्ता नहीं ये तो कोई सर्वज्ञ है ऐसा विचार करके रानीने अपने नौकरोंको चारों दिशा में भेजा और कह दिया कि जो पर्वत और गुफामें बारह योजनके बीचमें शरीर जावि र-हित होवे सो सर्व जलादो शङ्कर स्वामी तो विषयमें मूर्छित होगये अर्थात् स्त्रीके भोग सु-खमें लीन हो गये और इधर रानीके नौकरोंने चारों शिष्योंको रक्षक देखकर शङ्करस्वामीके शरीरको चितामें रखना आरम्भ किया और उनके शरीरको अग्नि दाह करके दाह करने लगे तब तो शंकरस्वामीकेचारों शिष्य उस नगरमें गये जहां शङ्करस्वामीथे उनको विषयमें वन्ध बुद्धि देख कर शङ्कर राजाके आगे नाटक करने लगे शंकरस्वामीको परोक्ष करके उपदेशक-रने लगे सो उपदेश यह है (१) यत्सत्य मुख्य शब्दार्थानुकूलं, तत्वमसि २ राजन् (२) यद्य-तत्वं विदितं नृपु भावंतत्वमसि राजन् (३) विश्वोत्पत्यादि विधि हेतु तत्वं तत्वमसि २ राजन् (४) सर्व चिदात्मकं सर्व मद्वैतं तत्वमसि २ राजन् (५) परतार्किकैरीश्वरसर्व हितुस्तत्त्वमसि २ राजन् (६) यदि यद्वैतां गादिभिर्ब्रह्म सर्वस्यं, तत्वमसि २ राजन् (७) यज्जैमिनिगौ-तम खिल कर्म तत्त्वमसि २ राजन् (८) यत्पाणिनिः मादात् शब्द स्वरूपं तत्त्व मसि रा-जन् (९) यत्सांख्यानां हेतुभूतं तत्वमसि २ राजन् (१०) अष्टांगयोगेनअनन्त रूपं तत्व मसि २ राजन् (११) सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म तत्व मसि २ राजन् (१२) नह्येतदहश्यप्रपंच तत्वमसि राजन् (१३) यद्ब्रह्मणो ब्रह्मविपा बीश्वरा ह्यभवन्, तत्त्वमसि राजन् (१४) त्वद्रूप मेव मस्माभिर्विदितं राजन् तव पूर्व यत्याश्रमस्यम् ॥ इन परोक्तियों करके राजा प्रतिबोधित हुवा सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसे निकल कर जब गये तब तो उस पर्व-तकी कंदरामें अपने शरीरको न प्राप्त हुवे तब तो अपने शरीरको चितामें देखा, देख कर कपाल मध्यमें होकर प्रवेश करा; तब शरीरके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो रहीथी, तब तो निकलना दुष्कर हो गया फेर शंकर स्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मी नृसिंहने शङ्कर स्वामीको जीता अग्निमेंसे बाहिर निकाला । ये वृत्तान्त शङ्करदिग्विजयके अट्ठावनवें प्रकरणमें आनन्दगिरिने लिखा है उसको देख लेना अब तुमही विचार करो कहो कि सरस्वाणीके प्रश्नोंका उत्तर नहीं आया तो शङ्करस्वामीको सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान मानेगा और राजाकी रानीसे विषय सेवन किया तब कामी भी हो चुके और जब चितामें

१ अब जो नीचे लिखते है सो शरीरसे संबन्ध नहीं किंतु लिंग शरीर १७ प्रकृतिके अभिमानी शंकर स्वामीका वर्णन है

न निकल सके तब असमर्थ हो करके नृसिंहजीकी स्तुतिकी तब निकले और जब शिष्योंने तत्वमसिका उपदेश दिया जब उस उपदेशको सुनकर पिछली समुदित आई तो अब देखो और तुमही विचार करो कि तुम्हारे मुख्य शिरोमणि आचार्य्य शंकरस्वामीनेही स्थूल शरीर छोड़नेसे लिङ्ग शरीरको राजाके शरीरमें प्रवेश किया तो पिछले शरीरकी स्मृति न रही तो फिर वे ब्रह्म ज्ञान पायके ब्रह्म हो गये ये तुम्हारा कहना असिद्ध हो गया जब तुम्हारे शङ्कर स्वामीकोही ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्ति लिङ्ग शरीरमें न हुई तो आत्मामें कहांसे होगी तो जब उनकोही न हुई तो अब तुम्हारेको क्योंकर ब्रह्मकी प्राप्ति होगी अब देखो विचार करो कि न तो तुम्हारी अज्ञान कल्पित अविद्या सिद्ध हुई न तुम्हारा कल्पा हुवा जगत् मिथ्या ठहरा न तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारे सिद्धान्तसे ब्रह्मज्ञान होना सिद्ध हुवा अब जो तुम्हारेको आत्मार्थकी इच्छा है तो शुद्ध मार्गके उपदेश देनेवालेके चरणोंकी सेवा करो ॥ अलम् विस्तरेण ॥

इति श्रीजैनधर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे द्वितीय प्रश्नोत्तरअंतर्गत वेदांतमत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ दयानन्द मत निर्णय।

अब वेदान्त मतकी समीक्षा करनेके अनन्तर वर्तमान कालमें जो आर्यसमाज नवीन प्रवृत्त हुवा है उसका वर्णन किया जाता है, इस मतका मुख्य आचार्य्य दयानन्द सरस्वती नाम करके हुवा जिस ने अपने प्रयोजनके लिये वेद और अन्यान्य शास्त्रोंको एक देश मानकर उनका नवीन अर्थ बनाकर भ्रमजालमें फँसानेका उद्योग किया है। इसमतके मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य भूमिका आदि हैं जिनमें अपनेको शुद्धप्ररूपक बतलाते हुए अनेक गप्पें लिखी हैं इस लिये उसके स्वमन्तव्य अर्थात् अपनी इच्छानुसार जिन २ वस्तुवोंको मानता है उनका निराकरण उसीकी मानी हुई वस्तुवोंसे भव्य जीवोंके कल्याणकी इच्छासे यहां करता हूँ कि ये भ्रमजालमें फँसकर संसारमें न डूलें ॥

अब सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि प्रथम "दयानन्दसरस्वती"ने जो ईश्वर माना है वही नहीं बनता क्योंकि प्रथम जिसरीतिसे ईश्वर उसने माना है सो लिखते हैं-कि प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है; जिसके गुण, कर्म, स्वभाव, पवित्र हैं; जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त; सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सर्व सृष्टिका कर्ता; धर्ता, हर्ता, सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्यायसे फल दाता आदि लक्षण युक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूँ ॥

अब हम कहे हैं कि सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त परमेश्वर को मानना ठीक है यह तो कहीं जैनियोंका शास्त्र देखकर उड़ा लिया है क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि कवि तस्कर अर्थात् चोर होता है अब देखो कि तुम गुण कर्म, स्वभाव यह भी मानते हो तो हम तुमको पूछते हैं

कि तुम्हारे जो वेद मंत्र हैं उनमें तो ब्रह्म परमात्माको निर्गुण कहा है सो मंत्र यह है कि
जो सत्यार्थप्रकाशमें जो कि पहले अनुमान सं० १९३२ अथवा सन् १८७५ ई० में
बनाया था उसके सप्तम समुल्लासके २२६ पत्रकी १३ वीं पंक्तिमें लिखा है मंत्र- एको दे
सर्व भूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताके
निर्गुणश्च ॥ अब देखो उस तुम्हारे मंत्रमें तो उस परमात्माको निर्गुण कहा है और तु
उसको गुणवाला मान लिया तो हम जानते हैं कि भांगका नशा कुछ जादा हो गया
से, इसलिये इसका अर्थ यथार्थ न समझा दूसरा जो कर्म मानते हो सो भी ईश्वरमें
बनता है क्योंकि ईश्वर जो कृतकृत्य है अर्थात् कोई कृत्य करनेको बाकी नहीं अर्थात्
नन्द रूप है यही उसका स्वभाव है सर्वज्ञ निराकार ये भी ठीक है परन्तु सर्वव्यापक
रीतिसे मानते हो सो कहो क्या शरीर वाला मानकर अथवा ज्ञानसे मानते हो २ जो
कि शरीर वाला मानकर कहते हैं तब तो तुम्हारा निराकार मानना बांझके पुत्र समान
गया जो कहो कि ज्ञान करके मानते है तो तुमने जैनियोंकाही शरण लिया दीखे है
देखो जो तुम कहते हो कि सृष्टिका कर्त्ता, धर्ता, हर्ता सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न
से फल दाता ऐसा विशेषण देनेसे उलटा कलंक लगाते हो क्योंकि पहले तुमने उस
रको मंत्रमें निर्गुण कहा तो कर्त्तादि न्यायसे फल दाता क्योंकर कहना बनेगा जो
चीजोंका कर्त्ता आदिक उसमें गुण है तो फिर जिस ईश्वरको निर्गुण कहा तो परस्पर
कर्त्तामें वद तो व्याघात दूषण हुवा अर्थात् " मम मुखे जिह्वा नास्ति" अब हम तु
पूछते हैं कि ईश्वरको कर्त्ता मानकर उसी ईश्वरको कलंक लगाना है इससे तुम्हारा प्रयो
क्या है तो तुम यही कहोगे कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना अचरजरूप है इसी
जगत् कार्य ठहरा इस अनुमानसे हम ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करते हैं तो हम तुमको पू
हैं कि कारण कितने मानते हो जो कहो कि उपादान साधारण और निमित्त ये तीन क
मानें हैं तो अब देखो यहां विचार करो कि उपादान कारण तो प्रकृतिको मानोगे
साधारण कारण जो कि क्रिया आदिक उसको मानोगे निमित्तमें ईश्वरकी इच्छा मा
तो अब हम तुम्हारेको पूछें हैं कि सबसे पहले जो संयोगकी क्रिया उसमें उपादान
प्रकृति हुई निमित्त ईश्वर हुवा तो इस जगह असाधारण कारण कोई नहीं दीखता है
जब असाधारण कारण माननाही असङ्गत हुवा तो तुम्हारे माने हुवे तीन कारणोंके
कार्य नहीं होता है यह कहनाभी असङ्गत हुवा इस लिये शाश्वत अनादि मानना ठी
अब उस ईश्वरको अजन्मा निराकार इस जगत्से भिन्न मोक्ष भये हुये जीवसे न्यारा ई
माननेमें तुम्हारा प्रमाण क्या है? मुक्त हुवे जीवसे भिन्न ईश्वरका होना किसी युक्तिसे
नहीं कर सकते और न कभी हमको उसे प्रत्यक्ष दिखा सकते होतो हम कैसे मानलें
मोक्ष हुए जीवोंसे अतिरिक्त कोई ईश्वर है। जो तुम कहो कि ईश्वर घट पटकी
भौतिक पदार्थ नहीं है जिसको हम तुमको प्रत्यक्ष दिखलावें क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंसे
तो उसका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होताहै अथवा कर्तृत्वादि गुणोंसे
ईश्वरका ज्ञान हमको हुवा है क्योंकि स्वाभाविक गुणोंके प्रत्यक्षसे गुणोंकी प्रत्यक्ष युक्ति
सिद्ध है. अब हम तुमको पूछते हैं कि किन गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे ईश्वरके गुण

प्रत्यक्ष होते हैं? जो तुम कहो कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना देखकर हम ईश्वरको कर्ता मानते हैं. तो हम तुमको पूछते हैं कि पहिलेही हमने तुम्हारे ईश्वरको तुम्हारी पुस्तकके मंत्रसेही निर्गुण ठहराया है तो फिर गुणोंसे गुण प्रगट होतेहैं ये कहना तो तुम्हारा असम्भवही है। जो तुम ईश्वरको सत् चित् आनन्दरूप मानते हो तब सृष्टिके रचनमें वा पालन करनेमें वा प्रलय करनेमें जीवोंके कर्मोंके फल देनेमें इत्यादिक कामोंमें आनन्दके बदले महादुःखरूप दिनरात अग्र सोचनेंही बना रहेगा जो तुम कहो कि वो सर्वशक्तिमान् है तो जो अन ईश्वरवादी अर्थात सृष्टिका कर्त्ता ईश्वरको न माननेंवालोंके साथ झगड़ा भी करता होगा? जो तुम कहो कि अनुमान उपमान आगमसे अर्थात् शब्द प्रमाणसे सिद्ध करेंगे तो हम कहते हैं कि जबतक प्रत्यक्ष प्रमाण न होगा तो अनुमान वा उपमानभी नहीं बनेगा क्योंकि देखो जिस पुरुषने अग्निसे धुआंनिकलता प्रत्यक्ष नहीं देखा है उस पुरुषको धूम देखनेसे अग्निका अनुमान कदापि न होगा ऐसेही जिस पुरुषने गऊका स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं देखा उसपुरुषको जंगलमें जानेसे गवयको देखकर कदापि उपमान प्रमाण नहीं बनेगा क्योंकि पहिले स्वरूपको उसने जाना नहीं और जो आगमोंसे सिद्ध करोगे अर्थात् वेदोंसे सिद्ध करोगे तो वेदभी उसही ईश्वरके किये हुये मानतेहो तो जब तुम्हारा ईश्वर सिद्ध हो चुकेगा जिसके बाद उसके कहे हुये वचन अर्थात् वेदका प्रमाण मान्या जायगा क्योंकि कुड्य अर्थात् भीत नाम दीवार होगी तो चित्राम रचा जायगा जहां दीवार नहीं तहां चित्रामका संभव कहां! जो तुम कहो कि पृथ्वी आदिकका बनाने वाला कोई ईश्वर है तो अब हम तुमको पूछते हैं कि वह जो सृष्टिका रचने वाला ईश्वर है सो शरीर वाला है अथवा अशरीर वाला है जो वह शरीर वाला है तो क्या हमारा सा शरीर विशिष्ट वा पिशाचोंका सा अदृश्य शरीर विशिष्ट है? अब देखिये प्रथम पक्षको तो प्रत्यक्ष बाधा है क्योंकि प्रत्यक्षमें तो ईश्वर दीखता नहीं और कार्य उसका बनाया हुआ तुम प्रत्यक्ष दिखाते हो क्योंकि घास, वृक्ष, पुरुष, अभ्र, धनुष, कार्य दीखते हैं क्योंकि प्रमेय होनेसे यह तो तुम्हारा अनेकान्त हेतु हुआ। दूसरे पक्षमें अशरीरी मानोगे तो उस ईश्वरका कुछ माहात्म्य विशेष कारण है अथवा हमारे लोगोंके कर्मोंका वैगुन्य अर्थात् हमारे शुभ अशुभ कर्मोंसे नहीं दीखता है तो प्रथम पक्षसे तो तुमको सौगंध खानेसे होगा क्योंकि प्रमाणका अभाव है दूसरा इतरेतराश्रय अर्थात् अन्योन्याश्रय दोषभी होता है क्योंकि उसका विशेष माहात्म्य जब सिद्ध होगा तब उसका अदृश्यपन सिद्ध होगा जो पहिले अदृश्यपन सिद्ध हो जाय उसके बाद माहात्म्य सिद्ध होगा और द्वितीय पक्ष कि जो हमारे कर्मोंके शुभ अशुभसे विचार करें तो सन्देह नहीं दूर होगा क्योंकि बांझके पुत्रके समान यह सत्य है या असत्य या हमारे कर्मोंका दूषण है या उसका अदृश्यपना है इसमेंभी प्रमाण कोई नहीं और जो तुमने कहा कि निराकार है तो हेतु विरुद्ध है क्योंकि घटादि कार्य शरीरवालेके किये हुये होते हैं और अशरीरके कार्यमें प्रवृत्ति होना असिद्ध है आकाशकी तरह जैसे आकाश अरूपी वस्तु कोई कार्य नहीं कर सकता इस लिये तुम्हारा शरीर अशरीर दोनो पक्षोंमें कुछभी सिद्ध न हुवा औरभी देखो तृण बिजली और बद्दल धनुषादि उत्पन्न होना विनाश होना दीखता है और उसका कर्त्ता कोई नहीं हुवा। अब

कि तुम्हारे जो वेद मंत्र हैं उनमें तो ब्रह्म परमात्माको निर्गुण कहा है सो मंत्र यह जो सत्यार्थप्रकाशमें जो कि पहले अनुमान सं० १९३२ अथवा सन् १८७५ ई० बनाया था उसके सप्तम समुल्लासके २२६ पत्रकी १३ वीं पंक्तिमें लिखा है मंत्र- एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ अब देखो उस तुम्हारे मंत्रमें तो उस परमात्माको निर्गुण कहा है और तुमने उसको गुणवाला मान लिया तो हम जानते हैं कि भांगका नशा कुछ जादा हो गया दीखे, इसलिये इसका अर्थ यथार्थ न समझा दूसरा जो कर्म मानते हो सो भी ईश्वरमें नहीं बनता है क्योंकि ईश्वर जो कृतकृत्य है अर्थात् कोई कृत्य करनेको बाकी नहीं अर्थात् आनन्द रूप है वही उसका स्वभाव है सर्वज्ञ निराकार ये भी ठीक है परन्तु सर्वव्यापक किस रीतिसे मानते हो सो कहो क्या शरीर वाला मानकर अथवा ज्ञानसे मानते हो २ जो कहो कि शरीर वाला मानकर कहते हैं तब तो तुम्हारा निराकार मानना बांझके पुत्र समान हो गया जो कहो कि ज्ञान करके मानते हैं तो तुमने जैनियोंकाही शरण लिया दीखे है और देखो जो तुम कहते हो कि सृष्टिका कर्त्ता, धर्ता, हर्ता सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता ऐसा विशेषण देनेसे उलटा कलंक लगाते हो क्योंकि पहले तुमने उस ईश्वरको मंत्रमें निर्गुण कहा तो कर्त्तादि न्यायसे फल दाता क्योंकर कहना बनेगा जो इन चीजोंका कर्त्ता आदिक उसमें गुण है तो फिर जिस ईश्वरको निर्गुण कहा तो परस्पर उस कर्त्तामें वद तो व्याघात दूषण हुवा अर्थात् " मम मुखे जिह्वा नास्ति" अब हम तुमसे पूछते हैं कि ईश्वरको कर्ता मानकर उसी ईश्वरको कलंक लगाना है इससे तुम्हारा प्रयोजन क्या है तो तुम यही कहोगे कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना अचरजरूप हैं इसलिये जगत् कार्य ठहरा इस अनुमानसे हम ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करते हैं तो हम तुमको पूछते हैं कि कारण कितने मानते हो जो कहो कि उपादान साधारण और निमित्त ये तीन कारण मानें हैं तो अब देखो यहां विचार करो कि उपादान कारण तो प्रकृतिको मानोगे और साधारण कारण जो कि क्रिया आदिक उसको मानोगे निमित्तमें ईश्वरकी इच्छा मानोगे तो अब हम तुम्हारेको पूछें हैं कि सबसे पहले जो संयोगकी क्रिया उसमें उपादान तो प्रकृति हुई निमित्त ईश्वर हुवा तो इस जगह असाधारण कारण कोई नहीं दीखता है तो जब असाधारण कारण माननाही असङ्गत हुवा तो तुम्हारे माने हुवे तीन कारणोंके विना कार्य नहीं होता है यह कहनाभी असङ्गत हुवा इस लिये शाश्वत अनादि मानना ठीकहै अब उस ईश्वरको अजन्मा निराकार इस जगत्से भिन्न मोक्ष भये हुये जीवसे न्यारा ईश्वर माननेमें तुम्हारा प्रमाण क्या है? मुक्त हुवे जीवसे भिन्न ईश्वरका होना किसी युक्तिसे सिद्ध नहीं कर सकते और न कभी हमको उसे प्रत्यक्ष दिखा सकते होतो हम कैसे मानलें कि मोक्ष हुए जीवोंसे अतिरिक्त कोई ईश्वर है। जो तुम कहो कि ईश्वर घट पटकी तरह भौतिक पदार्थ नहीं है जिसको हम तुमको प्रत्यक्ष दिखलावें क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंसे तो उसका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होताहै अथवा कर्तृत्वादि गुणोंसे ईश्वरका ज्ञान हमको हुवा है क्योंकि स्वाभाविक गुणोंके प्रत्यक्षसे गुणोंकी प्रत्यक्ष युक्ति सिद्धहै. अब हम तुमको पूछते है कि किन गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे ईश्वरके गुण

प्रत्यक्ष होते हैं? जो तुम कहो कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना देखकर हम ईश्वरको कर्त्ता मानते हैं. तो हम तुमको पूछते हैं कि पहलेही हमने तुम्हारे ईश्वरको तुम्हारी पुस्तकके मंत्रसेही निर्गुण ठहराया है तो फिर गुणोंसे गुण प्रगट होतहैं ये कहना तो तुम्हारा असम्भवही है। जो तुम ईश्वरको सत् चित् आनन्दरूप मानते हो तब सृष्टिके रचनमें वा पालन करनेमें वा प्रलय करनेमें जीवोंके कर्मोंके फल देनेमें इत्यादिक कामोंमें आनन्दके वदले महादुःखरूप दिनरात व्यग्र सोचमेंही वना रहेगा जो तुम कहो कि वो सर्वशक्तिमान् है तो जो अन ईश्वरवादी अर्थात सृष्टिका कर्त्ता ईश्वरको न माननेंवालोंके साथ झगड़ा भी करता होगा? जो तुम कहो कि अनुमान उपमान आगमसे अर्थात् शब्द प्रमाणसे सिद्ध करेंगे तो हम कहे हैं कि जबतक प्रत्यक्ष प्रमाण न होगा तो अनुमान वा उपमानभी नहीं बनेगा क्योंकि देखो जिस पुरुषने अग्निसे धुआंनिकलता प्रत्यक्ष नहीं देखा है उस पुरुषको धूम देखनेसे अग्निका अनुमान कदापि न होगा ऐसेही जिस पुरुषने गऊका स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं देखा उसपुरुषको जंगलमें जानेसे गवयको देखकर कदापि उपमान प्रमाण नहीं बनेगा क्योंकि पहिले स्वरूपको उसने जाना नहीं और जो आगमोंसे सिद्ध करोगे अर्थात वेदोंसे सिद्ध करोगे तो वेदभी उसही ईश्वरके किये हुये मानतेहो तो जब तुम्हारा ईश्वर सिद्ध हो चुकेगा जिसके वाद उसके कहे हुये वचन अर्थात् वेदका प्रमाण मान्या जायगा क्योंकि खुड़ा अर्थात् भीत नाम दीवार होगी तो चित्राम रचा जायगा जहां दीवार नहीं तहां चित्रामका संभव कहां! जो तुम कहो कि पृथ्वी आदिकका बनाने वाला कोई ईश्वरहै तो अब हम तुमको पूछते हैं कि वह जो सृष्टिका रचने वाला ईश्वर है सो शरीर वाला है अथवा अशरीर वालाहै जो वह शरीर वाला है तो क्या हमारा सा शरीर विशिष्ट वा पिशाचोंका सा अदृश्य शरीर विशिष्ट है? अब देखिये प्रथम पक्षको तो प्रत्यक्ष वाधा है क्योंकि प्रत्यक्षमें तो ईश्वर दीखता नहीं और कार्य उसका बनाया हुवा तुम प्रत्यक्ष दिखाते हो क्योंकि घास, वृक्ष, पुरुष, अभ्रा, धनुप, कार्य दीखते हैं क्योंकि प्रमेय होनेसे यह तो तुम्हारा अनेकान्त हेतु हुवा। दूसरे पक्षमें अशरीरी मानोंगे तो उस ईश्वरका कुछ माहात्म्य विशेष कारण है अथवा हमारे लोगोंके कर्मोंको वैगुण्य अर्थात् हमारे शुभ अशुभ कर्मोंसे नहीं दीखता है तो प्रथम पक्षसे तो तुमको सौगंध खानेसे होगा क्योंकि प्रमाणका अभाव है दूसरा इतरेतराश्रय अर्थात् अन्योन्याश्रय दोषभी होता है क्योंकि उसका विशेष माहात्म्य जब सिद्ध होगा जब उसका अदृश्यपन सिद्ध होगा जो पेश्तर अदृश्यत्व सिद्ध हो जाय उसके वाद महिमा सिद्ध होगा और द्वितीय पक्ष कि जो हमारे कर्मोंके शुभ अशुभसे विचार करे तो सन्देह नहीं दूर होगा क्योंकि वांझाके पुत्रके समान यह सत्य है या असत्य या हमारे कर्मोंका दूषणहै या उसका अदृश्यत्वहै इसमेंभी प्रमाण कोई नहीं और जो तुमने कहा कि निराकार है तो हेतु विरुद्ध है क्योंकि घटादि कार्य शरीरवालेके किये हुये दीखें हैं और अशरीरसे कार्यमें प्रवृत्ति होना मुशकिल है आकाशकी तरह जैसे आकाश अरूपी वस्तु कोई कार्य्य नहीं कर सकती इस लिये तुम्हारा शरीर अशरीर दोनो पक्षोंमें युक्ति सिद्ध न हुवी औरभी देखो वृक्ष विजली और बद्दल धनुपादि उत्पन्न होना विनाश होना दीखता है और उसका कर्त्ता कोई नहीं हुवा। अब

एक बात हम तुमसे और पूछते हैं कि जगत्‌की रचना करनेमें एक ईश्वर है या कई ? जो तुम कहो कि एकही ईश्वर है बहुत होनेसे एक कार्यमें प्रवृत्त होनेसे असमंजस हो जायगा क्योंकि किसीको केसेही समझमें आवेगा और किसीको केसेही तो यह भी तुम्हारा कहना अयुक्त है क्योंकि देखो कि अनेक किड़ी अपने बिलादिकको मिलकर बनातीहै अथवा कई कारीगर मिलकर मकानको बनातेहैं अथवा अनेक मक्खी मधुछत्ताको मिलकर रचती हैं तो उसमें तो कोई असमंजस नहीं दिखलाई देता, खैर! अब तुम एकही ईश्वरको मानो तो जो तुम्हारी ईश्वरके ऊपर ऐसीही प्रीति है तो तुम्हारे जुलाहे धुना आदिक इन सबोंके किये हुवे घटादि कार्य हैं इनकोंभी क्यों नहीं ईश्वर कृत मान लो। जो तुम कहो कि इनका तो कर्ता प्रत्यक्ष देखनेमें आता है तो क्योंकर ईश्वरको कर्ता मानलें तो हम जाने हैं कि जो कार्य तुम्हारे देखनेमें नहीं आते उनको ईश्वरके किये मानते हो तब तो तुम्हारी बड़ी चतुरता है क्योंकि जैसे कोई एक धनवाला था सो कृपणपनसे अर्थात् मूंजी होनेसे अपने जो पुत्र भाई स्त्री अपने स्वजनोंको धनके खर्च हो जानेके भयसे छोड़कर जंगलमें जायसा अब हम तुमसे एकबात और पूछते हैं कि वो जो सर्व व्यापक है सो भी नहीं बनता है शरीर आत्मासे व्यापक है अथवा ज्ञान आत्मासे ? जो पहला पक्ष अङ्गीकार करोगे तो भी जगत्‌में व्यापक होनेसे और पदार्थोंको अवकाश नाम जगह ही नहीं मिलेगी, दूसरे पक्षमें हम भी ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अतिशय करके ज्ञानात्मा परम पुरुष तीन जगत्‌की क्रीडा अर्थात् रचनाको देखता हुवा जो तुम ऐसा अंगीकार करोगे तब तो ठीक है परन्तु वेदसे विरुद्ध होगा क्योंकि तुम्हारे यह ऐसी श्रुति कही है कि "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतस्पादित्यादि" ॥ ऐसा कहे हैं जो तुम कहो कि विश्व देशान्तर स्थित हो करके अन्य देशकी यथावत पदार्थोंकी रचना करे ऐसा नहीं हो सके ऐसा तो हम तुमको पूछे हैं कि जगत्‌को बनाया है तो पित्यादिवत् देह व्यापार करके बनाया है अथवा संकल्प मात्र करके बनाया है? पहले पक्षमें तो पहाड़ आदिक बनानेमें तो बहुत कष्टसेर हुवा होगा और उस ईश्वरको बड़ी मिहनत और मजदूरी करके बनाना पड़ा होगा जो तुम कहो कि संकल्प मात्रसेही जगत्‌को बना दिया है तब तो एक देश बैठा हुवा ही बनाया तो कोई दूषण नहीं था अब देखो जो सामान्य देवता आदिक हैं सो संकल्प मात्रसेही सर्व कार्य कर लेते हैं अब एक और भी सुनो कि जो उस ईश्वरको सर्व व्यापक मानोगे तो अशुचि निरंतर उसका वासभी होगा नरकादिकोंमेंभी उसकी रोज सुना जिससे होगी अथवा ... मानते होंगे तब तो कोईभी ऐसा स्थान नहीं कि उसको निश्चय दुःखके सुख लिये जो तुम ऐसा कहो कि तुम्हारेभी ज्ञानात्मा तीन जगत्‌में प्राप्त होता है तब अशुचिका आस्वादन तुम्हारेभी ईश्वरको प्राप्त हुवा और नरकादि दुःख पानेका प्रसंग हुवा। अब हम तुमको कहे हैं कि तुम्हारेको उत्तर देना तो न आया परन्तु गुलाबकी तरह ... तो उड़ने लगे क्योंकि देखो हमारे यहां तो स्वाभाविक ही ज्ञान करके विषयको ... हुवा न कि ... कार्य सब तुम्हारा अशुचि हमारे माने ईश्वरको ... हुवा अर्थात् ... न हुई ... यदि तुम लोगोंको अशुचिज्ञान मानसेही उसका ... होना है तो जो ऐसा है तो हुवा, चींटी, कौड़ी ... बिल्डान

करनेहीसे तृप्ति हो जायगी फिर उसका यत्न करना निष्फल होगा इसीलिये ज्ञानात्मा सर्वव्यापक सिद्ध हुवा कदाचित् तुम कहोगे कि वो सर्व शक्तिमान् है चराचरको रचता है तो जिस समयमें उसने संसार रचाया उस समयमें उसको ज्ञान न हुवा कि इनको मैं रचूंगा और यह लोग मेरे शत्रु हो जावेंगे पहले रचदिया और पीछे उनको बुरा कहना इसलिये जो उनको नहीं मानने वाले हैं उनको पेश्तरही क्यों रचा और जो उसने रचा तो सर्वज्ञ नहीं हुवा अब हम तुमसे यह और पूछते हैं कि उस ईश्वरने जगत्को स्वाधीन रचा है या करुणा करके रचा है तो जब स्वाधीन पनेसे रचा है जब तो जीवोंको सुख दुःखका होनाही असंभव है और जो उनको सुख दुःख होता है तो विचारोंको क्यों नाहक् रच दिया जो तुम कहो कि अगले जन्मके किये हुये शुभ अशुभ कर्मोंके होनेहीसे उनको दुःख सुख ईश्वर देता है जो ऐसा है तो स्वाधीन सृष्टि रचीयी इस कहनेको जलांजलि देनी पड़ेगी जैसे कि किसीने कहा कि गधाके सींग हैं ऐसे तुम्हारा कहना स्वाधीन हुवा इसलिये कर्मजन्यसेंही अर्थात् कर्मोंसेही इस जगत्की नाना प्रकारकी रचना माननी ठीक है ईश्वरकी कल्पना करना निष्फलही है क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष विचार करते हैं तो प्राणियोंको अर्थात् जीवोंको धर्म अधर्मसेही इस जगत्में दुःख सुख नाना प्रकारके प्राप्त होते हैं सो इन शुभ अशुभ कर्मोंहीसे सृष्टि होती है. कर्मोंकी अपेक्षा करके जो ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानोगे तो कर्महीको ईश्वर मानलो ॥ अब दूसरे पक्षमें जो करुणा नाम दयासे जगत् बनायाथा तो वह दया क्या ठहरी वह तो बिलकुल निर्दया प्रतीति होती है क्योंकि सर्प, विच्छू, मच्छर, डांस, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, अनेक जातिके पशु आदिक अथवा वृक्ष आदिकोंमें कांटे वाले वृक्ष अथवा धतूरे आदिक इत्यादि अनेक प्रकारके दुःख देनेवाली चीज़ोंको क्यों उत्पन्न कीयी? जिसके जीमें दया होती है वह सर्वको सुख देनेके सिवाय दुःखकी जड़ मात्रकोभी उखाड़कर फेंक देता है तो अब देखो जिसको तुम दयालु कहते हो उन्होंने कैसी २ अनेक जीवोंको दुःख देनेवाली चीजोंको पैदा किया है तो इससे तुम्हारा दयालु ईश्वर न ठहरा। अब हम तुमसे यह और पूछते हैं कि जगत् रचनेका ईश्वर में स्वभाव है अथवा अस्वभाव है, जो प्रथमपक्ष अङ्गीकार करोगे तो जगत्को बनाते २ एक क्षण भी उसको सुभीता न मिलेगा और जो वह विश्राम लेगा तो इसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा नानाप्रकारके जो पदार्थ रचनेको मानते हो सो भी नहीं बनता है क्योंकि जब वह पहाड़ वा वृक्ष आदिक अथवा सड़क आदिको बनाना जिस काम में लगेगा उसी काम में स्वभाव है और जब दूसरे काम में लगेगा तो उसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा अस्वभाव मानोगे तो जगत्को रचता है यह रचने का स्वभाव ही उस में नहीं है क्योंकि जैसे आकाश कुछ नहीं है औरभी देखो कि जो उसमें रचने की शक्ति है सो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि नित्य है तो जिस ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है उस ईश्वर से प्रलय भी नहीं होगा क्योंकि उसकी शक्ति अनित्य हो जायगी नित्य नहीं रहेगी जो कहो कि प्रलय करनेवाले ईश्वरको जुदा मान लेंगे तो हम तुमको कहें हैं कि एक तो रचनेवाला दूसरा प्रलय करनेवाला उन दोनोंके आपस में ऐसा झगड़ा होगा जैसा १९४२ के वा १९४३ के साल में झगड़ा हुवा था सो वे तो

देष नहीं है ऐसा तुम खुदही मानते हो और जो तुम कहो कि अंगीकार करें तो हम तुमसे पूछते हैं कि क्या ईश्वरने तुमको ऐसा कहा कि मंत्रभागके सिवाय और वेद असत् हैं जो तू अर्थ करेगा सो तो मेरे वेदका ठीक होगा और जो तेरेसे पहले मुनियोंने जो भाष्य और व्याख्यान है सो वह उनका किया ठीक नहीं ६ अंग और ६ उपांग मनुस्मृति आदिक ब्रित् महाभारत उनमें भी जिसको तू मानेगा वह अंश तो ठीक है अलावह उसके उपांग आदिकोंमें भाषा टीका स्मृति, पुराणादिक सब अशुद्ध हैं तेरे माननेके हैं इत्यादिक बातें सुषुप्तिमें कहीं या स्वप्नमें या जागृत अवस्थामें कहीं जो कहो कि में कहीं तो यह कहना तुम्हारा नहीं बनता क्योंकि सुषुप्तिमें सोये हुये पुरुषको किसी तरहकी खबर नहीं रहती है उसहीका नाम सुषुप्ति है, क्योंकि जागकर पुरुष कहता है में आज ऐसा सोया कि निद्रामें कुछ खयाल न रहा जो कहो कि स्वप्नमें आकर कहा यो स्वप्नमें ईश्वर साकारथा कि निराकारथा जो स्वप्नमें साकार होकर कहा तब तो रा ईश्वर निराकार माना हुवा गधाका सींग हुवा जो कहो कि निराकारने ही हमसे स्वप्नमें कहा है तो तुमको कैसे भान हुवा कि यह निराकार ही है अर्थात् ईश्वर है क्योंकि स्वप्न देखी हुई वस्तुका आता है और कोई स्वप्नकी बातका सनदभी न करे इसलिये स्वप्नभी [illegible] भरही है जो कहो कि जागृतमें हमको ऊपर लिखी बातें कहींथीं तो वह ईश्वर क्या [illegible] पक्षपाती बड़ा अन्याई ठहरा क्योंकि इतने महर्षि सैकडों हजारोंको कि जिनके वाक्योंको असंख्य मनुष्य मानते हैं उनकी बातोंका प्रमाण करते और उनके धर्मपर चलतेथे उनको सबको झूठा बनाकर तुम्हारेको कहा कि हम जानते हैं कि तुमने उसको कुछ रिशवतदी होगी अथवा अच्छे २ माल खिलाये होंगे अथवा तुमने उसका बड़ा उपकार किया होगा अर्थात् [illegible] हेसे बचाया होगा और पहले जो ऋषि मुनियोंने तुम्हारे माने हुये ईश्वरको शायद लकडियोंसे पीटा अथवा उसका धन ले लिया होगा इसीवास्ते तुम्हारी मिथ्या गप्पें चलरहीहैं "अहो इति आश्चर्य्यं पश्यतोहरः" कि सब ऋषियोंको झूठा बनाकर आप सच्चा बनता है जैसे सुनार [illegible] के देखते हुये चोरी करता है तैसे तू भी सब मुनियों ऋषियों, कि जो वर्तमानमें विवेकी पुरुष हैं उनके सामने वाक्यरूप चोरी कर रहा है और सत्यवादी बनता है अब हम तुम्हारेको इतना और पूछते हैं कि जब तुम्हारा माना हुवा ईश्वर ही किसी युक्तिसे सिद्ध न हुवा तो उसका बनाया हुवा वेद क्योंकर प्रमाण होगा जिस जगह पर पुरुष प्रमाणिक नहीं है उसका वाक्य क्योंकर प्रमाण होगा मित्र ! अब हम यह तुमको पूछते हैं कि यह जो वेद है सो किसी पुरुषका बनाया हुवा है अथवा अपौरुषेय है जो पुरुष का बनाया हुवा है तो सर्वज्ञकृत है या असर्वज्ञ कृत ! प्रथमपक्ष कहो तो देखो कि तुम्हारे यहां सिद्धान्तोंमें क्या है कि – "अतीन्द्रियाणामर्थानां साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते । नित्येभ्यो वेद वाक्येभ्यो यथार्थ विनिश्चयः" अब दूसरा पक्ष असर्वज्ञ कृत मानोगे तो असर्वज्ञके वचनका प्रमाण किसीको नहीं है जो कहो कि अपौरुषेय है तो यहभी कहना असंभव है क्योंकि घोडेके सींग और

● [illegible] को [illegible] है।

आकाशके फूल जैसा अपौरुषेयका वाक्य है क्योंकि वेदका तुम वर्णात्मक मानते हो तो वर्णात्मक जो है सो विना कण्ठ, तालु, मुखके उच्चारण कदापि न होगा तो जैसे और कुभार संभवादि जो वर्णात्मक रचना है सोही वेदोंमें वर्णात्मक अक्षरोंकी रचना है सो क्या पुरुष विना इन वर्णोंका उच्चारण होगा ? इसलिये ये वेद ईश्वरकृत नहीं हैं इसका कर्त्ता कोई पुरुष विशेष देहधारी किसी धूर्तका बनाया हुवा है उसने अपना नाम नहीं रक्खा और ईश्वरके नामसे प्रसिद्ध किया है। अब हम तुमको यह बात पूछते हैंकि तुम वेदको ईश्वर कृत वारवार कहते हो तो वेद शब्दका अर्थ क्या है देखो " विद् ज्ञाने " धातु है जिससे वेद शब्द सिद्ध होता है क्योंकि " विदन्ति येनासौ वेदः " इसका अर्थ यह है कि जिस करके मनुष्य सब कुछ पदार्थको जाने अर्थात् वेद तो वेद नाम ज्ञानका है तो ज्ञान तारतम्यता करके सर्व मनुष्योंके हृदयमें अनादि अर्थात् सनातन समवाय संबन्ध करके जीवात्माका गुण है परन्तु किसी जीवात्माका कर्मोंका तिरोधान होनेसे ज्ञानका आविर्भाव होता है किसी जीवात्माके कर्मोंके जोरसे तिरोधान अर्थात् छुपा हुवा रहता है तो जब इस शब्दसे वेद नाम ज्ञानका सिद्ध हुवा तो जीवात्माका वाक्य है सोही वेद है इस अर्थसे ऐसा कदापि न होगा कि ऋग्वेद, यजुरवेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार पुस्तक वेद हैं और नहीं; सो नहीं हो सकता क्योंकि देखो जिन पुस्तकोंको तुम वेद करके मानते हो तैसेही सर्व मत वाले जो कि उनके मुख्य आचार्य्य हुये हैं उनके कहे हुवे वाक्योंको वेदही मानते हैं तो अब देखो तुम्हारे माने हुये ईश्वर कृतका वेद, और उनके माने हुये वेद नहीं ऐसा कहना तो तुम्हारा जैसे बाज़ारकी कूजड़ी वेचने वाली कहती है कि मेरा वेर मीठा औरोंका खट्टा है ऐसा हुवा क्योंकि तुम्हारे कहनेसेही नहीं हो सकेगा किन्तु विवेकी पुरुष तो युक्ति सिद्धसे अंगीकार करते हैं अब देखो जब कि ईश्वरकृत होगा तो उस वाक्यमें विषमवाद कभी नहीं होता क्योंकि देखो ईश्वरको तुम पिताके तुल्य स्वामीके तुल्य मानते हो और उपकारके वास्ते उसने वेद बनाया है तो उस ईश्वरने एक जगह तो कहदिया कि मांस खाना अच्छा नहीं महापाप है क्योंकि "माहिंस्याः सर्वाणि भूतानि" इसका अर्थ यह है किकिसी प्राणीको दुःख न देना किसीको न सताना किसीको न मारना, सर्वको अपने बराबर जानना, मांसादिक भक्षण न करना, मांस खानेमें पाप है। दूसरी जगह कहता है कि होम करके मांसादिक खाय तो कुछ दोष नहीं है ऐसा प्रथम बनाये हुये सत्यार्थप्रकाशके दशवें समुल्लास ३०२ के पन्नामें लिखा है इसका वृत्तान्त तो हम आगे लिखेंगे यहां तो सिर्फ़ वेदके वचनोंका विरोध दिखलानाथा और फिर उसी पुस्तकके चतुर्थ समुल्लासमें १४९ के पन्नामें ऐसा लिखा है कि जो चीज आप खाय उसीसे होमादिक करे और गऊका यज्ञादिक करे और देव पितृ आदिकोंकोभी मांस आदिकके पिंड देनेमें कुछभी पाप नहीं है! फिर दूसरी जगह ऐसा लिखा है कि जो पशु मनुष्योंका उपकार करें उनको नहीं मारना चाहिये यह वृत्तान्त पन्ना ३०२ उसी पुस्तकमें लिखा है सो इसका खण्डन मण्डन तो आगे करेंगे लेकिन् इस जगह तो जो वेदको तुम मानते हो सो वेद ईश्वरकृत नहीं ठहरता किन्तु आपसमें वचन विरोध होनेसे जो तुम्हारे दिलमें बात आई उसको मान लेनी और जो न मनमें आई उसको न माना ऐसेही किसी धूर्त्तने तुम्हारे वेदको रचा

होगा न तु ईश्वरकृत् अब तीसरा तुम्हारा मन्तव्य मानना है सोभी ठीक नहीं है ॥ ३ ॥

"जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को "धर्म" और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञा वेद विरुद्ध है उस को अधर्म मानता हूँ" ॥ जो तुमने ईश्वराज्ञा और वेद से अविरुद्ध को धर्म; इससे विपरीत उसको अधर्म ऐसा माना यह तुम्हारा मानना ठीक नहीं कि जिसको तुमने ईश्वर माना उस ईश्वर का ही किया हुवा वेद और वो ईश्वर दोनों सिद्धि न हुये तो उसकी आज्ञा और उसके कहे हुवे वेदका धर्म क्योंकर ठीक इसवास्ते "वीतराग" सर्वज्ञ का ही कहा हुवा धर्म ठीक होगा इसवास्ते जैनियों शरण लेवो और पाखण्डको छोड़ कर अपनी आत्माका कल्याण करो और चौथे में जो तुमने जीवका लक्षण लिखा है जिसमें ज्ञानादि नित्य गुण सो तो ठीक परन्तु इच्छा, द्वेष, दुःख और अल्पज्ञ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि इच्छा, द्वेष, दुःख अल्पज्ञता कर्मोंके संयोग से है जब कर्म का संयोग दूर हो जायगा तो वोही जीव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द रूप हो जायगा ऐसा मानना ठीक है और पांचवें मन्तव्य में जो ईश्वर जीव में भिन्नता मानी सो भी असङ्गत है क्योंकि जब तक कर्मों का संयोग है तब तक जीव संज्ञा है कर्मों का संयोग मिट जायगा तब वही जीव ईश्वर हो जायगा उस ईश्वर से अतिरिक्त ईश्वर मानना असङ्गत है छठे मन्तव्यमें जो अनादि तीन पदार्थ माने हैं सो भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जीव और अजीव इन दोनो पदार्थोंके अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नहीं जो तुमने ईश्वरको तीसरा पदार्थ माना है सो तो तुम्हारा ईश्वर ही सिद्ध न हुवा सातवां मन्तव्य जो प्रवाह से अनादि माना है, जिन द्रव्योंमें संयोग और वियोग होनेका स्वभाव है वो सदासे ही अनादि है और आठवां मन्तव्य जो सृष्टि मानी है कि पृथक् द्रव्योंका मेल करके नाना रूप बनाना यह भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जिनमें संयोग वियोग होनेका स्वभाव अनादि है उनका दूसरेसे मेल बनना ये असम्भव ही है देखो जैसे मिश्रीमें मीठापन स्वभावसे ऐसा है अब उसको कोई निर्विवेकी कहने लगे कि हलवाईने मिश्री मीठी करी है इसलिये यह मानना भी असङ्गत है। अब नवां मन्तव्य जो कि सृष्टिका प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुन, कर्म, स्वभावका साफल्य होना जैसे किसीने किसीसे पूछा कि नेत्र किसलिये है उसने कहा देखनेके लिये हैं वैसे ही सृष्टि करनेके ईश्वरके सामर्थ्यकी सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवोंके कर्मोंका यथावत् भोग करना आदि भी ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुणकर्म स्वभावका सफल होना ऐसा जो तुमने माना है तो ईश्वरको बड़ा भारी कलङ्क लगाते हो क्योंकि सृष्टिके बनानेमें तो उसकी सफलता हुई और जो सृष्टि नहीं बनाता तब तो उसका ईश्वरपनाही नहीं रहता तो हम जानते हैं कि वह ईश्वर क्या ठहरा तुम्हारा बड़ा भारी मजूरया जो वह तुम्हारी सृष्टिकी मजदूरी न करता तो तुम उसको ईश्वर भी न मानते; अब देखो कि उस ईश्वरको कैसा तुमने बना। कि जैसे कोई वृद्ध पुरुष बालकको आकाशमें फेंककर अपना सिर उसके नीचे

वक्ता, धर्म्मात्मा, सबके सुखके लिये प्रयत्न करता है उसीको " आप्त " कहता. ३९ वां " परीक्षा पांच प्रकारकी है इसमेंसे प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव वेद विद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण; तीसरी सृष्टि क्रम; चौथी आप्तों का . . और पांचवीं अपने आत्माकी पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षा ओंसे सत्याऽसत्यका . य करके सत्यका ग्रहण असत्यका परित्याग करना चाहिये ॥ अब ४० से लेकर ५१ जो मन्तव्य है उसको निष्प्रयोजन होनेसे इस जगह उसका विचार नहीं किया ॥

अब तुम्हा रा १२ वां मन्तव्य जो कि मुक्ति विषयमें तुमने लिखा है कि मुक्ति गया . मनुष्य भी कुछ काळके बाद आनन्द भोगकर फिर संसारमें आता है तो हम तुमके पूछें हैं कि क्या उसको प्रकृति अर्थात् अज्ञान अविद्या खेंचकर लाती है वा वोही आप नी इच्छासे चला आता है अथवा मुक्त जब होता है तब उसमें अविद्याका लेश बना रह ता है वा ईश्वर ही उसको जगत्में अर्थात् संसारमें जन्म मरण करता है इन चार विकल्प से हम तुमको पूछते हैं प्रथम पक्ष जो तुम अङ्गीकार करोगे जब तो वो जो तुम्हारी प्रकृति अर्थात् अविद्या जड़पदार्थ है तो जड़पदार्थ तो तुम्हारे मतमें तुम्हारे कहनेसे कुछ करही नहीं सकता तो इससे तो वो मुक्त हुवा जीव संसारमें आना ये बातें बनती ही नहीं है द्वितीय पक्ष अङ्गीकार करो तो वो भी तुम्हारा मानना युक्तिसिद्ध नहीं होता है क्योंकि जो जीव मुक्त हुआ है तो पहले जन्म मरणके दुःखसे छूटनेके लिये तब, जब यो- गाभ्यास ज्ञानादि अनेक साधनोंसे अविद्याको दूरकर अनादिकालका जन्ममरण था उसको मिटायकर अपने स्वरूप आनन्दको प्राप्त होकर फिर वह जानता हुवा इस संसारके जन्ममरणरूपी दुःखकी वाञ्छाकर क्योंकर निर्विवेक होकर इस संसारमें आवेगा और जो कदाचित् उसका संसारमें आना मानोगे तो उसका जो पहले लिखे हुवे साधन उनसे जो उत्पन्न हुवा ज्ञानादि विवेक सो सर्व निष्फल हो जायगा अब देखो जैसे कोई पुरुष अन्धा था और वह नेत्रोंके न होनेसे अनेक तरहके मार्गमें दुःख पाता था और बहुत दुःखी था अब उस पुरुष को सत्गुरु डाक्टर जराह आदिके मिलनेसे उसके नेत्रमें जो धुन्धरूपी मैल था सो दूर हो गया और आंखें उसकी दिव्य हो गईं और सब वस्तु उसको यथावत् दीखने लगी अब कहो वह पुरुष जिसको नेत्रोंसे अच्छी तरह दीखने लगा कांटोंके झाड़में अथवा कूँवादिमें क्योंकर पड़ेगा अर्थात् कदापि नहीं पड़ेगा क्यों कि उसको पहले अन्धेपनेमें पड़कर जो दुःखका किया हुवा अनुभव उसके चित्तमें स्थिर है तो यहां पक्षपात छोड़कर विचार करो कि जिसको अपना स्वरूप ज्ञान हुवा वह संसार में फिर क्योंकर आवेगा अब देखो सत्यार्थप्रकाशके नवें समुल्लास ॥ २९४ ॥ के पन्ने में ऐसा लिखा है कि " जब इसका जन्म मरणादिक कारण जो अविद्यादिक दोष उनसे किये गयेथे जो कर्म के भोग सब नष्ट हो जाते हैं और आगे जो कर्म किये जाते हैं सो सब ज्ञान ही के लिये करता है सो अधर्म कभी नहीं कर्ता किन्तु धर्म ही करता है उससे ज्ञान फल ही वह चाहता है अन्य नहीं फिर उसके जन्म मरण का जो मूल अविद्या सो ज्ञान से नष्ट हो जाता है फिर वो जन्म धारण नहीं करता " अब देखो तुम ही विचार करो कि जब वोह जन्म धारन नहीं करता है तो वो फिर संसार में क्योंकर आता है ? अब जो वह आता है

तो तुम्हारा सत्यार्थप्रकाश का लिखना कैसा हुवा कि जैसे मथुराके चौबेलोग भाँग पीकर गप्पें ठोकते हैं अर्थात् निष्प्रयोजन गाल वजाते हैं इसलिये इस जगह तुम्हारी मुक्तिका आना सिद्ध न हुवा और भी देखो यहां विचार करो कि कारणके नष्ट होने से कार्य कदापि उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि देखो जन्म मरणरूप जो संसार कार्य है सो उसका कारण अज्ञान अर्थात् अविद्या है सो ज्ञान से नष्ट होगया तो सादि अनन्त मोक्ष जीवके वास्ते सिद्ध होगया । जो अब चौथे ४ पक्ष में कहो कि नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्द भोग कर लेता है जब फेर ईश्वर संसार में उस मुक्त जीवको लाय कर जन्म मरण कराता है जो ऐसा कहो तो वह ईश्वर न ठहरा किन्तु अन्यायी, पक्षपाती, निष्प्रयोजन जीवोंको दुःख देने में तत्परहुवा उसकी दयालुता न रही और न्याय भी न रहा क्योंकि देखो वेद भूमिका सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथों में सृष्टिकी उत्पत्ति में लिखते हो कि अगाड़ी सृष्टिके जो जीवों में कर्म थे उनके अनुसार सर्व जीवों को जैसा जिस जीव का कर्म है वैसाही रचता हुवा जब तुम ऐसा मानते हो तो उन मुक्त हुवे जीवों में कोईतरह का कर्म वा अविद्या अथवा अज्ञान रहा ही नथा तो फिर उन मुक्त जीवोंको किस निमित्त संसारमें ईश्वरने रचा जो विना निमित्त कारणके मुक्त जीवोंको संसार में रचा तो तुम्हारे कहनेसेही ईश्वर जो है सो निर्विवेकी अज्ञानी निर्दयालु सिद्ध होगया जो तुम कहो नहींजी वो तो सर्वज्ञ दयालु, न्यायकारी ईश्वर है तो मुक्त जीवोंको विना कारण संसारमें रचता है तो तुम्हारेको वचन व्याघात दूषण आता है " ममसुखे जिह्वा नास्ति " अर्थात् मेरे मुखमें जिह्वा नहीं है अब विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार करते हैं कि देखो इसके मुखमें जिह्वा तो है नहीं तो फिर वह बोलता कैसे है ऐसे ही तुम लोगोंको भी विचार करना चाहिये कि जब ईश्वर कर्मके अनुसार जीवोंको योनि वा शरीर देता है तो फिर मुक्त हुये जीवोंको संसारमें रचना ईश्वरमें न्यायका असंभव होता है अब जो तुमको अपनी आत्माके कल्याण करनेकी इच्छा है तो इस कपोलकल्पित मतको छोड़कर जो सर्वज्ञ "वीतराग" देवने मोक्षका वर्णन किया है उसीको अंगीकार करो अब जो तुम कहो कि मोक्ष हुवे जीवोंको फिर संसारमें आना न मानें तो मोक्षमें बहुत जीव इकट्ठे होनेसे मोक्ष भर जायगा और संसार खाली हो जायगा और सृष्टि क्रम न रहेगा और कोई ईश्वरको न जानेगा और हरिद्वारके मेलेमें जैसे भड़दल हो अर्थात् भीड़ भाड़का अथवा धक्का मुक्की होने लग जायगी इसलिये मोक्षसे आना ही ठीक है अब देखो कि ऐसी २ तुम्हारी बातें सुन करके हमारे जीमें बड़ी करुणा आती है कि जे विचारे आर्य्यसमाज वाले कैसे भोले अर्थात् समाजके भ्रमजालमें फँसकर कैसी निर्विवेकता बुद्धिकी कल्पनाकर आत्म अनुभव रहित बुद्धिमत्ता दिखलाते हैं अजी कुछ विचार तो करो क्या तुमने भी जैसी मुसलमान या ईसाई, वल्लभकुली आदिकों कीसी मुक्ति अर्थात् मोक्ष तुम्हारे ईश्वरने भी मकान बनारक्खा दीखे, सो भर जायगा तो फेर दूसरा मकान बनाना पड़ेगा तो अब देखो मुसलमान ईसाई लोगोंके तो बीबी और मेम मिलती हैं क्या तुम्हारे भी ऐसी औरतें मिलतीं सो मोक्ष भरजायगा ऐसा तो तुम मानते ही नहीं हो क्योंकि जिस समयमें जो जीव मोक्ष होता है उसके स्थूल कारण शरीरादि अथवा पुण्य पापादिक अथवा परमाणु आदिक

कुछ नहीं रहता खाली ईश्वरमें व्याप्य व्यापक भाव करके ईश्वराधारसे अपनी
अनुसार सब जगद विचरता है तो फिर मोक्ष भर जायगा ऐसा कहना आकाशके फूल
हुवा। दूसरा जो तुम कहते हो कि संसार उच्छेद हो जायगा तो हम जानते हैं
नन्द सरस्वती जीने कहीं जीवात्माकी गणना अर्थात् गिनतीभी गिनकर किसी
लिखी दीखे इसलिये संसारका उच्छेद हो जायगा सो तो तुम्हारे वेद मंत्रोंमें
दीखती है नहीं तो फिर अपनी मनकल्पना करके संसारका उच्छेद हो जायगा
स्वमति कपोल कल्पना करके क्यों अविद्या अज्ञानको बढ़ाते हो देखो सर्वज्ञका वचन
कि संसारमें घटे नहीं और मोक्षमें बधे नहीं तो इस सर्वज्ञके वचनका अभिप्राय
कठिन है क्योंकि देखो यहां एक दृष्टान्त देते हैं:—कि संसारमें पानी अर्थात् वृष्टि हरसा
होती है उस पानीके प्रवाह (बहने) से मट्टी और पत्थरभी बहुत बहते हुवे बड़ी २ नदि
योंमें जाते हैं और वह नदी समुद्रकी खाड़ियोंमें जाती हैं और वह खाड़ी समुद्रमें जा
हैं तो उस पानीके सङ्गमें लाखों करोड़ों मन पत्थर मट्टी आदिकभी बह जाती है तो अ
देखो कि इस आर्यवर्त्त या किसी और विलायतमें खाड़ा या गढ़ा नहीं होगया अथ
जे कुछ पातालमें नहीं चले गये और वह समुद्र उस मट्टी पत्थर आदियोंसे भरभी नहीं
गया अर्थात् ऐसा न हुवा कि समुद्र सूख करके निर्जल हो गया हो तो अब इस जग
अगर आत्मार्थी हो तो एक अंश लेकर अपनी बुद्धिमें विचार करे तो दार्ष्टान्त यथार्थ
मिलता है कदाचित् पक्षपाती होकर निर्विवेकतासे आत्माको डुमानेवाला अज्ञानरू
अभिमानमें चढ़कर जो न माने तो उपदेशदाताका कुछ दोष नहीं कदाचित् सृष्टिक्र
विगड़ जानेके भयसे जो मुक्त गया जीव आजाता है तो हम तुमको कहते हैं कि मुक्त हु
जीव फिर संसारमें आगया तोभी तो सृष्टिक्रम विगड़ गया क्योंकि देखो जो कि उपदे
देना और मुक्तिके जो साधन हैं उन करके सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी
प्राप्त होना यहभी तो तुम्हारे सृष्टिक्रममें है जब तो जैसाही किया और जैसाही न किय
सब निष्फल होगा क्योंकि कृतनाश अकृत आगम ये दूषण हो जायगा इसलिये ये ऐसाही
अंगीकार करो कि मोक्ष गया हुवा जीव फिर संसारमें नहीं आता है इसके माननेसे
सृष्टिक्रम नहीं विगड़ेगा और योगाभ्यास ज्ञानादि होनेसे अविद्या दूर होकर संसारकी
निवृत्ति हो जाती है इन साधनोंको निष्फलता न आवेगी अब जो कहो हरिद्वारकेसी भी
हो जायगी और धक्कामुक्की होगी ऐसा जो तुम कहो तो यहां कुछ बुद्धिका विचार करो
कि उस मेलामें कैसे मनुष्य स्थूल शरीरवाले इकट्ठे होते हैं जो सेरभर खावें और अढ़ाई
सेर विष्ठा करें निर्विवेक अज्ञानसे भरे हुवे अथवा दूकान्दारभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं
अथवा स्त्री आदिक तरकारी भाजी बेचनेवाली और बिसाती लोगभी बहुत इकट्ठे हो जाते
हैं जब ऐसी तुम्हारी मोक्ष है तब तो मुसल्मान ईसाइयोंसेभी बढ़कर ठहरा इसीलिये
तुम्हारे ईश्वरने ऐसा विचारा कि हरिद्वारमें तो अंगरेज लोग बन्दोबस्त करलेते है परन्तु
मैं तो अकेला हूं क्योंकर बन्दोबस्त करूंगा इसवास्ते मुक्त हुवे जीवोंको फिर संसारमें
ले आता है जैसे अंगरेज लोग न्हवा न्हवा कर कहते हैं कि "चलो" इससे मालूम होता है
कि कुछ अंगरेजोंके कानूनभी सीखे हैं इसीलिये दयानन्द सरस्वती अंगरेजोंकी बहुत

ष्ट करता है जो कहो कि ईश्वरको कोई नहीं जानेगा तो हम कहते हैं कि ईश्वरने पने जनानेके वास्ते निरपराधी मुक्त जीवोंको फिर संसारमें गेर जन्म मरण करना और पनी ईश्वरताको जनाना तब उस ईश्वरका न्यायकारीपन और दयालुता कहां रही योंकि वेतो विचारे निर्दोष, निरपराधी मुक्तिदशामें अपने आनन्दमेंथे उनको उस श्वरने जन्म मरणरूपी सृष्टिमें गेरकर उनको दुःखी करता हुवा आप तमाशा देख रहा और उसको कोई तरहकी दया नहीं आती तब वो ईश्वर क्या ठहरा एक जबरस्त शैतान ठहरा इसीलिये जो विवेकी पुरुष हैं सो ऐसे ईश्वरको न मानकर क्तिमें सदा आनन्दको प्राप्त रहते हैं फिर कभी उनका इस संसारमें कदापि आना नहीं गा अर्थात् कभी जन्म मरण करना न होगा परन्तु जिन्होंने ऐसा झूठा श्वर कल्पित बनाया है अर्थात् मान रक्खा है उन जीवोंको उस कल्पित ईश्वर माननेका ही उनके शिरपर दण्ड होगा कि अनेक कष्ट करके योगाभ्यास ज्ञानादि साधनोंसे मुक्ति ायकर फेर संसारमें जन्म मरण करना और दुःखोंको भोगना दिग् इति ॥

अब देखो जो तुम्हारा २४ वाँ मन्तव्य तीर्थ विषयमें है उसमें जो तुम तीर्थ नहीं मानते ो सोभी तीर्थ ठहरता है. अब देखो पक्षपात छोड़के कुछ विचार करो कि तीर्थ शब्दका अर्थ या है और किस धातुसे तीर्थ शब्द बना है तो अब देखो कि (तृप्लवन तरणयोः) इस धातुसे ीर्थ शब्द सिद्ध होता है तो इस शब्दका अर्थ क्या हुवा कि (तारयतीतितीर्थः) कि जो तारे सीका नाम तीर्थ है सो तीर्थ दो प्रकारकेहैं एक तो जङ्गम और दूसरा स्थावर तो जङ्गम ो उसे कहते हैं कि जो आत्मविद्याका उपदेश देनेवाले विद्वान् अर्थात् त्यागी विवेकी क्षपातसे रहित इस संसारको असार जानके अध्यात्मविद्यासे आत्म अनुभव जिन्होने िया है एक तो वो. नतु अज्ञानी, अनाचारी, वेषधारी, पक्षपाती, अध्यात्मविद्याके अजान मत्त ममत्वी, अर्थात् अपने मतके जालमें फँसानेवालेको तीर्थमें नहीं ॥ इस जङ्गम तीर्थको तो तुमभी अङ्गीकार करते हो सो इसमें तो हमको कहनेका कुछ जरूर नहीं ॥ दूसरा जो स्थावर तीर्थ उसको कहते हैं कि जो आचार्योंने पर्वतोंमे या अन्यभूमिमें श्रेष्ठ जानके अथवा जो मूर्ति आदिको स्थापन किया है ये दो प्रकारके तीर्थ हुवे इन दोनों तीर्थोंको मानना चाहिये अब इसी मन्तव्यमें जो तुम्हारे २१ मन्तव्यमें मूर्तिको "मैं अपूज्यमानताहूँ" सो अब हम इस स्थावर तीर्थ और मूर्ति पूजनको युक्तियों और प्रमाणसे सिद्ध करते हैं अब देखो विचार करो कि (तारयतीतितीर्थः) तो अब तरणरूप जो कार्य ठहरा तो इसमें कारणभी अवश्य होना चाहिये क्योंकि विना कारणके कार्य्यकी सिद्धि नहीं होती है तो कारण किसको कहते हैं और कारण कितने प्रकारके हैं, तो हम कहते हैं कि कारण दो प्रकारके होते हैं एक तो उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण इन दोनों कारणोंमेंसे एकभी कारण न्यून होतो कार्य कदापि नहीं होगा इसलिये दोनों कारणोंको अवश्यमानना चाहिये तो अब देखो इस जगह विचार करो कि स्थावर तीर्थ तो निमित्त कारण है और उपादान कारण जो जीव तरनेवाला उसका जो प्रमाण और कर्तव्य वो उपादान कारण है जो कहो कि वो स्थावर तीर्थ निमित्त कारण कैसे है तो देखो हम कहे हैं कि जो गृहस्थी अपने पुत्र कलत्र संसारी कार्यमें फँस रहा है उससे जो कोई कहे कि तुम एक मास तक

कुछ नहीं रहता खाली ईश्वरमें व्याप्य व्यापक भाव करके ईश्वराधारसे अपनी अनुसार सब जगह विचरता है तो फिर मोक्ष भर जायगा ऐसा कहना आकाशके फूल हुवा । दूसरा जो तुम कहते हो कि संसार उच्छेद हो जायगा तो हम जानते हैं दयानन्द सरस्वती जीने कहीं जीवात्माकी गणना अर्थात् गिनतीभी गिनकर किसी ग्रन्थमें लिखी दीखे इसलिये संसारका उच्छेद हो जायगा सो तो तुम्हारे वेद मंत्रोंमें दीखती है नहीं तो फिर अपनी मनकल्पना करके संसारका उच्छेद हो जायगा स्वमति कपोल कल्पना करके क्यों अविद्या अज्ञानको बढ़ाते हो देखो सर्वज्ञका वचन कि संसारमें घटे नहीं और मोक्षमें बधे नहीं तो इस सर्वज्ञके वचनका अभिप्राय कठिन है क्योंकि देखो यहां एक दृष्टान्त देते हैं:-कि संसारमें पानी अर्थात् वृष्टि हरसाल होती है उस पानीके प्रवाह (बहने) से मट्टी और पत्थरभी बहुत बहते हुवे बड़ी २ नदियोंमें जाते हैं और वह नदी समुद्रकी खाड़ियोंमें जाती हैं और वह खाड़ी समुद्रमें जाती हैं तो उस पानीके संगमें लाखों करोड़ों मन पत्थर मट्टी आदिकभी बह जाती है तो अब देखो कि इस आर्यवर्त्त या किसी और विलायतमें खाड़ा या गढ़ा नहीं होगया अथवा कुछ पातालमें नहीं चले गये और वह समुद्र उस मट्टी पत्थर आदियोंसे भरभी नहीं गया अर्थात् ऐसा न हुवा कि समुद्र पूरा करके निर्जल हो गया हो तो अब इस जगह आत्मार्थी हो तो एक अंश लेकर अपनी बुद्धिमें विचार करे तो दार्ष्टान्त मिलता है कदाचित् पक्षपाती होकर निर्विवेकतासे आत्माको डुबानेवाला अभिमानमें पड़कर जो न माने तो उपदेशदाताका कुछ दोष नहीं कदाचित् सृष्टिक्रम बिगड़ जानेके भयसे जो मुक्त गया जीव आजाता है सो हम तुमको कहते हैं कि मुक्त हुवा जीव फिर संसारमें आगया तोभी तो सृष्टिक्रम बिगड़ गया क्योंकि देखो जो कि वर्तमान देखा और मुक्तिके जो साधन हैं उन करके सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्त होना यहभी तो तुम्हारे सृष्टिक्रममें है जब तो जैसाही किया और जैसाही न किया सब निष्फल होगा क्योंकि कृतनाश अकृत आगम ये दूषण हो जायगा इसलिये ये ऐसा अंगीकार करो कि मोक्ष गया हुवा जीव फिर संसारमें नहीं आता है इसके माननेसे सृष्टिक्रम नहीं बिगड़ेगा और योगाभ्यास ज्ञानादि होनेसे अविद्या दूर होकर संसारकी निवृत्ति हो जाती है इन साधनोंको निष्फलता न आवेगी अब जो कहो हरिद्वारकेसी भीड़ हो जायगी और धकामुक्की होगी ऐसा जो तुम कहो तो यहां कुछ बुद्धिका विचार करो कि उस मेलामें कैसे मनुष्य स्थूल शरीरवाले इकट्ठे होते हैं जो सेरभर खावें और बड़े ढेर सिवाय करें निर्विवेक अज्ञानमें सो हुवे अथवा दूकानदारभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं अथवा सो अधिक सरकारी भारी बंदोबस्तवाली और सिपाही लोगभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं जब ऐसी तुम्हारी समझ है तब तो मुसल्मान ईसाइयोंसेभी बढ़कर ठहरा इसीलिये तुम्हारे ईमानमें ऐसा विचार कि हरिद्वारमें तो अंगरेज लोग बन्दोबस्त करलेते हैं परन्तु मैं तो अकेला हूं क्योंकर बन्दोबस्त करूंगा इसवास्ते मुक्त हुवे जीवोंको फिर संसारमें ले आता है वैसे अंगरेज लोग खसा खसा कर करते हैं कि "भाड़ो"इससे मालूम होता है कि कुछ अंगरेजोंके अनुयायी होते हैं इसीलिये दयानन्द सरस्वती अंगरेजोंकी बड़ा

एकान्त बठ करके ईश्वर अर्थात् आत्मध्यान करो तो उससे कदापि ऐसा न होगा कामको छोड़के और उस आत्मध्यानमें लगे ऐसा कदापि न होगा अब देखो आचार्य्यने उपदेश देकर कहा कि अमुक जगह जो तीर्थ है उस जगह जाय कर श्वरका ध्यान अर्थात् स्मरण करे और उस भूमिका स्पर्श करे तो उसका जल्दी अर्थात् पापोंसे दूर होजायगा ऐसा सुनकर उस पुरुषको कांक्षा हुई कि उस तीर्थको करूं मेरेको दो महीना लग जांय तो लगो। अब देखो कि दो महीना उसको यात्रामें तो दो महीने तक उसका जो कि घरमें रहकरके असत्य भाषणादि दिन रात अनेक संसारी कामोंका पापादिक स्त्री आदिकका सेवन इन्द्रियादिकोंका विषय करताथा निवृत्त हुवा और सत्य भाषणादि इन्द्रियोंके विषयका त्याग, स्त्री सेवन और कर्मोंका त्याग एक वेर भोजन करना धरती पर शयन करना और अनेक बातोंको करके ईश्वरका स्मरण करना अथवा आत्मविचार करना अथवा महत्पुरुषोंके आत्मविद्याके उपदेश करने वाले उनका दर्शन जगह २ होना उनसे जो आत्मविद्याका उपदेश पाना और उनका भोजन आदिसे सत्कार करना इत्यादिक नाना प्रकारके कल्याणकारी लाभ होते हैं और जो घरमें बैठे हुये नाना प्रकारके अनर्थ करे उनसे निवृत्त होना है अर्थात् दूर होता है इसमें निमित्तकारण वो तीर्थ हुवा वो तीर्थ न होता तो ऊपर लिखी हुई बातोंका लाभ अलाभ कदापि न होता इसवास्ते तीर्थ अवश्य होना चाहिये, इति तीर्थ सिद्धिः॥ अब पक्षपातको छोड़के बुद्धिसे विचार करो कि तीर्थमें पापकी निवृत्ति होती है और आत्मविद्याका लाभ होता है वा नहीं के हम गृहस्थी संसारी अविद्यामें फंसे हुये जीवको कदापि ऐसा लाभ न होता इसवास्ते सर्वज्ञानी पुरुष दयालु एवं उपकारक जगत्बन्धु निस्पृह होकर उपदेश देते हुये जो जीव आत्मार्थीके लिये ऊपर लिखा हुआ उपदेश सूर्यके समान करता हुवा जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है और सबको प्रकाशता है इसलिये पक्षपातसे रहित होकर प्रकाश करता है तो उसके प्रकाश होनेमें कुछ दूषण नहीं परन्तु उल्लू अर्थात् घुग्घू वो सूर्यके प्रकाशमें आंखें बन्द हो जाती हैं अर्थात् उसको कोई पदार्थ नहीं सूझता है तो इसमें कुछ सूर्यका दूषण नहीं है किन्तु उस उल्लू जानवर काही दूषण है इसीरीतिसे सर्वज्ञ आत्मविद्या वालोंने तीर्थयात्रा आदिक उपदेश दिये हैं सो उन्होंने उन सर्व जीवोंके उपकारके लिये ही दिये हैं इसीलिये उनकी दयालुता सिद्ध होती है जो और अज्ञानसे भरे हुवे मत ममत्वोंमें भरे हुये भांगके नशेमें आंखोंको मींचकर विचार करनेवाले उल्लूके समान होकर ऐसे उपदेशों को न माने तो उनके उपदेशोंका कुछ दूषण नहीं उनकी अज्ञान रूपी मद्यका दूषण है तीर्थ विषयमें दिग् इति॥

अब मूर्तिपूजनभी अनादि सिद्ध है क्योंकि मूर्तिसे देखकरके ईश्वरका ज्ञान हो सकता और तुमने गरद वे समुद्रालयमें मूर्तिपूजनके विषयमें अज्ञान दशासे लिखा है इसीलिये हम तुम्हारा अज्ञान दूर करनेके लिये संक्षेपसे प्रश्नोत्तर लिखते हैं:—

(वादी का प्रश्न) मूर्तिपूजन जैनियोंने चलाया? (उत्तर) सबके पहले जैन मत

१ [illegible]

था और जितने मत हैं सबही पीछे निकले हैं इसीवास्ते प्रथम मूर्त्तिपूजनभी जैनियोंनें चलाया प्रथम जैनमत सिद्ध करनेके लिये इसही प्रश्नके उत्तरमें पीछेसे लिखेंगे (प्रश्न) जैनियोंने मूर्त्तिका पूजन क्यों चलाया है ? (उत्तर) भव्य जीवोंको ज्ञान होनेके वास्ते (प्रश्न) मूर्त्तिसे मनुष्योंको क्या ज्ञान होगा ? (उत्तर) मूर्त्ति पूजनेसे ईश्वरका ज्ञान होगा (प्रश्न) ईश्वर तो निराकार है और मूर्त्ति साकार है तो उस ईश्वरकी मूर्त्ति क्योंकर बनेगी? (उत्तर) जिस ईश्वरको तुमने निराकार मानकर सृष्टिका कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता माना है उस ईश्वरका बोध होना तो शशाके सींगका बोध होना जैसा है जैसे तुम भंगपीकर उस नशेके उत्तरमें निराकार ईश्वरका मंत्रोंसे बोध कराते हो तैसा कुछ जैनी लोग नहीं कहते किन्तु जैन आचार्य्य अध्यातम अपनी आत्माका साक्षात्कार करके उस साकार ईश्वर जो कि ३५ बानी ३४ अतिशय आठ महा प्रतिहार्ज चोंसठ इन्द्र करके पूजित; राग द्वेष रहित निस्पृह करुणानिधान; सर्व जीवोपकारी; जगद्बन्धु, जगद्गुरु, दीनदयालु, अपक्षपाती, सूर्य समान, अज्ञानरूपी तिमिर दूर करने वाला;तरण तारण, निमित्त कारण; मोक्षरूप कार्यका साधक है ऐसे ईश्वरका प्रत्यक्ष स्वरूप देखकर उसके अभावमें उसकी मूर्त्ति बनायकर उस ईश्वरका बोध कराना है । (प्रश्न) मूर्त्ति तो जड़ होती है उससे क्योंकर बोध होगा ? (उत्तर) देखो काँच जड़ पदार्थ है अब उस जड़ पदार्थ रूपी काँचमें अपना मुख देखनेसे अपने मुखका यथावत् चेहरेका बोध उस जड़ पदार्थसे हो जाता है इसरीतिसे उस मूर्त्तिसे भी ईश्वरका बोध हो जाता है। (प्रश्न) काँचके देखनेसे तो चेहरा मालूम होता है परन्तु मूर्त्ति देखनेसे तो जैसा हमारे चेहरे का साक्षात्कार होता है तैसा ईश्वरका नहीं होता है ? (उत्तर) तुमको अपनी आत्माका कल्याण करनेकी इच्छा नहीं है किन्तु विवाद करनाही जानते हो क्योंकि देखो विचार करो कि जैसा उस काँचमें अपनी मूर्ति, चेहरा, आकृतिका बोध होता है उसीरीतिसे उस शांतिरूप मुद्रा देखनेसे शांतिरूप भावको प्राप्त होता है। (प्रश्न) उस पाषाणकी मूर्तिसे देखकर शांत होता है तो क्या और पाषाणादि देखनेसे शान्त नहीं होता अथवा जो मूर्तिका बनानेवाला उसीको देखनेसे क्या शांति नहीं होता तो मूर्ति बनानेवालेसे शांति नहीं हुवा तो मूर्तिसे क्या होनाथा (उत्तर) अब हमको तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी करुणा आती है क्योंकि देखो तुम लोग विवेकरूप ज्ञानको छोड़कर कुतर्करूपी भंग पीकर बेसमझकी बातें करते हो क्योंकि उस मूर्तिमें आचार्य्योंने तो उस ईश्वरकी संकेतरूप स्थापनाकी है और मूर्तिके बनानेवालेकी वा इतर पाषाणादि स्थापना नहीं की है जिससे उस ईश्वरका बोध हो। (प्रश्न) क्या स्थापना करनेसे ईश्वर उसमें आ बैठता है जो उस स्थापनासे बोध होता है? (उत्तर) उस ईश्वरकी यथावत् सूरतको देखकर उसका प्रतिरूप प्रतिमा अर्थात् उसकी नकलको देखनेसे यथावत् बोध होता है जब तक नकल न देखेगा तब तक असलकी प्रतीति न होगी। (प्रश्न) नकल कितने प्रकारकी होती है? (उत्तर) नकल दो प्रकारकी होती है एक तो असद्भूत, दूसरी सद्भूत। (प्रश्न) असद्भूत और सद्भूत किसको कहते हैं? (उत्तर) असद्भूत उसको कहते हैं कि जैसे अक्षरका लिखना जैसे "दयानन्द सरस्वती" यह जो अक्षर है सो असद्भूत स्थापना है इसको देखनेसे कुछ उनका शरीर आकार आदि प्रतीति न होगा, सद्भूत उसको कहते हैं कि

दयानन्दका फोटोग्राफकी खेंची हुई तसबीर दयानन्दी मत वाले रखते हैं उस यथावत् दयानन्द सरस्वतीका बोध होता है इसीलिये स्थापनाको जरूर मानना होगा स्थापनादिक को न मानोगे तो ककारादि अक्षरोंका बना हुवा वेद इतिहास मनुस्मृति कुरान बाइबिल इत्यादिकभी मानना न होगा। (प्रश्न) मूर्तितो मनुष्यकी बनाई हुई है और जड़ है। (उत्तर) ककारादि अक्षरभी स्याही कलम कागजसे मनुष्योंके लिखे हुए अपने २ संकेत जड़ पदार्थ हैं तो उनसेभी न होगा। (प्रश्न) उनके बाँचनेसे यथावत् बोध होता है। (उत्तर) यह तुम्हारा कहना मिथ्या है जो बाँचनेसे होता है तो तुम्हारे बनाये हुवे सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें जो कि हवन करनेकी वेदी बनानेके लिये जिस वेदीमें होम किया जाता है उस वेदीका जो चिह्नादिक और पात्रोंके चिह्न लिखे हुए पत्र ४१ से लेकर ४२ तक तो जब अक्षरोंसेही बोध होता तो तुम्हारा लिखना व्यर्थ हुआ इसीलिये बुद्धिमें विचार करो कि जैसे तुमने उनके चिह्न अर्थात् उनके आकार बनायकर बोध कराया है इसरीतिसे उस सद्भूत प्रतिमाका आकार देखनेसे ईश्वरकाभी बोध होता है। (प्रश्न) अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है। (उत्तर) जैसे अक्षरोंकी स्थापना तुम्हारे ज्ञानका निमित्त है तैसेही परमेश्वरका ज्ञान होनेके निमित्त उस मूर्तिको देखना है क्योंकि जब तक कोई बुद्धिमान् पुरुष किसी वस्तुका नकशा (चित्र) विना देखे उस वस्तुका यथावत् स्वरूप नहीं जान सकेगा इसीलिये बुद्धिमान् आत्मार्थी सत् असत् विचारशील स्थापनाको अवश्यही मानेगा (प्रश्न) हमारे वेद आदिकोंमें तो परमेश्वरको निराकार ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, होनेसे मूर्ति नहीं बन सकती है। (उत्तर) अब हम तुम्हारी बुद्धि विलक्षणता देखकर जैसे कोई बाल हठग्राही पक्षीकी तरह एक वचन सीखकर बार बार उसीको उच्चारण करता है क्योंकि देखो हम पेहतरही तुम्हारे मंतव्यको लेकर तुम्हारा ईश्वर निराकार ज्योति स्वरूपक किसी युक्ति वा प्रमाणसे सिद्ध न हुवा ऐसा हम पेहतर लिख आये हैं अब देखो यही हँसीका बात है कि तुम्हारे ईश्वरका आकार मूर्ति नहीं तो फेर उसको मुख विना वेदका उच्चारण करना नहीं हो सकता है जो कहो कि विनाही मुखके परमेश्वर शब्दका उच्चारण कर सकता है तो इस कहनेमें तुम्हारा कोई प्रमाण नहीं जो कहो कि वेद प्रमाण हैं तब तो जब ईश्वरही सिद्ध न हुवा तो वेद क्योंकर हो सके हैं इसीलिये जो शब्द मानना है सो स अक्षर शब्द वर्णात्मक है तो जब वो वर्णात्मक शब्द ठहरा तो विना मुख, जिह्वा, कण्ठ, तालुके उच्चारण न होगा अर्थात् वर्णात्मक स अक्षर शब्द है सो मुखसे उच्चारण होगा तो जब मुख सिद्ध हो गया जब शरीरके विना मुख नहीं होता तो शरीरभी सिद्ध हुवा इसलिये जो कोई वादी वर्णात्मक स अक्षर शब्दरूप जो पुस्तकोंमें लिखा हुवा ईश्वरका वचन मानेगा जब वर्णात्मक स्थापना मानी है तो उन बुद्धिमान् विवेकीको उस ईश्वरका मुख्य शरीरभी मानना पड़ेगा तो जब शरीर ईश्वरका मान लिया तो उसकी मूर्तिभी मानना अवश्य होगा जब मूर्ति मानली तब तो उसका पूजन करना अवश्य होगा। अब पूजनके विषयमें हम ढुंढक तीसरे नम्बर उत्तरमें जहां कि ढुंढिया मतका वर्णन होगा तहां लिखेंगे यहां देखो इस जगह केवल मूर्तिका सिद्ध करनाथा सो कर दिया अर्थात् मूर्ति सिद्ध हो गई अब जो

तुमने आप्तका लक्षण लिखा है सो उसमें यथार्थ वक्ता इतनाही कहना ठीकथा जियादः बढ़ाना निष्प्रयोजन हुवा इस आप्तके लक्षणको हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे तो वहां देखना और जो तुमने पांच परीक्षाके लिये लिखा सोभी निष्प्रयोजन है क्योंकि जिस बुद्धिमान्ने सत् असत्का निर्णय करके सत्को ग्रहण किया और असत्का त्याग किया उसीमें ईश्वर वेदादि सब अन्तर्भाव हो जावेंगे अब तुम्हारे मन्तव्यका माना हुवा पदार्थ ठीक न हुवा ऐसेही तुम्हारे सत्यार्थप्रकाशकी जो गप्पे हैं उनकोभी किञ्चित् बाल जीवोंके डुबानेके वास्ते लिखी हैं सो भी दिखलाते हैं और जो कि जैनमतके विषयमें जैन ग्रन्थोंमें नहीं हैं और वे मानतेभी नहीं हैं उनके ग्रन्थोंका नाम लेकर अपनी स्वकपोल कल्पित करके बाल जीवोंको बहकानेके वास्ते लिखी हैं उनकोभी लिखकर दिखाते हैं अब देखो सत्यार्थप्रकाशमें कैसी २ गप्पें लिखी हैं क्योंकि देखो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासके ४५ वें पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि चार प्रकारके पदार्थ होमके वास्ते हैं एकतो जिसमें सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमें मिष्ठगुण होय जैसे कि मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमें पुष्टकारक गुण होय जैसा कि दूध घृत और मांसादिक और चौथा जिसमें रोग निवृत्तकारक गुण होय जैसा कि वैद्यक शास्त्रकी रीतिसे सोमलतादिक औषधियाँ लिखी हैं उन चारोंका यथावत् शोधन उनका परस्पर संयोग और संस्कार करके होम करे अब देखो इस लिखनेसे तो मालूम होता है कि ईश्वरने मांस होमनेके लिये जो हुक्म दिया है तब तो वह ईश्वर निर्दयी ठहरता है क्योंकि उसने आपही तो सृष्टि रची और आपही जीवोंके मांसका होम करना कहा तब तो उपकार नहीं किया किन्तु अपकार किया ॥ अब देखो तीसरे समुल्लासमें ४७ के पन्नामें लिखा है कि जब अश्वमेधादिक यज्ञ होय तब तो असंख्य सब जीवोंको सुख होय इससे सब राजा धनाढ्य और विद्वान् लोग इसका आचरण अवश्य करें ॥ दूसरे अब चतुर्थ समुल्लासमें ११२ के पृष्ठमें लिखा है कि पिता भ्राता पति और देवर ये सब लोग स्त्रीकी पूजा करें तो स्त्रीका पूजन तो वाम मार्गियोंमें होता है तो हम जानें कि दयानन्द सरस्वती जीको वाम मार्गियोंसेभी परिचय दीखे ॥ तीसरे चतुर्थ समुल्लासमें १२३ के पृष्ठमें पांच प्रकारका यज्ञ कहा है १ ऋषि यज्ञ अर्थात् संध्या उपासना; २ देवयज्ञ अर्थात् अग्नि-होत्रादिक; ३ भूत यज्ञ अर्थात् बलि वैश्वदेव; चौथे नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सेवा; पांचवे पितृ यज्ञ नाम श्राद्ध और तर्पण अपने सामर्थ्यके अनुकूल और चतुर्थ समुल्लासके १३१ पृष्ठमें जो पदार्थ आप खाय उससे पञ्च महायज्ञ करे अर्थात् पितृ देव पूजाभी उसीसे करे अर्थात् श्राद्ध और होम उसीका करे मधुपर्क विवाहादिक और गोमेधादिक और देव पितृकार्य इनमें मांसको जो खाता होय तो उसके लिये मांसके पिण्ड करनेका विधान है इससे मांसके पिण्ड देनेमेंभी कुछ पाप नहीं ॥ १६० के पृष्ठमें लिखा है कि जबतक पितृ ऋणादिक को न उतारे और जो संन्यास ले तो वो उल्टा संसारमेंही डूबे इस विषयमें १६५ के पन्ने तक कई गप्पें लिखी हैं सो हम कहांतक लिखें और १६७ के पृष्ठमें लिखा है कि पाप पुन्य रहित जब शुद्ध होता है तब सनातन परमोत्कृष्ट जो ब्रह्म उसको प्राप्त होता है फिर कभी दुःखसागरमें नहीं आता अब देखो इस जगह तो

एकतो तुम्हारो ब्रह्मका सामर्थ्य रूप और शब्द कहने से दूसरा परमेश्वरहुवा
कुछ न रहेगा जब सबजीव मुक्तहोजायँगे बीच में नहीं सो अत्यन्त प्रलय बहुतदूर
मात्र होता है कि अत्यन्त प्रलयभी होगा इन वचनों के देखनेसे तो
कि संभव मात्रसे तो निश्चय न हुआ कि निश्चयकरके अत्यन्त प्रलयहोगी तो वे
संदेहयुक्त हुवा दूसरा देखो कि जब सर्वजीव मुक्तहोगये तो उनके मूल कारण
जिससे जो पुन्य पापादिक होते हैं सो भी न रहे तो फिर सृष्टिभी न रहेगी तो फिर
अपनी ईश्वरता किसको जनावेगा तो तुमकहो कि फेर वह जैसे सृष्टिथी वैसेही
तुम्हारा ईश्वर कर्मों के अनुसार फल देता है तो कर्मतो उन जीवोंके बाकी नहींहै तो
किसके फल से जन्मदेगा और फिर वो कैसी रचना करेगा जो कहो कि पहली सी
करेगा जब तुम्हारे ईश्वरकी दयालुता और न्यायकारीपना ऐसे हुवा जैसे आकाश का
फूल—अब और भी देखो कि दशमें समुल्लास के ३०१ के पृष्ठसे लेकर ३०१
मांसखानेका विषय लिखा है सो भी हम लिखकर दिखादेते हैं ३०१ के पृष्ठमें
कुक्कुट (मुरगा) इनके मांसको तो धर्मशास्त्रकी रीतिसे खाना बुराकहा और ३०२ के
जितने मनुष्यों के उपकारक पशु उनकामांस अभक्ष्य है तथा विनाहोमसे अन्य और
भी अभक्ष्य है तो अब इससे तुम्हारा तात्पर्य यहीहुवा कि होमकरके अन्य और
जो शुद्ध है तबतो मांसखाने में तुम्हारीभी इच्छा होगई तबतो विचारे मुसल्मान
बकाकरना और आप खाजाना तो होमकरना तुम्हारा मुसल्मानों से बढ़कर ठहरा
पृष्ठमें लिखा है कि अच्छा एकजीव के मारने में पीड़ाहोती है सो सब व्यवहारको छो
देना चाहिये ! यहांसे लेकर ३०३ के पृष्ठके ५॥ वीं पंक्तितक इन्ही बातोंकी
चर्चा आई और ६ सतरमें साफ लिखा है कि जहां गोमेधादिक लिखे हैं वहां
पशुओंमें नरको मारना लिखा है इसमे इस अभिप्रायसे नरमेध लिखा है कि
नरको मारना कहीं नहीं क्योंकि जैसे पुष्टि बैलादिक नरोंमें है वैसी स्त्रियोंमें नहीं है
एक बैलसे हजारहा गाय गर्भवती होती हैं इससे हानिभी नहीं होती है सोही लिखा
"गौरनुबन्ध्योऽजोग्नीषोमीयः" यह ब्राह्मणकी श्रुति है इसमें पुल्लिङ्ग निर्देशसे यह
आता है कि बैल आदिकको मारना गौको नहीं और जो वन्ध्या गाय होती है
उसको भी मारना लिखा है ॥ "स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत" ये ब्राह्मणकी
श्रुति है इसमें स्त्रीलिङ्ग और स्थूल पृषतीसे विशेषणसे वन्ध्या गाय ही जाती है क्योंकि
वन्ध्यासे दुग्ध और वत्सादिकी उत्पत्ति होती नहीं—और इसी पृष्ठमें फिर आगे लिखा है
कि "जो मांस खाय वा घृतादिकसे निर्वाह करे वेभी सब अग्निमें होमके बिना न खावें
क्योंकि जिनके मारनेके समय पीड़ा होती है उससे कुछ पापभी होता है. फेर जब वो
अग्निमें होम करेगा तब परमाणुमें उस प्रकार सब जीवोंको सुख पहुंचावेगा एक जीवके
पीड़ासे पाप हुवाथा सोभी पीड़ामात्र जितनाभयथा अन्यथा नहीं" ॥ अब देखो पक्षपात
छोड़कर बुद्धिसे विचार करो कि इस ईश्वरने तुमको कैसे कुमार्गमें बुद्धि देकर भ्रम
डाल्या कि अग्न्यादिक [illegible] होमके जरियेसे मांसको खिलाया और फि
[illegible] [illegible] दिया तो वह ईश्वर क्या एक मुसल्मानोंका शैतान हुवा है

सी सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थोंमें धर्मसे विरुद्ध और अधर्मका हेतु अनेक बातें लिखी हैं सो
जज्ञासुके निष्प्रयोजन होनेसे कहांतक लिखें एक दिग् मात्र इनके भ्रमजालको दिखाया
॥ (प्रश्न) अजी! आपने ऐसी २ बातें जो लिखी हैं सो वेदभूमिका दूसरी वार छपाई
ई सत्यार्थप्रकाशमें तो नहीं हैं फिर ये बातें आपने कहांसे लिखी हैं ? (उत्तर) भो दे-
नो प्रिया! वेद भूमिकाके ३९१ के पत्रमें ऐसा लिखा है कि:-इस वेदभाष्यमें शब्द और
नके अर्थ द्वारा कर्मकांडका वर्णन करेंगे परन्तु लोगोंके कर्मकांडमें लगाये हुये वेद मंत्रों-
से जहां जहां जो कर्म अग्निहोत्रसे लेके अश्वमेधके अन्त पर्यन्त करने चाहिये
नका वर्णन यहां नहीं किया जायगा क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐतरेय
तपथादि, ब्राह्मण, पूर्वमीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रादिकोंमें कहा हुवा है उसीको फिर कह-
से पिसेको पीसनेके सम (तुल्य) अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस भाष्यमेंभी आजा
कता है अब देखो निष्पक्ष होके जो आत्मार्थी होगा सो अपनी बुद्धिसे विचार करेगा कि
यानन्द सरस्वतीने कैसी माया चारी अर्थात् भोले जीवोंको भ्रमजालमें गेरनेके वास्ते
लरूपी वचन लिखे हैं कि अग्निहोत्रसेलेके अश्वमेधके अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका
र्णन यहां नहीं किया जायगा क्योंकि जिन शास्त्रोंका हम पहले नाम लिख आये हैं
नका अर्थ कियां हुवा ठीक है तो इसकोभी यज्ञोंमें पशुका होम करना उससे उपकार
ानना सम्मत हुवा जो इसको पशुओंका मारना बुरा अर्थात् पाप मालूम होता तो कदापि
स अर्थको मंजूर न करता भोले जीवोंको ऐसा दिखाया कि पिसेका क्या पीसना इससे
ले जीव मेरे छलरूपी वचनको न पकडेंगे जो कि ऐसा वचन मैं न लिखूं और जो
ज्ञोंमें होम करना लिखूंगा तो और मतवाले अर्थात् जैनी लोग जैसे पहलेके अर्थोंको
धर्म कहते हैं तैसेही मेरे अर्थकोभी कहने लगेंगे इस डरसे इस दूसरे सत्यार्थ-
काशमें न लिखा और इसका हाल मुझे अच्छी तरहसे मालूम है सो भी
छ लिखताहूं कि पहले ये १५-१६ के सालमें मथुरामें स्वामी विरजानन्द सरस्वतीके
समें विद्याध्ययन किया करताथा सन्यासीभेषमें रहता दन्डादिक धारण करताथा फिर
हांसे जब इसकी विद्या पूर्ण हुई तो यह देशोंमें विचरने लगा तब नर्बदेश्वर महादेव
ौर शालिग्रामजी इन दोनोंका पूजन करना और भस्म लगाना और रुद्राक्षका कंठा पह-
ना देना इसका उपदेश था फिर कुछ दिनके पश्चात् किसी दादू पन्थी व कबीरपन्थीकी
सके कानमें फूंक लगनेसे फिर चौबीसके सालमें हरिद्वारके मेलामें संन्यासियोंसे कई तरहकी
ात चीत होनेसे इसने दन्डादिक पुस्तकादि सबको छोडकर एक लङ्गोटी मात्र रखने
गा तो यह तो इसने अच्छा किया परन्तु मूर्तिका खन्डन करने लगा क्योंकि कानमें
क लगी हुईथी कई वर्षतक तो इसीरीतिसे गंगा किनारे घूमता रहा और संस्कृतमें बात
त करता एक फरुखाबादमें किञ्चित् इसकी दुकानदारी जमी और १९३० के सालमें
लकत्तामें गया वहांसे भाषाभी बोलने लगा और उन दिनोंहीमें ये सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ
रचा था उस ग्रन्थकी बातें मैंने लेकर सत् असत् दिखलाया है और उसी सत्यार्थ
काशमें जैनियोंके मध्ये जो इसने गप्पें लिखी हैं अर्थात् झूंठ बातें स्याद्वाद मतकी
कर और जैनियोंका मत भोले जीवोंके बहकानेके लिये बतलाया जिसके ऊपर पंजाबमें

गूजरांवाले ग्रामके एक श्रावकने दावा भी कियाथा और जो बातें इसने लिखीथीं
बना जब इसको पूछा तो ये पूरा पूरा न देसका और जो कि बम्बई आदिमें
योंके ग्रन्थ छपे थे वोभी इसके हाथ लगनेसे इसके देखनेमेंभी वह ग्रन्थ आये जब
इसने अपनेजीमें विचार किया कि देखो जैनी लोग तो अहिंसा धर्मको प्रतिपादन करते
और मैं वेदका अर्थ जो पहलेके ऋषि मुनियोंने किया है उसी यज्ञ आदिक
मारना प्रतिपादन करूंगा तो इनके धर्मको देखकर मेरे जालमें कोई न फँसेगा तो मैंने
आर्य्यसमाजका मत चलाया है वह क्योंकर प्रवृत्त होगा इसलिये जैनियोंके
कर इसनेभी किञ्चित् अहिंसा धर्मके लिये वंचकपणेसे अर्थात् मायासे दूसरा
बनाया है (प्रश्न) जो आप कहते हो कि जैनियोंका ग्रन्थ देखके पहले सत्यार्थप्रकाशके
को दाबकर दूसरा सत्यार्थप्रकाश प्रवृत्त किया है तो यह जैनी क्यों नहीं होगया? (उत्तर) भोले
वानोप्रिय ! जिनको अपनी आत्माका विवेक नहीं वही मनुष्य अपने चलाये हुये मतकी
पुष्टि करनेके लिये छल कपट रचेंगे और वही अपने मतको पुष्ट करना अर्थात् आनेको
जगत्में पुजाना चाहते हैं जिनके चित्तमें जगत्से पुजानेकी इच्छा है वह अपनी आत्माका
अर्थ नहीं कर सकते हैं दयानन्द सरस्वतीको तो जगत्में अपना नाम प्रसिद्ध करना था
जो जैनी होता तो जगत्में प्रसिद्ध न होता इसलिये जैनी न हुवा आत्मार्थी होता
वीतरागके धर्मको अंगीकार करता। (प्रश्न) भला वीतरागका धर्म अङ्गीकार न किया
तो उसने जैनियोंकी निन्दा क्योंकी ? (उत्तर) अरे ! भोले भाइयो ! दयानन्द सरस्वती
सम्पूर्ण छल जातिमें निपुणथा उसने अपने दिलमें विचार किया कि पहलेके मुनि और
शङ्कर स्वामी आदिकोंनेभी इन जैनियोंके मध्ये हाऊकाधाडर बतादिया जैसे बालकको
कह देते हैं कि देख! यह हाऊ बैठा है तू जायगा तो तेरा नाक कान कतर लेगा इसलिये तू
वहां मत जाना इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्त क्या हुवा कि अगाड़ीके मुनि ऋषि जो कि अज्ञानी
उन्होंने जैनियोंको नास्तिक शब्दसे भोले जीवोंको जगत्में बहकाय रक्खाया क्योंकि जो
वे नास्तिकरूपी हाऊको न बनाते तो उनका हिंसारूपी मांस भक्षण पशुओंका होम आ-
दिक धर्म न चलता। इसीलिये दयानन्द सरस्वतीनेभी अपने चित्तमें विचार किया कि जो
जैनी लोगोंको तो नास्तिकरूप हाऊ प्रसिद्ध न करूंगा तो लोग मेरेको नवीन मत जानके
मेरे जालमें कोई न फंसेगा। इसलिये दयानन्द सरस्वतीने जैनियोंको नास्तिकरूप हाऊका
डर दिखाया और मनकल्पित कल्पित अपने दिलका जाना हुआ वेद मंत्रोंका अर्थकर वेदका
नाम लेकर भोले जीवोंको जालमें फँसाकर आर्यसमाज नाम आर्यमतको चलाकर
अर्थात् अगाड़ीके मतोंमें एक नवीन मत चलाया। (प्रश्न) आपने पहले कहाथा जैनीलोग
नहीं मानते उन बातोंकोभी जैन मतके नामसे भोले जीवोंको बहकानेके लिये लिख दीनी
है सो वह बातें कौन सी है? (उत्तर) द्वादशमसमुल्लासके ४०२ के पृष्ठमें २० पंक्तिसे ले
चारवाकरी बनाई हुई बातें लिखकर ४३० के पृष्ठ तक पांच भूतोंसे चैतन्य अतिरिक्त
नहीं है उनसे यह चैतन्य नवीन उत्पन्न हो जाता है ऐसी बातें न तो जैनियोंने यहां
मानी हैं न अब कोई जैनी मानता है और न अगाड़ी कोई जैनी मानेगा जो
जैन शास्त्रमें लिखी है नहीं तो फिर उसने जैनियोंका नाम लेकर लिखादिया अब तुम

विचार करो कि ये झूंठ नहीं तो सत्य क्योंकर हो सकती है और जो उसने दूसरे सत्यार्थ प्रकाशमें सप्तभंगीके बारेमें लिखा है कि अन्योन्यभावमें काम होजाय तो सप्तभंगीका मानना व्यर्थ है तो इसका वर्णन तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे सो वहांसे जिसकी इच्छा होवे सो देख लेना परन्तु दयानन्द सरस्वतीको तो कहांसे इसके अभिप्रायकी मालूम हो किन्तु इनके शारीरिक सूत्रके बनानेवाले अच्छे२ विद्वानों को ही अभिप्राय ज्ञात न हुवा क्योंकि जो मनुष्य जिस वस्तुका प्रतिपादन करेगा अर्थात् विधि जानेगा तब ही वह निषेध करेगा क्योंकि बहरेको गीत सुनाना फिर उससे पूछना कि इसका राग क्या है तो जब वह सुनताही नहीं है तो राग कहांसे बतलायेगा और देखो कि नवकारका अर्थ भी अपनी मन कल्पनासे बनायकर भोले जीवोंको बहकाता है (प्रश्न) वो क्या नवकारका अर्थ इसने कल्पना करके बहकाया है ? (उत्तर) वह नवकार यह है " णमो अरिहंताणं ॥ १ ॥ णमो सिद्धाणं ॥ २ ॥ णमो आयरियाणं ॥ ३ ॥ णमो उवज्झयाणं ॥ ४ ॥ णमो लोये सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥ एसो पंचणमुक्कारो ॥ ६ ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ ७ ॥ मंगलाणंच सव्वेसिं ॥ ८ ॥ पढमंहवइ मंगलं ॥ ९ ॥" अब विवेकी बुद्धिमान् जो पुरुष होय सो इस का विचार करो कि जिन पद इस अक्षरोंमें तो है नहीं और दयानन्द लिखता है कि यद्यपि जिन पद इसके अर्थमें जोड़ना जरूर चाहिये अब देखो कि जैसा दयानन्द सरस्वतीने जो ईश्वरको माना है उसके मंत्रोंका अर्थ बनालिया और अगले अर्थ करनेवालोंको झूठा करदिया तो वो ईश्वरतो निराकार घोड़ाके सींगके समानथा उसके मंत्रोंका अर्थ तो इसकी मन कल्पना नुसार भोले जीवोंने मान लिया परन्तु जैनियोंका ईश्वर तो सर्वज्ञ वीतराग निष्पक्षपाती जगत्बन्धु, जगद्गुरु, उपकारी, दयालु, ३४ अतसे ६५ वाणी महा प्रतिहार्ज संयुक्त त्रिगडामें विराजमान् चार निकायके देवतों करके सव्यमान ६४ इन्द्र चमर ढोलते हुये चतुर्विद सिंह २ पर्षदाके सामने साक्षात् त्रिलोक्यको जानने वाला प्रत्यक्ष देशना देता हुवा ऐसे ईश्वरके वाक्यमें दयानन्द सरस्वतीकी मिथ्या कल्पना कदापि सिद्ध न होगी इत्यादिक अनेक बातें मिथ्या स्वकपोल कल्पित लिखी हैं उसको हम कहां तक लिखें एक दिङ्मात्र दिखा दीनी है इन्ही बातोंके देखनेसे विवेकी बुद्धिमान् आत्मार्थी पुरुषो विचारलेना (प्रश्न) वह हाऊकी मसल संसारमें सब कोई देते हैं सो इस मसलका तात्पर्य्य क्या है जिससे बाल जीव डर जाते हैं (उत्तर) भो देवानो प्रिय! वो इस मसलके दृष्टान्त तो दो हैं परन्तु इस जगह एक देता हूं वह मसलका दृष्टान्त यहहै–कि किसी नगरमें एक धनाढ्य (साहूकार) था, उसके सन्तान नहीं होता था सो एक दिन उसको कोई महात्मा मिला उससे वह गृहस्थी कहने लगा कि महाराज मेरे सन्तान नहीं है कोई ऐसा उपाय बतावो कि जिससे मेरे सन्तान हो इतना वचन सुन महात्मा कहनेलगा कि भो देवानो प्रिय! तू घबरावे मति तेरे सन्तान होगा परन्तु छोटी उमरमें साधूकी सुहबत पायकर साधु हो जायगा जब गृहस्थी कहने लगा कि महाराज साधू न होनेका तो उपाय मैं कर लेऊंगा अर्थात् साधू नहीं होने दूंगा परन्तु सन्तान होना चाहिये महात्मा कहने लगा कि हो जायगा इतना कहकर महात्मा तो चला गया और कुछ दिन पश्चात् उसके सन्तान हुवा जब वह पांच तथा सात वर्षका हुवा उसके पहले ही उसको हाऊका डर तो उसे बताही रक्खाथा फिर उससे कहने लगे

कि देख तू बाहिर जाता है परन्तु वह जो एक प्रकारके साधु होते हैं मङ्गागिर नङ्गागैर और झोली पातरा भी रखते हैं एक मोटा सा झब्बा अर्थात् " रजो हरण" और हाथमें मुखवस्त्री रखते हैं उन लोगोंके पासमें नहीं जाना उनके पासमें छुरी, कतरनी रहती हैं सो वे नाक कान कतर लेते हैं सो इसलिये उनके पासमें नहीं जाना ऐसा उस लड़केके चित्तमें डर रूपी हाऊ बैठा दिया अब वो लड़का जब किसी ऐसे साधु महापुरुषको देखे तब घरमें भग जाय एक दिन ऐसा हुवा कि साधु मुनिराज गोचरी लेकर अर्थात् भिक्षा लेकर वस्तीके बाहर जाताथा उधरसे वह लड़का अताथा उस साधूको देखकर वस्तीके बाहिर भगा और साधू भी उसी मार्ग हो करके चलने लगा जब वह लड़का पीछे फिरके देखता जाय और अगाड़ी को भागता और साधू भी उसके पीछे अपनी इरियासुमती शोधता हुवा चला जाताथा जब तो लड़केने अपने दिलमें पुख्ता जानलिया कि जो मेरे माँ बाप कहते थे सो आज ये जरूर मेरे नाक कान काटेगा ऐसा विचारता हुवा वह एक बड़े दरख्तके ऊपर चढ़गया साधु मुनिराज भी एकान्त जगह देख कर उसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ गये और अपनी क्रिया करने लगे जब तो उस लड़के ने सोलह आना अपने चित्त में विचार लिया कि आज यह दुष्ट मेरे नाक कान अवश्य कतर लेगा अब इस दुःख से कैसे बचूंगा परन्तु ऊपर से नीचेको निगाह किये हुवे उस साधुकी क्रियाको देखता रहा जब उस साधुने झोरी पात्रा खोलकर भोजन करना आरम्भ किया तब उस लड़के ने विचारा कि इसके पास में छुरी कतरनी तो नहीं दीखे हैं और यह तनक २ बातमें अपने झब्बा से पृथिव्यादिक को पोंछता है अर्थात् कीड़ी आदिको अलग करता है तो येतो कोई दयालु महात्मा दीखता है मेरे घरवालों ने कोई मेरेको इनकी संगत करने के ताई धोखा दिया है ऐसा विचार कर कि जो कुछ होने वाली है सो तो मिटेगी नहीं तो यहां इस पेडके ऊपर कबतक बैठा रहूंगा ऐसा विचार करके उस पेड से नीचे उतरा और उस मुनिराज को शांतरूप देखकर नमस्कार किया उस समय उस मुनिराज ने अमृतरूपी 'धर्म लाभ' सुनाकर उपदेश देकर उसके जो चित्त में डरथा सो दूर करदिया तबतो वो लड़का अमृतरूपी उपदेश के अक्षरों को पानकर अर्थात् कानों में श्रवण कर अमर होने की इच्छा करता हुवा कि अहो तरण तारण नि- ष्कारण परदुःख निवारण मेरेको आत्मस्वरूप प्रगट कराने के लिये अपने चरण कमलों की सेवा में रक्खो जिससे मैं कृतार्थ होजाऊं और मेरा जन्म मरण रूपी दुःख जो है उससे निवृत्त होजाऊं आज तक जो मेरे माता पिताने मायाजाल में फँसा कर आप लोगोंको डररूपी 'हाऊ' जो बैठारा था सो आज मेरे चित्तसे आपके दर्शन करने से वह हाऊ रूप डर उठ गया फिर वह लड़का अपने घर जाय कर अपने माता पिताको उपदेश देकर निज मत में दृढ़कर आप दीक्षा लेकर अपनी आत्माका कल्याण करता हुवा ॥ इसी दृष्टान्त से बाल जीवों को जैन मत नास्तिक रूप हाऊ बनाय कर डर दिखाय दिया है इसलिये इस डर से बाल जीव जैनियों का संग कम करते हैं जिस किसी भव्य जीव का कल्याण होनेवाला होगा उसको कैसा ही कोई बहकावो परन्तु जिन धर्म का अवश्यमेव संग हो जायगा ।

(प्रश्न) आपने प्राचीन सत्यार्थप्रकाशकी बातें कहीं परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी बातें नहीं हैं (उत्तर) भोदेवानन्दियो ! तुमने जो प्रश्न किया सो तो ठीक है परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाश जो सरस्वती जीने पीछेसे मायावी तस्कर वृत्तिसे लिखा है उसका जो तुम इस जगह निर्णय लिखोगे तो यह ग्रंथ बहुत भारी हो जायगा और संपूर्ण तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर न लिख सकोगे इसलिये इसको पूर्ण करके जो तुम्हारी नवीन सत्यार्थ प्रकाशके जालको देखनेकी इच्छा होय तो जो कुछ हमने स्याद्वादनुभवरत्नाकरमें तुमको लिखाया है इसको और नवीन सत्यार्थप्रकाशका जो निर्णय पीछेसे लिखावें उन दोनोंको मिलायकर दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्यसमाज भ्रमोच्छेदनकुठार इस नामका ग्रंथ जुदाही छपाय देना इसलिये इस ग्रंथके बढ़ जानेके भयसे विस्तारसे उत्तर ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानन्द स्वामी विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तरान्तर्गत दयानन्द मत अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज निर्णय समाप्तम् ॥

॥ अथ यवनीय अर्थात् मुसल्मानीय मत निर्णय ॥

दयानन्दीय आर्य्यसमाजके अनन्तर इन्हींके भ्रातृवर्गरूप " कुरानीमत " मुसल्मानों का है जोकि मुहम्मदसे चला है अर्थात् मुहम्मद इनका पैगम्बर हुवाहै उसनेही जंगली लोगों अर्थात् अरबीलोगों को बहकायकर कुरानी मत चलाया यहभी ऐसा कहता है कि खुदाके सिवाय और कुछ वस्तु न थी ज़मीन आसमान वगैरह सब उस खुदाने बनाये हैं ऐसा उनकी कुरान में लिखा है कि जो आसमान और भूमिका उत्पन्न करनेवाला है जब वह कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होजा (मं॰ १ सि॰ सू॰ २ आ॰ १०८) इस में ऐसा लिखाहुआ है । अब हम तुमको पूछते हैं कि आसमानके बिदून खुदा कहां रहताथा ? जो तुम कहो कि चौदवें तबकपर रहताथा तो बिना आकाशके वह चौदवां तबक कहांथा ? तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाने आसमान बनाया असंभवही है फिर हम तुमको पूछते हैं कि वह चौदवें तबकपे किस चीज़पर बैठाथा जो तुम कहो कि कुरसीपर बैठाथा तो कुरसी खुदाने बनाईथी या कुरसीने खुदाको बनायाथा जो खुदाने कुरसी बनाईथी तबतो पेस्तर वह किसपर बैठाथा और जो कुरसीने खुदाको बनाया तबतो उस खुदा का माननाही व्यर्थहुवा कुरसी कोही खुदामानों तो कुरसी तो जड़ पदार्थ है अब यहां न तो तुम्हारा खुदा ठहरा और न उसका कुरसी पर बैठना ठहरा दूसरा हम तुमसे यह पूछते हैं कि तुम्हारा खुदा कहता है उससे कि होजा ऐसा शब्द किसने सुना था और जब किसीने सुना नहीं तो तुमने कुरानमें क्योंकर लिखा जो तुम कहो कि हमने सुना था तब इस तुम्हारे कहनेसे तो सृष्टि

छुपे कर्मोंको जानता हूं " (मं० १ सि० १ सू० २ आ० २९-३१) " अब देखो खुदा क्या था बड़ा धोखेबाज था क्या शैतानोंको ऐसा दम देकर उनको धमकाने लगा और अपनी बड़ाई अपने मुंहसे करके और अपनी हुकूमत जमाने लगा क्या इस रीतिसे भी धोखा देकर हुकूमत जमती है तो ये बातें खुदाकी नहीं कि दूसरेसे किसी का हाल पूछकर फिर अपनी सर्वज्ञता जताना यह काम धूर्तोंका है नकि सत्पुरुषोंका और भी देखो जब हमने फरिश्तोंसे कहा कि बाबा आदमको दंडवत् करो देखो सबोंने दंडवत् किया परन्तु शैतानने न माना और अभिमान किया क्योंकि वह भी काफ़िर था " (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ३२) " अब देखो यहां विचार करो कि वह खुदा बड़ा बे समझ था क्योंकि जिसने उसका हुक्म न माना उस शैतानको पैदा किया और उसका तेज भी उस शैतान पर न पड़ा और खुदाके हुक्मको न अंगीकार किया जब तो उस शैतानने उस खुदाका छक्का छुड़ा दिया तो हम जानते हैं कि तुम्हारे मुसल्मानोंसे भिन्न जो करोड़ों काफ़िर हैं उस जगह उस खुदा और मुसल्मानोंकी तो क्या चल सकती है "हम ने कहा कि ओ आदम! जो तेरी रूह बिहिश्तमें रहकर आनन्दमें जहां चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्षके; कि पापी हो जावोगे। शैतानने उनको डिगाया कि और उनका आनन्द खो दिया, तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु हैं, तुम्हारा ठिकाना पृथ्वी है और एक समयतक लाभ है आदम अपने मालिककी कुछ बातें सीखकर पृथ्वी पर आगया ॥ (मं १ सि० १ सू० २ आ० ३३-३४-३५)" अब देखो तुम्हारे खुदाकी कैसी अज्ञानता है कि हालही तो स्वर्गका आशिर्वाद दिया और थोडीसी देरमें कहने लगा कि तुम यहांसे निकल जावो अब देखो जो वो सबावबाला होता तो क्यों तो रहनेका हुक्म देता और क्यों निकालता और जो सामर्थ्यवाला होता तो उस बहकानेवाले शैतानको दण्ड देता अब देखो यह तो ऐसा हुवा, कि (मसला) "निर्बलकी जोरू सबकी भाभी" उस शैतानके साथ तो कुछ न बन पड़ी और बिचारे आदमको निकाल दिया गोया कि 'कुम्हारीके बजाय गधियाके कान ऐंठे'—और जो उसने वृक्ष उत्पन्न कियाथा वह किसके लिये कियाथा क्या अपने लिये, या दूसरेके लिये; जो दूसरेके लिये तो उसको क्यों रोका? अब देखो ऐसी बातोंसे तो वह खुदा नपुंसक और अज्ञानी ठहरता है क्योंकि शैतानको सजा देनेमें वह कमजोर अथवा नपुंसक हुवा और अज्ञानी इसलिये हुवा कि वह नहीं जानताथा कि दरख्त किस लिये उत्पन्न करूं क्योंकि आदमको तो ज़मीनपर भेज दियाथा फिर वह वृक्ष काट डाला गयाथा या रक्खा गयाथा जो काट डालाथा तो पहले क्यों बनायाथा क्या बिचारे आद-मको दुःख देनेके लिये जो रक्खाथा तो फिर खुदा जिस किसीको उस बिहिश्तमें [illegible] उसीको वह शैतान बहका देगा तो फिर खुदा उसका ज़मीनपर गिरा देगा [illegible] खुदाने जाल रचा है छी! छी! उस खुदाको कि हमेशा वो शैतानका हुक्म [illegible] उसे बिहिश्तमें न रहने दे क्या वहां अच्छी २ बीबियां रहती हैं इसलिये [illegible] गरीबोंको धोखा दिया वह खुदा क्या है एक शैतानोंका जमादार है [illegible] तरह खुद मुर्दोंको जिलाता है और तुमको अपनी निशानियां [illegible] समझो ॥ (मं० सि० १ सू० २ आ० ६७) अब जो खुदा [illegible]

कुरानमें भी लिख दिया कि खुदाका मुँह चारों तरफ है ऐसी बातें सुनकर कुरानको सच्चा लिया तो हम जानते हैं कि विचारे भोले जीवोंसे धन छीननेके वास्ते ऐसी ऐसी गप्पें ठोकदी हैं अब और भी देखो "जब हमने लोगोंके लिये काबेको पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तुम नमाजके लिये इब्राहीमके स्थानको पकड़ो ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ११७)" अब देखो कि पेश्तर तो खुदाने कहा कि जिधर तुम मुँह करो उधर मेरा मुँह है और दूसरी जगह कहने लगा कि हमने काबेको पवित्र स्थान बनाया तो जब तक काबेको पवित्र नहीं बनाया था तो पेश्तर अपवित्र स्थानमें क्योंकर तुम्हारा खुदा रहाया क्या पहले उसको स्थान बनानेका स्मरण न हुवा तो खुदा भी हम जानते हैं कि बेठार सोचही करता रहता है अब क्या करूं " और देखो जो लोग अल्लाहके मार्गमें मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि यह मृतक हैं किन्तु वे जीते हैं (मं० १ सि०२ सू० २ आ० १४४)" क्या अफसोसकी बात है कि खुदाके मार्गमें मरने मारनेकी क्या जरूरत है इससे साफ मालूम होता है कि कुरान खुदाका बनाया हुवा नहीं है किसी मतलबीने अपने मतलब सिद्ध करनेके वास्ते ऐसी बातें लिखदी हैं कि लोभ देनेसे खूब लड़ेंगे और जो ऐसा खुदाके नामका धोखा न देते तो वे लोग उसके साथ कदापि न लड़ते उसका मतलब सिद्ध न होता इसलिये उस मतलबीने विचारे उस खुदाको क्यों निर्दयी ठहराया अब और देखो "(मं० १ सि० २ सू० २ आ० १७४, १७५, १७६, १७९,) इसमें लिखा है कि अल्लाहके मार्गमें लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं. मारडालो तुम उनको जहां पावो. कतलसे कुफ्र बुरा है। यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाहका, उन्होंने जितनी जियादती तुमपर, करी उतनी ही तुम उनके साथ करो" ॥ अब देखो जो तुम्हारा खुदा ऐसी बातें न करता तो मुसल्मान लोग अन्य मतवालोंको इतना न सताते बिना अपराधके मारना उन विचारोंका खून उस खुदा और खुदाके बहकाने वालोंपर होगा क्योंकि जो तुम्हारे मतको ग्रहण न करेगा उसीको तुम "कुफ्र" कहते हो उसके कतल करनेमें तुमको वा तुम्हारे खुदाको जरा भी रहम न आया तो खुदाने पहले ही ऐसा विचार क्यों न किया कि ये रूहें तो मेरा कहना न करेंगी तो उनको क्यों रचाया और देखो" (मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ९०, ९१, ९२) अपने हाथोंको न रोके तो उनको पकड़लो और जहां पावो मारडालो ॥ मुसल्मानोंको मुसल्मानका मारना योग्य नहीं जो कोई अनजानेसे मारडाले बस एक गर्दन मुसल्मानको छोड़ना है और खून वहा उन लोगोंकी ओरसे हुई जो उस कौमसे हुवे तुम्हारे लिये दान करदेंगे जो दुश्मनकी कौमसे हैं ॥ और जो कोई मुसल्मान जानकर मारडाले वह सदैव काल दोजखमें रहेगा उसपर अल्लाहका क्रोध और लानत है" अब इस लिखावटको देखनेसे बिल्कुल पक्षपात और अन्यायकारी दीखती है क्योंकि मुसल्मानके मारने से तो उसको दोजख मिलेगा अर्थात् नरक मिलेगा और मुसल्मान से अतिरिक्त लोगों को मारने से बिहिश्त अर्थात् स्वर्ग का मिलना इनदोनों बातों को जोकोई बुद्धिमान् विचारेगा तो कदापि इस कुरानको खुदाका वचन न मानेगा ॥ अब देखो ऐसा लिखा है कि " निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथ्वी को छःदिन में उत्पन्नकिया फिर करारपकड़ा अर्शपर दीनता से अपने मालिकको पुकारो ॥(मं०२

सि० १। सू० ७ आयत ५३, ५६)" अब देखो जब खुदाने छः दिनमें फिर अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन के ऊपर आरामकिया तो भला विचारतो करो कि पेश्तर तो हम आगे तुम्हारी कुरानकी साक्षी देकर लिखआये। तुम्हारे कुरान में लिखाहै कि होजा तो अबदेखो कि एकजगह तो ऐसा कहना दूसरीजगह यह कहना कि छः दिनमें खुदाने रचाया अब देखो कि एकहीपुस्तक की बात होगई जब खुदा को इतनाही ज्ञान न था कि मैं पहले क्या कहताहूं कहताहूं तो फिर वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ क्योंकर होसकता है और फिर कि को बिहिश्त और किसी को दोज़ख़ क्योंकरदेगा, किस ज्ञानसे देगा और छःदिन जगत्को रचा तबतो यह विचाराखुदा मज़दूर ठहरा और मज़दूरहोता है सो थकजाता है तो खुदा भी तुम्हारा थका और आराम किया वह कितने दिनतक ... फिर कब उठा क्या अभी सोताही है जो वह अभीतक सोता है तो तुम्हारी नमाज़ बांग उसको जगादेगी तबतो क्रोधितहोकर तुमको भी शैतान न बनादे इसलिये तुम्हारा तरस आता है तुमको बार २ समझाते हैं कि खुदा को छोड़कर कोई सर्वज्ञ पातरहित दयालु खुदाको अङ्गीकार करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो अब तुम्हारे बातें कि जो गप्पें हैं सो तो हम कहांतक लिखें किन्तु युक्तिसे सृष्टिके मध्ये फिरभी हैं सो कहो जो तुम खुदाके सिवा और कोई कारण नहीं मानतेहो तो यह तुम्हारा खुदाको बहुत कलंकित करता है जो कहो कि खुदाको जगत् के रचने में क्या कलंक है सो कहो तो हम कहैहैं कि विना उपादान कारणके कार्य होवे नहीं तो खुदा क्योंकर रचसक्ता है जो तुम कहो कि खुदा सर्व शक्तिमान् है विना उपादान के ही रचसकता है हम तुमको पूछैहैं कि खुदाकी शक्तिहै सो उससे भिन्न है वा अभिन्न है जो कहो कि तो जड़ है कि चेतन है जो कहो कि जड़है तो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि तो अव्वल तो वह शक्ति तुम्हारी जड़है तो जड़से तो कोई कार्य सिद्ध नहींहोता कि खुदाकी कुदरत है तो हम पूछते हैं कि जगत् जबतक नहींरचाथा उसके पहले एकखुदा के सिवाय और कुछ नहीं था फिर कहतेहो कि उस खुदाकी नित्य शक्ति ने सृष्टिरची वह शक्ति ठहरी नित्य तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाके सिवाय कुछनहींथा ऐसाहुवा कि जैसे उन्मत्त पुरुषके वचन में किसीको प्रतीत न हो तुम्हारे वचनने तुम्हारेकोंही कायलकिया अगर कहो कि वह शक्ति अनित्य है शक्ति का उपादान कारण कोई और खुदाकी शक्ति मानों फिरभी उनकेतई और कोई शक्तिमानों इसरीतिके शक्ति मानने में तुम्हारी किसी शक्तिका पता न लगेगा जो कहो कि वह चेतन है तो वहभी फिर नित्य है कि अनित्य है इसीरीति से अगर विकल्प हम करेंगे तो फिरभी तुमको यही दूषण प्राप्तहोंगे जो कहो कि अभिन्न है तबतो सर्ववस्तु खुदाही कहागया बिहिश्त क्या और दोज़ख़ क्या ईमानदार और काफ़र फ़िरस्ता और शैतान पैग़म्बर, बीबियां और पुरुष, नहर, आसमान, पृथ्वी, चोर और साहूकार, बदमाश, ज्वारी, रंडीबाज, नाई, धोबी, तेली, तम्बोली, भंगी, चमार, कसाई, गाय, भैंस, छेरी, भेड़, हाथी, घोड़ा, ऊंट, कुत्ता, स्याल, बिल्ली, डरपोक, बहादुर, सिंह, हिरन, बाज, बटेर, कबूतर, मक्खी, मच्छर, डांस, पतंग इत्यादिक अनेक खुदाही ठह-

शूर बनगया—छी! छी!! छी!!! क्या खुदा है क्यों नाहक उसको हैरान करके क्यो कलंकित करते हो जब वो खुदाही जगत् बन बैठा तो कुरान किसके वास्ते बनाई थी और किसको उपदेश देना था तबतो इस खुदाने जगत् क्या रचा अपना आपही सत्यानाश करलिया अब जितने दुःख होते हैं सो खुदा कोही होते हैं और जो कि कुरानमें लिखा है कि काफ़िरोंको जहां पावो वहांही क़तलकर डालो उनको जिन्दा मत छोड़ो अब देखो सिवाय खुदाके और तो कोई दूसरा इस जगत्में है नहीं जगत्में खुदाही खुदा है तो खुदाने खुदाओंको मारनेके वास्ते हुक्म दिया जब वह खुदा तो मारे जायगे तब तुम किस पर ईमान लाओगे कौन बिहिश्त देगा किसकी नमाज़ पढ़ोगे इसलिये हे भोले भाइयो! जो तुम्हारेको तुम्हारा कल्याण करना है तो—"अहिंसा परमो धर्मः" ऐसा जोपरूपक वीतराग सर्वज्ञ सर्व उपकारी दीनबन्धु दीनानाथ उस ईश्वरको अंगीकार करो इन कुरानियोंकी सुहबत अर्थात् पोपोंकी सोहबत छोड़कर अपनी आत्माका अर्थ करो. औरभी देखो कि तुम्हारे खुदाने मुहम्मदसे पहलेभी कई पैगम्बरोंको पैदा कियेथे और उनको अपना साझी बनायाथा जब उनसे साझेमें झगड़ा पड़गया तब मुहम्मदको पैदा करके अपना साझी बनाया उस खुदाकी क्या मज़ेकी बात है कि किसीको आगसे और किसीको नूरसे और किसीको मट्टीसे अर्थात् शैतानको अग्निसे फ़रिश्तोंको नूरसे और पैगम्बर आदिको मट्टीसे बनाया अब. जो नूर और आगसे बनाये हुवोंको छोड़कर मट्टीसे बननेवालेको साझी किया तो वह खुदाभी हम जानें मट्टीसेही पैदा हुवा दीसे क्योंकि अपने सजातीयसे सब कोई प्रीति करता है विजातीयसे कोई नहीं मोहब्बत करता है तो इससे तो मालूम होता है कि तुम्हारा खुदाभी आकारवाला है निराकार नहीं और भी देखो कि मूसा पैगम्बर तो खुदाका बनाया हुवा थोड़ेहीसे दिनमें ईमानसे अलग होकर साझा अलग कर लिया तब उसने मुहम्मदको पैदा किया और अपना साझी बनाया तो उस मुहम्मदकी दूकान किस जगह खुली है जहां वह बैठा काम कर रहा है और खुदाको कितना रुपया कमाय करके देता था या जो कुरानमें लिखा है कि खुदाको कोई उधार दो तो क्या खुदा क़र्ज़ा लेता था या ज़मानत देनेके वास्ते अपना साझी बनाया था-देखो तुम्हारी कुरानमें ऐसा लिखा है "वह कौन मनुष्य है जो अल्लाहको उधार देवे अच्छा बस 'अल्लाह दुगुन करे उसको उसके वास्ते' (मं० १ सि० २ सू० २ आ० २२७) ' इसी आयतके भाष्यमें तफ़सीर हुसेनीमें लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहबके पास आया उसने कहा कि "ऐ रसूल! खुदा क़र्ज़ क्यों मांगता है? उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बि-हिश्तमें लेनेके लिये उसने कहा जो आप ज़मानत लें तो मैं दूं मुहम्मद साहबने उसकी ज़मानत लेली" । अब देखो कि इस कुरानीने कैसा जाल रचा है पुराणियों अर्थात् पोपों सेभी बढ़ कर क्योंकि "जैसे को तैसे मिले मिले मूल के नाई; उनने मांगी दक्षिणा उनने हाथ दिखाई ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्यमुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तरेऽन्तर्गत कुरानी मत समाप्तम् ॥

ईसाई मत निर्णय।

अब मुसल्मानोंके बाद इन्हींके मिलते हुवे भाई बन्धु ईसाइयों का किञ्चित् वर्णन लिखते हैं जिससे सज्जन पुरुषोंको मालूम होगा कि इनकी बाइबिलादि पुस्तकें वह ईश्वरकृत नहीं हैं किन्तु वह किसी जाली पुरुष की बनाई हुई हैं सो दिखाते हैं:—"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव पर अँधियारा था और ईश्वर का आत्मा जलके ऊपर डोलता था। (पर्व्व १ आ० १,२.)" अब हम तुमसे पूछते हैं कि आरम्भ किसको कहते हो जो तुम कहो कि सृष्टिकी प्रथम उत्पत्ति की, तो हम पूछे हैं कि प्रथम सृष्टि यही हुई थी कि इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी जो कहो नहीं हुई थी तो पेश्तर ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाया तो हम तुम्हारे को पूछें हैं कि आकाश किसको कहते हो जो तुम कहो कि आकाश नाम पोल का है तो जब तक ईश्वर ने आकाश नहीं बनाया था तो तुम्हारा ईश्वर किस जगह रहताथा क्योंकि बिना पोलके किस जगह पदार्थ रहेगा और वह ईश्वर रहेगा इसलिये आकाश का बनना असम्भव है तो ईश्वर का बनना ऐसा कहना भी असम्भव ही हुवा और इसी में लिखते हो कि पृथ्वी बेडोल और सूनी थी तो फिर कहते हो कि ईश्वर ने पृथ्वी बनाई तो यह वाक्य क्योंकर मिलेगा एक वचन में तो पृथ्वी ईश्वर ने रची और दूसरे में पृथ्वी बेडोलथी तो एक जगह तो बेडोल कहने से ईश्वर की रची न ठहरी जो कहो कि पृथ्वीको बेडोल अर्थात् ऊँची नीची थी पीछे ईश्वर ने दुरुस्त किया अर्थात् सुधारी तो पेश्तरही ईश्वर ने बेडोल क्यों रची थी? क्या उस को इतना भी शऊर न हुवा कि फिर मुझको इसे ऊँची नीची सँवारनी पड़ेगी और जो उसने ऊँची नीची पृथ्वीको दुरुस्त किया तो क्या पृथ्वी अबार भी ऊँची नीची बहुत देखने में आती है जब तो खुदा की मजदूरी करना व्यर्थ हुवा और ईश्वर को ऐसे २ काम करने भी उचित नहीं क्योंकि यह काम मजदूर लोगों का है इस कामके करने से खुदा तो वर्त्तमान काल के कुलियों अर्थात् मजदूरों से बढ़िया कुली ठहरा इसलिये यह पुस्तक ईश्वर की की हुई नहीं। दूसरी आयत में लिखते हो" ईश्वर का आत्मा अर्थात् (प्राण) जलके ऊपर डोलता था" अब हम तुमसे पूछते हैं कि तुम वह आत्मा किसको कहते हो अर्थात् क्या पदार्थ है जो कहो कि चेतन है तो साकार है वा निराकार जो कहो कि साकार है व्यापक है या एक देशी है जो कहो कि व्यापक है तो वह तुम्हारा ईश्वर व्यापक होने से सर्व ज़मीन आसमान भर गया और कुछ जगह खाली न रही जब तो उस को सृष्टि रचने को नहीं मिल सकती है क्योंकि जिस जगह एक चीज़ रक्खी हुई है उस जगह दूसरी चीज़ नहीं समयासकती जो कहो कि एक देशी है तो एक देशी जो पुरुष होता है तो जिस देश में वह रहेगा उसी देश में वह काम करसकता है अन्य देश में कदापि न कर सकेगा इसलिये एक देशी होने से भी सृष्टि का कर्त्ता नहीं बनता है अगर जो

बिना कोई वस्तु नहीं थी जो कोई वस्तु नहीं थी तो यह जगत् कहांसे बना जो कहो कि नहीं जी ईश्वरका सामर्थ्य है तो फिर क्यों वार २ पूछते हो अजी हम तुमसे यह पूछें हैं कि ईश्वरका सामर्थ्य भिन्न है या अभिन्न है? और भिन्न है तो द्रव्य है व गुण है जो कहो कि भिन्न है और द्रव्य है तब तो जगत्का कारण भिन्नरूप द्रव्य होनेसे जगत् कारण सर्व अनादि सिद्ध होगया जब तो तुम्हारा कहना सृष्टिके पूर्व ईश्वरके सिवाय कुछभी वस्तु न थी यह कहना तुम्हारा निष्फल हुवा जो कहो कि सामर्थ्य गुण है तो देखो कि गुणीको छोड़के गुण अलाहदा नहीं रह सकता कदाचित् जो तुम ऐसा मानोगे कि सामर्थ्य रूप गुण ईश्वरका अलग रहेगा तब तो तुम्हारा ईश्वरही नष्ट हो जायगा जो कहो कि अभिन्न है तब तो वो ईश्वररूपी आदम हो गया जब तुम्हारा धूलिसे आदमका बनाया कहना निष्फल हुवा और इन्हीं आयतोंमें लिखा है कि "ईश्वरने पूर्वकी ओर एक बाड़ी अर्थात् बगीचा लगाया उसमें आदमको रक्खा और उस बगीचेके बीचमें जीवनका पेड़ और भले बुरेके ज्ञानका पेड़ भूमिसे उगाया।" तो हम जानते हैं कि ईश्वरमें तो भले बुरे ज्ञान कुछ था नहीं इसलिये दरख्त लगाया होगा जब ईश्वरकोही ज्ञान नहीं तो उस दरख्तके फल खानेसे क्योंकर ज्ञान उत्पन्न होगा अब देखो यहां कैसी लड़कोंकी सी बात क्या तुम ईसाई लोगोंमें उस वक्त बुद्धिमान् नथा खैर (प० २ आ० २१,२२) में लिखा है कि "ईश्वरने आदमको बड़ी नींदमें डाला और सोगया तब उसने उसकी पसलियों मेंसे एक पसली निकाली और उसके सायही मांस भर दिया और ईश्वरने आदम उस पसलीसे एक नारी अर्थात् एक औरत बनाई और उस आदमके पास लाया" अब देखो कि जैसे आदमको धूलिसे बनाया था तो उस औरतकोभी उस ईश्वरने धूलि क्यों नहीं बनाया और जो नारीको हड्डीसे बनाया तो उस आदमको क्यों न हड्डीसे बनाया जो कहो कि नरसे नारी होती है तो हम कहते हैं कि नारीसे नर होता और देखो कि जब नरकी एक हड्डीसे औरत बनी तो नरकी एक हड्डी कमती हो चाहिये और औरतके एकही हड्डी शरीरमें होना चाहिये सो तो नहीं दीसती है कि नर और नारी दोनोंके हड्डी बराबर मालूम होती हैं तो हम जानते हैं कि उसवक्त कोई ऐसा डाक्टर नहीं होगा कि जो उस वक्त इन गप्पोंको सुनकर जवाब देता क्योंकि उस विलायतमें जंगली मनुष्य पशुओंके समानथे इसलिये वह विचारे कुछ न कह स इसीलिये तुम्हारा मत ईसाइयोंका उस विलायतमें चला गया परन्तु इस मुल्कमें विशेष बुद्धिमान् पुरुष होनेसे तुम्हारी बाईबिलकी गप्पें कोई न मानेगा किन्तु उल्टी हँसी और मसखरी करेगा औरभी देखो (प० ३ आ० १, २, ३, ४, ५, ६, ७, १४, १५, १ १७, १९) में लिखा है कि "अब सर्प भूमिके हरएक पशुसे जिसे परमेश्वर ईश्वर बनायाथा धूर्तथा और उसने स्त्रीसे कहा क्या निश्चय ईश्वरने कहा है कि तुम इस बाड़ीके हरएक पेड़से न खाना। और स्त्रीने सर्पसे कहा कि हम तो इस बाड़ीके पेड़ोंके फल खाते हैं परन्तु उस पेड़का फल जो बाड़ीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे मत खाना और न छूना न हो कि मरजावो तब सर्पने स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगे क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आ

खुल जावेंगी और तुम भले और बुरेकी पहिचानमें ईश्वरके समान हो जावोगे और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें सुस्वादु और दृष्टिमें सुन्दर और बुद्धि देनेके योग्य है तो उसके फलमेंसे लिया और खाया और अपने पतिकोभी दिया और उसने खाया । तब उन दोनोंकी आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाके सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया । तब परमेश्वर ईश्वरने सर्पसे कहा कि जो तूने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक पशुनसे अधिक स्रापित होगा तू अपने पेटके बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खायाकरेगा ॥ और मैं तुझमें और स्त्रीमें और तेरे वंश और उसके वंशमें बैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एड़ीको काटेगा और उसने स्त्रीको कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊंगा तू पीड़ासे बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पतिपर होगी और वह तुझपर प्रभुता करेगा ॥ और उसने आदमसे कहा कि जो तूने अपनी पत्नीका शब्द माना है और जिस पेड़को मैंने तुझे खानेसे बरजाथा तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये स्रापित है अपने जीवनभर तू उसे पीड़ाके साथ खायगा और कांटे और ऊंटकटारे तेरे लिये उगावेगी और तू खेतका साग पात खायगा" अब देखो ईसाई लोगोंका ईश्वर अज्ञानी मालूम होता है और मूर्खभी मालूम होता है और अपराधीभी बनेगा क्योंकि जो ज्ञानी होता तो उस धूर्त सर्प अर्थात् शैतानको क्यों बनाता और बनाया इसीसे अज्ञानी हुवा जो वह विवेकी चतुर होता तो वह अपने हाथसे अपनेही कामको क्यों बिगाड़ता क्योंकि उस ईश्वरने आदम और आदमकी औरतको उस बगीचेमें रक्खा और उस दर-ख्तके फलको खानेसे मना किया यही उसका कायदा तो उस शैतानने उसके हुक्मको न रहने दिया और उसको सिखा दिया और ईश्वरको इसीलिये अपराध हुवा कि उसे धूर्त शैतानको जोकि ईश्वरके बनाये हुये मनुष्योंको बहकाता और ईश्वरका हुक्म न चलने देता और उनको बुरी बातें सिखलायकर उनको दुःख दिलवाता सो जो ईश्वर उसे पैदा न करता तो लोगोंको दुःखका कारण क्यों होता इसलिये उस शैतानका उत्पन्न करने वाला इस दुःखका मूल कारण ईश्वरही ठहरेगा नतु शैतान । अब देखो यहां क्या मजे की बात है कि धुर्तपन तो आप करना और उस बिचारे शैतानको दूषण लगाना क्योंकि एक मसल है (बाबाजी बहू तेरे बरकेकोनकिया आर लगावें लड़केको) अब देखो शैतान अर्थात् धुर्तपन तो यह तुम्हारे ईश्वरने किया कि बाबा आदम और उसकी औरतको कहा कि तुम वो जो बीचमें दरख्त है उसके फलको न खाना और ईश्वरने कहा कि तुम न छूना न हो कि मरजावो अब कहो कि ऐसा धोखा देकरके कि जिसके फल खानेसे भले बुरेका ज्ञान होय उसके तईं मना किया और मरजानेका डर दिखलाया तो अब देखो इस ईश्वरने झूठ बोलकर कैसा उनको धोखा देकर शैतानपनेका काम किया अब इसके सिवाय ईश्वरके सिवाय कौन शैतान हो सकता है तब तो उस सर्प बिचारेने उस औरतसे कहा कि तुम बाड़ीके बीचमें जो फल लगे हुये हैं उनको खावो तब स्त्रीने सर्पसे कहा कि हम तो इस बाड़ीके पेड़ोंका फल खाती हैं परन्तु उस पेड़का फल जो बाड़ीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे न खाना

और न छूना नहो कि मरजावो तब सर्पने उपकार बुद्धि जानकर स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगी क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खावोगी तुम्हारी आंखें खुल जांयगी और तुम भले और बुरेकी पँहचानमें ईश्वरके समान हो जावोगी और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें स्वाद और दृष्टिमें सुन्दर बुद्धि देने योग्य है तब फल लिया और खाया और अपने पतिको भी दिया उसने भी खाया तब दोनोंकी आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाकर सिया और अपने वास्ते ओढना बनाया। अब देखो कोई बुद्धिमान् इन्साफ़ी विचार करके देखे कि इस विचारे सर्पने आदमका कैसा उपकार किया और ईश्वरने कैसा धोखा दिया तिसपर भी ईश्वरको खबर न हुवा कि आदमको धोखा दिया और ज्ञान न होने दिया और उपकार करनेवाले सर्पको भी शाप देने लगा किन्तु पेटसे चलेगा और धूल खायगा और तुझमें और तेरे वंशमें स्त्री और स्त्रीके वंशमें वैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एड़ीको काटेगा और उस औरतको भी शाप दिया मैं तेरे गर्भ धारणको बहुत बढाऊंगा और पीड़ासे बालकको जनेगी और तेरी इच्छा पतिपर होगी वह तुझपर प्रभुता करेगा और आदमको कहा तूने अपनी पत्नीका शब्द माना और मैंने तुझे खानेसे वरजा था तूने खाया इसी कारण भूमि तेरे लिये शापित है। अब देखो विना कसूर उन तीनोंको शाप देने लगा अब कहो उन तीनोंका क्या कसूर था अपना कसूर आपको न दीखा भला वह ईश्वर जो दयालु होता तो वह फल ज्ञान और अमर होनेका लगाया था तो मना क्यों करता और जो मने करनेको इच्छाथी तो उस दरख्तको क्यों लगाया इस बाइबिलकी बातोंको बुद्धिमान् पढकर अथवा सुनकर बुद्धिमें विचार करते हैं कि उस ईश्वरने अज्ञानसे उस दरख्तको लगाया और उसका फल जब उसने खाया तब उसको ज्ञान हुवा उस ज्ञानसे उसके दिलमें ईर्षा होकर ऐसा ख्याल हुवा कि इस फलको जो कोई खायगा वह मेरे समान हो जायगा तब मेरेको कौन मानेगा इस डरसे आदमको मना करदिया छी! छी!! छी!!! इस खुदाके मानने वाले पर और उस खुदा पर क्योंकि उस खुदासे तो वह शैतान ही अच्छा था क्योंकि उसने आदमका उपकार किया। भोले भाई ईसाई आंख बन्दकर कुछ हृदयमें विचार करके ऐसा जो धूर्त्त शैतानोंका शैतान ईश्वर उसको छोड़कर " वीतराग राग " सर्वज्ञ देव सर्व जीव उपकारी, दीनदयालु, जगत्बन्धु, देवाधिदेव, श्रीअर्हतदेव, निष्कारण, परदुःखनिवारक निस्पृहके वचनको अंगीकार करो जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना है तो। (प० ३ आ० २३,२४) इसमें ऐसा लिखा है कि " ईश्वरने कहा कि देखो आदम भले बुरेके जाननेमें हमारे समान होगया और अब ऐसा न होवे कि वे अपना हाथ डाले और जीवनके पेड़मेंसे भी लेकर खावे और अमर होजाय " सो हमने आदमको निकाल दिया " और अदनकी वाड़ीकी पूर्व ओरको टहराये और चमकते हुये खड्गको जो चारों ओर घुमाता था जिससे जीवनके पेड़के मार्गकी रखवाली करें "—अब देखो भला ईश्वरको कैसी ईर्षा हुई कि ज्ञानमें हमारे तुल्य हुवा यह बात क्या बुरीहुई क्योंकि ईश्वरके तुल्य होनेसे क्या ईश्वरकी ईश्वरताका हिस्सा लेता था ईश्वरसे लड़ता क्या ईश्वरकी रोजी बांटता हा! हा!! कैसे खेदकी

है कि ईश्वर भी ईर्षा करने लगा तब तो मनुष्यमें भी ईर्षा होना बुरा कहना जे बात वृथा निष्फल होजायगी क्योंकि जो ज्ञानी पुरुष होते हैं सो तो ईर्षा छुड़ानेमें उपदेश देते हैं और ईसाइयोंके ईश्वरने आदमको पैदा किया और उसके ज्ञान होनेसे ईश्वरने कितना दुःख माना और उसके बदलेमें आदमको अमर फल न खाने दिया और उल्टा उस विचारे गरीबको यहांसे निकाला और अमरफलके ऊपर चमकते खड्गका पहरा रक्खा इसके देखनेसे मालूम होता है कि वह ईसाईयोंका ईश्वर बेवकूफ निहायत ईर्षावालाही है। (उ० ६ आ० १, २, ४.) में लिखा है कि "उनसे और बेटियों उत्पन्न हुई तो ईश्वरके बेटोंने आदमकी पुत्रियोंको व्याहा और उनसे बालक उत्पन्न हुये और ईश्वरने देखा कि आदमकी दुष्टता पृथ्वीपर बहुत हुई है तब आदमीको उत्पन्न करनेसे परमेश्वर पछताया और अतिशोक हुवा पृथ्वी परसे नष्ट करूंगा, उन्हें उत्पन्नकरके पछताया" अब देखो यहां विचार करो कि ईश्वरके पुत्र हुवे तो ईश्वरके औरतभी होगी जब तो आदमको धूलिसे बनाया ये कहना तो शेखचिल्लीके समान हुवा क्या खूब ईसाइयोंकी बात है कि खूब गप्पे हांकी। भला विचार तो करो कि ईश्वरके सिवाय और तो कोई दूसराथाही नहीं फिर वह पुत्रादिक और आदमकी पुत्री जीव बिदून कहांसे उत्पन्न हुई और जो उत्पन्न भई तो नर और नारीका होना किस कर्मसे हुवा जो कहो कि बुरे भले कर्मसे हुवा जो कर्म से होगा तो पूर्वजन्मभी तुमको माननाही होगा तुम पुनर्जन्म मानतेही नहीं और जीवभी ईश्वर से पहले मानतेही नहीं जो कहो कि ईश्वरसेही नर और नारी बनता गया तबतो ईश्वरनेही ईश्वरको शापदिया और ईश्वरही औरत बनकर गर्भ धारनकिया और ईश्वरही उत्पन्नहुवा तब ईश्वरकी सृष्टिठहरी तब ईश्वर क्यों पछताया और क्यों अतिशोक किया और उनके बनाने में पश्चात्तापकिया तो पहले अज्ञातदशा से क्यों बनायाथा और जो अज्ञान से बनाया तो फिर सबको नष्टकरूंगा ऐसाभी क्यों विचारा जो ऐसा विचारा तो सबके नष्टहोने से वह ईश्वरभी नष्टहोजायगा फिर ईसाईलोग किसको मानकर अपने पापको क्षमाकरावेंगे इसीलिये ईसाको ईश्वरने शूली दिलवाईथी क्या खूबकाम वह तुम्हारे ईश्वरने किया किसी रीतिसे उसको चैन न पड़ा सिवाय दुःख के और देखो कि ऐसा लिखाहुवा है कि "उस नावकी लम्बाई तीनसौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊंचाई तीसहाथकी होवे। तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटोंकी पत्नियां तेरेसाथ। और तू सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो २ अपनेसाथ लेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें; वे नर और नारी होवें: पक्षी में से उसके भांतिर के और ढोरोंमेंसे उसके भांति २. के और पृथ्वी के हरएक जीवों में से भांति २ के दो २ तुझ पास आवें जिससे जीते रहें और तू अपने लिये खानेको सब सामग्री अपने पास इकट्ठाकर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजनहोगा। सो ईश्वरकी सारी आज्ञा के समान नूहने किया (तौ० प० ६ आ० १५, १८, १९, २०, २१, २२)" और देखो नूहने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्रपशु और हरएक पवित्र पक्षियों मेंसे लिये और होमको भेंट उस वेदीपर चढ़ाई और परमेश्वरने सुगन्ध सूंघा और परमेश्वरने अपने मनमें कहा कि आदमीके लिये मैं पृथ्वी को फिर कभी शाप न दूंगा इसकारण कि आदमीके मनकी भावना उसकी लड़काई

से बुरी है और जिसरीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा फिर कभी न मारूंगा।
प०८ आ० २०, २१,) देखो १५ वीं से २२ वीं तक ६ पर्व में जो हम ऊपर
अब देखो कैसी असंभवकी बातें लिखीहैं कि इतनी लम्बी, चौड़ी, ऊंची नाव में हाथी
ऊंट, बकरी, भेड़, आदमी, दास, दासी, बेटा, बेटी, लुगाई, यह सबको नाव में
और भाँति २ के जानवर वगैरः सबको और खानेके लिये ऐसा नूहने कहा अब देखो
विचारकरो कि वह तुम्हारा स्वर्ग आसमान पर न होगा किन्तु कोई समुद्रके किनारे
उसीको स्वर्ग मानलिया दीखे अहारे ईसाइयो क्या तुम्हारे पुस्तकोंकी तारीफ करें
ऐसी छोटी २ नाव में लाखों हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल, छेरी, गाय, पक्षी और आदमी
गये कोई पूछनेवाला न था नहीं तो तुम्हारी किताबों में ऐसी गप्पें क्यों लिखीजातीं
ईसाइयों में ऐसा कोई बुद्धिमान् विवेकी न हुवा जो इन गप्पोंको निकालकरके शुद्ध
का प्रक्षेपकरता जिससे ईसाई लोग इस जाल से निकसकर शुद्ध मतको अंगीकार करते और
देखो "पर्व ९ की आ० २०, २१, में नूहने ईश्वरकी वेदी बनाई पशु और पक्षियों में से
होमके वास्ते वेदीपर भेंटरक्खे" अब इसके देखने से तो मालूमहोता है कि हिंसक
के चलाने वाले जो कि वेद आदि ग्रन्थोंमें जो यज्ञ आदि करना उन्हीं पुस्तकों वालों
मुहब्बत करके ईसाइयोंने भी जाल रचकर भोले जीवोंको बहकाने लगे ईश्वरके नाम
होमकराना;वेदी बनाना; आप खाजाना; छी ! छी !! छी !!! ऐसे ईश्वर औ ऐसे ईश्वरके मा
वालों को कि जो जीवकी हिंसाकरके वा दूसरोंसे करायकर ईश्वरने सुगन्धसूंघ और प्र
होकर कहने लगा कि फिर पृथ्वीको कभी शाप न दूंगा इससे तो हमको मालूम होता
कि कोई राक्षस व दानव होगा नतु ईश्वर क्योंकि जो मांस खाने अथवा सूंघनेसे खुश
और आशीर्वाद देने लगा और फिर यह भी कहने लगा मैंने सारे जीव धारिय
मारा फिर कभी न मारूंगा अब कहो वह जो खुदा है क्या शेखसिल्ली है जो ऐसी
बातें कहता है हे! भोले भाई ईसाइयो ऐसे खुदाको छोड़के कोई सर्वज्ञदेव मानों जि
तुम्हारी आत्माका कल्याण हो फिर देखो ९ वें पर्व्वकी आ० १, ३, ४, और पर्व ११
आ० १, ४, ५, ७, ९ और पर्व्व १२ की आ० ११, १२,१३ और पर्व्व १७ की आ०
१०,११, १२, १३, १४ पर्व्व ३२ तक अथवा ३९ तक जो २ गप्पें लिखी हैं उनका
कहां तक लिखें जो २ हिंसा धूर्त्ताई, छल वचन जो बाइबिल आदि पुस्तकोंमें लिखा है
एक लय व्यवस्थाकी पुस्तक तौ० ॥ तौ० लैव्य० व्यवस्थाकी पुस्तक (प० १-२
समें लिखा है कि मूसाको बुलाया और इस्राइलके सन्तानसे भेट मंगाई कि गाय भेड़
बकरी अब विचारिये देखो तो सही कि ईसाइयोंका ईश्वर गाय, आदिकोंका अपने व
बलिदान लेनेके लिये उपदेश करता है हा! हा!! हा!!! छी! छी!! छी!!! थू! थू!! थू!!
स ईश्वर पर जो विचारे पशुओंके मांस और खूनका प्यासा है और भूखा है वह क
ईश्वर कभी न ठहर सकता है; हिंसक; महापापी, निर्दयी, दुष्ट मालूम होता है इस पु
कमें भी ऐसी निर्दयताकी बातें देखकर रोमाञ्च खड़े होगये, लेखनी थक गई किन्तु
त न माना दिलमें उचंग आई मची रचित इञीलकी झूठी गप्पें पाई, ईसाइयोंमें
अज्ञान मीत छाई ईसूकी जन्म रीति किंचित् हमने भी सुनाई यशू क्राइष्टका जन्म इस रा

हुवा उसकी माता 'मरियम' की यूसफ़से मगनी हुईथी पर उनके इकट्ठे होनेके पहले ही वह देख पड़ी कि पवित्रआत्मासे गर्भवती है देखो परमेश्वरके एक दूतने स्वप्नमें उसे दर्शन दे कहा हे दाऊदके सन्तान यूसफ! तू अपनी स्त्री मरियमको यहां लानेसे मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्रआत्मासे है, (इ० प० १ आ० १९, २०) तब आत्मा ईशूको जंगलमें लेगया शैतानसे उसकी परीक्षा की जाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास (व्रत) करके पीछे भूखा हुवा तब परीक्षा करनेहारेने कहा कि जो तू ईश्वरका पुत्र है जो कह दे कि यह पत्थर रोटियाँ बनजावें (इ० प० ४ आ० १, २, ३) अब देखो मरियम क्वारीथी और उस पवित्रआत्मा अर्थात् ईश्वरसे गर्भवती हुई फिर ईश्वरके एक दूतने यूसफ़को कहा तू अपनी औरतको यहां लानेसे मत डरना क्योंकि उसमें जो गर्भ है सो पवित्र आत्मासे है क्या वो ही ईश्वर था वा हैवान कोई जंगली मनुष्यथा जब तो वह तुम्हारा ईश्वर निराकार मानना व्यर्थ होगया क्योंकि जब मरियमके गर्भ रहा तो उसका निराकार कुत्तेका सींग है और फिर देखो जब उसके गर्भ रहा तो वो उसकी औरत होचुकी फिर यूसफ़को स्वप्न देकर उससे कहा कि तू अपनी औरतको लानेसे मतडर अब देखो ऐसी २ जाल रचकर ईश्वर ठहरता है ऐसा पुरुष व्यभिचारी, अनाचारी ठहरता है ऐसी २ बातें देखनेसे न तो वो पुस्तक ईश्वरकी है और न उस पुस्तकका लिखा ईश्वर ठहरता है, औरभी देखो प०४में जो हम ऊपर लिख आये हैं उससे ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं जो कहो कि नहीं जी वह तो सर्वज्ञ था अरे भोले भाइयो ! कुछ तो विचार करो कि जो तुम्हारा ईश्वर सर्वज्ञ होता तो शैतानसे ईसाकी परीक्षा क्यों कराता उस तुम्हारे ईश्वरसे तो वह शैतान जो है सोई बुद्धिमान् विवेकी मालूम होता है क्योंकि इसकी परीक्षाके लिये चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुवा परीक्षा करनेवालेने कहा जो तू ईश्वरका पुत्र है तो कहदे कि यह पत्थर रोटियाँ बन जाओ अब देखो न तो वह ईश्वरका पुत्र ठहरा कदाचित् कहो कि ईश्वरका पुत्र है तबतो ईश्वरके ही तुल्य होता तो जब ईश्वरके तुल्य होता तो फिर वह उसकी परीक्षा क्यों करता क्योंकि ईश्वर जानता ही था यह मेरा पुत्र है या वह ईश्वर भी भूल जाताथा तो न तुम्हारा ईश्वर ठहरा न तुम्हारी इंजील पुस्तक ईश्वरकृत ठहरी न वह ईश्वरका पुत्र ईशू ठहरा इसीलिये भोले जीवोंने इस मतको अंगीकार तो करलिया परन्तु विश्वास न आया इसीलिये तुम्हारी इस इंजीलमें (मं० १ प० १, आ० १९, २०) में लिखा है कि हे अविश्वासियो और हटीले लोगो में तुमसे सत्य करता हूं यदि तुमको राईके एक दानेके तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहाड़से जो कहोगे कि यहांसे वहां चला जाय वह चला जायगा और कोई काम तुमसे अशक्य न होगा" अब देखो कि ईसा हुबहू(रूबरू) मौजूदथा और लोगोंको उसके कहनेपर विश्वास न हुवा जो राईके एक दाने भरभी किसीको विश्वास होता तो उनका सर्व काम सिद्धि होता तो जब ईशूके सामनेही जो लोग अविश्वास करतेथे तो इस समय ईसाई लोगोंको क्यों विश्वास हो जो कहो कि नहीं जी हमको तो ईशूके वचन पर पूरा २ विश्वास है क्योंकि ईसू ईश्वर पवित्र आत्माका दुवया-उसीके अरे भोले भाइयो ! यह तुम्हारा कहना तो कहनेमात्रही दीखता है क्योंकि तुम लोग दिन रात इस हिन्दुस्थानके शह-

सो संपूर्ण वृतान्त इनका हम पहलेही इसी प्रश्नके उत्तरमें लिख चुके हैं, वेदान्तियोंमेभी पक्षपात दीखती है देखो कि एक अद्वितीय ब्रह्म प्रतिपादन करना सिवाय कोई दूसरा पदार्थ नहीं और फिर अज्ञान अर्थात् अविद्या उसकोभी अनादि अब देखो ये उनके विषमवाद नहीं हुवा तो क्या हुवा और एक ब्रह्मको मानके फिर सृष्टि मान लेना और इन वेदान्तियोंमें जुदे २ आचार्य्य जुदी २ प्रक्रियाके एक जीव वाद कोई अनेक जीव वाद इत्यादि अनेक विषम वाद और ब्रह्मज्ञान "अहं ब्रह्मास्मि" इतना ज्ञान होनेहीसे मोक्ष होजाना और इंद्रियोंका भोग करना (भक्ष करना) और परमहंस बन जाना हमारेको पुण्य पाप कुछ नहीं है हम शुद्ध ब्रह्म हैं देखो जो पक्षपात न होता तो इत्यादि इन में अनेक भेद क्यों होते और शेष जहां मत दिखाया है वहां से समझलेना ऐसेही दयानन्दभी वेदमंत्रकोही मानकरके सर्वका खंडन करताहुवा यज्ञकरना. होमकरना इसीको धर्ममानना किसी जगह तो मोक्ष में आवागमन मानलेना किसीजगह लिखता है कि अमरहोजाना फिर कभी दुःख न होवे ऐसा भी लिखता है इत्यादि पक्षपात सहित अनेक तरहके वचन हैं सो हम पीछे दिखा चुके हैं। इसीरीति से मुसल्मान भी मुहम्मदके वचनके सिवाय दूसरे का वचन नहीं मानते नमाज पढ़ना रोज़ाकरना, और मुसल्मानोंके सिवाय किसी का धर्म अच्छा नहीं सो भी पीछे लिखकर दिखाय चुकेहैं। इसीरीति से ईसाई भी सिवाय ईसा के दूसरेके ऊपर विश्वास नहीं करते और ऐसा कहते हैं कि जबतक ईशूके ऊपर विश्वास नहीं लायेगा तब तक किसी का भला नहींहोगा; इस जगहभी पक्षपात है और पीछे हम लिखचुके हैं। और रामानुज, नीमानुज, माध्व और बल्लभाचार्य्य, कबीरपन्थी, नानकपन्थी, दादूपन्थी रामसनेही, दरयादासी, खेड़पाखा, निरंजनी, नाथ, कनफड़, योगी इन पन्थवालों के भी अनेक भेदहैं जो इनका सब हाल जुदा २ लिखने से अथवा इनके मंत्रादिक लिखने से ग्रन्थ बहुत बढ़जाने के भयसे नहीं लिखते क्योंकि जिज्ञासू ज्यादः ग्रन्थहोने से आलस्य वश होकर पूर्णरूपसे पढ़ न सकेंगे इसलिये नहीं लिखाया है किन्तु वे सब सम्प्रदायी लोग अपना२ पक्षपात करके अपना२ जाल बिछाय कर भोले जीवों को फँसायकर जो जो जिसके दिल में जैसी २ उपासना आदिक आई तैसी २ करायकरके हठग्राही होकर अपने २ पक्षों को खेंचते हैं और आपस में लड़ाई झगड़े करते हैं एकको एक बुराकहना अपने को भला कहना प्रसिद्ध जगत् में छाय रहा है हम कहांतक लिखावें इसलिये तुमही अपने दिल में विचारकरो कि इन लोगों में पक्षपात सिद्धहोगया या नहींहुआ क्योंकि देखो सर्वज्ञ वीतराग सर्वदर्शी के जो वचन हैं सो सब निर्पक्षपात होतेहैं। सोही दिखाते हैं गाथाः—सेय बरोय असंबरोय बुद्धोय अहवा अन्नोवासमभावभाविगप्पा। लहसुरखो न संदेहो ॥ १ ॥ स्वेताम्बरी वा दिगम्बरी है बौद्ध अथवा अन्य कहता है सांख्य न्याय वेदांतमिमांसादि कोई मतवाला होय जिस समयमें भाव भावी कहता अपनी आत्मामें संभाव लावेगा अर्थात करेगा लहे नाम मोक्षको प्राप्त होगा इसमें कोई तरह का संदेह नहीं। अब देखो इस वचनमें कोईका पक्षपात नहीं जो पक्षपात होता तो जैनमतके सिवाय और दूसरेके लिये मोक्ष होना कदापि न कहता जो सबके लिये इसने मोक्ष कहा किन्तु जो उस क्रिया जो

कि है! उपादेको जो समझकर अंगीकार करेगा उसीका होगा न कोई जैनी न कोई वैश्नव। अब देखो तुमही विचार करो पक्षपातरहित सिद्ध हुवा कि नहीं और भी देखो कि जैसे २ मतावलम्बियोंने अपना २ पक्षपात मंत्र उपासनादिकोंमें जो किया है तैसाभी इस मतमें पक्षपात सहित कोईभी उपासनाका मंत्र नहीं है किन्तु पक्षपात रहित जो इनका उपासना मंत्र मूल है उसीको लिख करके अर्थ सहित दिखाते हैं॥ (१) णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवझायाणं, णमोलोए व्वसाहूणं, एसो पंचणमुःकारो सव पाप्पणासनो, मंगलाणंच सव्वेसिं पढमं हवे इ मंगलं" ॥ अर्थः-(णमो अरि हंताणं) कहता नमस्कार अरिहंतको होय, इस अरिहंत पदके तीन अर्थ होते हैं। (१) अरि कहता जो शत्रु उनको मारे अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओंको दूर करे अनुः (अरि) कहता संसारी शत्रुको नहीं किन्तु राग द्वेष आदि जोकि संसारके बन्ध हेतु उनको जीते अर्थात् उनको दूर करे उसको मेरा नमस्कार होय अब इस जगह इस अर्थमें किसी जैनी व वैश्नवीका नाम नहीं हिन्दू वा मुसल्मान वा ईसाई किसीकाभी नाम नहीं जो राग द्वेष आदि शत्रुओंको जीतेगा उसी (अरिहंत) को नमस्कार होगा अब देखो जो इनके पक्षपात होता तो इनके मुख्य जैन मतके चलाने वाले श्री ऋषभदेव स्वामी प्रथम हुयेथे उनसे आदि लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीस तीर्थंकर हुये इस हुंडा सर्पनी कालके विषय ऐसी सर्व न उत्सर्पनी अनन्ती होगई अनन्ती हो जायगी जिस हरएकमें चौवीस २ ही तीर्थंकर होंगे इस भरतक्षेत्रकी अपेक्षा लेकर इसी रीतिसे और क्षेत्रोंमेंभी जान लेना परन्तु सर्व तीर्थंकरोंमेंसे किसी तीर्थंकरने ऐसी परूपना न करीकि इस (अर्हतं) पदको उठायकर अपने नामका पद चलावे अनादि कालसे सर्व तीर्थंकरोंने इसी पदको अङ्गीकार किया और इसी पदोंकी महिमाका उपदेश देते गये और देते हैं, और देते जांयगे दूसरा पद कदापि न बदला जायगा. अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता वा अनादि न होता तो जैसे सर्व मतावलम्बियोंने पक्षपात सहित उपासना आदिक जुदी २ अङ्गीकार किया वैसा येभी जुदे २ तीर्थंकर हुयेथे और उन तीर्थंकरोंकी शिष्यादि शाखाभी जुदी २ हुईथीं तो येभी जुदी २ अपने २ नामसे चलाते तो चलजाती सो तो किसीने न चलाई किन्तु राग द्वेषरूपी शत्रु दूर होनेसे जो प्राप्त हुई सर्वज्ञता, सर्वदर्शीपना, होनेसे किसीका आपसमें विसम्वाद न हुवा इसीलिये ये मत अनादि अविसम्वादी हम मानते हैं और तुमभी अपनी बुद्धिसे विचार कर देखो कि सर्व मतावलम्बियोंके विसम्वाद और इस मतमें अविसम्वाद युक्ति करके सिद्ध हो चुका अब इन पदोंका विस्तार करके चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे किञ्चित् अर्थ लिखते हैं इसीलिये हमने प्रथम पदकाभी थोड़ासा अर्थ कर युक्ति दिखाय दीनी। (णमो सिद्धाणं) नमस्कार सिद्ध भगवान्को वो सिद्ध नाम किसका है कि अष्ट कर्म करीके रहित, अरूप, आवागमन करके रहित अर्थात् फिर उसका जन्ममरण न होय उन सिद्धोंको मेरा नमस्कार होय। (णमो आयरियाणं) नमस्कार आचार्यको होय जो ३ गुण करके संयुक्त पञ्च आचार पालनेवाला और पलानेवाला उसको नमस्कार होय। (णमो उवझायाणं) नमस्कार उपाध्यायको होय जो है पढ़ै और औरोंको पढ़ानेवालेको। (णमो लोए सव्वसाहूणं) जो

लोकके विषय सर्व साधू, तथा मुनिराज, जो कि मोक्ष मार्गके साधनेवाले ... होय ॥ अब इन चार पदोंके अर्थमेंभी किसी जैनी वा वैश्नव हिन्दू वा मुसल्मान ईसाई इसमें किसीका नाम न आय जैसा सर्व मततावलम्बियोंने जिस २ के मुरूय व्यक्तिको मानकर नमस्कार करते हैं तैसा इस मतवालेने न किया क्योंकि जो २ उनके शिष्य गणधर आदि श्री पुंडरी महाराजको आदि लेकरके श्री गौतम सुधर्मा स्वामी, पर्यन्त तक इस आचार्य्य पदमें नाम न आया इसीलिये पूर्व अर्थानुसार जो युक्ति हम कह आये हैं सो सर्व इस जगह लगाय लेना और भी इनके आचार दिनकर ग्रन्थमें जो इनके उपासक हैं उनके लिये पूजनकी विधि है उसमेंके एक दो श्लोक और एक मंत्र अर्थ समेत लिखकरके दिखाते हैं ... रहित मालूम होता है-(श्लोक) शिवमस्तु सर्व जगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥ सर्वोपसंतु सुखिनः सर्वे संतु मयाः । सर्वे भद्राणि पश्यंतु माकश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥ २ ॥ अर्थः-शिवमस्तु सर्व जगत्का कल्याण हो प्राणीमात्र परोपकारमें सदा तत्पर रहो और दोषमात्रका नाश हो सर्व लोग सुखी रहो ॥ १ ॥ सर्वे प्रीति सर्व लोक सुखी रहो सर्व लोगोंके रोग दूर हो सर्व लोग कल्याणकी बात देखो कोई दुःखी मत रहो ॥ २ ॥ श्री संघ पौर जन राजाधिप राजसंनिवेशानांगोष्ठी पुर मुख्यानां, व्यहारणी व्यहरे शांति । श्री श्रमण शांतिर्भवतु, श्री पौर लोकस्य शांतिर्भवतु, श्रीजन पदानां शांतिर्भवतु, श्री ... शांतिर्भवतु, श्री राजासन्निवेशानां शांतिर्भवतु, श्री गोष्टीकानां शांतिर्भवतु ॥ अर्थः-साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, सर्वजन राजा, देशपतिराजा, (सनिवेश) कहतां गाँव, नगर आदि सेठ साहूकार अथवा व्यवहार करने वाले महाजन सर्व लोकके विषय जो भूत प्राणी सबकी शांति अर्थात् कल्याण हो अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता तो अपने मतावलम्बियोंके सिवाय और दूसरे लोगों की शांति पुष्टि न कहते परन्तु वीतराग सर्वज्ञदेव, दर्शी, जगतोपकारी, दीनबन्धु, दीनानाथ जगद्गुरु निष्कारण, परदुःख निवारण, भूत प्राणियोंके हितकारक उपदेश देता हुवा सबके कल्याणको वांछता हुवा पक्षपात रहित जन्ममरण मिटानेवाला मोक्षदाता शिवपुरका पहुंचाने वाला कल्याणमार्गको कहता हुवा इसलिये जो कोई बुद्धिमान् विवेक सहित विचारमान हो वह इस मतको अर्थात् जिन धर्म को अंगीकार करके कल्याण करेगा, अब और भी देखो कि इसी पाँच पदका जो मंत्र है इसके कई तरहके भेद हैं और ॐकार भी इन्हीं पांच पदों से सिद्धहोता है । (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जीनेभी ईश्वर का नाम ॐकार लिखा है ? (उत्तर) भो देवानांप्रियः ! दयानन्द सरस्वती का जो लेख है सो आकाशके पुष्पके समान है । (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जी तो बड़े विद्वान् और अच्छे पण्डितथे आप उनके अर्थको आकाशके पुष्प समान कैसे कहते हो ? (उत्तर) दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि ईश्वरका नाम (खं और (ब्रह्म) भी है आकाशकी तरह व्यापक होनेसे (खं) और सबसे बड़ा होनेसे (ब्रह्म) है सो इन बातों का खंडन तो श्री आत्मारामजी का बनाया हुआ "अज्ञानतिमिर भास्कर" अच्छीतरह से किया हुवा है इसलिये हमको कुछ जुरूरत नहीं परन्तु जो ईश्वरका ना

ॐकार लिखा है सो तो हमभी सत्यकरके मानते हैं परन्तु जो दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि (अ) (उ) (म) इन से अग्नि वायु आदिकों का ग्रहण करना है सो स्वकपोल कल्पित विवेक शून्यबुद्धी विचक्षण अनपढ़ पत्थरके समान अप्रमाणिक है क्योंकि प्राचीन वैष्णव मतवाले कोई तो तीन अवतारों से " ॐकार " को बनातेहैं—ब्रह्मा विष्णु, और शिव अवतारों सेही मानते हैं सो भी नहीं बनसक्ता क्योंकि तीनों अवतार एकही स्वरूप होते और कोई कहते हैं कि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से " ॐकार " बनता है क्योंकि " अकार" को रजोगुण विष्णुरूप और " उकार" को सतोगुण ब्रह्मारूप और " मकार " को तमोगुण शंकररूप इन तीन अवतार तीनगुणसे मिलकरके (ॐकार) बना और वेदान्तियों की भी रीति लिखते हैं सो भी देखो कि " ॐकार " की उपासना बहुत उपनिषदों में है तथापि " मांडूक्योपनिषद् " तिसकी रीतिसे (ॐकार) का स्वरूप लिखतेहैं विश्वरूप जो " अकार " है सो तेजसरूप " उकार " से न्यारा नहीं (उकार) रूप है और तेजस रूप जो " उकार " है सो प्रज्ञारूप (मकार) है इन तीनों अक्षरों अर्थात्(अकार) (उकार) (मकार) को अभेद रूप करके जो अमात्रक ब्रह्मरूप से अभेदरूप करके (ॐकार) की उपासना कही है ॥ अब देखो (ॐकार) के मानने में हमने चार रीति कहीं इन चारों में से आपस में विषमवाद होने से दयानन्द सरस्वती का कल्पित अर्थ अग्नि, वायु आदिसे (ॐकार) क्योंकर बनसक्ताहै इसवास्ते नवीनमत चलानेवालों की बुद्धि अपने कल्पित मतको सिद्ध करनेके लिये नवीन २ बुद्धि होजाती है इसलिये सब नवीन मत हैं अब देखो कि अनादि " जिन " मतमें जो (ॐकार) का स्वरूप है सो लिखते हैं (अरिहंता असरीराआयरियाउवज्झाय मुणिणो पंचक्खरानिप्पन्नो ॐकारो पंचपरमेष्ठी) इन पांचों पदोंके आदि २ के अक्षर लेने से व्याकरण रीतिसे " ॐकार " सिद्धहोता है जो कोई व्याकरण सन्धि आदिभी जानता होगा सो भी सिद्धकरलेगा. देखो किञ्चित् हमभी कहते हैं: समान से परे जो समान उन दोनों के मिलने से दीर्घहोता है और (आकार) और (उकार) के मिलने से (ओकार) होता है और (मकार) का व्याकरण के सूत्रों से बिन्दुरूप अर्थात् अर्धचन्द्र आकारवत् अनुस्वार होजाता है—अब देखो इन पांचपद परमेष्ठी से " ॐकार" सिद्धहुवा इसलिये इन पांच पदके सिवाय भव्य जीवके लिये उपासना करने को दूसरी कोई वस्तु नहीं है इन पदों का सामान्य रूप अर्थ तो पेश्तर लिखआये हैं और विशेष अगाड़ी लिखेंगे, अब देखो सत्य २ रूप (ॐकार) इन पांच पदों से सिद्ध होचुका और इन पांच पदोंही के गुणो की मालाके जो मणियें की जो संख्या रक्खी गईहै सो गुणों को अंगीकार करके आर्य लोगों के लिये जब स्मरण व्यवहार सर्व प्राचीन मतों से प्रसिद्ध है क्योंकि मालामें १०८ मणियां होना इसीलिये १०८ मणियें होने की संज्ञा रक्खी क्योंकि जिन पांच पदोंसे (ॐकार) को सिद्ध किया उन्हीं पदोंके गुणको एकत्र मिलाने से १०८ होते हैं सो प्रक्रिया इस रीतिसे हैं (अरिहंत) पदके १२ गुण, असरीरि, अर्थात् (सिद्ध) पदके ८ गुण; (आचार्य्य) पदके ३६ गुण, (उपाध्याय) पदके २५ गुण, और (मुनि) पदके २७ गुण इन सबको इकट्ठे करनेसे १०८ गुण होते हैं इन्हीं पांच पदोंके गुण की माला हुई इसलिये सर्वत्र सर्व मतावलम्बी १०८ मणियों की

मालासे कोई कमी बेशी नहीं कर सकता इसलिये सब रीतिसे पक्षपात रहित अनादि सिद्धि हो चुका और जो हमने १०८ गुण ऊपर वर्णन किये इनका सुलासा हाल चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां वीतरागका उपदेशके वर्णनमें करेंगे, जो तुमने दूसरा प्रश्न कियाथा उसका उत्तर हम निर्पक्षपात होकर दिया है जो कोई बुद्धिमान्, विवेकी, आत्मार्थी, सत्य असत्यका विचार करके असत्यका त्याग और सत्यका ग्रहण" वीतराग" सर्वज्ञ देव, दीनबन्धु, दीनानाथ, जगद्गुरु, जगतुहितकारी, सच्चिदानन्द, परमानन्द, परोपकारीके उपदेशको अङ्गीकार करके अपना कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य्य मुनि चिदानंद स्वामी विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर न्यायमत, वेदांतमत, दयानंदमत, मुसल्मानमत, ईसाईमत, निर्णय अनादि सर्वज्ञमत सिद्ध द्वितीय प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥

अथ तीसरे प्रश्नके अन्तर्गत प्रथम दिगम्बर आमनाय निर्णय ॥

अब तीसरे प्रश्नके उत्तरको सुनो कि जो तुमने जैन मतके भेदोंको पूछा है सो कहते हैं श्री महावीर स्वामीके निर्वाणसे ६०९ वर्षके पश्चात् दिगम्बर जिन मतसे विपरीत होकर साधु सहस्र मल्ल अपने आचार्य अर्थात् गुरुसे द्वेष बुद्धि करके वस्त्रादिक सब छोड़कर दिगम्बर अर्थात् नग्न होकर समुदायसे निकल गया और उसके साथ उसकी बहन भी नग्न होकर समुदायको छोड़कर चल दीये दोनों जने बस्तीमें आहार लेने जातेथे उस समय उस साध्वीको नग्न देखकर किसी वेश्याने लज्जासे उसके ऊपर एक वस्त्र अपने मकानके ऊपरसे गिरा दिया वो वस्त्र उसके ऊपर पड़नेसे उसके भाईने जो पीछे फिर कर देखा तो उसके ऊपर कपड़ा पड़ा हुवा नजर आया तब वह कहने लगा तू एक वस्त्र रख तेरा नग्न रहना ठीक नहीं और जैनी नामसे अपनेको प्रसिद्ध करने लगा कि मैं जैनी हूं और उसीसे इनके नग्न होनेकी परम्परा भी चलने लगी फिर इनमें एक कुमदचन्द्र मुनि बहुत प्रबल पंडित हुवा उसने अमल मत अर्थात् जिन धर्मसे ८४ बोलका मुख्य फरक गेरा और पीछेसे तो बहुत बातोंका अब तक फर्क पड़ गया है और कई तरहकी इनके भी बीस पन्थी, तेरा पन्थी आदि भेद हो गये हैं सो हम इस जगह किञ्चित् इनकी परम्परा दिखाते हैं और ८४ बातोंमें से चार तथा पांच बात जो मुख्य हैं उनका वर्णन करते हैं सर्व मतावलम्बी भी उनका विचार कर सकते हैं पांच बात यह हैः—(१) केवली आहार नहीं करे (२) वस्त्रमें केवल ज्ञान नहीं (३) स्त्रीको मोक्ष नहीं (४) जैन मतके दिगम्बर आमनाके सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं (५) काल द्रव्य मुख्य है-केवली जो आहार करे तो अनेक

दूषण आवें तो हम यह पूछते हैं कि आहार कितने प्रकारका होता है (उत्तर) आहारछः६ प्रकारका होता है जिसमेंसे चार प्रकारका आहार तो देवता नारकी पक्षियोंके अंडस व एकान्द्रिय वृक्ष प्रथव्यादिकका है और तौ कर्म कवल आहारमेंसे एक कवल आहार निषेध करते हो तो हम तुमको पूछें हैं कि वह जो कवल आहारका निषेध करो हो सो क्या उदारीक पुद्गलके अभावसे व उदारीक शरीर रहते भी उदारीक शरीरके भोगके अभावसे अथवा जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होने वा कर्मोंके अभावसे प्रथमपक्षमें तो तुमभी नहीं कह सकोगे क्योंकि देस ऊना कोड पूर्व की स्थिति मानों हो द्वितीयपक्षमें भी नहीं सिद्धि होगा क्योंकि कारणके रहते कार्य्यका नाश नहीं होता जो कारण के रहते कार्य का नाश मानोगे तो आयु कर्मके रहते केवलीको मोक्ष होना चाहिये क्योंकि आयु कर्मकेवलीको संसारमें रहनेका कारण है इसीलिये मोक्षमें केवली नहीं जाता इसवास्ते कारण तो उदारीक शरीर और कार्य उसका भोगादि सो कदापि नष्ट नहीं होगा अब कारण कार्य्य विपरीति करके भी दिखाते हैं कारणके नष्ट होनेसे कार्य अवश्यमेव नष्ट हो जाता है तो देखो कि अहारादि तो कारण ठहरा और उदारिक शरीरका बना रहना कार्य ठहरा तो जो तुम आहारादिक नहीं मानोंगे तो उदारीक शरीर रूप कार्य क्योंकर रह सकता जो तुम कहो कि देवताके कवल आहार विना सागरोंकी स्थिति क्यों कर रहेगी इस तुम्हारे उत्तरको सुनकर तुम लोगोंकी बुद्धिकी शोभा पानी भरने वाली स्त्री कुवें पर कहती है कि दिगम्बर लोग कैसे बुद्धिमान् हैं कि नपुंसकसे भी पुत्रकी उत्पत्ति करते हैं, और भाई! कुछ बुद्धिसे विचार तो करो कि उदारीक शरीरके प्रसंगमें वैक्रिये शरीरका दृष्टान्त देनेसे तुमको शरम नहीं आती कि हमको बुद्धिमान् लोग सभामें हँसेंगे जो तुम कहो कि सर्व मनुष्योंकी तरह केवलीके आहार मानोंगे तो सर्व मनुष्योंकी तरह इन्द्रियजन्य ज्ञानका प्रसंग होजायगा तो केवल ज्ञानको जलांजली देनी पड़ेगी तो हम तुमको पूछें हैं कि केवल ज्ञान शरीरको होता है या जीवको होता है ? तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि शरीरको नहीं जीवको होता है तो शरीरके केवल आहार होनेसे जीवके अतिन्द्रिय केवल ज्ञानको जलांजली मानी तो नैगमनयसे लेकर समभि रुढनयतक जो वचन कहना सो सर्व निश्चय नयको जलांजली हो जायगी इसीलिये बुद्धिमानोंकी बुद्धिमें जिन रहस्य आता है क्या पामर लोग भी समझ सकते हैं जो तुमको कल्याणकी इच्छा हो तो जो अनादि परम्परा श्री जिन धर्मके ग्रहण करने वाले श्वेताम्बर गुरु उनके चरण कमलकी सेवा करो (ननु) कवल आहार करनेसे रसना इन्द्रियका स्वाद होकर अतिन्द्रिय केवल ज्ञानकी हानि क्यों नहीं होगी और भोले भाइयो! कछु नेत्र मीचकर बुद्धिका विचार करो इस जगह दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्तको सिद्ध करते हैंकि किसी व्यवहारीके हजारों मन घी (घृत) रक्खा रहता है तो क्या जलके पीनेसे वा अन्नके खानेसे उसके घरका (घी) न रहेगा इसीरीतिसे दूसरा भी कोई साहूकारके मकानमें हीरा, मोती, पन्ना आदि जवाहिरात भरे हुवेथे ? जब उनको भूख लगती तो वो अन्न खाता तो क्या अन्न खानेसे जवाहिरात उनके घरके चले गये ऐसा तो कोई बुद्धिमान् न कहेगा न समझेगा ? अब अन्न खानेसे पानी पीनेसे उस व्यवहारीका घी व उस साहूकारकी जवाहिरात न रहेगी ऐसा कोई नहीं कहेगा अब इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तको

समझो कि अतिन्द्रिय ज्ञान दो प्रकारका है । १ एक तो देश अतिन्द्रिय ज्ञान २ दूसरा ज्ञान तो देखो कि जब भगवान् गर्भमें आते हैं तबहिसे अवधि ज्ञान होता है और मन पर्यव ज्ञान होता है जिसको तुमभी भगवान् मानते हो और उसके कवल मानते हो तो देखो कि एकदेश अतिन्द्रिय ज्ञान कवल आहार करनेसे नहीं गया तो सर्व अतिन्द्रिय ज्ञानमें कवल अहार करनेसे क्योंकर हानि होगी इसलिये केवलीको आहार सिद्ध हुआ और भी देखो नवी युक्ति तुमको सुनाते हैं कि जैसे कोई मनुष्य धनुष बाण लेकर निशाना मारनेके लिये निशाने पर तीर छोड़ चुका तो वह मनुष्य निशानेसे बिना लगे बीचसे उल्टा उसी तीरको कदापि नहीं ले सकता कैसाही बलवान् पुरुष होय परन्तु उस बाणको पीछा लानेमें समर्थ न होगा तैसेही जो कोई पुरुष उदारीक पुद्गलका जो भोग बाधा है उसको मिटानेमें समर्थ न होगा इसी युक्तिसे जो केवली जब तक उदारीक शरीरमें रहेगा तब तक उसको कवल आहार लेनाही पड़ेगा अब जो तीसरा पक्ष याने जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होनेसे जो केवलीको आहार मानोगेतो उसकी अनन्त शक्तिकी हानि हो जायगी तो हम तुम्हारेको कहें हैं कि कोई महात्मा बहुत विद्वान् और लक्ष्मीवान् है सो जो अपने चेलाको आहार करावे अर्थात् भोजन करावे तो क्या उस महात्मा पुरुषकी चेलाको आहार करानेसे विद्या व लब्धी नष्ट हो सकती है ? कदापि न होगी इसलिये केवलीको आहार करनेसे केवली की अनन्त शक्ति कदापि न जायगी ? "ननु" गुरु चेला भिन्न है और केवलीका शरीर अभिन्न है इसलिये आहार नहीं बनता है तो हम तुम्हारेसे पूछें हैं कि अनन्तशक्ति केवलीके जीवको है कि शरीरको है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि शरीरको नहीं केवलीके जीवको है तो अब देखो विचार करो कि केवलीके जीवको है तब शरीरके आहार करनेसे क्योंकर केवलीको अनन्त शक्तिकी हानि होगी 'ननु' केवली एक दिनमें एक बार अथवा दो दिन वा चार दिन व आठ दिन क्या पंद्रह दिनमें व एक मासमें आहार लेता है जिस रीतिसे केवली आहार लेगा उसही प्रमाण उसकी शक्ति रहेगी शक्ति घटनेसे भोजन करेगा तब तो केवलीकी शक्ति भोजनके आधीन होचुकी अजी कुछ विचार तो करो कि शक्ति तो जीवकी प्रगट हुई है उस शरीरको नहीं तो केवलीकी शक्ति आहारके आधीन क्योंकर रही इन बातोंसे तुम लोग बिल्कुल विचारशून्य मालूम होते हो जैसे कोई मूर्ख पुरुष कहने लगा कि कि मेरे बापने घी बहुत खाया य न मानों तो मेरा हाथ सूंघ कर देख लो जैसे उस मूर्खके हाथ सूंघनेसे उसके बापके घी खानेका अनुमान नहीं होता तैसेही शरीरके आहार न करनेसे केवलीकी शक्ति घटने कामी अनुमान नहीं 'ननु' केवली जो आहार करता है सो आहारका स्वाद केवल ज्ञानसे करे है वा रसना इन्द्रियसे करे है जो कहो केवल ज्ञानसे आस्वाद है तो कवल आहारका प्रयोजन क्या और जो रसना इन्द्रियसे करेगा तो मति ज्ञानका प्रसंग हो जायगा इसलिये केवलीके आहारका मानना ठीक नहीं है अरे भोले भाइयो! मत पक्षको छोड़के बुद्धिसे विचार करो कि केवल ज्ञान शरीर सूं भिन्न है व अभिन्न है जो कहो कि अभिन्न है तो तुम्हारे केवलीका शरीर समेत मोक्ष जाना हुआ, जब शरीर समेत मोक्ष

गया तब तो मोक्ष संपूर्ण भर गई होगी तब तो हम जाने हैं कि तुम्हारे आचार्य और कोई नवीन मोक्षका स्थान जुदाही बनावेंगे जब तो तुम्हारी मोक्षकी हम क्या शोभा करें जैसी मुसल्मानोंकी बिहिश्त वैसीही तुम्हारी मोक्ष ठहरी जो कहो कि शरीरसे भिन्न है तो भिन्नके आहार करनेसे भिन्नकी शक्तिकी हानि माननी निष्फल है। और जो तुमने रसना इन्द्रियके आस्वादसे मति ज्ञानका प्रसंग कहा तिसमेंभी विचार शून्य तुम्हारी बुद्धि मालूम होती है देखो कि जिन मतमें छठे गुण ठाणे वाले मुनिभी वा जो उत्कृष्ठा श्रावक आदि हैं वो भी जो वैरागवान् जिन मतके जानीकार हों तो रसना इन्द्रियका स्वाद नहीं लेते हैं तो केवलीने अनादि कालका संबन्ध संयोगसे जो पुद्गल अर्थात् शरीरकी तदाकार वृत्ति तिसको अपनी आत्मासे भिन्न जानकर शरीरसे निमित्त भाव उठाय कर केवल ज्ञान उपार्जन किया तो कहो अब रसना इन्द्रियका आस्वाद क्योंकर लेगा देखो जैसे हलन चलन आदि क्रिया करता है तैसेही आहार आदिकी क्रियाभी जान लेना अर्थात् समझ लेना चाहिये 'ननुः' ॥ अल्प शक्तिवाले जो पुरुष हैं वो जिस जगह जीवहिंसा; चोरी, जारी, अधर्म आदि होता है वा सामान्य पुरुषभी जिस जगह निर्घिनिता अर्थात् बुरी बातोंको देखते हैं उस जगह अपनी शक्त्यनुसार जीवहिंसादिकको दूर न करें तब तक अपना नेम, धर्म, भोजनादि नहीं करते तो केवली महाराज तो केवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष हिंसा आदिको अधर्मोंको देखते हैं तो सामान्य पुरुषही आहारादि नहीं कर सकें तो केवली महाराज तो महा दयावन्त क्योंकर आहारको करेंगे ? अजी देखो ! जो तुमने सामान्य पुरुषकी शक्तिका दृष्टान्त दिया सो हम तो क्या कहें परन्तु मिथ्यात्वी लोगभी तुम्हारे केवलीकी अनन्त शक्तिकी हँसी करेंगे क्योंकि देखो सामान्य शक्तिके धारण करने वाले राजा आदिक अपने धर्मसे विरुद्ध होय ताको दूर करते हैं तो कहो कि उस तुम्हारे केवलीकी अनन्तशक्ति प्रगट भई तो जैसे वे सामान्य शक्तिवाले हिंसा आदिक को दूर करके अर्थात् विरुद्ध को मिटाय कररहते हैं तैसेही तुम्हारे केवलीको भी अनन्तशक्तिके जोरसे सर्व हिंसादिकको मिटायकर रहना चाहिये जो तुम्हारा केवली ऐसा न करे तो उसकी अनन्त शक्तिका प्रगट होना निष्फल हुवा जैसे आकाशमें नानाप्रकारके रङ्ग मालूम होते हैं परन्तु कुछ ठहरते नहीं ऐसी तुम्हारी केवली की अनन्त शक्तिहुई इससे तो उनराजा आदिक सामान्य पुरुषों की अल्पशक्ति उत्तम ठहरती है क्या तुम्हारे केवली की अनन्त शक्ति एक केवल आहारको निषेध करनेके लिये और हिंसा आदि अधर्मको देखता हुवाभी उस अनन्त शक्ति से निवारण नहीं करसका तो बड़े आश्चर्य की बात है कि "दुर्लभो देवघातकः" कि उदारिक पुद्गलके भोगके वास्ते तुम्हारे केवली की अनन्तशक्ति प्रगटहुई अजी किसी शुद्ध गुरुके चरण कमल की सेवा करो जिससे तुम्हारे को अनुभव की शक्ति प्रगट हो जाय जब तुम्हारेको जिनधर्म का रहस्य मालूम होगा उससे तुमको आपही मालूम पड़ेगा कि केवली भगवान् की अनन्तशक्ति स्वाभाविक अर्थात् आत्मा शक्ति प्रगटहुई है जिसे किसी का भला बुरा नहीं होता किन्तु जैसा केवल ज्ञान में देखते हैं तैसी ही शक्ति होतीहै इसलिये केवली महाराज को जो उदारिक शरीर उसका जो भोग केवल आहार सो करनाही पड़ेगा

है उसपर बैठनेसे जीवहिंसा होगी इसलिये रजोहरण अवश्यमेव रखना चाहिये
रीतिसे चद्दरभी साधुको रखनी चाहिये क्योंकि जब अत्यन्त शीत आदिक पड़ेगा
उसको आर्त्तध्यानकी प्राप्ति होगी इसलिये जीर्ण वस्त्रकी चद्दर रखनी चाहिये
आहार आदिक हाथमें लेगा तो अजैना होगी क्योंकि जो हाथमेंसे आहार
जो गिरेगा तो उससे जीव हिंसा होगी इसवास्ते पात्रभी रखना चाहिये ॥ अब पूर्वपक्ष
और समाधान इन चिह्नोंसे सब जगह जान लेना । (पूर्वपक्ष) पर द्रव्य मात्र निवृत्ति
अर्थात् परद्रव्य मात्रको जो त्याग और आत्माद्रव्य काही जो प्रतिबन्ध होय उसीका नाम
संयम है इसलिये वस्त्र आदि रखना ठीक नहीं । (समाधान) जैसे शरीर पर द्रव्य शुद्ध
उपयोगका सहायकारी होता है तो उसको परिग्रह नहीं कह सकते तैसेही उपकरणभी शुद्धउपयो-
गका सहायकारी होनेसे परिग्रह नहीं । (पूर्व पक्ष) जो तुम कहो हो कि शीतादिके
आर्त्त ध्यान मिटानेके वास्ते जीर्ण वस्त्रका जो भार अर्थात् बोझा उठाते हो तो मैथुन निमित्त
जो आर्त्तध्यान तिसके वास्ते एक लूली, लंगड़ी, काणी, कुरूप स्त्री क्यों नहीं रखते
हो तो उसकोभी रखना चाहिये । (समाधान) अरे भोले भाई ! इस वचनके बोलनेमें
तुम्हारेको शरम नहीं आती है क्योंकि ये वचन मिथ्यातरूपी नशेके जोरमें बोलना
ठीक नहीं है हमारे तो इस वचनकी बाधा नहीं है किन्तु तुम्हारेको माथा सुमतीमें
दूषण आता है देखो ! जैसे तुम्हारेको भूखकी पीड़ा डालनेके निमित्त आहार लेते
हो नहीं लेने तो आर्तध्यान होता है तिसके दूर करनेके वास्ते अथवा शरीर रखनेके
वास्ते आहार लेना अङ्गीकार करो हो तो तुम भी स्त्री का रखना क्यों नहींमानते हो येभी
समान कहना हुवा अब देखो कि जैसे तुम आहार में गुण मानो हो और दोष नहींमानो
हो तैसेही धर्म उपकरण में सिर्फ गुण है दोषनहीं इसलिये धर्म के साधन में धर्म उपकरण
रखने से किञ्चित् दोषनहीं । (पूर्वपक्ष) अजी वस्त्रआदिपर द्रव्यरक्खोगे तो मूर्छा आदिक
क्यों नहीं होगी क्योंकि जब चौरादिक वस्त्रआदिक लेगा तो बिना मूर्छा के उससे क्योंकर
बचा सकोगे जो नहीं बचासकोगे तो फिर गृहस्थीसे मांगते फिरोगे तो मांगनेहीं में रात दिन
जायगा तो आत्मध्यान कब करोगे । (समाधान) अरे आत्मध्यानियो ! कुछ बुद्धि का
विचार तो करो कि जब तुम्हारे को सिंह, सर्प, आदिक मिले तो अपने शरीर आदिक को
क्यों बचाते हो क्योंकि शरीरभी तो आत्मद्रव्य से परद्रव्य है और जो बचाओगे तो
मूर्छा ठहरेगी और जो नहीं बचाओगे तो जन्म मरण करतेही फिरोगे तो फिर आत्मध्यान
किसजगह होगा और मसंट अर्थात् मसानी या वैरागी मतवालो कुछ नेत्र मींचकर विचारो
कि जिनेन्द्रनाथ संसार बन्ध हेतुका जो कारण देखी जो मूर्छा उसका त्यागकरना सिर्फ म-
हका रहस्य है सो धर्म साधन निमित्त उपकरण आदि आत्मगुण प्रगट करने के लिये औ-
जनम्य राग सो मूर्छा नहीं । (पूर्वपक्ष) अजी भला विचार तो करो देखो तो सही कि
जैसे बालकके ऊपर तुम देखो हम तुम बालक को घुड़देपर चढ़ाय कर कितनीही बेर
उतारो परन्तु वह बालक नहीं सीखता है इसीरीति में मुनियों वस्त्र रखने से केवल ज्ञान
नहीं होता है (समाधान) वाहरे बुद्धिमान् ! बहुत अच्छा बालक के दृष्टान्त का दृष्टा-
न्त दिया विवेक शून्य बुद्धिका विचार किञ्चित्भी नहीं किया क्योंकि देखो कि उरद, मूंग,

चन्दनादिक गुरुसमेत चूल्हेपर चढ़ाने से सीजते दीखेहैं इसीरीति से जिन आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलनेवाले मुनिराज वस्त्ररखने से केवल ज्ञानको प्राप्तहोते हैं नतु तुम सरीखे चारलके तुरकमान मिथ्यात्व अभिनिवेशी विराधकों को अर्थात् जिन आज्ञारहितों को केवल ज्ञान नग्नहोनेका कदापि न होगा। (पूर्वपक्ष) अजी भला देखो कि वस्त्रआदिक रक्खोगे तो लज्जा परीसा तुम्हारे से नहीं जीतागया जब लज्जा परीसाही नहीं जीता गया तो और परीसा क्योंकर जीतोगे इसीलिये भगवान् ने लज्जापरीसे को जितना मुश्किल कहा है तबतो लज्जापरीसा नहींजीत नेसे२२परीसा न रहे २१ ही रहगये। (समाधान) इस तुम्हारी विलक्षण बुद्धिको देखकर हमको बड़ी करुणा आती है क्योंकि देखो कि इन विचारोंको कुमदचन्द्र आचार्य्यने कैसा जाल फैलाय कर इनको फंसादिया कि जिससे शुद्ध जिन धर्म की प्राप्तिनहीं होनेदी केवल मिथ्यात्वमें गिरा दिया हम तुम्हारे हितकी कहते हैं कि देखो जो तुम नग्नहोने सेही लज्जापरीसा का जीतना मानो तो सांड़, भैंसा, ऊंट, हाथी, कुत्ता, बिलाव, गधाआदि पशुओं में वस्त्र न होने से अर्थात् नग्नरहने से सबने लज्जापरीसा जीतलिया तबतो तुम इनकोभी मुनि मानते होंगे इसीहेतु से हम अनुमान करतेहैं कि तुम्हारे आचार्य्यों का कहाहुवा जो पञ्चम कालके छेड़े तक जो धर्म रहेगा तो इन्हीं पशुवों आदि मुनियों से धर्म रहता दीखैहै नतु: मनुष्यआदि मुनियों से और कोई तुम्हारा मनुष्य मुनि दीखताभी नहीं है सिवाय इन पशुओं मुनियों के अच्छा लज्जापरीसा तुम्हारे आचार्य्योंने अङ्गीकार किया परन्तु लज्जाको समझे नहीं इसलिये हम तुमको लज्जा का अर्थ दिखलाते हैं सो तुमलोग पक्षपात को छोड़कर इस अर्थ को अङ्गीकार करोगे तो तुम्हारा कल्याणहोगा देखो " लज्जा " अर्थात् जिस में शर्म न आवे उसको कहते हैं क्योंकि कोई जिन धर्मकी निन्दा न करे क्योंकि जब तुम नग्न पनेको अंगीकार करोगे तो अन्यमती लोग भी देखकर कहेंगे कि जैनका साधु कैसा निर्ल-ज्ज है कैसा गधे की तरह फिरता है और उस साधुको नग्न देखकर स्त्री आदिक भी लज्जाके पास न आसकेंगी जब पास नहीं आवेंगी तो उपदेश आदिक भी नहीं बनेगा तब तो यह लज्जा परीसा क्या जीता उल्टी जगत्में निन्दा कराई सो ये लज्जा नहीं साधु मुनिराज ऐसी लज्जाको जीते हैं—सो देखो कि संसारके आकार जानकर तीर्थंकर चक्रवर्ती बल-देव सामान्य राजा, सेठ, साहूकार आदिक राजपाट वैभवको छोड़कर अपनी आत्माके गुण प्रगट करने वास्ते निकलते हैं वे लोग नगरनगर: गांवगांव: फिरते हैं और जीर्ण वस्त्र धा-रण करते हैं। सेठ साहूकार सामान्य पुरुष रङ्क अर्थात् गरीब गुरबा आदिसे आहार लेना और तिरस्कार आदिकका सहन करना फिर पिछला जो वैभव राजादि भोग भोगे हुवे उनोंको याद न करना और सामान्य पुरुषोंसे याचना और तिरस्कार पाना उनको सहन करना और पिछलेको याद न करना इसीको लज्जा परीसा कहते हैं नतु: नग्नरहना। (पूर्व पक्ष) अ-जी अचेल परीसा जो तुम भी कहो हो तो चेल नाम तो वस्त्रका है तो अचेल कहनेसे वस्त्र नहीं रहता वस्त्र रखनेसे साधुको अचेल परीसा नहीं बनेगा (उ०) जो तुमने कहा कि वस्त्र रखनेसे अचेल परीसा नहीं बनेगा यह तुम्हारा कहना विवेक शून्य है क्योंकि आकार शब्द जो है सो सर्व निषेध वाचक नहीं है जो कहो कि सर्व निषेध वाची आकार है तब तो जीवको अजीव भी हो जावना क्योंकि जीव चेतना लक्षण है अर्थात् ज्ञानी है तो देखो

अज्ञान परीसा भी तो कहा है तो अज्ञान कहनेसे तो जब अकारको सर्व निषेधवाची मा- नोगे तो जीवका अजीव होगया जब अजीव होगया तो अज्ञान परीसा कौन सहेगा इसी- लिये इस जैन मतका रहस्य आत्मार्थीको प्राप्त होता है नतुः अवग्राही मिथ्यार्थीको इसलिये इस जगह आकार जो है सो एक देशवाची है इसवास्ते जीर्ण वस्त्र मानोपेत् अर्थात् मर्याद मूजिब रखना उसीका नाम अचेल है देखो कि कोई मनुष्य पुराना छोटा सा पोतिया पहनकर स्नान कर रहाया उसको लोग देख कर कहने लगे कि यह पुरुष नग्न है ऐसेही साधु भी जीर्ण वस्त्र रखनेसे नग्न ही है (पू०) अजी मुनिराजको तो ऐसा चाहिये कि जैसे माके पेटमेंसे आया है देखो वहांसे कोई वस्त्र सायमें नहीं लेकर आया तो इस संसार रूपी गर्भमें से निकल फिर वस्त्र क्योंकर रक्खेगा इसलिये साधुको वस्त्र नहीं रखना (स०) अरे भोले भाइयो ! ऐसा प्रश्न करनेसे विचारशून्य मालूम होते हो जब माके पेटमेंसे नग्न होकर आ- या कोई वस्त्र तो उस समय नहीं था यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि जो वस्त्र करके रहित अर्थात् नग्न होगा सो तो माके पेटमें कदापि न आवेगा और जो माके पेटमें नग्न मा- नोगे तो सिद्धमें आवागवन हो जायगा कारण कि सिद्ध भगवान् ही वस्त्र करके रहित अ- र्थात् नग्न हैं इनके सिवाय तेरमें चौदमें गुणस्थानके अन्त पर्य्यन्त तक कोई नग्न नहीं है जो कहो कि हमने आज तक ऐसी बात नहीं सुनी तो अब देखो हम तुमको बतलाते हैं सो विवेक सहित आँख मीचकर बुद्धिमें विचार करो और देखो 'वस' अच्छादने धातुसे वस्त्र शब्द बनता है अर्थात् जिस चीजसे अच्छादन नाम आवर्त अर्थात् ढक जाना उसीका नाम वस्त्र है तो देखो आत्मरूपी जो प्रदेश था उसका कर्म रूपी वस्त्र से ढके हुवे माके पेटमें वह जीवलेकर आयाथा तब तुम्हारा कहना नग्न क्योंकर सिद्ध होगा इसलिये श्वेता- म्बर अर्थात् वस्त्र सहित मुनिराजको केवल ज्ञान सिद्ध हो गया (पू०) अजी तुमने यु- क्ति तो बहुत कही लेकिन वस्त्र रखनेसे परिग्रह जरूर सिद्ध होगा—तो साधु तो परिग्रह र- क्खे नहीं इसलिये वस्त्र रखना ठीक नहीं है। (स०) अरे भोले भाई ! हमको तुम पर बड़ी करुणा आती है कि किसी रीतिसे तुम्हारा कल्याण हो तो ठीक है इसलिये इस परि- ग्रहका किञ्चित् अर्थ दिखाते हैं कि देखो परिग्रह शब्दका अर्थ क्या है तो वहां (तत्वार्थ) सूत्रमें ऐसा कहा है कि—"मूर्छा ही परिग्रहः" अब देखो इस शब्दसे क्या अर्थ हुआ कि जिसको मूर्छा है उसीको परिग्रह कहेंगे जिसको मूर्छा नहीं है और जो उसके पासमें कुछ वस्तु है तो विना रागके अर्थात् विना मूर्छाके वह वस्तु अवस्तुके ही मूजिब है कदाचित् बाह्य दृष्टि अर्थात् चर्म दृष्टिसे देखकर जो परिग्रह मानोगे तो तुम्हारे तीर्थंकर आदिक व आचार्य्य मुनियोंमें भी परिग्रह ठहरेगा क्योंकि देखो जब तीर्थंकर विहारादि करते हैं तब सुवर्णके कमलों पर पग रखना और देसनाके समय सुवर्णमयीका जड़ा हुआ समोसरण अर्थात् सिंहासनके ऊपर बैठना शिरपर तीन छत्रादिकका होना ये सब चर्म दृष्टिके देखनेसे परिग्रह हो जायगा वा अथवा शिष्यादिकका करना ये भी पर वस्तु है इत्यादिक सर्व वस्तु परिग्रह ही ठहरेगी इसलिये चर्म दृष्टिको छोड़कर सूत्रके अर्थमें दृष्टि देकर कि जो मूर्छा करके रहित जो तीर्थंकरोंके समोसरण आदि परिग्रह अपरिग्रह ही जानना क्योंकि उसके ऊपर मूर्छा नहीं होनेसे जो तुम कहोकि नग्न होनेहीसे केवल ज्ञान होता है तो मोर

पेंची और कमंडलु इतनी वार लिया कि मेरु की बराबर ढिगला किया परन्तु केवल ज्ञान अर्थात् मोक्ष न हुवा तो इसका कारण यह ही है कि उस जीवने और पेंची कमंडलु लिया परन्तु मूर्छा अर्थात् तृषाना न छूटी इतने कहनेका सारांश यह हुवा कि मूर्छाका छोड़ना तो बहुत कठिन है जिस जीवने मूर्छा छोड़ी है उसके धर्म साधनके निमित्त धर्म उपकरण रखनेमें कोई तरहका दूषण नहीं इसलिये वस्त्र रखनेमें केवल ज्ञान नहीं अटके कदाचित् और भी हठ करो तो तुमको (नव) कर्म मानने होंगे क्योंकि आठ कर्म तो सर्वज्ञ देषने वर्णन किये हैं परन्तु नवमा कर्म तुम्हारे आचार्य्योंने अंगीकार किया है तो पांच कर्मके क्षय होनेसे केवल ज्ञान उत्पन्न होगा यह पांच कर्म कौनसे १ ज्ञानावर्णी २ दर्शनावर्णी ३ मोहनी ४ अन्तराय और पांचवां तुम्हारा माना हुवा वस्त्र वर्णीय कर्म है इन कर्मोंके क्षय होनेसे केवल ज्ञान मानना चाहिये सो तुम्हारे शास्त्रोंमें तो कहीं नहीं परन्तु पांच कर्मके क्षय होना किन्तु चार कर्मका क्षय होना ये तो तुम्हारे कुल शास्त्रोंमें देखनेमें आता है इसलिये इस पक्षपातको छोड़कर अपनी आत्माके अर्थकी इच्छा हो तो शुद्ध परम्परा अनादि श्वेताम्बर गुरुकी चरणकमलकी सेवा करो और जो युक्ति दीनी है उसको बुद्धिमें विचार कर इस हठको छोड़ो कि वस्त्रमें केवल ज्ञान नहीं है किन्तु मूर्छा करके रहित अर्थात् जिसको मूर्छा नहीं है वह मुनिराज धर्मके साधनके लिये धर्म उपकरण रक्खे तो कुछ दोष नहीं उसको केवल ज्ञान अवश्यमेव प्राप्त होगा इन युक्तियोंसे वस्त्रमें केवल ज्ञान सिद्ध हुवा ॥ २ ॥ अब तीसरा स्त्रीको मोक्ष सिद्ध करते हैं (वा०) स्त्रीको मोक्ष नहीं है ? (सि०) स्त्रीको मोक्ष क्यों नहीं है ? (वा०) स्त्रीके चारित्रका उदय नहीं आवे ? (सि०) स्त्रीके चारित्र उदय क्यों नहीं आवे ? (वा०) स्त्रीका अङ्गोपाङ्ग सर्वथा पुरुषको विकारी है ? (सि०) ऐसा कहोगे तो पुरुषके अङ्गभी स्त्रीको विकारी हैं ? (वा०) स्त्री जो वस्त्र आदिक रक्खे तो परिग्रह होय और परिग्रह होनेसे मूर्छा होय और मूर्छा होनेसे चारित्र आवे नहीं और चारित्र विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं ? (सि०) जो स्त्रीको वस्त्र परिग्रह मानो तो उससे जो मूर्छा मानते हो ये तुम्हारा मानना ठीक नहीं है क्योंकि वस्त्रके मध्ये तो मूर्छाका होना पहिलेही निषेध करचुके हैं इसलिये वस्त्रके विना चारित्रकी प्राप्ति होती है ये तुम्हारा मानना बांझके पुत्रके समान है हम वस्त्रमें केवल ज्ञान पहिले सिद्धिकर चुके हैं (वा०) संसारमें सर्व उत्कृष्ट पदवी प्राप्ति होनेका अवसाय कारणका सर्व होता है इस बातको तो तुमभी अङ्गीकार करो हो तो सर्व उत्कृष्टपद दो प्रकारका है एक तो सर्व उत्कृष्ट पद दुःखका स्थानक है दूसरा सर्व उत्कृष्ट सुखका स्थानक है तिसमें सर्व उत्कृष्ट दुखनो कारण सातमी नरक है और सर्व उत्कृष्ट सुखनो पद मोक्षकी प्राप्ति है तो स्त्री सातमीनरक नहीं जाय ऐसा सिद्धान्तोंमें कहा है क्योंकि स्त्रीमें ऐसा पाप उपार्जन करनेका कारण नहीं है तो मोक्ष पद प्राप्ति होनेका वीर्य स्त्रीमें कहांसे होगा इसलिये स्त्री मोक्ष नहीं जाय ? (सि०) अरे भोले भाइयो ! बुद्धिके विचार विना क्या जिन धर्मका रहस्य प्राप्ति होता है क्योंकि इस जिन धर्ममें स्याद्वाद शैलीके जाननेवाले गुरू श्वेताम्बर

---

१ (वा०) कहनेसे वादीको कोटि समझ लेना। (सि०) कहनेसे सिद्धान्तीका उत्तर जान लेना।

। इस पिचकारीके बलसे दवा ऊपरको चढ़ जाती है फिर थोड़ीसी देरके बाद ।हिर निकल आती है इसीरीतिसे उसका उगलन धर्म नहीं किन्तु पिचकारीका बल रवृत्त होनेसे बाहिरको आता है जो तुम अशुचि कहा सो भी नहीं बनता है क्योंकि देखो क मोक्ष इस रीतिसे जीवको होती है अथवा उसके शरीरको ? जो कहो कि जीवको होती तब तो शरीरके अशुचि माननेसे जीवको मोक्षको नहीं मानना तो विवेक शून्य हठग्राही नेके सिवाय आत्मा अर्थी न ठहरे ! (बा०) अजी स्त्री वेदको ही मोक्ष नहीं अर्थात् स्त्रीलिङ्ग वालेही मोक्ष नहीं ? (सि०) इस कहनेसे तो हमको बिल्कुल मालूम होता है के तुमको तुम्हारे सिद्धान्तकी अर्थात् तुम्हारे आचार्य्योंके रचे हुवे शास्त्रोंकी खबर नहीं है ाली तोतेकी तरह "टें टें" करना याद कर लिया कि स्त्रीको मोक्ष नहीं ! नहीं !! हीं !!! (बा०) अजी हमारे किस सिद्धान्तमें अर्थात् शास्त्रमें कहा है कि स्त्रीको मोक्ष है सो हमको बतावो ? (सि०) छी ! छी !! छी !!! तुम्हारी पण्डिताई और विचक्षणपने को कि तुमको अपने शास्त्रही की खबर नहीं सो देखो गो- मटसारजीमें ऐसा लिखा है कि "अडियाला पुवेया, इत्थी वेवायहुति चालीसा, वीसनप- ुंसगवेया. समए गेण सिझ्झंति" अब देखो कि इस गाथा में स्त्री को मोक्ष कहा है देखो कि ४८ पुरुष और (इत्थि) कहता ४० स्त्री और (वेया) कहता २० नपुंसक ये सर्व मिल कर १०८ एकसमय में सिद्धहोते हैं तो अब तुम्हारा यह कहना कि स्त्री को मोक्ष नहीं है असत्य है जैसे मेरे मुख में जिह्वानहीं है तो विना जिह्वाके बोलनानहीं बनता (बा०) अजी तुमने गाथाकही सो ठीक है परन्तु इसका अर्थ हमारे आचार्यभाव वेदमानकर स्त्रीको मोक्षमानते हैं किन्तु स्त्री वेदहोने से मोक्षनहीं ? (सि०) अरे! रे !! रे !!! तुम्हारे आचा- र्य्यों ने भङ्गपीकर इस गाथा का अर्थ विचारा दीखे इसलिये नशेके तार में विवेकशून्य होकर भाववेद अर्थ किया दीखे है सो अब तुम्हारे को अपनी आत्माका कल्याण की इच्छा हो तो इस जालियों के जालको छोड़ के शुद्धगुरु के अर्थ को अङ्गीकार करो देखो भाव वेद जो है सोतो नवे गुणस्थान में निवृत्त अर्थात् दूर होजाता है और केवल ज्ञान तो १२ वें के अन्त में उत्पन्न होता है सो इसलिये हे ! देवानु प्रिय! युक्ति और शास्त्रोंसे तो स्त्री को मोक्ष सिद्ध होगया। हम तो हितकारी जानकर तुम्हारे कल्याणके लिये कहते हैं ॥

चौथी बातमें दिगम्बर मुनिके सिवाय जोकि मोर पंछी कमण्डलु रखता है अर्थात् दिगम्बर मतके सिवाय और दूसरे किसीको मोक्ष नहीं है (प्र०) हमें तुम्हारेको पूछेहैं कि तुम्हारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं सो क्या तुम्हारे आचार्य्योंने मोक्षको मोल लेलिया है वा किसी से ठेका कर लिया है; (उ०) अजी तुमने जो यह ऐसा प्रश्न किया जिसको सुनकर हम को बड़ी हँसी आती है कि क्या वह ग्राम, दूकान हवेली है? जो हमने ठेका लेलियाहो वा मोललीहो ? मोक्ष तो धर्म के करनेसे प्राप्त होती है (प्र०) भला धर्म करने से मोक्षकी प्राप्ति होती है क्या धर्म तुम्हारेही है और कोई धर्म नहींजानता, भला वह धर्म क्या चीज़

---

१ इस जगह सिद्धान्ती अर्थात् ग्रन्थकर्त्ताकी ओर से तो (प्र०) इस शब्दसे प्रश्न समझ लेना और (उ०) शब्दसे दिगम्बरकी ओरसे उत्तर जान लेना।

है सो तुमही कहो ? (उ०) हाँ वह धर्म हमही जानते हैं क्योंकि वीतरागकी आज्ञा हमही चलते हैं और कोई वीतरागकी आज्ञामें नहीं चलता इसलिये औरको मोक्ष (प्र०) अब तुम हमको अपने वीतरागकी आज्ञा बतावो और वह क्या कथन है जिससे मोक्ष होता है? (उ०) वीतरागकी आज्ञा यह है कि पञ्चमहाव्रत और आठ प्रवचन माता पाले और इन्हीमें मोक्ष है। (प्र०) वह पञ्चमहाव्रत कौनसे हैं और उनकी रीति क्या है (उ०) १ प्राणातिपात छः कायके जीवोंको मन, वचन, काय, करना, करावना, अनुमोदना इन तीन करण और तीन योगसे करे नहीं; करावे नहीं, कर्ताको भला जाने नहीं; इस रीतिसे २ मृषावाद, इस रीतिसे ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रहमें तुस मात्र परिग्रह नहीं रक्खे, ऐसेही आठ प्रवचन माता जान लेना विस्तार हमारे ग्रन्थोंसे जान लेना (प्र०) हे भोले भाइयो यह तो तुम्हारी बालकों कैसी बातें हैं क्योंकि परिग्रहमें तुम मात्र रखना नहीं सो तो हम दूसरेही वस्त्रके खण्डनमें लिख चुके हैं कि परिग्रह नाम मूर्च्छाका है और जो तुमने पञ्चमहाव्रतके मध्ये कहा सो तो क्रियावादी अक्रियावादी इत्यादि बहुत कष्ट किया करते हैं जब तो केवल तुम्हारेही मतमें मोक्ष होना नहीं बनेगी इसलिये जो मोक्षके कारण हैं उनको कहो कि मुख्य कारण कौन हैं? (उ०) भगवान्की आज्ञा सहित ज्ञान दर्शन, चारित्रसे मोक्ष होती है यह मुख्य कारण है। (प्र०) जब ज्ञान दर्शन, चारित्र मोक्षका कारण है तब तो एक तुम्हारेहीको मोक्ष होनी यह कहना असम्भव है सो अब तुम ज्ञान, दर्शन चारित्रका स्वरूप कहो? (उ०) ज्ञान हम उसको कहते हैं कि जो सर्वज्ञने पदार्थ कहे हैं उनका यथावत् द्रव्य गुण पदार्थका जानना उसको हम ज्ञान कहते हैं और दर्शन नाम जो सर्वज्ञके वचन ऊपर विश्वास होना अर्थात् श्रद्धा होना 'चारित्र' नाम पर वस्तुको है अर्थात् छोड़ना और स्ववस्तुको उपादेय अर्थात् ग्रहण करना इन तीनों चीजों से मोक्ष होती है (प्रश्न) अरे पक्षपाती विचार शून्य! अपने अर्थ किये हुये को तुम अपने हृदयकमल में नेत्रमीचकर विचार नहीं करते हो क्योंकि जब ज्ञान, दर्शन, चारित्र मोक्षका कारण है तो तुमकोही मोक्षहोना और को न होना ये तुम्हारा कहना पक्षपात इत्यादी मालूम होता है क्योंकि देखो विचारकरो कि जिस में ज्ञानदर्शन चारित्रहो अर्थात् जो कोई इन तीन बातको सेवन करेगा उसी को मोक्षहोगी न कि दिगम्बरी को ही (उत्तर) अजी इस ज्ञानदर्शन चारित्रको जैनियों के सिवाय और कोई दूसरा ग्रहणनहीं करता है इसीलिये हमारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं। (प्रश्न) वाहरे! पक्षपाती जैनी नाम मात्रसेही अपने को जैनी समझ लिया इसवास्तेही तुमलोगोंके द्वेषबुद्धि से परमार्थी जैनियोंको नास्तिक कहनेलगे क्योंकि देखो एक मछली तमाम पानीको गन्दा करदेती है अर्थात् दुर्गन्ध करदेती है इस रीतिसे शुद्ध जिनमत जो अनादि से राग, द्वेष रहित निर्पक्ष पात चला आताथा उसमें अनुमान् १८०० वर्ष के लगभग दिगम्बर मतने जैन नाम रख कर सर्व मतवालों में द्वेष बुद्धि करके द्वेष फैलादिया; अब जिन शब्दका अर्थ यथार्थ है सो सुनो (१) जिन नाम वीतराग का है कि जिसने राग द्वेषआदि शत्रुओं को जीता है—अथवा जिसने पदार्थको जाना है अर्थात् जिसने द्रव्योंका स्वरूप जानकर मोक्षकी व्यवस्था बांधी है ऐसे सर्वज्ञ देवके वचन को माने और उसके ऊपरचले अर्थात् इसपर

छोड़े और उपादेय को अंगीकार करे उसी का नाम जैनी है न कि ओसवाल, सराव-
गी कोई जातही जैनी है अथवा कोई जैनी नाम धराने सेही जैनी नहीं कदाचित् कहोगे कि
नहींसाहब हमही जिन धर्मको पालते हैं इसलिये हमही जैनी हैं यह कहनाभी तुम्हारा
व्यर्थ है क्योंकि जैनी नाम धराने से होगा तबतो दिगम्बर होकर मोर पैंची कमण्डलु लेकर
मेरुकी बराबर ढिगला किया और मोक्ष न भई इसलिये पक्षपात छोड़करके बुद्धिसे वि-
चार करो कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जिसमें है उसीको मोक्षहोगी नतु दिगम्बर क्योंकि
देखो पक्षपात को छोड़कर तुम्हारे समयसार नाटक में लिखा है (मत व्यवस्थाकथन)
सवैया इकतीसा "एक जीव वस्तुके अनेक रूप गुण, नाम, निर्योग, शुद्ध परयोगसो अशुद्ध
है। वेदपाठी ब्रह्मकहै, मीमांसक कर्म कहै, शिवमती शिवकहै, बोधकहै बुद्ध है ॥ जैनीकहैं
जिन है, न्यायवादी कर्ताकहै, छओंदर्शन में वचनको विरुद्ध है। वस्तु को स्वरूप पहचाने
सोही परवीन वचन के भेद भेद माने सोई शुद्ध है" ॥ देखो अब तुमहीं बुद्धिसे विचारकरो
कि जब तुम्हारे सिवाय किसी को मोक्षनहीं जबतो वह सर्वज्ञ पक्षपाती ठहर गया और जब वह
पक्षपाती है तो वह सर्वज्ञ भी नहीं और वीतराग भी नहीं सर्वज्ञ वीतरागके वचन में किसी से
विरोधनहीं किन्तु उसका वचन अविरुद्ध है। इस गाथाको विचारकरो :—" सेयंबरोय आसं
बरोय बुद्धोय अहव अन्नो वा सम भावभावियप्पा लहइ मुक्खो न संदेहो" १॥ अब देखो इस
गाथाका अर्थतो हम पेस्तर लिखआये हैं परन्तु ऐसे २ सर्वज्ञोंकेवचन देखने से एकान्त पक्षको
देखकर हठग्राहियोंके अज्ञानपनेसे जो अपने में मोक्ष और दूसरे में नहीं यह वचन प्रमाण क-
रनेके योग्यनहीं इसलिये जो शास्त्रोंमें १५ भेद सिद्ध कहे हैं ऐसे २ वचनों को देखकर हठको
छोड़कर अपनी आत्मा का कल्याण करना होय तो एकान्त पक्षको छोड़कर अनेकान्त पक्षको
अङ्गीकार करो जिससे शुद्ध जैनी बनो अब द्वेषको दूरकरो संसार में न फिरो मोक्षपदको
क्यों न वरो ॥ अब पांचवां जो कालद्रव्य को मुख्य मानते हो सो ठीकनहीं है (प्रश्न)
काल द्रव्य मुख्य है, जो काल द्रव्यको मुख्यनहीं मानोगे तो उत्पाद व्यय ध्रुव कैसे सधे-
गा? (उ०) देखो कालद्रव्य जैसे और पांच द्रव्य हैं तैसे नहीं किन्तु जिज्ञासुके समझाने
के वास्ते है जो तुमने कहा कि उत्पाद व्ययनहीं सधैगा तो देखो भाई सूक्ष्म बुद्धिका वि-
चार करो कि जो उत्पाद व्यय है सोही काल है क्योंकि उत्पाद व्ययही काल है देखो
तत्त्वार्थ सूत्र में " अर्पित अनार्पित सिद्धेरिति " ऐसा कहा है (प्रश्न) समय
किसके आधार मानोगे (उत्तर) जीव और अजीव द्रव्यके आधार है क्योंकि देखो
काल है सो जीव अजीव द्रव्य का वर्तनारूप पर्याय है द्रव्य नहीं वर्तना पर्याय
का भाजन द्रव्य है वह द्रव्य कौन है कि जीव अजीव है, भगवती सूत्र तथा उत्तराध्
ध्ययन सूत्रोंमें जगह २ कालको जीव अजीवका वर्तना पर्याय कहा है । (प्र०) जैसी
देखो अवगाहनादि हेतु होनेसे आकाश आदि पृथक् द्रव्य मानो हो तैसेही वर्तना हेतु
करके काल द्रव्य पृथक्ही होय है? (उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण! आंख मींचकर
बुद्धिमें विचार करो कि जैसे अवगाहना हेतु करके अवगाहना आश्रीय द्रव्य कहिये तैसे

१—इस जगह (प्र०) पदसे प्रश्न और (उ०) चिह्नसे उत्तर समझना ।

तो तुम्हारा वर्तना हेतु करके वर्तमान आश्रीय द्रव्य कल्पिये सो तो नहीं किन्तु वंशा पुत्र समान है क्योंकि धर्म कल्पना तो धर्मीसे होती है इति न्यायात इस न्याय करके काल द्रव्य है सो जीव अजीवकी पर्याय है नतु काल द्रव्य भिन्न। (प्र०) जैसे मन्द गति परमाणुने जो आकाश प्रदेशकी जो व्याप्ति क्रम करके तद् अवच्छिन्न पर्याय तिसका जो समय तद् अनुरूप द्रव्य समयका जो अनु लोकाकाश प्रदेश प्रमाण समय है? (उ०) अहो निपराग बुद्धि शून्य! जैसे तुमने समयके अनुरूप लोकाकाश प्रदेश प्रमाण माने तैसे दिग् द्रव्य क्यों नहीं मानते हो। (प्र०) ऐसी द्रव्यकी कल्पना करना आगममें तो कहीं नहीं! (उ०) तो आगम देख करके आगम प्रमाण करो क्योंकि पहले हमने आगमका प्रमाण दिया तब क्यों नहीं माना देखो आगममें तो जीव अजीवकी परियायकाल प्रतिपादन किया है। (प्र०) काल तो परत्व अपरत्व निमित्त दीसे है? (उ०) तैसेही दिशाकाभी परत्व अपरत्व दीसे है। (प्र०) द्रव्यकी शक्तिमें कार्य हेतु होनेसे विचित्रता दीसे है परन्तु अवगाहना हेतु करके तो आकाश द्रव्यही है? (उ०) तो हे भोले भाइयो! जब तुम्हारेको इस रूप गुणकारी जीव अजीव उत्पाद व्यय वर्तना हेतुकी कल्पना करनेमें क्या लज्जा आती है? इसलिये आगमकोही मानो अब देखो दूसरी युक्तिसे तुम्हारा काल अनुसिद्ध नहीं होता है जैसे तुम मन्दगति अनुसारे काल अनुकल्पो हो तैसेही परम अवगाहना अनुसारे आकाशादि अनुपण कल्पना चाहिये क्योंकि साधारण अवगाहनाकी हेतु करके आकाशादि स्कंद कल्पना है। ऐसेही जो अनु कल्पना करोगे तो स्कंदकी विना प्रदेश कल्पना होगी तो जैसेही काल द्रव्यमें समान साधारण वर्तना अनुसारे एक काल स्कंध होता पीछे तत्प्रदेश आवेगा जो ऐसा होय तो सिद्धान्तसे विरोध हो जायगा ऐसी कल्पना करनेमें जिन आज्ञा विराधक होवोगे इसलिये हे भोले भाइयो! सिद्धान्तकोही मानना ठीक है कदाचित् मतान्तरकी अपेक्षा करके मनुष्य क्षेत्रमें काल मान द्रव्य कहे हैं सो तो ज्योतिष चक्र चार व्यापक वर्तना पर्याय समूहके विषय द्रव्यको उपचार करके कहा है—उक्तंच नव चक्रे, "पर्यायो द्रव्योपचारः इति" ये दो मत श्री हरिभद्र सूरिजी कृत धर्मसंग्रहणीमें है उसमें देख लेना इसलिये काल द्रव्य पर्यायिक द्रव्य नहीं किन्तु कहने मात्र है और तत्त्वार्थ सूत्रमें दो मत दिखाये हैं जिसमें एक मतको अन अंगीकार कहकर छोड़ दिया क्योंकि द्रव्यार्थिक ने बनाया है और मुख्य करके तो जीव अजीवकी पर्यायकोही काल द्रव्य उपचारसे कहा है। (प्र०) जो तुम जीव अजीवको पर्याय कहते हो तो छः द्रव्य तुम्हारा कहना ये क्योंकर बनेगा? (उ०) अरे भोले भाइयो ये काल द्रव्य अनादि उपचारसे जिज्ञासुको समझानेके वास्ते वा मन्दमतीके वास्ते कि जिसको उत्पाद व्ययकी समझ न पड़े। (प्र०) अजी देखो ' सूर्य उदय होनेसे दिन और रात पहर, घड़ी, पल, आवली वगैरहकी संख्या बांधी है इसलिये सत्य काल द्रव्यको क्यों उपचारिक मानते हो? (उ०) अरे भोले भाइयो! विवेक सहित बुद्धिसे नेत्र मीचकर विचार करो कि सूर्यके उदय अस्तसे तुम कालको मानते हो यह तुम्हारा मानना ठीक नहीं है क्योंकि सूर्यका उदय अस्त कहीं कहीं स्थिर होवे तिसके सिवाय और तो कहीं है नहीं तो फिर तुम ढाई द्वीपके अन्दर ही होते हैं उसमें सूर्य जहां उदयहै वहां उदयही है और जहां अस्त है अस्तही है

अथवा देवलोक पर्यन्त तो सूर्यकी बिल्कुल गति नहीं है अथवा मोक्षमेंभी सूर्यादिक कोई नहीं है फिर इस जगह घड़ी, पल, दिन, रात क्योंकर मानी जायगी इसलिये इस हठको छोड़ कर स्याद्वाद सैलीको विचारो और आत्माका अर्थ करो औरभी देखो कि सूर्य क्या चीज है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि सूर्य मन्डल जीव और अजीवके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है तो अब देखो और बुद्धिसे विचार करो कि जब दूसरी कुछ वस्तु नहीं है तो जीव और अजीवका जो कर्म अनुसार फिरना अर्थात् उदय अस्त होना ये जीव और अजीवकीही पर्याय ठहरी इसीका नाम तुम काल मानते हो तो तुम्हारे कहनेसे ही जीव अजीवका उत्पाद व्यय रूप पर्याय काल द्रव्य उपचारिक सिद्ध होगया नतु काल द्रव्य मुख्य; अब देखो कि जो कोई आत्मार्थी होय सो इन पांच बातोंके विरोधको समझकर इनकी हठ अज्ञानता की परीक्षा करलेवे, और भी देखो वर्तमान कालमें जो इनके वीस पन्थी, तेरह पन्थी, गुमान पन्थी आदिक जो भेद हैं सो आपसमें एक दूसरेको बुरा कहता है और मिथ्यात्वी बताता है सो किंचित् इनका भेद दिखाते हैं सो बुद्धिमान् हो सो समझ लेना देखो कि वीसपन्थी तो नग्न मूर्ति आदिकको मानते हैं और मूर्तिको जलादिकसे स्नान भी कराते हैं और केशर पगोंपर चढ़ाते हैं और अष्टद्रव्यसे पूजा अंगीकार करते हैं और मुनिके स्थानमें भट्टारक ऋषि लाल कपड़ेवालोंको मानते हैं इनके बाद बरस २०० तथा २५० के अनुमानसे तेरह पंथी निकले और वर्तमान कालमें इनका प्रचार कुछ जियादः है सो मूर्ति तो ये भी नाम मानते हैं परन्तु जलादिसे स्नान नहीं कराते हैं सिर्फ कपड़ा भिगोकर पूंछलेते हैं और केशर भी नहीं चढ़ाते हैं किन्तु केशर जो तिलमात्र भी लगी होय तो उस मूर्तिको नमस्कार नहीं करते क्योंकि केशरसे पूजीहुई मूर्त्ति दर्शन का लोगों को त्यागकराते हैं कि उसको नहींपुजाना अर्थात् नमस्कार भी नहीं करना अब देखो इनकी कैसी अज्ञानता है कि इन तेरह पंथियोंमें मुख्य दयानत राय हुवेथे उन्हींसे इस तेरह पन्थका जियादः प्रचार फैला उस दयानत रायने अष्ट प्रकारी पूजा बनाई है उसमें लिखते हैं कि अष्ट द्रव्यसे भगवत्की पूजन करना ॥ अब थोड़ासा प्रश्नोत्तर करके सम्बन्ध करते हैं (प्रश्न) केसरादि अरची हुई प्रतिमाको नमस्कार नहीं करना (उत्तर) भला केशर आदिसे पूजी हुई प्रतिमाओंको क्यों नहीं नमस्कार करना उसमें क्या दूषण है (प्र०) वह तो वीतराग निरंजन निरग्रन्थ है इसलिये उसको केशरादिसे अर्चना शृंगार हो जायगा ? (उ०) तो भला तुम्हारे दयानतरायने अष्ट प्रकारी पूजन परमेश्वर की करना क्यों कहा (प्र०) उन्होंने जो अष्ट प्रकारकी पूजन कही सो तो हम करते हैं परन्तु मूर्तिके आगे पूजन करते! (उ०) मूर्तिके आगे पूजन करना ऐसा तो पूजामें नहीं किन्तु मूर्तिको छोड़कर और अगाड़ी करना यह तो तुम्हारा मनो कल्पना दीखे है और तुम भगवतको भी बालक की तरह फुसलाते दीखो हो क्योंकि पूरे द्रव्य भी नहीं चढ़ाते हो कि जैसे बालकको देना तो अफ़ीम और बता देना मिश्रीकी डली तैसे तुम भी खोपरे की गिरी अर्थात् टुकड़ेको केशरमें रंगकर दीपक बता देते हो तो यह तुम्हारा भगवत मानना बालकों कासा हुवा तुम्हारेसे तो वीस पन्थी ही चोखे हैं ऐसे ही गुमान पन्थीको समझ लेना निष्प्रयोजन जानकर यहां बहुत इनका खन्डन मंडन नहीं लिखा

है (प्र०) भो स्वामिन्; हमने ऐसा सुना है कि दिगम्बर लोग कहते हैं कि
वर्ष अकाल पड़ाथा जब आहार आदिक न मिलनेसे और रङ्क (दीनो) का जियादा
होनेसे श्रावकोंने इनको पीछेसे झोरी पात्रा वस्त्र आदिक अङ्गीकार करादिये और
निर्वृत्ति हुई तब फिर आचार्य्य लोग आये उन्होंने कहा कि तुम वस्त्रादिक छोड़कर
दीक्षा ग्रहण करो और शुद्ध मार्गमें आजावो सो इन्होंने न मानी जबसे इनकी
आमना चली ऐसा हमने सुना है। (उ०) श्रीवीर भगवानके ६०९ वर्ष पीछे रथवीर पुर
नाम नगरके उद्यानमें कृष्ण आचार्यके पासमें सहस्र मल रात्रिको उपासरेमें आया और
आचार्य्यसे कहा कि मेरेको दीक्षा दो अर्थात् शिष्य बनावो परन्तु आचार्य्य की इच्छा न
हुई तब उसने अपने आप ही लोच आदिक कर लिया तब आचार्य्य उसे लिङ्ग देकर
और जगह विहार कर गये और उसको साथ लेगये कुछ दिनके पश्चात् फिर उसी नगरमें
आये तब राजा आदिक वन्दना करनेको आचार्य्यके पास आये और राजाने गुरुकी आज्ञा से
उस सहस्रमल साधुको घरमें लेगया और राजा रत्न कम्मल उसको दिया सो वह
रत्न कम्मल लेकर के गुरु के पास आया और गुरु को वह रत्न कम्मल दिखाया जब
गुरु कहने लगे कि ऐसे भारी मोल का वस्त्र रखना साधु को कल्पे नहीं इसलिये यह
राजा को देआ परन्तु वह साधु देने को नहीं गया और उपासरे में रखदिया और
बाहिर चला गया उस वक्त गुरु ने उस रत्न कम्मल के खण्ड २ करके सर्व साधुओं को
पैर पूछने के लिये दे दिया जिस वक्त में वह साधु उपासरे में आया और उसके
टुकड़े २ करके साधुओंको देदिया इस बातको सुन कर मन में द्वेष बुद्धि रख कर
के कुछ न बोला तब दो चार दिन के बाद गुरु जन कल्पी साधुओं के वर्णन करने लगे
उन बातों को सुन कर गुरु से कहने लगा कि आप क्यों नहीं इस मार्ग में चलते हो
तब गुरु कहने लगे कि रे भाई इस पंचम काल में ये मार्ग नहीं चलता इसलिये हम
नहीं कर सकते इसके ऊपर उस सहस्रमल ने गुरु से बहुत वाद विवाद किया परन्तु
गुरु के समझाने से भी न माना परन्तु वह जो रत्न कम्मल की द्वेष बुद्धिथी इस कारण
से क्रोध के वश होकर सब वस्त्र छोड़ दिगम्बर हो वनको चला गया फिर विश्वभूत कोट
वीर इन दो जनों को उस सहस्रमल ने प्रतिबोध देकर अपना शिष्य बनाया जब से इन
का बोटक मत प्रसिद्ध हुआ अर्थात् दिगम्बर मत चला इस तरह की कथा शास्त्रों में लिखी
है अब देखो हम युक्ति कहते हैं कि देखो बुद्धिमान् सज्जन पुरुष इस युक्ति से आप
विचार लेंगे वह युक्ति यह है कि–जो संसार में मत या पन्थ निकलता है सो पहले
उत्कृष्ट अर्थात् तीखापन का चलता है उसी को लोग मानते हैं क्योंकि संसार में बाल
जीव तो बाह्यक्रिया अर्थात् बाहिर देखने में जो क्रिया आवे उसी को वे बाल जीव अङ्गी
कार कर लेते हैं क्योंकि जो धूर्त अर्थात् दम्भ कपट के करनेवाले त्यागी वैरागी बन
ने की चेष्टा दिखा कर बालजीवों को अपने जाल में फंसाते हैं क्योंकि उन बाल जीवों
को इतना तो बोध है नहीं कि वे अच्छी तरह से परीक्षा करसकें इसलिये वे भेष धारी
इतिहास से दृढ़ता अपने मत की पुष्टता करनेके वास्ते अपने परपक्ष रचते हैं अ
देखो बुद्धि वालों को विचारना चाहिये जो उत्कृष्ट क्रिया के धरने वाले और बाल जी

को बाहिर के त्याग पच्चखाण दिखानेवाले उन में कोई निकलकर जो त्याग पच्चखाण में ढीला होकर उन नग्न में सुं जो वस्त्र धारण करके जो अपना पन्थ चलाया चाहें तो वह कदापि नहीं चल सकता क्योंकि त्यागी को सब कोई मानता है और भोगीको कोई नहीं मानता है और दूसरा इनके कहनेमें भी दूषण आवेगा कि ये लोग कहते हैं कि पंचम आरेके छेडले तक चतुर विधि संघ रहेगा तो अब देखो इनके वचनको विचारना चाहिये कि श्री वर्धमान स्वामीजीको निर्वाण हुये २५०० तथा २६०० अनुमानसे वर्ष हुये तो २१००० वर्ष तक जैन मत चलेगा परन्तु दिगम्बर मुनि किसी मुल्कमें देखनेमें नहीं आता है तो फिर जब इनको मुनि अभी देखनेमें नहीं आते हैं तो फिर २१००० वर्षतक इस दिगम्बर मतसे जैन मत चलेगा सो तो कदापि नहीं हो सके क्योंकि अवार ही इनके मतमें साधु और साध्वी नहीं तो २१००० वर्ष तक चलना तो शृगालके सींग समान होगा इसलिये हे सज्जन पुरुषो ! जो मत बीचमें निकला है सो बीचमें ही रह जाता है छेड तक नहीं पहुँचता इसवास्ते अनादि सिद्ध किया हुवा जो श्री जिन धर्म उसमें जो चलनेवाले सर्वज्ञ आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलने वाले उन्हींसे अन्त तक अर्थात् २१००० वर्षके छेडले तक साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर विधि संघ जैवंत रहेगा

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानंद स्वामि विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर तृतीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत दिगम्बर मत निर्णय समाप्तम् ॥

अब श्वेताम्बर आमनाय में जो बाईस टोला तेरह पन्थी जोकि मूर्ति को नहीं मानने वाले शास्त्रों से विपरीति जो इनकी बातें हैं सो हम दिखाते हैं इसलिये इस जगह मध्य मंगल के वास्ते प्रथम मंगल यहां लिखते हैं ॥

दोहा—जिन वर पूजन मोक्ष हित, जिन प्रतिमा जिन सार ।
भगवत भाषी सूत्र में, शुद्ध विधी सम्भार ॥ १ ॥

बाईस टोला और तेरह पन्थी कहते हैं कि प्रतिमा पूजना सूत्र में नहीं है इसलिये हम पूजन नहीं मानते हैं। (उ०) तुम कहो हो कि सूत्रोंमें प्रतिमा पूजन नहीं है तो हम तुम्हारेसे पूछें हैं कि तुम सूत्र कितने मानो हो ! (पू०) हम सूत्र ३२ माने हैं । (उ०) ३२ सूत्र तुम कौन २ से मानो हो । (पू०) ११ अङ्ग और १२ उपाङ्ग ४ छेद, ४ मूल १ सूत्र इन ३२ सूत्रोंको माने हैं । (उ०) भला इन सूत्रोंमें जो बात लिखी है उसको तो सबको मानो हो अर्थात् ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी है उन सबको तो मानो हो! (पू०) हां ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी है सो तो हम सब माने हैं । (उ०) जो तुम ३२ सूत्रोंकी सब बात मानो हो तो उन ३२ तुम्हारे माने हुयेमें श्रीनन्दी जी और श्री भगवती जी भी हैं तो नन्दीके

१ (उ०) से उत्तर पक्ष और (पू०) से पूर्व पक्ष जानो ।

कहे हुये वाक्यको नहीं मानों तब नन्दी जी तुमने नहीं मानी जब नन्दी जी नहीं तब फिर तुम्हारे ३२ क्योंकर रहे ६१ ही रहगये फिर तुम्हारा ३२ का मानना नहीं। (पू०) अजी तुमभी तो ४५ मानते हो तो हमारा ३२ मानना क्यों नहीं (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तो ४५ भी मानते हैं ७२ भी मानते हैं और ८४ हैं क्योंकि देखो हमारा ४५ का मानना तो इसीलिये है कि शास्त्रोंमें कहा है कि योग वद सूत्र बाँचना नहीं कल्पे इसवास्ते योग वहनेकी विधि ४५ ही आगमकी है वास्ते हम ४५ माने हैं और ७२ चौरासी भी हम प्रमाण करते हैं जो उनमें लिखा है सो हमारेको मानना चाहिये और दूसरी यहभी बात है कि ४५ सूत्रकीही निर्युक्ति भाष्य टीका प्रायः करके मिलती है इसलिये हम ४५ को कहते हैं मगर प्रमाण सब सूत्रोंका है जो उन सूत्रोंमें लिखा उन सबको प्रमाण करते हैं और तुम जो ३२ मानते हो उनमें तुम्हारे पूरे ३२ नहीं ठहरते हैं क्योंकि नन्दी जीके वाक्यको तुम अंगीकार नहीं करते क्योंकि उसमें ७२ आगमोंके नाम लिखे हैं तो तुम्हारे भिन्न शास्त्र कुल मानने न हुए क्योंकि सब शास्त्र मानों तो निर्युक्ति भाष्य टीका सब माननी पड़े नहीं माननेसे तुम जिन धर्मी नहीं ठहरते हो। (पू०) अजी हम मूल सूत्रको माने हैं उस सूत्रसे मिली हुई निर्युक्ती जो चूर्णी आदिमें लिखा है सो माने हैं और शेष उसमें हिंसा धर्म है इसलिये हम अंगीकार नहीं करते। (उ०) अरे भोले भाइयो ! विचारशून्य होकर जिन धर्मको क्यों लजाते हो देखो कि ठाणांग सूत्रमें कहा है "गणहर गुंथइ अरिहा भासई" इति वचनात् अब देखो इसमें श्रीगणधर जीतो सूत्रके गूथनेवाले अर्थात् मूल सूत्रका रचनेवाले हैं सो तो छद्मस्थ अर्थात् केवल ज्ञानी नहीं है और अरिहा भासई (कहतां) अरिहंत भगवंत सर्वज्ञ केवल ज्ञानी सूत्रके अर्थको कहनेवाले उनके वचनमें तो तुमको हिंसा मालूम हुई और छद्मस्थोंके किये सूत्र तुमने अंगीकार किये इसलिये तुम्हारेको पंचांगी मानना ठीक है नहीं तो जिन आज्ञा विराधक होंगे (पू०) अजी मूल सूत्रसेही काम हो जायगा तो टीका भाष्य चूर्णीमें क्या मतलब क्योंकि गुरु परम्परासे हम लोग सूत्रपरही अर्थ धारण करते हैं और सूत्रोंमें पंचांगीका प्रमाण कहा है भी नहीं हां अलबत्ता जो सूत्रसे बात मिलती सो मानते हैं बाकी नहीं मानते हैं। (उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण ! "अंधे घूंहे थोथे धान जैसे गुरु तैसे जिजमान" अब देखो जैसेही तुम्हारे गुरु मूल सूत्रके पढ़ानेवाले और वैसेही तुम पढ़नेवाले क्योंकि श्री भगवती जीमें पंचांगी मूल सूत्रमें प्रमाणभी है गाथा पचीसमें शतकमें कही है यतः "सुतात्थो खलु पढमो, बीयोनिज्जुति मीसिओ भणी ओ हई ओय निरविसे सो एस विहि होई अणु ओगो ॥ १ ॥ अर्थः-सुतात्थो खलु पढमो (कहतां) पहलो सूत्रार्थ निश्चय देवो बीओ निज्जुति मीसिउ (क०) दूसरी निर्युक्ति मिश्रित सहित देवो भणी ओ क० कहा है तईओय निरवसे साक० तीसरा निरविशेष संपूर्ण कहना एस विहि होई अणुओगो क० यहविधि अनुयोगकी है अर्थात् अर्थ कहनेका है ॥ इति भगवती शतक ॥ अब देखो कि इस भगवती सूत्रके मूल पाठमें सूत्रने कहा है कि ७२ आगम हैं तो तुम्हारे ३२ माने कैसे बनेंगे और जो नन्दी जीके पंचांगी सिद्ध हुई और नन्दी जी ठाणांगजी आदिक बहुत ग्रन्थोंमें पंचांगी

ानने को जिस जगह जोग वहने आदिककी विधि है तहां अच्छीतरहसे खुलासा कहा है :किन्तु हम ग्रन्थके बढ़नेके भयसे यहां नहीं लिखते हैं और जो तुम कहो कि सूत्रसे जो ीज़ मिले उसको माने हैं तो अभी वर्त्तमान कालमें सूत्र तो बहुतसे हैं तो तुम ३२ ही ्यों मानों हो ? (पू०) अजी ३२ सूत्र ही माहो माहीं मिले हैं बाकीके सूत्र मिले नहीं सलिये नहीं माने (उ०) अरे भोले भाइयो ! तुम आत्मा अर्थी तो दीखो हो नहीं किन्तु ुम्हारे परस्पर मिलावनेकी तो इच्छा है नहीं केवल जिन प्रतिमासे द्वेष बुद्धि करके और ूत्रोंको नहीं मानो हो भला खैर३२तो मान्तेहो तो इन३२सूत्रोंमें तुम्हारी मति अनुसार सर्व रस्पर मिले हैं परन्तु इन सूत्रोंमें जो परस्पर मूल पाठमें विरोध है सो हम तुम्हारेको पूछते ं सो तुम इन सूत्रोंमें जो विरोध है उस विरोधको मिटाय कर हमारेको समझाय दो जो ुम समझाय दोगे तब तो ठीक है नहीं तो अब ग्राहिक मिथ्यातमें पड़े हुये रुलोगे (१) अब म तुमको तुम्हारे मूल सूत्रोंका परस्पर विरोध दिखाते हैं देखो समवायांगमें श्री मल्लीनाथ भुजीके पांच हजार सातसौ मन पर्यवज्ञानी कहे और श्री ज्ञाताजीमे ८०० कहे सो से मिले (२) और श्री रायप्रसेनीमें श्रीकेसी कुमारजीके चार ज्ञान कहे और श्री उत्त-ाध्ययनके २३ में अध्ययनमें अवधि ज्ञानी कहा सो किस तरह और श्रीभगवती शतक हले उदेसे २ में विराधक संयमी जघन्य करके भवन पतीमें जाय और उत्कृष्ट करके सौ र्म देवलोक जाय ऐसे कहा (३) और श्रीज्ञाताजीमें सोलमें अध्ययनमें सुकुमालिका विराधक ंयमी ईशानदेव लोक गयी सो किस तरह ? (४) उव वाईश्रीजीमें तापस्य उत्कृष्टा ज्योतिषी लगे जाय ऐसा कहा और श्री भगवतीमें तामली तापस्य ईशान इन्द्र हुवा सो केस तरह ? (५) श्री भगवतीमां श्रावक कर्मादानका त्रिविध २ पच्चखानकरे ऐसा कहा और श्री उपासक दशा मध्ये आनन्द श्रावक हल मोकला राखा सो कैसे ? (६) श्री पन्नवना सूत्रजी माही वेदनी कर्मकी जघन्य स्थिति १२ बारह मुहूर्तकी कही और श्री उत्तराध्ययनमें अंतर मुहूर्तकी कही सो कैसे मिले श्री पन्नवनामें चार भाषा बोलतां आराधक होय और श्रीदशवै कालक अध्ययन ७ में दो भाषा बोलेकी कही सो कैसे (७) श्रीदशवै कालक अध्ययन८ में हाथ पग छेदा हो और कान नाक काटाहो और सौ बरसकी डोकरी हो तो ब्रह्मचारी छीवे नहीं ऐसा कहा है और श्री ठाणांगमें ५ ठाणे दूसरे उदेसः साधु पांच प्रकारे साध्वीने ग्रहण करतो थको अज्ञान विरोध सो कैसे ८ श्री भगवतीमें शतक १४ उदेसे ७ में भात पाणीका पचखान करके फिर आहार करे ऐसा कहा और सिद्धांतोंमें तो व्रत भंग करे तो महादोष लागे सो कैसे ९ श्रीदशवै कालक तथा श्री आचारांगजी में त्रिविधि २ करके प्राणिति पातका पच्चखाण करे और श्री समवायांगजीमें दिसा श्रुत स्कंद नदी उतरनीभी कही तो रासेविना कैसे उतरे यह बात कैसे १० श्रीदशवै कालक ३ अध्ययनमें लूण प्रमुख अनाचरण कह्या है और श्री आचारंगजीमें लूण वहन्यो होय तो आप खाय सम्भोगी साधुने खवावे ऐसा कह्या सो कैसे मिले ११ श्री ज्ञाताजीमें श्री मल्लीनाथ ३०० स्त्री और ३०० पुरुष तथा ८ ज्ञात कुमार के साथ दीक्षा लीनी और श्री ठाणांगजीमें सातमें ठाणेमें छः पुरुषके साथ दीक्षा लीनी ऐसा कहा सो कैसे इत्यादि अनेकहो बातें सूत्रोंमें परस्पर आपसमें विरोध दीखे हैं तो ये सर्व टीका निर्युक्ति चूर्णी भाष्य बिना केवल सूत्र मेल कर

देखो तब तो हम तुम्हारेको जाने कि तुम सूत्रमें अर्थ बांचते हो नहीं तो हे भोले भाइयो हठ पक्षपातको छोड़कर जो कि रत्नाकरके वासी गुरु परम्परा वाले जिन्होंने निर्युक्ति भाष्य टीका आदि पंचांगीको धारण किया वेही इन सूत्रोंके परस्पर विरोधको समझ सके हैं क्योंकि कोई वचन उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई भय कोई विधीवाद, कोई पाठान्तर कोई अपेक्षा कोई चरतानुवाद प्रमुख सूत्रका गंभीर आशय समुद्र सरीखा बुद्धिमान टीकाकार प्रमुखही जाणे क्या तुम सरीखे रंक पक्षपाती निर्विवेकी जान सकते हैं? किन्तु तुम्हारे तो प्रतिमा के द्वेष ही से टीका आदिक को नहीं मानते तो अब तुमही बुद्धि विचारकरके देखो कि तुम्हारे मूलसूत्रों में भी सब सूत्रों का मानना सिद्धकिया और पंचांगीभी तुम्हारे मूल सूत्र से मानना सिद्धकरचुके तो अब तुम्हारा ३२ का मानना ठीक नहीं इसलिये सबको मानो (पू०) हां तुमने सूत्र आदिकों की साखदी सो तो ठीक है और वह सूत्र हम सबही माने हैं परन्तु हम हिंसा में धर्म नहीं माने हैं दयामें धर्म मानते हैं और प्रतिमा पूजने में हिंसा होती है? (उ०) अरे भोले भाइयो ये तो हमारे को तुम्हारा प्रतिमा से द्वेष बुद्धिहोना निश्चय है कि तुम्हारा पन्थ इस द्वेष सेही चला है परन्तु अब हम तुमको हिंसा और दयाका स्वरूप तथा लक्षण पूछते हैं सो कहो? (पू०) हिंसा वह कहते हैं कि जीवको मारना छः कायका कूटाकरना और दया किसी जीवको न मारना और उसके बचाने से है (उ०) अरे भोले भाइयो विचारशून्य बुद्धिविचक्षण अभी तुम्हारे को यथावत् श्री जिनभगवान् का भाषा हुवा वचनका रहस्य मालूम न हुवा इसलिये तुमने दया और हिंसा ऐसा समझलिया हमको तुमपर करुणा आती है कि तुम अपना पर छोड़ कर इन जालियों के जाल में फँसकर संसार में रुलने का काम करतेहो इसलिये तुम्हारे हितके वास्ते हिंसा का और दया का स्वरूप दिखाते हैं कि हिंसा कितने प्रकारकी और दया कितने प्रकारकी और हिंसा में पाप होता है, वा नहीं होता है देखो कि १ हेतु हिंसा, २ स्वरूप हिंसा; ३ अनुबन्ध हिंसा, ये तीन भेद हिंसाके और यही तीन भेद अहिंसा के हैं-अब देखो जबतक इन भेदों को नहीं जाने तब तक सिर्फ दया २ करनेसे कुछ दया नहीं होती है क्योंकि जब तक योगों अर्थात् मन वचन, कायकी स्थिरता नहीं है तब तक बोलना चालना जो क्रिया आदिक करना है आरंभमें तो कर्म बन्ध हेतु हैं क्योंकि जिस गुण ठाणेकी जो मर्यादा माफिक कर्म प्र अर्थात् तेरमें गुण ठाणे तक कर्म बन्धते हैं-इसलिये एकली अहिंसा कैसे ठहरसके कि जब तक इसका भेद आदिक न समझे तब तक जिन मार्गको अच्छी तरह नहीं जान सकते। (पू०) अजी मुनि जो हैं सो विहार आदिक क्रिया करते हैं सो हिंसा लगे परन्तु मुनि जान कर हिंसा करे नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो ये तुम्हारा कहना वैसे है- कि मेरी मा बांझ। क्योंकि देखो शुभ क्रिया जो विहार पडलेणा नदी उतरना गोचरी जाना इत्यादि क्रियाजानकर करो फिर कहो कि हिंसा नहींतो तुम्हारा विहार करना नदी उतरना, गोचरी जाना, क्या अनजानमें होता है? जाणकर काम करते हुवे हिंसा नहीं बताते हो। (पू०) अजी नदी उतरना, विहार करना, गोचरी करनेमें तो श्रीभगवान् की आज्ञा है, आज्ञामें जो शुभ क्रिया करनी उसमें कोई दूषण नहीं। (उ०) जब श्रीभगवान्

की आज्ञाकी अपेक्षा लेकर शुभ क्रिया करनेमें कोई दूषण नहीं तो ऐसेही जो पूजा आदि शुभ क्रिया जो भगवान् की आज्ञासे होय तो तुम पूजाको क्यों निषेध करो हो। (पू०) अजी हम देखती हिंसाको मने करते हैं कि कोई जीवको देखते हुवे न मारना ऐसाही मुनिने कहता साधुने अहिंसाका भाव होय है! (उ०)जो तुम देखते जीवको न मारना ऐसा अहिंसाभाव मानोगे तो सूक्ष्म एकेन्द्रिय लोक व्यापी पंच स्थावर जीवोंमें पिण शुद्ध स्वभाव होना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव हिंसा नामही नहीं जानें हैं वो तुम्हारे कहने से वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय अहिंसक ठहरे तो जो अहिंसिक भाव परणम्या होय तो वे शुद्ध भावी निर आवरण होने चाहिये सो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव तो निरावरण होता है नहीं तो क्या साक्षी हिंसा करने से अहिंसा थोड़ी ही होता है किन्तु द्रव्य भाव अनेक प्रकार की जो अहिंसा तिसके भाव कहतां परिणामें जो जाने वोही अहिंसा में प्रवर्तन होगा और वही प्राणी सब जगह जहां जहां जिन आगमका जो जो रहस्य है जिस २ ठिकानेका जो जो मर्म है उसी २ ठिकाने जिन वाणी जोड़ेगा उस प्राणीसे आगमका एक वचन भी उल्टा न कहा जायगा क्योंकि उत्सर्ग वचन और अपवाद वचन ये दोनों बातें करके जिनेश्वरकी वाणी जाने क्योंकि उत्सर्ग मार्गे अहिंसा मुनिने ही कही है देखो श्री आचारंगजीने प्रमुखमें कहा है कि साध्वी प्रमुख पाणीमें बहती जाती होतो साधु निकाले तथा एक महीनेमें दो नदी उतरना कहा यह अपवाद आज्ञा प्रभूने कही है तो यह सर्व उत्सर्ग अपवाद जाणे सो सर्व वचन ठिकाने २ जोड़े जो अजान होये सो जिन वचन का रहस्य क्यों कर जानें। (पू०) उत्सर्ग मार्गहीमें चलनेकी भगवान्की आज्ञा है अपवाद मार्ग तो केवल बंद है अर्थात् बहाना है। (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो तुम्हारी मनकी कल्पनाही है जिन आज्ञा नहीं अर्थ जाने बिना ऐसी बातें करो हो देखो कि विधीवाद जो होता है सो साधारण कारण होता है क्योंकि उत्सर्ग और अपवाद ये दोनों विधि वाद हैं सर्व जीवोंको साधारण हैं एक जीव आश्रय नहीं कहा इसलिये अपवाद आज्ञाहीमें है इसलिये छोड़ा नहीं क्योंकि देखो अपवाद मार्ग तो कारण है और उत्सर्ग मार्ग सो कार्य है। (पू०) अजी दयामेंही धर्म है क्योंकि आरंभे नत्थी दया (उ०) अरे भोले भाइयो ! हम तुम्हारेको इतना शास्त्रोंका वचन सुनाया सो बालकको भी नतिबोध हो जाय परन्तु तुम्हारे शून्य चित्तको कुछ न हुवा क्योंकि—"फूलै न फूलै बेत, जिरतर बरसैं आदि घन। मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिल विरंचि सम॥" इस कहनेका बहुत शोक न करना क्योंकि जिज्ञासुको जब बहुत खेद देता है तब पंडित समझानेके वास्ते अन्तरङ्ग करुणा सहित कटु वचन बोले कि इसको किसीतरह नतिबोध होजावै इसलिये हम तुमको एक दृष्टान्त देते हैं कि "दो मनुष्योंने किसीके पास दीक्षा लीनी और दोनों आपसमें विचार करने लगे. एक जना तो बोला कि भगवान्ने दयामें धर्म कहा है सो मैं तो साढ़े तीन हाथ जमीन अपनी रखकर उसके भीतरही रहूंगा और कहीं नहीं जाऊंगा इसी जगह मेरेको अगर शुद्ध आहार पानीका योग मिलेगा तो लेऊंगा क्योंकि आहार पानी लाने जाना जानेमें मार्गादिमें विहार करनेमें हिंसा होगी और भगवान्ने तो दयामें धर्म कहा है इसलिये मुझको कुछ नहीं करना दूसरा कहनेलगा कि अरे भाई!

भगवान्की आज्ञा तो ९ कल्पी विहार करना एक जगह नहीं रहना, गोचरी आदिक दल्ले जाना उपदेशादि देना ही साधूका धर्म्म है एवं उत्सर्ग अपवाद सहित ... आज्ञामें धर्म है" तो अब इस बातको तुमही विचार करो कि जब भगवान्की धर्म ठहरा तो फिर मन्दिर व जिन प्रतिमा पूजनेको निषेध करना यह बात नहीं और जो तुमने कहा कि आरंभमें नत्थी दया सो हे भोले भाइयो! हमभी यही बात कहते हैं मगर विचारो तो सही कि एक पदको मोलना और तीन पदको छोड़ना देखो इस गाथाको सम्पूर्ण सुनो-यतः आरंभे नत्थी दया विना आरंभे न होई महापुन्नो पुन्नेन कम्म निज्जरे रानकम्म निज्जरे नत्थी मुक्खो इस संपूर्ण गाथा को विचार करके बोलो। (पू०) अजी धर्मके वास्ते जो हिंसा कियेसे दुर्लभ बोधि हो वे अर्थात् जिन धर्मकी प्राप्ति न होय। (उ०) अहो विवेक शून्य बुद्धि विचक्षणो हम तुम्हारे हितके वास्ते कहते हैं कि तुम विचार करो कि जो धर्मके वास्ते हिंसा करे वह दुर्लभ बोधी वा सुलभ बोधी होता है यह तुम्हारा कहना तो बंझाके पुत्र समान है क्योंकि जो कोई दिक्षा आदिक ग्रहण करता है उस समय श्रावक लोग महीना महीना भर मोच्छवादि बाजे बाजे अनेक आरंभादि खाना पीना आडंबर लोगोंको इकट्ठा करना और दीक्षा दिलाना उस आरंभमें हिंसा आदिक होती है तो वह धर्मके वास्ते करते हैं तथा साधुवोंको गङमान्तर पहुंचाने वा वांदने (नमस्कार) को जाना या सौ पचास कोस पर उनके दर्शनको जाना उसमें वह जो हिंसा आदिक होती है सो सब धर्मके वास्ते करते हैं एवं धर्म्मके वास्ते अनेक आरंभ करनेवाले जो दुर्लभ बोधी होवे तब तो जिन कल्याणकादिकोंका सकल व्यवहार अनर्थक हो जायगा जो कदाचित् ऐसाही होता तो पूर्वही किसी ने क्यो नहीं निषेधा वर्त्तमानमें तुम क्यों नहीं मना करते हो परंतु यह कहना तुम्हारा अज्ञानतासे आकाशके पुष्पकेसमान है सो हे भोले भाइयो! जिन धर्मका रहस्य तो शुद्ध परंपरा गुरुकुलवासकी कृपाहीसे प्राप्त होता है परंतु खाली जैनी नाम धरानेसे उस नहीं होता है क्योंकि देखो श्री ठाणांगजी सूत्रके चौथे ठाणेमें चौभंगी कही है सो चार भांगे यह हैं (१) "सावद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (२) सावद्य व्यापार निरवद्य परिणाम। (३) निरवद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (४) निरवद्य व्यापार निरवद्य परिणाम" ॥ पहला भांगा तो मिथ्याति आश्रीय है और दूसरा भांगा समगती देश वृत्ति श्रावक आश्रय है और तीसरा भांगा प्रश्न चन्द्र राज ऋषि आश्रीय है और चौथा भांगा श्री मुनिराज आश्रीय है अब देखो इस चौभंगीके अर्थसे जो हिंसा सोही अहिंसा ठहरती है और अहिंसा सो हिंसा ठहरती है सो हे भोले भाइयो! पक्षपातको छोड़कर आत्माके अर्थ करनेकी इच्छा होयतो शुद्ध जिन धर्म पंचांगी सहित अंगीकार करो। (पू०) भला ये युक्ती आपने दीनी सो तो भगवान्की आज्ञामें धर्म ठहरा एकली दयामें नही परन्तु जिन पूजामें अनेक आरंभ होते हैं जिसमें क्या अल्प पाप और बहु निर्जरा मानोगे और मन्दिरकी पूजन २ कहते हो सो हमारेको शास्त्रके अनुसार पूजन बताइये और युक्तिसे सिद्धकर दीजिये। (उ०) जो तुमने अल्प पाप और बहु निर्जरामें प्रश्न किया सो तो जहां हम गच्छोंके भेद कहेंगे उस जगह जो कि एकान्त निर्जरा नहीं माननेवाले उनके एकान्त निरजरा मनानेमें हम युक्ति और शास्त्रोंका प्रमाण देंगे वहांसे देख लेना। अब जो तुमने पूछा कि किसी श्रावक साधुने

मन्दिर पूजा हो वा वांदना की हो सो बतलावो तो हम तुम्हारेको ये बात और पूछें हैं कि तुम श्रावक किसको मानों हो कि समगत जिसको प्राप्ती हुई है उसको श्रावक मानो हो अथवा समगत सहित जो देश वृत्ति है उसको श्रावक मानों हो अथवा समगतका तो जिसको लेश नहीं खाली देखा देखी आडम्बरमें फंसकर गाडर चलमें चलते हुएको श्रावक मानते हो। (पू०) हम श्रावक उसको कहते हैं कि जिसको समगतकी प्राप्ति होवे और चौथे गुण ठाणे आवृत्ती हो उसकोभी श्रावक अर्थात् आवृत्ती दूसरा समगत सहित जो एकदेश वृत्त आदिकभी है वह भी श्रावक है इन श्रावकोंमें अथवा श्री महावीर स्वामी के श्रावक अथवा कोई तीर्थ करके श्रावक हो जिन्होंने पूजनकी हो अथवा किसी साधुने वन्दना मन्दिरमें जाय कर कीहो तो हमको बतलाइये। (उ०) जब आवृत्ति चौथे गुण ठाणे वाले तब तो देवलोकमें जो देवतादिक हैं वहभी चौथे गुण ठाणेवाले श्रावक हैं तो जिस समयमें वो देवलोकमें उपजते हैं उसवक्तमें वे अपने सामान्यक देवताओंसे पूछते हैं कि हमारेको पहले क्या कृत करना चाहिये उस वक्तमें वे देवता कहते हैं कि इस विमानमें जो श्री जिनेश्वरकी प्रतिमा अथवा श्री जिनेश्वरकी दाढ़ों उनकी तुम पूजा करो पूर्व और पश्चाहित कहता पूर्व तथा पीछे जिन प्रतिमा तथा जिन दाढ़ि ये दो वस्तुकी पूजा करनी तुम्हारे हितकारी है ऐसा सामान्यक देवता कहते हैं प्रथम सूर्यान्न देवताने जो पूजन किया है सो नीचे लिखते हैं; परन्तु सूर्यान्न देवताके विमानमें दाढ सम्भवै नहीं इसलिये दाढोंका प्रमाण तो एक तो सुधर्म इन्द्र; दूसरा ईमान् इन्द्र, तीसरा चमर इन्द्र, चौथा बल इन्द्र ये चार इन्द्रोंको दाढ लेनेका अधिकार है सो तो पाठ जंबूद्वीपपन्नती अर्थात् टीकासे जान लेना परन्तु इस जगह तो हम सूर्यान्न देवताने जो पूजन किया सो श्री रायपसेणी सूत्रका "पाठ लिखते हैं तत् सूत्रं-(तएणं तस्स सूरिगाभस्स देवस्स पंच विहारा पज्जतिए पज्जत्तिभावंगयस्स समाणस्स इमे यारूवे अज्झथ्यिरा पथ्यिये मरणोए संकप्पे समुप्पज्जिथ्या किमे पुवं करणिज्जं ? किं पथ्याकरणेय्यज्ज किमे पुविंसेयं किमे पथ्यांसेयं किंमे पुव्विं पथ्या विहियाए सूहाए खमाए णिसेसाए आणुगामि यत्तारा भविस्सइ। तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिय परिसो व वणगा देवा सूरियाभस्स इमेरूवं अभथ्थियं समुप्पन्नं समभिजाणिता जेणेव सूरियाभदेवेतेणेव उवागच्यंति सूरियाभं देवं करयल वेत्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पि यार्ण सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणे जिण पडमाणं जिणु-स्सेहप्पमाणमेत्ताणं सठसयं सन्निखित्ताणं चिटइ सभाइणं सहमाराणं माणवए चेइय संभ वइ एम एसु गोल वट्ट समुगाएसु बहुइओ जिणस्स कहाओ सन्निखित्ताओ चिठंतिव ताओणं देवाणुप्पिएयाणं अन्नेसयं बहुणं वेमाणियाणं देवाणयं देवीणय अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासा णिज्जाओ तंरुयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विकरणिज्जं एयसां देवाणुप्पियाणं पथ्याकरणिज्जं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पथ्याविहियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामि यत्ताए भविस्सइ॥ क्योंकि सरीसा पाठ होने एक जगहके पाठका सम्पूर्ण अर्थ करते हैं अर्थः—"तएणं तस्य सूरियाभस्स देवस्सके जबसे सूरियाभ देवताने—"पंच विहारा पज्जत्तीरा पज्जत्ती भावं गयस्स समाणस्सके पांच प्रकार की पर्याप्तिरा पर्याप्ति भाव पाये हुये को अर्थात् देवताको भाषा और मन ये दो प्राप्ति साथे नीपजे है—इसलिये पांच कही इमेया रूवेके एवा प्रकारनो अज्झथ्थि-

एके० मनसा प्राथ्यों मणोगए संकप्पे समुपज्जिथ्याके० मनोगत संकल्प उपन्यो सो हैं किमे पुव्विसेयके० हमारे पूर्वे श्रेयकारी कैसे? किमे पच्छा सयंके० शुं हमारे ... कारी कैसे? किमें पुव्वि पच्छाविके० हमारे पूर्वे और पछी कैसे हियाएके० हितकारी आहारीके मानिन्द सुहाएके० सुखके अर्थ; खेमाएके० संगतके अर्थ; खेमके अर्थ; ... एके० निश्रेयसे जो मोक्षति अर्थ; आणु गामि अत्ताएके० अनुगमन करे अर्थात् परम शुभानुबंधी भविस्सइके० होसी! अब देखो इस जगह यहां समगती देवताकी पूजन हुई (पू०) यह तो देवताकी स्थिती है जो देवलोकमें उपजता है सो करता है। (उ०) अरे भोले भाइयो! यह तुम्हारा कहना जो है सो अज्ञान सूचक है क्योंकि देखो सूत्रमें ऐसा पाठ है"अन्नेसिं बहुमांविमाणियाणं " कि वह पद देनेसे ही मालूम होता है कि सर्व देवता नहीं करें जो सर्व देवता करते होते तो ऐसा पाठ बोलते हैं " सव्वेसिं वेमाणियाणं" ऐसा पाठ नहीं होनेसे मालूम होता है कि सर्व देवताओं की नहीं किन्तु सम्यक् दृष्टिकी करणी है (पू०) जो तुमने कही सो तो ठीक है परन्तु सुरियाभि देवता जिस वक्तमें उत्पन्न हुवाथा उस वक्त पूजन किया पीछे तो पूजन करी नहीं इसलिये यह पूजन लौकिक आचारकी तरह है परन्तु धर्म अर्थ नहीं। (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो पक्षपातका और विचार शून्य है क्योंकि देखो कि सूत्रमें" पूर्व पच्छा" इस शब्दसे पूर्व नाम पहिला और पच्छा नाम पिछाड़ी हितकारी है इसलिये नित्य पूजन करना ठहरता है क्योंकि सूर्याभि देवता ऐसा जानता है कि मेरे हितके वास्ते मेरेको नित्य पूजन करना श्रेयकारी है अर्थात् कल्याणकारी है। (पू०) भला हम पूजन करना तो ठीक कहते हैं परन्तु द्रव्य पूजा अर्थात् बाह्य करनीसूं करी होगी परन्तु भाव नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो कुछ! तो विचार करो कि जो समकित दृष्टि होगा सो तो भाव सहित ही धर्म कृत करेगा क्योंकि समकित दृष्टिकी रुचि पूर्वक हरेक काममे प्रवृत्ति होती है देखो कि जैसे भरत राजाके जिस वक्तमें चक्र उत्पन्न हुवा उसी वक्त श्रीऋषभदेव स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा वो दोनों खबर एक साथ आयकर लगी तो उसवक्त भरतने इस लोक और परलोकमें हितकारी उपकार जानकर पहिले श्रीऋषभदेव स्वामीके पासमें जायकर भाव पूजन अर्थात् धर्म की महिमा करी पीछे चक्र की द्रव्य पूजन लौकिक आचार साधनेके वास्ते किया तो देखो कि समकित दृष्टि जीवकी तो भाव पूजा प्रसिद्ध है इसवास्ते सुरियाभि देवताका समकित दृष्टि होने से लौकिक आचरणसे नहीं किंतु भावसे त्रिकाल पूजन करता हुवा इस रीतिसे "श्रीरायपसेणी" सूत्रमें अच्छी तरहसे अधिकार है सो आत्मार्थी सूत्रके ऊपर विचार करके अपनी आत्माका कल्याण करे। (पू०) आपने कहा सो तो ठीक है परन्तु देवता तो आश्रव अपच्च खाणी है सो देवताकी करनी गिनतीमें नहीं है इसलिये हम देवताकी करणी मानते नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो! यह तुम्हारा कहना मिथ्यात दशाका है क्योंकि समकित दृष्टि देवताकी असातना करनेसे अर्थात् आवर्णवाद बोलनेसे जीव चीकना कर्म बांधे दुर्लभ बोधी होय अर्थात् जिन धर्मकी प्राप्ति कठिनसे मिले इसका पाठ श्रीठाणांगजीके पांच ठिकानेमें कहा है सो पाठ लिखते हैं ॥ "पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लहबोहियत्ताए कम्मं पकरंति तंजहा अरिहंताणं अवन्नं वयमाणे ॥ १ ॥ अरिहंत पणतस्स धम्मस्स

जंघाचारणस्सणं गो० ॥ इत्यादि ॥ देखो इस पाठ में जंघाचारी विद्याचारी साधुके वास्ते नंदीश्वर द्वीपमें यात्रा अर्थात् देववन्दन कहा है (पू०) अजी यह तुम कहा सो तो ठीक है परन्तु येतो जंघाचारी विद्याचारी साधुकी लब्धी का वर्णन किया है परन्तु कोई गया नहीं (उ०) अरे भोले भाइयो ! अभी तुम्हारा मिथ्यात अज्ञान दूर न हुवा जो अज्ञान दूर होता तो अगाड़ी जो हमने सूत्रों की साख से जो कहा है उसी को अंगीकार करते परन्तु ऐसी अपने मतकी खेंच न करते तुम्हारेको तुम्हारी आत्माके अर्थ की इच्छानहीं किन्तु अपने मतकी पुष्टता करनेके वास्ते मिथ्यामोह में अपूजेहुये ऐसा विकल्प करते हो क्योंकि देखो इस सूत्र में ऐसा पाठ है कि जो साधु नन्दीश्वर द्वीपजाय और लौटकर यहां भरत-क्षेत्र में आवे आलोयणा अर्थात् इर्यावही पडकमें विना जो काल करजाय तो भगवान्‌की आज्ञाका विराधक होय और जो आलोयणा अर्थात् इरयावही पडकने के पीछे जो वो काल करे तो भगवान् की आज्ञाका आराधक अर्थात् आज्ञाकारी होय इस पाठ के देखनेसे जाना साबित होता है जो नहीं जाता तो आलोयणा का पाठ कदापि सूत्र में न होता क्योंकि लब्धी के वर्णन में आलोयणा का कुछकाम नहींथा इस आलोयणा के पाठ होनेही से जाना साबितहोता है (पू०) अजी देखो जब नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा को जाने से उसको आलोयणा आई तो आलोयणा होने से चैत्यका बांधना ठीकनहीं क्योंकि आलोयणा विना करे जो काल करजाय तो विराधक ठहरता है (उ०) अरे ! संशय मिथ्यात्व रूप समुद्र में पड़े हुये दुःखितआत्मा होकर भी तुम्हारे को सूत्र रूपी जहाज़ जिस के शुद्ध उपदेशक अर्थ के बतलाने वाले गुरू तुमको हाथ पकड़ निकालते हैं तो भी तुमसे निकला नहीं जाता है तो हा ! इति खेदे महा मोहस्य विटंवना, अर्थात् मोह रूपी मिथ्यात्व की कैसी विचित्रता है ? अरे भोले भाइयो ! यह मनुष्य जन्म चिन्तामणिरत्न पायकर चेतो अर्थात् बुद्धिमें विचार करो कि आलोयणा जो है सो प्रमादिगतकी तिसका आलोयणा है क्योंकि लब्धी उपजनेके कारणसे एक तो इसकी आलोयणा अर्थात् लब्धी फोड़कर गया दूसरा परमाद तीरके वेगकी तरह उतावला अर्थात् जल्दीसे चला गया जाता थका बीचकी जो यात्रा प्रमुख सास्वता देहरा रह गया तिसका चित्तमें अति खेद उपजे इससे क्या आया कि गमनागमनकी आलोयणा नतु चैत्यादिक की आलोयणा देखो इसी रीतिसे दशवें काल कमें ऐसा कहा है कि जो साधु गोचारी करके अर्थात् लेकर आवे तब गुरुके पास आ लोवे सम्यक् प्रकारे अब इस जगह जो दोष लगा है उसीकी आलोयणा है, कुछ गोचरीकी आलोयणा नहीं क्योंकि देखो इस गाथाके अर्थसे मालूम होता है:—"अहो जिणेहिं असा विज्जा वित्ती साहुणोदेसियाधम्म साहणा हे उस्स साहुदेहस्स धारणा" ॥ इस गाथामें ऐसा मतलब मालूम होता है कि साधू की जो वृत्ति सो जिन भगवान्‌ने असा विज्जाके सावध्यन नसही क्योंकि धर्मके सहायदेने वाली जो गोचरी आदि वृत्ति सो साधूको शरीरके धारण करने के वास्ते है नतु परमार्थः जैसे गोचरी की आलोयणा नहीं सिर्फ गमनागमन अर्थात् जाने आने का जो परमाद उपयोग विना जो दूषण लगाहो उसकी आलोयणा है इसीरीति से वो चैत्यकी आलोयणा नहीं किन्तु जो जाने आने में परमाद हुवा उसकी आलोयणा है

इत्यादिक चौदह स्थानक और अशुचि आदिकमें छ मूर्छम् पञ्च इन्द्रिय ...
हैं इसलिये मुँहपत्ती हाथमें रखना ठीक है मुखपर बांधनेसे लड़केभी गालियां
और दूसरे अन्यमती लोग ऐसीभी मशखरी करते हैं कि जो मुँहबांधे लोग सामने
जायँ तो अशकुन हो जाय तो देखो जिन धर्मके साधु मुनिराजकी तुम्हारीसी ...
होगी क्योंकि जिसने जिनराजका धर्म अङ्गीकार किया है उसकी तो सर्वत्र प्रशंसाही
इसलिये मुँहपत्ती हाथमें रखनाही ठीक है और इस मुंहपत्तीके मध्ये ...
तुम्हारे मतको छोड़ करके अपनी आत्माका कल्याण करनेके वास्ते शुद्ध धर्म
किया उसकी बनाई हुई जो मुँहपत्तीकी चर्चा है उस पुस्तकमें सूत्रोंकी शाखें
करके लिखी हैं जिसकी इच्छा होय सो उस पुस्तकको मँगायकर देख ले।
हमने इस ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे बहुत विस्तार नहीं लिखा अब एक बात हम
पन्थी ढूंढियोंकी लिखते हैं कि तेरह पन्थी ढूंढिये ऐसा कहते हैं कि बिल्ली
अर्थात् मूसाको पकड़े तो नहीं छुड़ाना क्योंकि उसके छुड़ानेसे बिल्ली
का आहार दूर हुवा जिससे छुड़ाने वालेको अन्तराय कर्म बंधेगा इसलिये न छु...
ऐसा वो निर्विवेकी भिकुम् इस तेरह पन्थका चलानेवाला निर्दयीके वचनपर भव्य जीवों
आस्ता नहीं करना चाहिये क्योंकि देखो जिन धर्मकी करुणा अर्थात् दया सर्व मतोंमें
सिद्ध है इसलिये भीकमपन्थियों! हम तुमसे यह बात पूछते हैं कि जब तुम आहार
दिक लाते हो और उस आहार पर जो मक्खी आदिक बैठती है और उसको तुम
देते हो तो वो तुम्हारेको अन्तराय कर्म न बंधेगा तो तुम अपने पेट भरनेके वास्ते
नमानना और जो भोले जीव उनके हृदयसे अनुकंपा अर्थात् दयाको उठाय करके निर्द
यनाते हो ऐसे उपदेशसे तो तुम्हारा अनन्त संसार बँधेगा जो तुम कहो हो कि जो
मक्खीको आहारसे नहीं उड़ावें तो उस आहारमें पड़के उसका प्राण चला जाय इस
हम उसको उड़ाते हैं तो हम तुम्हारेको कहे हैं कि हे भिकम् पन्थियो! विचारशून्य हो
क्यों वचन बोलते हो कुछ बुद्धिका विचार करो कि जैसे तुम उसका प्राण बचाते हो
ही उस मूसेको बचानेवाला भव्य जीव करुणानिधी उस चूहेके प्राण बचानेकी इच्छा
मतु बिल्लीके आहारके अन्तराय देनेकी इच्छा जो तुम ऐसा न मानोगे तो तुम लो
षटकाय कर चेला चेली करते हो उनका भोग छुड़ानेसे तुम्हारेभी भोग अन्तराय
बँधेगा इसलिये दयाहीन निर्दयीपनेका उपदेश देना ठीक नहीं इसलिये अहो
मतियो इस मिथ्या जालको छोड़कर शुद्ध जिन धर्म वीतरागके वाक्यको अङ्गीकार
जिससे तुम्हारी आत्माका कल्याण हो और संसारमें न रुलो इसलिये हमारेको तु
करुणा आती है इसवास्ते हम तुमको कहते हैं कि यह मनुष्य जन्म पायकर जिन धर्म
चिंतामणी रत्नको क्यों गमाते हो फिर पछताओगे मिथ्यात्वको छोड़ अपना कल्याण करो

इति श्री मज्जैनधर्माचार्य मुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभव-
रत्नाकरे तृतीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत ढूंढिया मत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ गच्छादि व्यवस्था निर्णय ॥

अब इस जगह वर्तमान कालमें जो जिन मतकी व्यवस्था गच्छ वासियोंमें होरही है सो किंचित् अपनी बुद्ध्यनुसार शास्त्रोंकी शाखसे लिखताहूं परन्तु मेरेको किसी गच्छका पक्षपात नहीं है जैसा कि वर्तमानकालमें पंडित और गीतार्थ नाम धराते हैं और गच्छोंके पक्षपात करते हैं उनकी तरह मेरा लिखना नहीं है किन्तु जो जो जिसकी परंपरा है उसकी परम्पराके मूजिब लिखकर दिखाता हूँ क्योंकि भव्य जीव इस संसारमें आत्मार्थी होय सो इन सबकी व्यवस्था देखकर सतासत् वस्तुका विचार करके जिन आज्ञाको अंगीकार करे क्योंकि जिन आज्ञामें धर्म है और मनुष्य भव श्री उत्तराध्ययनजीमें जो कहे दश दृष्टान्त उन करके पाना दुर्लभ है फिर मनुष्य भव पाया तो भी जिन धर्म पाना दुर्लभ है कदाचित् पुण्य संयोगसे जिन के कुलमें अर्थात् जैनी घरमें जन्मभी हुवा तो गुरु पाना जो कि आत्माका स्वरूप बतावे ऐसा मिलना मुश्किल है क्योंकि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज २१ मा श्रीनेमिनाथजीके स्तवन मे लिखते हैं:- (गाथा १०) " सूत्र अनुसार विचारी बोलूं सु गुरु तथा विधना मिल रे"–जब आनन्दघनजी महाराजके कहनेसे यह अनुमान सिद्ध होता है कि ऐसे पुरुषोंहीके समयमें गुरुओंका मिलना मुश्किल था तो अबार तो उनसे भी पड़ता काल है इसवास्ते हे सज्जन पुरुषो ! जिन धर्मरूपी चिंतामणि रत्नको कदा ग्रहरूपी कागलाके लार मत फेंको जिन आज्ञाको अंगीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो अब देखो कि कमला गच्छ श्री पार्श्वनाथ स्वामीके परम्परासे चला आता है और बृहत् गच्छ कोटगण चन्द्र कुलवज्र और खरतर विरुध ये भी परम्परावसे प्राचीन है परंतु इसमेंभी भेदान्तर बारह तेरह गद्दी बाजती हैं और या गच्छभी प्राचीन है और वर्तमान्में जो तप गच्छ है सो भी परम्परासे प्राचीन है परन्तु बृहत गच्छे कोटि गणि चन्द्र कुले वज्र शाखामेंसे निकला हुवा है कितनेक काल पीछे सिथलाचारस्वामी बहुत होगयाथा फिर शुभ कर्म के उदय से वैराग्य रस में परिपूर्ण श्री जगत्चन्द्र सूरिजा चैत्र वाल गच्छिया श्री देवभद्र गणिजी संयमी के समीप चारित्रोपसमपात अर्थात् फेर करके दिक्षा लीनी उस चैत्रवालगच्छ से फेर वो श्री जगत्चन्द्र सूरिजी से तपगच्छके नामसे प्रवृत्त हुवा इस में भी बारह तेरह वसना हैं सो ये १२८५के साल में चैत्रवालगच्छकी यह शाखा तप गच्छ है और वर्त्तमान काल में मती करते हैं उनके नामभी लिखते हैं पूनमिया, आंचलीया, साढ़पूनमिया, आगमया, पास चन्द्र और बीजामती और कड़वामती इनको वर्त्तमान काल में तो मत्ति कहते हैं और ये लोग इसी नामसे अपना २ गच्छ बतलाते हैं और जो शास्त्रों में प्राचीन नाम गच्छोंके लिखेहुये हैं उन उन नामों से उन गच्छकी परम्परा वाले देखने में कम आते हैं शायद कोई गुजरात में हो तो हमको निश्चय नहीं कदापि कोई होयगा तो होगा। अब देखो जो ऊपर लिखेहुये नाम मतों के वर गच्छों के हैं उनके आपस में तीस २ बोल्का अनुमान से फर्क और वे लोग आपस में

ऐसाभी कहते हैं कि हमतो श्री महावीर स्वामी जीकी शुद्ध परम्परा में हैं और सब अशुद्ध परम्परा से हैं इसीलिये आनन्दघनजी महाराज कहते हैं जो कि श्री स्वामी के स्तवन में गाथा है उस का अर्थ नारायणजीने ऐसा लिखा है:-जिनधर्मकी करतेहुये भव्यजीवको कोई केवली प्रणीतका वंचक एकांतनयका पक्षी ऐसी बात देवे कि जिससे जिन धर्मकीप्राप्ति तो दूररही परंतु उलटा श्रद्धाके जिनधर्मका और भी देखो कि श्री अनन्तनाथजी भगवान्के स्तवन में श्री आनन्दघनजी कहते हैं:- (तीसरी गाथा) गच्छिना भेद बहुनेन निहालता, तत्वनी बात उदर भरणादि निजकार करता थका मोहनडिया कलिकाल राजे ॥ ३ ॥ और ऐसाही चन्द्रजी महाराज बीस विहरमान की स्तवन में से १२ श्री चन्द्रानन जिनके गाथा छठी में लिखतेहैं:-गच्छ कदा ग्रह सांच वेरेमाने धर्म प्रसिद्ध आत्मा ६. तारे धर्म न जाने सुधी ॥ ऐसा कई जगह जो आत्मार्थी पुरुष कदाग्रह को निषेध और शुद्ध मार्गको जाते हैं अब इन बातों की जो आपसमें कदाग्रह और है इसीसे शुद्ध जिनधर्मकी प्राप्तिहोना मुश्किल होगई क्योंकि कोई गच्छवाला परम्परा कहें हैं कि देवी देवताकी थुई नहीं कहना, कोई चौथकी, कोई पंचमी की च्छरी मानते हैं कोई कहता है कि सामायक करते वक्त श्रावक चरवला रक्खो कोई ता है नहीं रक्खे कोई कहता है त्योहारमें कच्चा पानी पीवे, कोई कहता है पीवे, कोई 'करेमिभंते' पहलेकरता है, कोई पीछे करता है; कोई तीन थूई माने, कोई माने, कोई कहता है १ करेमिभंते करो कोई कहता है तीनकरो, कोई कहता है कि दो श्रावण या दो भाद्र हों तब तो पिछले श्रावण और पहिलेभाद्रव में पजूसन करो, कोई कहता है कि दो श्रवणहों तो भाद्र में करना, और जो दो भाद्रहों तो पिछले में करना, कोई कहता है आमल में दो द्रव्यखाने चाहिये, कोई कहता है कि अनेक द्र खाने चाहिये कुछहर्ज नहीं है; कोई कहता है कि श्री महावीर स्वामी जीके छकल्याण कोई कहता है कि पांच ? कोई सामके प्रति क्रमण में शांति या शांतिपाठ रोज कहे कोई लाली शांति रोजीना कहते हैं और कोई दोनों में से एकभी नहीं कहते हैं कोई हतेहैं कान में मुँहपत्ती गेरकर व्याख्यान देना कोई कहतेहै विना गेरेदेना, कोई कोई सफेद और कोई कहे मायवी व्याख्यान दे और कोई कहे नहीं दे इत्यादि अनेक बातों के विषमवाद हैं सो जो हम इनका जुदा २ वर्णन करके लिखें तो ये भारी होजाय कि एक आदमीसे उठना मुश्किल पड़जाय इस भय से मैं नहीं लिखता किन्तु श्री तपगच्छ खरतर गच्छ ये दोगच्छ आवर वर्तमान काल में प्रसिद्ध दिखाते हैं इसलिये इन दोनों गच्छों का जो तीमथोलका फर्क है जिस में से भी कुछ बातें जो प्रसिद्ध हैं उन बातों को दोनों की ओर से किञ्चित् २ कोटि उठाय करके दिखाते हैं देखो श्री तपगच्छ तो पहले इरियावही पीछे करेमीभंते और एकवारही और श्री खरतर गच्छ पहले करेमीभंते तीनवार और पीछे इरियावही श्रावकको करावते हैं अब प्रथम तप गच्छ की कोटि उठाय कर लिखते हैं:-

(त॰ प्र॰) दशवै कालक में कहा है इरियापथ की के बिना कोई क्रिया नहीं करनी ? (ख॰ उ॰) दशवै कालक जो सूत्र है सो किसके वास्ते बना था। (त॰ प्र॰) दशवै कालक मणक साधुके वास्ते बना था। (ख॰ उ॰) तो देखो कि साधुके वास्ते बना था तो साधु की कोई क्रिया इरियापथ की के बिना नहीं होय सो ठीक परंतु ग्रहस्थी की क्रिया उस दशवै कालक पर क्योंकर बने देखो कि गृहस्थी देश वृत्ति है और साधु सर्व वृत्ति है इसलिये उस दशवै कालक में सर्व साधु के ही आचार कहे हैं और गृहस्थी के वास्ते नहीं किन्तु साधु के ही उपदेश हैं सो पक्षपात को छोड़ कर बुद्धि से विचार करके आत्मा का अर्थ करो। (त॰ प्र॰) अजी देखो कि मन्दिर में पूजनादिक करते हैं सो पहले स्नान और पीछे पूजन करते हैं तो इरीयापथ की बतौर स्नान के और करेमीभंते बतौर पूजन के है इति न्यायात्। (ख॰ उ॰) अब देखो कि मन्दिर वा प्रतिमा की थापना होगी तो स्नान करके पूजन करेगा बिना थापना के वा मन्दिर के स्नान करके किसका पूजन करेगा इसवास्ते करेमीभंते बतौर थापना के और इरियापथ की बतौर स्नान के और समता भाव बतौर पूजन के है सो मध्यस्थ होकर विचारणा चाहिये। (त॰ प्र॰) अजी पहले खेत को हलादि से जोत साफ़ करके पीछे बीज बोते हैं ऐसे ही इरियापथ की पहिले पीछे करेमीभंते रूप बीज बोया जायगा इस न्याय से इरियापथ की पहिले और करेमीभंते पीछे करणी चाहिये। (ख॰ उ॰) इस जगह भी कुछ बुद्धिका विचार करो कि करेमीभंते बतौर खेत के हैं और इरियापथ की बतौर जो हल जोतने के हैं और समता प्रणाम रूप बीज बोया जाता है कदाचित् अपना खेत मुक़र्रर न हो तो उस हलादिक की क्रिया और बीज सर्वथा वृथा जाता है इसलिये करेमीभंते पहले करना सो बतौर अपने खेत को मुक़र्रर करना है फिर जो हलादिक क्रिया और बीज बोना सर्वथा सफल होगा इसलिये पहले करेमीभंते पीछे इरियापथ की करनी चाहिये (त॰ प्र॰) अजी जो कोई मकान में जाय सो पेश्तर काजा निकाल कर पीछे सोना बैठना करता है इस लिये इरियापथ की बतौर काजा निकालनेके और करेमीभंते बतौर सोनेके इसलिये इरियापथ की पहले करणी चाहिये (ख॰ उ॰) अजी देखो भाष्यकार ऐसा कहते हैं कि मकान के दरवाज़े बन्द करके एक दरवाज़ा खुला रक्खे तब तो उस मकान का काजा निकल जायगा परन्तु जिस मकानके सर्व दरवाज़े खुले हुए हैं उस मकानका काजा कदापि न निकलेगा कारण कि हवा के ज़ोर से उलटा काजा उस मकान में भरेगा इस हेतु करके इस जीव रूपी मकानके मन, वचन, काय करना, अनुमोदना ये दरवाजे हैं इनके खुले रहने से मिथ्यात् रूपी पवन के ज़ोर से आश्रव रूपी काजा कदापि न निकलेगा किन्तु भीतर को भरेगा इस वास्ते मन, वचन, काय, करना इन दरवाजोंको बन्द करके जो कोई काजा निकालेगा तो सर्वथा काजा निकल जावेगा इस हेतु से भी करेमीभंते पहले इरियावही को पीछे करनी

---

१ (त॰ प्र॰) इस चिह्न से तपगच्छ का प्रश्न और (स॰ उ॰) से स्वगच्छ का उत्तर और (ख॰ उ॰) से खरतरगच्छ का उत्तर और (ख॰ प्र॰) से खरतरगच्छ का प्रश्न जानो।

चाहिये ॥ (त० प्र०) अजी कुछका विचार तो करोकि पहले करेमीभंतेर तो की बहू टांयर करते हो देखो जब मैले वस्त्रको कोई रंगना विचारे तो पहले उसको पानी से धोव कर रंग चढावेगा तो उम्दारंग आयेगा नहीं तो रंग उमदा नहीं चढ़ेगा इस न्यायसे इरियावही रूपी जल से जीव रूपी वस्त्रको धोयकर करेमीभंते रूपी रंग चढायेगा तो अच्छा रंग चढेगा इसीलिये पहिले इरिया वही करनी चाहिये (स० उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विकल टें १ करना कहीं स्वप्नेका याद आगया दीखै है जरा बुद्धिका विचार तो करोकि जब कोई मैले वस्त्रको खार अथवा साबुन लगाकर धोवेगा तो उसका मैल कटेगा खाली जलमें धोनेसे मैल नहीं जाता इसवास्ते इस जगह भी बुद्धि का विचार करो तो जिनआगम का रहस्य प्राप्तहुई होय तो देखो इस जगह भी करेमीभंते रूपी साबुनको जीव रूपी मैले वस्त्रके लगायकर इरियावही रूपी जलसे धोयेगा तो समता रूपरंग अच्छी तरहसे चढेगा इसवास्ते इस जगह भी पहले करेमीभंते पीछे इरिया वही करनी चाहिये (त० प्र०) अजी देखो इन युक्ति करके तो अपने करेमीभंते पहले ठहराई परन्तु शास्त्रोंमें कहा है उसको आप क्या करोगे देखो कि–" नसीय सूत्रमें ऐसा पाठ है कि नोकप्पइ इरियाव अप्पडिकंताए शिपायचेइयवंदणाई किंचित् इति वचनात्" किंचित् भी धर्म कार्य नहीं करना तो करेमिभंते पहिले इरियावही पीछे क्योंकर बने (स० उ०) जो धर्म कार्य इरियावहीके विना न करना तो देखो कि मन्दिरके जानेकी इच्छा करनेसे धर्म होता है वा प्रभुकी मूर्त्ति देखनेसे भी वही लाभ धर्म होता है प्रदक्षिणादेनेसे भी धर्म है वा साधु आदिकोंको वंदनादिक करना वो भी धर्म है साधुको लेनेको आना पहुँचानेको जाना ये भी धर्म क्रिया है अथवा साधु आदिकोंको अपने घरपर आहारादिक देना यह भी परम धर्म निर्जराका हेतु है तो इत्यादिक धर्मकामोंसे पेश्तर इरियावही करके पीछे इन बातोंमें प्रवृत्त होना चाहिये तो इन बातोंमें तुम लोग क्यों नहीं करते हो क्या ये धर्म कार्य नहीं है और जो यह धर्म कार्य्य भगवान्ने गिनाये हैं तो इरियावहीके विना धर्म कार्य नहीं होता ये कहना तुम्हारा व्यर्थ हुवा इसलिये शास्त्रोंमें कहा है कि जिन्होने गुरुकुल वास सेवा है और जो गीतार्थ है और आत्माका जिनको उपयोग है और जिनको अध्यात्मसैलीसे जो अनुभव उत्पन्न हुवा वे लोग इस स्याद्वाद जैन धर्मका रहस्य जानते हैं प्रथम तो इस छेद ग्रन्थोंमें साधुओंके तई प्रायश्चित्तादिक अनेक प्रकारकी प्रेरणायें जाती है तो देखो जिन ग्रन्थोंमें साधुओंको प्रेरणा (नसीहत) करी है उन ग्रन्थोंसे तो गृहस्थोंकी कृपा कदापि न बनेगी कदाचित् कोई हठकरे तो जो सिज्झाय ध्यान चैत्य वंदनादि जो वचन 'नसीय' सूत्रका है सो यह वचन सामान्य है यदि शास्त्रोंमें कहा भी है "सामान्य शास्त्र तो नुनं विशेषो बलवान् भवेत्" ॥ इति वचनात् ॥ अस्यार्थः—बहु व्यापको सामान्य अल्प व्यापको विशेषः जिसमें बहुत चीजोंकी विधि कही हो वो सामान्य शास्त्र होता है और जिसमें एक चीज़का ही वर्णन करे सो विशेष शास्त्र होता है तो देखो कि "नसीय" सूत्रमें कहा है कि इरियावहीके विना चैत्य वन्दन नहीं करना और चैत्य वन्दन भाष्यमें जगन्न, मध्यम्, उत्कृष्ट तीन प्रकारका चैत वन्दन कहा है सो उत्कृष्ट चैत्य वन्दन इरियावहीके विना न करना और जगन्न मध्यममे इरियावहीका कुछ नियम नहीं है

सो इसी कारणसे वर्त्तमान् कालमें सर्व जगह जो लोग चैत्य वन्दनादिक करते हैं वह इरिया-वहीके विना देखनेमें आते हैं ये एक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रवृत्ति मार्गकाहै इसवास्ते देखो कि "नसीय" सूत्र सामान्य है क्योंकि "नसीय" सूत्रमें चैत्य वन्दन ऐसा नाम लेकर कहा तो भी चैत्य वन्दन भाष्यको विशेषतः अङ्गीकार की गई क्योंकि चैत्य वन्दन भाष्यमें खाली चैत्य वंदन की विधि है और नसीय सूत्रमें अनेक क्रिया करने की विधि है सो हे भोले भाइयो! जो तुम्हारेको जिन आज्ञा अङ्गीकार है तो हठको छोड़ दो क्योंकि नसीय सूत्रमें करेमीभंतेका नाम भी नहीं एक आदि शब्दके कहनेसे खेंच करना ठीक नहीं है अब देखो श्रीआवश्यक सूत्रकी जो चूर्णी जिसके कर्त्ता श्रीदेवगणिक्षमाश्रवणजी महाराज खुलासा लिखते हैं कि श्रावकको नाम उद्देश लेकरके करेमीभंते पहिले और पीछे इरियावही करने की आज्ञा है इस पाठको देखना होय तो रिद्धिपतो अनरिद्धी पतो श्रावकके अधिकारमें देखलेना और सूत्रकी टीकामें आश्रय २१००० के ऊपर श्रीह-रिभद्रसूरिजी महाराजने २२००० टीकामें रिद्धिपतो श्रावकके वास्ते लिखा है कि श्रावक साधुके पास जायकर करे सो पाठ लिखते हैं " करेमीभंते समाइयं सावज्जं जोगं पच्चखामि दुविहंतिविहेणं जाव साहू पुज्जवा स्वामी इत्यादि इरियावहीयं पडिक्कमामि " ऐसा पाठ खुलासे है जिसकी इच्छा होय सो दे-खलेना इसग्रन्थ में तो नाम लेकर कहा है इसलिये यह सूत्र विशेष है जो अवश्य करके करना उसी का नाम आवश्यक है और भी देखो कि श्री तपगच्छ ना-यक पूज्यपाद श्री देवइन्द्रसूरिजी श्राद्ध दिनकृत में कहते हैं कि पहले करेमीभंते पश्चात् इरियावहीयं पडिक्कमामि और ऐसाही पाठ श्राद्ध विधिमें भी कहा है तो अब बुद्धिमें विचार करो ये ग्रन्थ तो श्रावक अर्थात् गृहस्थके धर्म कार्य्य परलोकके वास्ते ही रचेगयेहैं इनको छोड़कर अपनी मत कल्पना करना जिन आज्ञा बाहिर है, और देखो कि श्री पार्श्वनाथजी के सन्तान में कमले गच्छ में श्री देवगुप्तसूरिजी नवतत्व प्रकरण की टीका में लिखते हैं कि करेमिभंते सामाइयं पश्चात् इरियावहीयं पडिक्कमामि और ऐसा ही पाठ श्री हेमाचार्य्यकृत योगशास्त्रकी स्वपज्ञटीका में कुमारपाल भूपाल को उपदेश दिया है उसग्रन्थ में भी करेमिभंते सामाइयं पश्चात् इरियावही पडिक्कमामि ऐसेही पंचा शककी वृत्ति आदि अनेकग्रन्थों में करेमिभंते समाइयं पहले और इरिया वही पीछे नाम उद्देश लेकर कहा है इरियावही पहले और करेमिभंते पीछे ऐसा कोई ग्रन्थमें नहीं है अब देखो बुद्धिमें विचार करो कि हमने जिन जिन आचार्योंका नाम तुमको लिखकर दिखाया है क्या उन लोगोंको जिन आज्ञाका भय नहीं था इन्होंने नसीय सूत्र और दशवै कालिक देखे सुने नहींथे? कि इनको समझमें इनकी अर्थ नहीं आया सो तो कदापि नहीं होना इसलिये भोले भाइयो! जिन आज्ञा आराधन करो पक्षपात छोड़ दो। (उ० प्र०) अजी तुम कल्पनाही कहते हो परन्तु जिन मत तो नय निक्षेपा उत्सर्ग अपवाद मार्गसे है तो इरिया-वही पहले और करेमिभंते पीछे करते होंगे तो क्या मालूम है क्योंकि आचार्योंके अनेक आशय हैं। (बृ० उ०) अजी यह कहनाभी तुम्हारा विचार शून्य मालूम होता है क्योंकि जो तुम कहते हो उत्सर्ग अपवाद बतलाते हैं सो देखो कि १ नैगमनयसे तो मनमें

विचारे कि समायक करूं । २ संग्रहनयसे समायकके वास्ते आसन, मुँहपत्ति संग्रह करना ३ व्यवहार नयसे करेमिभंतेका पाठ उच्चारना ४ रजू सूत्र नयसे जब परणाम आवे तबही समायक है । ५ शब्दनय कहेकि नाम स्थापना द्रव्यभाव नाम स्थापना सुगम है और द्रव्यके दो भेद हैं १ आगमसे २ नो आगमसे १ आगम करके द्रव्य समायक [illegible] रूप उपयोग नहीं और नो आगम के तीन भेद हैं— १ ज्ञेय शरीर २ भव्य शरीर ३ तद्व्यति रिक्त, ज्ञेय शरीर मृतुक का कलेवर रूप उस का रहनेवाला जो जीव द्रव्य [illegible] करता था परन्तु उपयोग नहीं था भव्य शरीर किसी बालक को देखकर आचार्य कहनेलगे कि यह बालक कुछ दिन के पश्चात् सामायक करेगा उपयोग नहीं रक्खेगा तद्व्यतिरिक्त के अनेक भेद हैं सो करनेवाला बुद्धि से समझ लेना और भाव निक्षेपा भी इसी रीति से जानलेना [illegible] उपयोग है इतना विशेष है ६ सम भिरुढ नय कहता है कि संसारी कार से बच कर दो घड़ी तक छिक्षाय ध्यान समता परिणाम से करना । ७ एवं भूतनय कहता है कि दो घड़ी ताईं [illegible] जीव ऊपर सममाव रक्खेगा और अपनी आत्म गुण विचारणा तब सामायक होगी—तो देखो इसनय और निक्षेपामें तो इरियावहीका नामही नहीं तो आगे पीछेका तो कामही क्या है और तुमने उत्सर्ग अपवाद कहा सोभी नहीं बनेगा क्योंकि उत्सर्ग अपवाद एक विषयमें अर्थात् एक जगहमें होता है करेमिभंते और इरिया वहीका विषय जुदा २ है क्योंकि करेमिभंते तो दो घड़ी ताईं संसारी वा इन्द्रियोंका निषेध रागद्वेष त्यागरूप है और इरियावहीका विषय आलोपणा अर्थात् प्रायश्चित्त जो कि गमनागमनमें जीवकी विराधना हुई हो उसका मिच्छामि दुक्कड़ देना है सो अब देखो तुमही विचार करो कि जो तुमने कहा कि इरियावही पहले और करेमिभंते पीछे सो सिद्ध न हुवा हमने तो शास्त्रों की साक्षी वा युक्ति करके पहले करेमिभंते और पीछे इरियावही सिद्ध करचुके मानना नमानना तुम्हारा इख्तियार है । अब देखो एक तीनके ऊपरभी कुछ कहते हैं—(त० प्र०) क्या एक वार उच्चारण करनेसे नहीं होगी तो तीन वार उच्चारण करना ? इसलिये एक वार उच्चारण करना ठीक है क्योंकि लाघव होगा और ३ वारसे गौरव होगा । (स० उ०) अरे भोले भाइयो ! निस्सही वा वोसरामि वा वन्दना आदि तीन तीन वार क्यों करते हो क्योंकि इस जगह भी गौरव और लाघव देखना चाहिये क्या एकवार करनेसे नहीं होती है (त० प्र०) अजी वोसरामी इत्यादिक ग्रन्थ गिनाये हैं इसलिये गौरव टाल देखें तो श्रीभगवान् की आज्ञा नहीं बने और समायक तीन वार किस जगह लिखा है सो कहो । (स० उ०) अजी तीनका उत्तर तो हम देंगे परन्तु एकका उच्चारण करना ऐसा पाठ तो नहीं है (त० प्र०) अजी देखो एक तो अर्थसे ही आती है क्योंकि मारने जो प्रमाण दीने हैं उनमें समायक उच्चारण करनेमें तीनका तो नाम नहीं है (स० उ०) अजी जब ऐसा मानोगे तो उत्तराध्ययनादि सूत्रमें सामायक, चौवीसत्थो वन्दना पडक्कमणा वा उस्सग्ग इस कहने से तो का उस्सग्ग करना एक वार हुवा फिर तीन वार का उस्सग्ग क्यों करते हो अर्थ से तो एक वार का उस्सग्ग करना चाहिये, इसीलिये कहते हैं जिन आगम रहस्य विरले को प्राप्त होता है, जो सर्व को प्राप्त हो जाता तो ओघा मुँहपत्ती लेकर मेरु की बराबर ढिगला किया और मोक्ष की प्राप्ति न हुई ऐसा क्यों कहा

सका कारण यही है कि जिन आगमके रहस्य की प्राप्ती नहीं और विना रहस्य के श्रद्धा ठीक नहीं और श्रद्धा विना मोक्षकी प्राप्ती नहीं इसलिये आगम में कहा है यदि कं "दंसं भट्टो भट्टा दंसं भट्टस्स नत्थी निव्वाणं" इति वचनात्, और जो तुमने पूछा के तीन का प्रमाण किस शास्त्र का है सो देखो कि श्रीओघ: निर्युक्ति सूत्र में तीन ही करना कहा है और उस में तुम ही लोगों का प्रमाण भी देते हैं कि जब आप लोग राइ संथारा करते हो उस वक्त तीन करेमिभंते उच्चारते हो तो अब हम आप लोगों को उद्देश्य करके पूछते हैं कि राई संथारा में तीन वार उच्चारण करना और सामायक में एक वार उच्चारण करना तो यह तुम्हारे ही वचन से एक वार नहीं किन्तु तीन वार उच्चारण करना सिद्ध होगया दूसरा श्रीहरीभद्रसूरिजी कृत पंचवस्तु ग्रन्थ में श्रावक को सामायक में करेमिभंते तीन वार उच्चारण करना और साधु को ही तीन वार करे मिभंते उच्चारण कहा है सो गाथा यह है:-चिईवदनार हरन अट्ठसम्मा अठनु समो सामा इति अट्ठण पयाहिनेचवतीसुतो थ० गुरुवो वामगणसे से: सेह ठावभि अहवणदितिः इकि तो सतो:इमेण ताणे मुव ठन तीय ॥ १ ॥ इस गाथा में श्रावक को तीन वार करना खुलासे अर्थ है और भी देखो कि व्यवहार भाष्यके चौथे उद्देसे में "सामाइय तिगुण मेति पदका व्याख्यान करता श्रीमलीयगीरीजीने भी तीन वेर सामायक उच्चारण ऐसा कहा है और इसी व्यवहारभाष्य की टीका में इसी तरह लिखा है और भी देखोकि इसी तरह नसीय सूत्र की चूरिणी में लिखा है यथा:- "शामियय खुत्तो कड्ढई" इत्यादि पाठ स्पष्ट लिखे हुए हैं सो जिस किसी को संदेह हो सो निगाह करके देखले। अब देखो कि तीन वार भी सामायक उच्चारण करना सिद्ध हो चुका, और देखो इनके आपस में पच-खाण भी कराने में फ़रक़ है सो भी दिखाते हैं कि रात के तिविहार पचक्खान करने में तपे गच्छ वाले तो कच्चा पानी पीते हैं और खरतर गच्छ वाले ऊन पानी पीते हैं सो तप गच्छ वाले ऐसा कहते हैं। (त० प्र०) अजी तिविहार का पचक्खान करने से तीन आहार का त्याग है एग कच्चा पानी पीने से क्या हर्ज है क्योंकि असणं, खायमं, सायमं। इन तीनों का त्याग हुवा एक पात्र कहता 'पानी' बाकीरहा इस में कुछ गर्म पानी का नियम नहीं कि गर्म ही पीना तुम खाली अपनी खेंच करते हो। (ख० उ०) अजी हमारे तो कुछ खेंच है नहीं परन्तु आप लोग अपने गच्छ की खेंच तान करके ऐसा अर्थ करते हो कि पात्र कहता एक पानी रहा सो ये कहना विचार शून्य है क्योंकि देखो जब तुम ति-विहार उपास करते हो तो उस जगह भी एक पानी बाक़ी रहता है तो उस जगह आप लोग गर्म पानी क्यों पीते हो क्योंकि उस जगह भी तो ऐसा पाठ है कि-'अशनं खाइमं सायमं एक पानी बाकी रह गया तो उस जगह भी तुमको कच्चा ही पीना चाहिये इसवास्ते पक्षपात को छोड़कर जिनधर्म की इच्छा हो तो जिन आज्ञा अंगीकार करो। अब किञ्चित् पर्यूषण जो आगे पीछे होता है सो लिखते हैं। (त० प्र०) अधिक मास होने से जो दूजे श्रावण और पहले भाद्रव में करते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि जिनमत में मास २ बढ़ते हैं; आषाढ १ और पोह २ और बाक़ी मास नहीं बधे इसलिये नहीं करना। (ख० उ०) अजी जिन मत में दो २ मास के सिवाय वृद्धि नहीं होती है सो ठीक है —

प्रधान श्री कालकाचार्य्य महाराजने जो पंचमी से चौथकी छमछरी चलाई सो आजतक जारी है सो उन्होंनेभी सूत्रका पाठ देखकरके पंचमी से चौथकी, और छठनकी देखो वह पाठ यह है :- अतखेसे कप्पई वहरनेसे न कप्पई ” इस पाठ में भी असड में भी आषाढ़ चौमासी से पचास दिनके भीतर पर्यूषण होता है और पचास दिन से एक भी ऊपर जाने से पर्यूषण नहीं होता इसलिये दूजे श्रावण और पहले भाद्रवे में करना श्री भगवत् आज्ञा आराधन होगा हमने तो किञ्चित् मात्र इन दोनों गच्छों के जो विषम्वाद हैं सो शास्त्र और युक्ति समेत बतलाये जो हम इनके सर्व विषम्वादों को लिखें तो ग्रन्थ बढ़जाय और हमको किसी गच्छ से निमित्त भाव भी नहीं इसवास्ते दिग् मात्र दिखाय दिया है। (मध्य प्रश्न) महाराज साहब आपने इस जगह खतरगच्छकी अधिकता जताई और तपे गच्छकी कोटी मंद मालूम होती है परन्तु श्री आत्माराम जी महाराज श्री जैन तत्वादर्श के १२ वें परिच्छेद ५७५ के पृष्ठ में १२०४ के सालमें खरतरकी उत्पत्ति लिखते हैं और इसी परिच्छेदके ५८४ के पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि जैसलमेर आदिकोंमें खरतरोंको और मेवात देशमें बीजा मतियोंको और मोरवी आदिकोंमें लोका मतियोंको प्रतिबोधके श्रावक बनाया सो आज तक प्रसिद्ध है तो इस जैन तत्वादर्शके लिखनेसे तो खरतरवालोंको फिर करके श्रावक बनाया इस लिखनेसे तो खरतर गच्छ कोई मतपक्षी दीखै ॥ भोदेवानोप्रिय ! अब जो तुमने यह प्रश्न किया है सो मैं तपगच्छ की कोटी मन्दके वास्ते तो आगे लिखूंगा जबसे समाचारीका फ़र्क़ पड़ा है तबसे कोटी मन्द मालूम होती है किन्तु तपगच्छ, कमलेगच्छ, खरतर गच्छादि सब प्रमाणिक हैं इनमें न्यूनाधिक कोई नहीं है सो तपगच्छकी तो हम प्रमाणीकही मानते हैं परन्तु जो जैन तत्वादर्श में कई विपरीत बातें हैं सो दिखाताहूँ-और जो आत्माराम जीने गच्छ मिमतरूप भंगके नशेमें जो कुछ लिखा है सो आकाशके फूल समान मालूम होता है क्योंकि देखो अब हम दिखाते हैं कि जैन तत्वदर्शमें तो खरतर गच्छ १२०४के सालमें उत्पन्न हुवा लिखते हैं और जोकि पार्वती ढूंढनीका खंडन बनाया है उस गप्प दीपिकामें लिखते हैं कि श्री नव अंगजीकी टीका श्री अभय देव सूरिजीने सम्वत् ११२० के लग भग रची है तो देखो श्री जिनेश्वर सूरिजी जिन्होंने खरतर विरुद्ध पाया है उनके तीसरे पाटमें श्री अभय देव सूरिजी हुयेथे अर्थात् उनके पोते चेलेथे तो अब इनका १२०४ का लिखना बंझाके पुत्र समान हुवा फिर आत्मारामजी जो कि प्रश्नोत्तर बनाये हैं (सम्वत् १९४५ के सालके छपे हुवे) उसमें लिखते हैं कि श्री जिनदत्त सूरिजी महाराजको सम्वत् १२०४ में सिद्धसेन दिवाकरजीने चित्रकूटके खंभामेंसे निकाली हुई पुस्तक जो उज्जैन नगरी श्री अवंती पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें गुप्त रखदीथी सो उनके हाथ लगी तो अब देखो प्राणी विचार करो कि श्री जिनेश्वर सूरिजी खरतर बिरुद जिन्होंने पायाथा उनके पांचवे पाटमें श्री जिनदत्त सूरिजी हुवे तो १२०४ के सालमें जो खरतर उत्पत्ति लिखी है वह और इस ऊपरके लिखे हुयेका प्रमाण उन्हींकी बनाई हुई पुस्तकोंमें लिखा है। तो अब देखोकि इनकी तीन पुस्तकोंमें तीन बचन हुवे एकमें तो १२०४ के सालमें खरतर उत्पत्ति और दूसरी पुस्तकमें ११२० के सालमें नव अंगकी टीका और तीसरी पुस्तकमें १२०४ के

शाखमें पांचवी पीढीवालेको श्री एवंती पार्श्वनाथसे पुस्तक हाथ लगी इन तीन ... इनका लेख तीन तरहका होनेसे और संबन्ध नहीं मिलनेसे तुरंग अर्थात् घोड़के समान हुवा और जो ये लिखते हैं कि खरतर गच्छ आदिको प्रतिबोध दिया सो भी इनका लिखना कदाग्रहरूप मालूम होता है क्योंकि देखो इनकी बनाई हुई जो प्रश्न उत्तरकी पुस्तक उसमें पृष्ठ १०१ में (८० वें उत्तरमें) पृष्ठ १०३ तक लिखते हैं कि चार शाखामें चार कुल उत्पन्न हुये तिसमें दूसरा जो चन्द्रकुल तिसमें बड़गच्छ, तपागच्छ खरतरगच्छ, और पुनम पछिया गच्छ हुयेथे ॥ तो अब देखो कि एकचन्द्र कुलमेंसे ये चार शाखा हुई अब उनमेंसे एक शाखा वालेको जैसलमेर आदिमें शुद्ध श्रावक बनाया था इनका जो लिखना है सो कदाग्रह रूप है और गच्छके निमित्त भाव होनेसे है। अब देखो हम श्री आत्माराम जीको बड़े गीतार्थ सुनतेथे सो उनकी पुस्तकोंकी लिखावट देखनेसे मालूम होता है कि गुरुकुलवास बिना अनुभव शून्य बुद्धिका विचरण है क्योंकि देखो जैन तत्त्वादर्शके १२ वें परिच्छेद पृष्ठ ५७५ में लिखा है कि बड़गच्छका नाम तपा बिरुद दिया और निर्ग्रन्थ १ कोटिक २ चन्द्र ३ वनवासी ४ बड़गच्छ ५ और तपागच्छ छट्ठी अर्थात् छः हैं ऐसा लिखा है और प्रश्नोत्तरकी पुस्तक ८० वे प्रश्नके उत्तरमें १०१ के पृष्ठमें लिखा है कि श्री वज्रसेनजीने सोपारक पट्टणमें दिक्षा दीनीथी तिनके नाममें चार शाखा अर्थात् कुल स्थापन किये थे वे ये हैं-१ नागिन्द २ चन्द्र ३ निवृत्त ४ विद्याधर ये चारों कुल जैन मतमें प्रसिद्ध हैं तिनमेंसे नागिन्द कुलमें उदय प्रभु और मल्लिषेण सूरि प्रमुख और चन्द्रकुलमें बड़गच्छ और तपागच्छ खरतरगच्छ, पुनमपछिया गच्छ ऐसा लिखा है-और चार थुईकी चर्चामें जो कि राजेन्द्र सूरिके लिये बनाई है उसकी प्रशस्तिके नवें पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि श्री वज्रस्वामी शाखायां चन्द्रकुले कोटिक गणे बृहत्त गच्छे तपागच्छ अलंकार भट्टारक श्री जगतचन्द्र सूरिजी महाराज अपनेको शिथलाचारी जानकर वैराग्य परिग्रह श्री देवभद्र गणि संयमीके समीप चारित्रोपसम्पत् अर्थात् फेरके लिया दीनो इस हेतुसे तो श्री जगतचन्द्र सूरि महाराजके परम संवेगी श्री देवेन्द्र सूरिजी शिष्य श्री धर्म रत्न ग्रन्थकी टीकाकी प्रशस्तिमें अपने बृहत् गच्छका नाम छोड़कर अपने गुरु श्री जगतचन्द्र सूरिजीको वैराग्य परिग्रह लिखा और जैन तत्त्व जो श्री आत्मारामजीने बनाया है उसमें लिखते हैं कि हमारा तपगच्छ अनादि है अर्थात् इनका तपगच्छ श्री ऋषभदेव स्वामीसे चला आता है । अब मध्यस्थ होकर सज्जन पुरुषोंको अपनी बुद्धिसे विचार करना चाहिये क्योंकि देखो चन्द्र गच्छमें वनवास गच्छ हुए और वनवास गच्छमें बड़गच्छ हुवा और बड़गच्छकाही नाम तपगच्छ हुवा सो देखो बड़गच्छका श्री पुस्तक अभीतक मौजूद है उसमें मालूम होता है कि बड़गच्छका अब तक नहीं बड़ा क्योंकि उस गच्छका श्री पुस्तक बराबर अब मौजूद है सो न होता तो इनका लिखना ठीक हो सकता सो उसमें अनुमानका कुछ काम नहीं है जैन तत्त्व दर्शमें लिखा हुआ कि बड़गच्छका तपगच्छ नाम हुवा सो तपगच्छ आचार्यके गुरुके सुनने ... क्योंकि देखो इन्होंका फिर दूसरा लेख दिखाते हैं कि जो प्रश्नोत्तरकी पुस्तकमें

लिखतेहैं कि चन्द्रकुलमें बड़गच्छ, तपगच्छ, खरतर गच्छ, पूरण पल्लिया गच्छ हैं सो तीनगच्छ तो इसमें सिद्ध होते हैं परन्तु तपगच्छ तो जैन तत्त्वादर्शके लिखनेसे वड़ गच्छसे निकला मालूम होता है क्योंकि देखो श्री आत्मारामजीकी वनाई हुई "चतुर्थ स्तुति निर्णय" उसमें लिखा है कि जगत्चन्द्र सूरिजीने वज्रस्वामी सालायां चन्द्र कूलेको दि-कगणे वृहत गच्छे इसको छोड़कर चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्र-गणिके पास फिर कर दिक्षालीनी ऐसा हम पेश्तर इनके ग्रन्थसे लिख चुके सो अब यहां इस लेखके देखनेसे ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराज किसी अशुभ कर्मके संयोगसे स्थिलाचारी होगयेथे वह स्थिलाचार होनेसे इनके गुरु आदिक ने अलग कर दिये होंगे फिर शुभ कर्मके उदय होनेसे श्री जगत्चंद्र सूरिजी महाराज चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्रगणिके पास दिक्षा लेकरके चारित्र परिपूरण वैराग रसमें भरे हुवे देशोंमें विचरते हुवे चित्तौरगढ़में राणाको प्रतिबोध देने वाले और ३२ दिगम्बर आचार्य्योंके साथ विवाद करते हुवे हीरा की तरह अभेद रहे तब राजाने "हीरालाजगत्चन्द्रसूरि" ऐसी विरुद्ध (पदवी) दिया और जिन धर्मकी वड़ी उन्नति करी सो देखो उन श्री जगत्चन्द्रसूरिके शिष्य समवेग रंग परिपूर्ण पूज्यपाद श्री देवेन्द्र सूरिजी महाराजने तो श्री धर्मरत्न ग्रन्थकी प्रशस्तिमें जैसी बात थी तैसीही लिखदी इससे क्या प्रयोजन निकला कि चैत्रवाल गच्छके आचा-र्य्यके पासमें दिक्षा लेने वाले ऐसे श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराजसे तपगच्छ प्रगट हुवा नतु वज्र शाखायां चन्द्रकुले कोटिक गणे वृहत गच्छसे निकसना साबित हुवा; और इस जगह दृष्टान्त देते हैं—कि जो लड़का जिसके गोद आवे उसका नाम चलेगा नतु प्रथम बाप का तो इस जगहभी श्री जगत्चन्द्रसूरिजीने अपने वृहत्गच्छ कुल परम्पराको छोड़कर चैत्रवाल गच्छमें फिर करके दिक्षा लीनी इसवास्ते इनको चैत्रवाल गच्छकी पाठावलीसे मिलाकर श्री महावीर स्वामीजीकी पाठावलीसे मिलाना ठीक था न कि वृहत् गच्छकी पाठावलीसे? और जैन वृक्षमें लिखते हैं कि हमारा श्री ऋषभदेव स्वामीजीसे तप गच्छ चला आता है यह लिखनाभी इनका आकाशके पुष्पके समान है क्योंकि देखो श्री महावीर स्वामीकी परम्परा जो इन्होंने लिखी है कि सोमप्रभु तथा श्री माणि रत्नसूरिके पाठ ऊपर श्री जगत्चन्द्र सूरिजी वैठे सो तो तुम्हारे "चतुर्थ स्तुति निर्णय" में श्री देवे-न्द्र सूरिजी महाराजकी शाखसे चैत्रवाल गच्छके शिष्य श्री जगत्चन्द्र सूरिजी सिद्ध हुवे तो अब देखो श्री महावीर स्वामीसेही जिस पाठ परम्परामें तुमने लिखे उस पाठ परम्परामें नहीं मिले तो तुम्हारे लिखनेहीसे चैत्रवाल गच्छकी पाठ परम्परामें चले गये सो अब तुम चैत्रवाल गच्छकी पाठ परम्परासे श्री ऋषभदेव स्वामीको मिलावो तो ठीक हो नहीं तो अपास्तं। और दूसरा देखो कि श्री सुविधि नाथजी तीर्थंकरसे लेकर कई तीर्थ करोंके वीचमें धर्म विच्छेद हो गया था अर्थात् साधु साध्वी विच्छेद हो गयेथे तो जब उस समयमें तपगच्छ कहां रहाथा और तीसरा देखो कि जब तपगच्छही सबसे पहलेका है तो श्री पार्श्वनाथ स्वामीके सन्तानियोंकी पाठ परम्परा वर्तमान कालतक मौजूद है तैसे तुम्हारेको भी श्रीमहावीर स्वामीकी पाठ परम्परामें मिलाना ठीक नहीं किन्तु ऋषभदेव स्वामीकी पाठ परम्परासे मिलाना ठीक था सो अब देखो

कि श्री ऋषभदेव स्वामीसे मिलाना बहुत दूर रहा परन्तु श्रीमहावीर स्वामीसे ही न
हां अलबत्ता चैत्रवाल गच्छकी एक शाखा तपगच्छ तुम्हारे लिखने ही से
सो श्री तपगच्छ शुद्ध परम्परा वाला है जैसा श्रीमहावीर स्वामीके शासनके
हजारों गच्छथे तैसे यह भी गच्छ प्रमाणिक है न कि आंचलिया लोका
बराबर है किन्तु ११८५ के सम्वत्से लेकर धर्मसागर उपाध्यायके पहले २ तो
गच्छोंके समान परम्परा प्रमाणिक चली आतीथी परन्तु जबसे धर्मसागर उपाध्यायने
कदाग्रह करके अपनी खेंच तानसे कई तरहके विषम्वाद कर दिये और कदाग्रहके ग्रन्थ
भी रच दिये सो कुछ दिन चलकर बीचमें बन्द हो गयाथा क्योंकि श्रीयश विजयजी
उपाध्याय श्रीदेवचन्द्रजी इत्यादिकोंने वह कदाग्रह बुद्धि मिटा दियाथा जिससे मन्द
पड़ता था खैर अब और देखो कि आत्मारामजी ऐसे गीतार्थ होकर प्रश्नोत्तर की संगीत
नहीं मिलाते हैं क्योंकि देखो प्रश्न कुछही उठाते हैं और उत्तर कुछही देते हैं जैसे देखो श्री
जैन तत्त्वादर्शके नवें परिच्छेदमें ४१७के पृष्ठमें लिखा है तथा ऐसा भी कुविकल्प न करना
कि जो अविधिसे जिन मन्दिर जिन प्रतिमा बनीहै उसके पूजनेसे अविधि मार्गकी अनुमोदनासे
भगवंतकी आज्ञा भंगरूप दूषण लगता है तथाहि श्रीकल्पभाष्ये ॥ गाथा ॥ निस्सकडमनि-
स्सकडे चेइए सव्वहिंथुइतिन्नि । वेलंच चेइआणीय नाउ इक्किक्किया वावि ॥१॥ व्याख्या
एकनिश्राकृत उसको कहते हैं कि जो गच्छके प्रतिबन्धसे बनी है जैसा कि यह हमारे
गच्छका मन्दिर है दूसरा अनिश्राकृत सो जिस ऊपर किसी गच्छका प्रतिबन्ध नहीं है
इन सर्व जिन मन्दिरोंमें तीन थुई पढनी जेकर सर्व मन्दिरोंमें तीन २ थुई देतां बहुत काल
लगता जाने तथा जिन मन्दिर बहुत होवें तदा एकेक जिन मन्दिरोंमें एकेक थुई पढे इसवास्ते
सर्व जिन मन्दिरोंमें विशेष रहित भक्ति करे अब देखो यहां विचार करो कि इनको तो
सिद्ध यही दिखलानाथा कि अविधिसे बने हुवे मन्दिर वा प्रतिमाके पूजनेसे भगवान्की
आज्ञा भंग रूप दूषण नहीं होता है सो तो इस गाथाके अर्थमें कहीं आयाही नहीं क्योंकि
निश्रनिश्राकृत अनिश्राकृतमें अविधि नहीं आई किन्तु इस लिखनेसे तीन थुई वाले
राजेन्द्रसूरिजीका नवीनमत पुष्ट करदिया जैसे कि मथुराकी मसल है कि "चौबे ग‍ये
थे छब्बे होनेको दो गांठकागमाये और दुबे बन बैठे" सो यहां भी अविधि तो सिद्ध न हुई कि
तीन थुई पुष्ट हुई और देखो सम्वत् १२ ३१ में अजमेर नगरमें श्रीशिवजी रामजीने दो प्र
भेजेथे इनके भी उत्तरमें संगीत न मिली सो प्रश्न इस रीतिसे हैं कि:— अब यहां दो प्रकार
गच्छ परम्परा चल रही है एक तो श्रीवीर प्रभुकी आज्ञाका आराधक सुधर्मास्वामी
उनके संतान भगवद्की संततिसे जो महापुरुष जहांतक शुद्ध सुविहित मार्गका प्र
वर्तक हुवे इन्होंने सूत्र निर्युक्ति भाष्य चूर्णी टीका रची है उनामें जो गच्छका स्वरूप
है कि—"जत्थ हिरन सुवन्नं हत्थेन पराणगं पिनो छिप्पे कारण समप्पिय पि गोयम गच्छं
तयंभणियं ५० पुढविदग अगणि मारुअ वणप्फइ तसाण पाणं विविहाणं मरणं तेवि न
कांरवयमाणं गच्छं ५१" ऐसा महानिशीथमें गच्छाधिकारमें है सो संवेग पक्षी
हैं दूसरी गच्छाचार पयन्नेमें है वहां शुद्ध गच्छमें वसनेका फल बताये सो ऐसे" जावद
निय वाणं नामंमंडलं पिय मुक्कमा पडये गच्छे संजम मानस गोयमा" ये दोनों ग

से पांचवीं तक वर्णन किया है हार्द यह है कि एक तो ऐसा गच्छ है अब यहां आत्मार्थी लोगों को इस गच्छ की परम्परा अङ्गीकार करना योग्य है उपदेश करना योग्य है वा इन पुरुषों की गच्छ परम्परा से भिष्ट राग द्वेषादिक पराणिती में कलुषित आरंभ परिग्रह में तत्पर श्रीवीर प्रभुजी की आज्ञा का विराधक महा निशीथ में तथा गच्छाचार प्रमुख आगम में वर्णन किया है खोटी गच्छ परम्परा का प्रवर्त्तायणे वाला आचार्यो की गच्छ परम्परा में चलना योग्य है इस का खुलासा सुविदित प्रणीत आगमकी शास्त्रमें लिखियेगा ॥ इति प्रथमप्रश्नः ॥ दूजा आपसे प्रश्न यह है कि "पूर्व वर्णितियां दोगच्छ परम्परा माहिली कौनसी गच्छ परम्परा आपने अङ्गीकार की है और उपदेश को नहा देते हैं सो खुलासा लिखके भेजियेगा ॥ इति द्वितीये प्रश्नः ॥ सम्वत् १९३९ चैत्रवदी १ (आत्मउत्तर) ॥ १ ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तर श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त गच्छ हमको प्रमाण है दूजा प्रश्नका उत्तर हम श्रीतपगच्छकी समाचारी करतेहैं इसके सिवा दूसरा शुद्ध गच्छ कौनसाहै जो आपने अङ्गीकार किया है सो लिखना सेवकके हाथ भेजा पत्रका उत्तर संवत् १९३९ चैत्र वदी ॥ १ ॥

अब देखोकि एक प्रश्नतो सर्व जीव आत्मार्थी लोगोंके आश्रयथा सो इसका उत्तर तो ऐसा देना चाहिये कि शुद्धगच्छ परम्पराको आत्मार्थी अङ्गीकार करे और उसी शुद्ध परम्पराका उपदेश दे और खोटी गच्छ परम्पराको छोड़े और इन्होने इस उत्तरको छोड़ कर अपने आश्रय करके उत्तर दिया कि श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त गच्छ हमको प्रमाण है तो जो हमने लिखाहै सो तो श्री शिवजी रामजी महाराजके प्रश्नका उत्तर बनताहै और इनका दिया हुवा उत्तर श्री शिवजी रामजी महाराजके उत्तरसे कुछभी सम्बन्ध नहीं रखता है और दूसरे प्रश्नके उत्तरमें यह लिखतेहैं कि हम श्रीतपगच्छकी सामाचारी करतेहैं ॥ यहां तक तो इनका लिखना ठीकहै परन्तु (इसके सिवाय दूसरा शुद्ध गच्छ कौनसाहै जो आपने अङ्गीकार कियाहै सो लिखना) अब और भी देखो कि—तीसरे जैन विषयके प्रश्न उत्तरकी पुस्तकमें प्रश्न १४७ वां और उत्तर दोनोंको लिखतेहै (प्रश्न) इस कालमें जो जैनी अपने पुस्तक किसीको नहीं दिखातेहैं. यह काम अच्छाहै वा नहीं ? (उत्तर) जो जैनी लोग अपने पुस्तक बहुत यत्नसे रखतेहै यह तो बहुत अच्छा काम करतेहैं परन्तु जेसलमेरमें जो भंडारके आगे पत्थरकी भीत चुनके भंडार बन्धकर छोड़ाहै और कोई उसकी खबर नहीं लेताहै क्या जाने वे पुस्तक मट्टी होगयेहैं या शेष कुछ रहगयेहै इस हेतुसे तो हम इस कालके जैन मतियोंको बहुतही नालायक समझतेहैं ॥ अब देखो सज्जन पुरुषोंको ऊपर लिखेहुवे प्रश्नोत्तरको विचारना चाहिये कि प्रश्न किस तरहका है और उसका उत्तर किस तरहका है कि प्रश्न तो यही था कि जैनी अपनी पुस्तक किसीको नहीं दिखातेहैं यह काम अच्छाहै वा नहीं ? इसका उत्तर तो सुगमहै । देखो कि योग्य पुरुषको जिन मतकी पुस्तक दिखानेसे तो धर्मकी वृद्धि होतीहै और अयोग्यको जिन पुस्तक दिखाने अर्थात् देनेमें अनेक

१ कोष्टके मध्य लिखाहुवाहै वह लिखनेसे अच्छी मिलता भंगके नशेमें चकचूर होकर बोलना मालूम होताहै ।

जेसलमेरके श्रावकोंको नालायक लिखते तो ठीकथा परन्तु इन्होंने तो इस कालके जैन मतीयोंको बहुत नालायक समझा. इसलिये आत्माराम जीका गीतार्थपना गुरु परम्परा अर्थात् गुरुकुल वास बिना अनुभवशून्य पंडिताईके अभिमानरूप नशेमें चकचूर होकर इसकालके चतुर्विध संघको बहुत नालायक कहनेसे बुद्धिमान् सज्जन पुरुषोंको जाहिर होगया और इस पंचम कालमें चतुर्विध संघको बहुत नालायक बनानेवालेभी गीतार्थ हैं-औरभी देखो कि ऊपरकी युक्तिसे उनका कहना 'इस कालके जैनमतीयोंको नालायक बनाना ठीक नहीं ठहरा। अब जो जेसलमेरके भंडारकी बाबत जो वहांके श्रावकोंसे वृत्तान्त सुना है सो उन श्रावकों की जुबानीका हाल लिखाते हैं-कि आत्मारामजी तो कहते हैं कि भंडारके आगे भीत चुनदीनी और उसकी कोई खबर नहीं लेता है-और जेसलमेरके श्रावकों का ऐसा कहना है कि भंडार सालके साल ज्ञानपञ्चमीको खुलता है और धूप पूजन आदि सालके साल होता है और जब कोई अच्छे पढ़े लिखे साधु वहाँ आते हैं तो उनकोभी दिखलाया जाता है बल्कि सम्बत्१९४४ में श्री मोहनलालजी जैसलमेरमें पधारेथे उस वक्त उन्होंनेभी उस भंडारको खुलवायकर देखाथा और दूसरा ऐसाभी हमने सुना है कि 'एक दिन राज मलमभैयाका मुनीम रतनलाल दासौत जेसलमेर वाला कि जिसके पास भंडारकी कुंजी रहती है उसने ऐसा ज़िकर किया कि एक अंगरेज़ जिसका नाम मैं नहीं जानताहूं जैसलमेर में आया और उसने उस भंडारको देखा और कई पुस्तकेंभी उस भंडारकी पुस्तकोंमेंसे लिखाय कर ले गया और उस भंडार वा पुस्तकोंकी प्रशंसा (तारीफ़) की कि ऐसे पुस्तकोंका भंडार हरएक जगह नहीं है और आपलोग इस भंडारकी हिफ़ाज़त अर्थात् सार संभार अच्छी तरहसे करते हो बल्कि वह अंगरेज़ "सार्टीफ़िकेट" भी दे गया है सो उसकी मुहर लगे हुये सार्टीफ़िकेट हम लोग जो ताली रखनेवालेहैं सो हमारे पास मौजूद हैं अभीतक तो ऐसा किसी सालमें नहीं हुवा कि भंडारका ताला ज्ञान पंचमीको न खुला हो और धूपादिक ज्ञान पूजन न किया गयाहो किन्तु सालके साल ऐसा होता ही है ऐसा हमने उनकी जुबानी सुना और वह श्रावक मौजूद हैं अब न मालूम आत्मारामजीने जैसलमेरके भंडारकी बाबत पत्थरकी भीत चुनकर बन्ध कर दिया और उसकी कोई खबर नहीं लेताहै-ऐसा जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरमें किस ज्ञानसे लिख दियाहै और जैन मतियोंको नालायक बनाया; मालूम होता है कि इस कालके जैन मतियोंसे भिन्नहै तो फिर इनको पीले कपड़े करना और ओघा आदि जैनियोंका लिङ्ग रखनाभी ठीक नहीं था क्योंकि इस कालके जैन मतीतो बहुत नालायक सो इन्होंने नालायकभी बताया और चिह्नभी जैनियों जैसा रक्खा अपने कृतको न देखा-पर्यूषण पर्वमें जन्मके दिन स्वप्नोंको (जो कि श्री महावीर स्वामीकी माताने देखथे) उनके आकार मूजिब ऊपर छतपरसे नीचेको उतरवाना और उसके ऊपर श्रावकोंसे रुपया बुलवाना उन रुपयेको इकट्ठा करके अपनी पुस्तक लिखाना यह काम वह और उनकी समुदायवाले करतेहैं अब इसमें बुद्धिजनोंको विचारकरना चाहिये कि यह देव द्रव्य हुवा वा ज्ञानद्रव्यहुआ क्योंकि देवके नाम और देवके स्वप्नोंसे जो धन इकट्ठा हो सो देवकृत अर्थात् मन्दिर आदिकमें लगाना चाहिये नकिज्ञानादिक पुस्तकोंमें क्योंकि श्री संघका घर मोटा है दूसरा उनका कृत यह है कि श्री महावीर स्वामीके जन्मके पीछे पालनेमें झुलाना और

रुपया इकट्ठा करना (३) छमछरीके दिन जो कि १२०० सूत्र वचते हैं उनके घृत अथवा नकद रुपया बुलवायकर पन्ना हाथमें देना और रुपया इकट्ठा होने पर लिखना यहभी एक नवीन रीति अन्य मतियोंके सादृश्य है। जैसे कि जब अन्य लोग भागवत पूरी करते हैं तो उस पर रुपया चढ़वाते हैं और अपने घरको ले जाते उन्हींके माफ़िक जिन धर्ममेंभी चलने लगी यहां इतना तो फ़र्क़ है कि यह लोग अपने स्यके अर्थमें लगाते हैं और यह पुस्तकोंको लिखाकर इकट्ठी करते हैं ! हाय! इति . . सर्वज्ञ देवकी वाणी अमृतरूप चिन्तामाणि रत्न सूत्रपर समान अन्य मतकी तरह वा घृत बुलवाय कर जैन धर्मकी हीलना करवाते हैं क्योंकि देखो श्री कल्पसूत्रजी ठीक तरन तारनसे भव्य जीवोंको उपदेश देना और त्याग पञ्चखान निर्लें . . . तुकी देशना अमृतरूपको पान कराना तो शास्त्रमें कहा है नकि रुपया व घृत कर देशना देना जो कोई ऐसा कहै कि गुजरातमें ऊपर लिखी हुई बातोंकी प्रवृत्ति है आत्मारामजीकी समुदायमेंभी होता है तो क्या हर्ज़ है तो हम कहते हैं कि बाइस टोला अर्थात् ढूंढ मतको छोड़कर आसरे २२ तथा २० जने उसको अशुद्ध हुबाने वाला जानकर अपनी आत्माका कल्याण करनेके वास्ते शुद्ध जिन धर्म संवेग को अंगीकार कियाया और उनका कहनाभी ऐसा है कि ये शास्त्रके वा शुद्ध . . . मानते हैं और चलते हैं। और उनकी समुदाय वाले उत्कृष्ट कहलातेहैं और वे दूसरे जो वर्त्तमान कालमें हैं सो सर्व शीथला चार्य-बतलाते हैं-हाय! इति खेद !! बहुत दुःख उत्पन्न होता है कि इस जिन धर्मकी क्या व्यवस्था होगई है और होती चली जाती है सो इस हालको देखकर अपनी भाषा वर्गणाको बहुत रोकता हूं अपने चित्तको कहता हूं कि हो जिन धर्मके भांड उपजीवी तू अपने घरका काजा (कूड़ा) निकाल तुझ को औरसे क्या जैसा कोई करेगा तैसा पावेगा, परन्तु शास्त्रमें कहा है कि एक काना मात्रभी ओछा अधिका कहे वा स्थिल प्रवृत्ति चलावे अथवा उस स्थिल आचारको निषेध न करे तो बहुल संसारी हो इसलिये लाचार हूं क्योंकि मैंने तुम लोगोंसे प्रतिज्ञाकी है कि निष्पक्षपात होकर अपनी बुद्धयनुसार उत्तर कहूंगा सो मैने अपनी भाषा वर्गणाको निकालना ठीक समझा क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि स्थिलमार्गको निषेध करनेमें और वीतरागके शुद्ध मार्गकी परूपना करनेमें दर्शन शुद्धी होती है तो अब देखो कि मसल है "जमात करामात इक्का दुक्काका अल्लाह बेली है" इस मसलका तात्पर्य क्या है। सो कहो तो देखो आत्मारामजी २० तथा २२ जनें हनिसे जो ढुंढिया मतको छोड़ा सो बहुत जन होनेसे उत्कृष्ट और आत्मार्थीभी कहलाये क्योंकि समवेग मार्गको अंगीकार किया . स्वप्न उतारना और पालना झुलाना वा श्रीकल्पसूत्रजीपर घृत वा रुपये बुलाना दिया क्या यह काम आत्मार्थका है। सो तो नहीं बल्कि आजीविका वालेभी नहीं करते तो आत्मार्थी क्योंकर करेंगे क्योंकि देखो जो वर्तमान कालमें यती लोग हैं उनकोभी ऊपर लिखी बातें करते न देखा हां वे यती लोग पट्टोडियाके टके श्रावकोंसे लेते हैं न कि कल्पसूत्रजी आदिकपर रुपया या घृत बुलाते हैं और भी देखो कि आत्मारामजी उनकी समुदायवालोंने ऊपर लिखी हुई बातोंके लिये गुजरातका चलन अंगीकार किया

आज्ञा का पालने वाला उसे इन्होंने आराधक कहा उसका प्रायश्चित तो ज्ञानी क्योंकि ऐसे रहस्यों को वही जन जानेंगे कि जिन्हों को जिन धर्म की और अपनी आत्मा का कल्याण करने की इच्छा श्री वीतराग के वचन ऊपर सच्ची आस्ता होगी नतु ! उपजीव का जिन धर्मियों के वास्ते मा और भी चौथी बात दिखाते हैं कि तुमने किसी गीतार्थ की संगत नहीं करी क्योंकि जेकर जैन मतके चरण करणानुयोगके शास्त्रपढ़े होते अथवा किसी गुरुके मुखारविन्दसे वचन रूप अमृत पान करा होता तो पूर्वोक्त संशयरूप रोगकी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैन मतमें छः प्रकारके निर्ग्रन्थ कहे हैं इस कालमें जैनके साधू हैं वे सर्व पूर्वोक्त छः प्रकारमेंसे दो प्रकारके हैं क्योंकि श्री भगवती पच्चीसवें शतकके छठे उद्देसेमें लिखा है कि पंचम कालमें दो तरहके निर्ग्रन्थ होंगे उनसे तीर्थ चलेगा, कषाय कुशील निर्ग्रन्थ तो किसीमें परिणाम ऐसा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे। यह ऊपरके लिखे ३ परिच्छेद पृष्ठ १०९ में जैन तत्त्वादर्शमें है और इसी विषयमें इसी परिच्छेदके १११ के पृष्ठमें ऐसा लिखा है तथा नशीथमें भी लिखा है! भाष्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे सुताव मूले गुणुत्तरगुणाय । इति रिपथ्येयसंयम, नियंठबकी सापडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखते हैं छः कायोंके जीवों विषय जब ताईं दयाके परिणाम हैं, तबताईं बकुश निर्ग्रन्थ और प्रति सेवना निर्ग्रन्थ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य और चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवेगा तथा मूलोत्तर गुणोंमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्ट भी नहीं होता, मूलगुण भङ्गमें दो दृष्टान्त हैं उत्तर गुण भंगमें मंडपका दृष्टान्तहै-निश्चनयमें एक व्रतभंग हुवा सर्व व्रतभंग हो जाते हैं परन्तु व्यवहार नयके मतसे जो व्रतभंग होवे सोही भंग होवे दूसरे नहीं इसवास्ते बहुत अतिचारके लगनेसे संयम नहीं जाता, परन्तु जो कुशील सेवे अरु धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन अव अपेक्षा वह साधू नहीं जहां ताईं छेद प्रायश्चित्त लगे जब ताईं संयम सर्वथा नहीं जाता तथा जो इस कालमें साधू न मानें सो मिथ्या दृष्ट है जैन तत्त्वदर्शके १०९ पृष्ठमें जो लिखा है कि तुमने किसी गीतार्थ की संगत नहीं करी होगी अथवा किसी गीतार्थ गुरुके मुखारविंदमें वचन रूप अमृत पान करा होता तो ऐसी ससलसी अर्थात् भ्रमती न होती ऐसा उनके लिखनेसे हमको बड़ा भारी संदेह होता है कि देखो श्री आतमारामजी के गुरु श्री बुद्धि विजयजी अथवा प्रसिद्ध नाम बुटेरायजीको ऐसा भारी रोग उत्पन्न हो गया कि जैनधर्मी किस देशमें विचरे हैं और कितनी दूर है सो गुरुका तो ऐसा कहना कि जैन धर्मी इस कालमें नहीं और चेलाजी कहते हैं कि इस कालमें जो साधू नहीं माने सो मिथ्या दृष्टिहै सो श्रीबुटेरायजी जो कि मुंहपत्तीकी चर्चाकी पुस्तक छपाई है उसके४७ पृष्ठमें लिखते हैं-कषमसी तो क्या उनको तो ऐसा भारीरोग उत्पन्न हुवाथा सो किंचित उनके रोगको दिखाते हैं "तथा मती तो अपने २ मतमें सूता छे उसको तो सच झूठकी कुछ खबर नथी पड़ती सो मती तो इन देसांके सर्व देखे घणे तो अपने २ मतकी स्थापना करते दीसते हैं कोई विरला जीव शुद्ध परूपक पिण होवेगा इणक्षेत्रे तथा भरतक्षेत्रमें और क्षेत्र होवें परन्तु किते सुननेमें तो नथी आवता तथा कोई इना मताके दि

अर्थ समझते हैं लगाते हैं परन्तु ऐसा नहीं कहते कि जैसा आत्मारामजीने सुत्रका कि-या है किन्तु वे यती लोग ऐसा तो कहते हैं कि हमारे कर्मोंका दोष है वीतरागकी आज्ञा हमसे नहीं पले हम छोड़ेकेटके हैं यह हमारा दोष है कि हम नहीं पालते हैं-जो श्री वीतरागका मार्ग पालने वाला उसकी बलिहारी है तो अब देखो विचार करो वे लोग धन रखते हैं और कच्चा पानी पीते हैं और वे लोग इन सूत्रादिकोंको बांचते हैं श्रावकोंको सुनाते हैं परन्तु अपना ऐब दोष दबानेके वास्ते सूत्रको अगाडी नहीं करते कि आत्मारामजी जो आत्मार्थी होकर ढूंढियेमेंसे निकलकर शुद्ध मतको अंगीकार करने वाले और वर्तमानमें उत्कृष्ट चलने वाले धर्मकी उन्नति करने वाले हैं उनको न मालूम ऐसा क्या दबाव आकर पड़ा कि जिससे गाथामें तो कुशील सेवना धन रखना सचित कच्चा पानी पीनेका अर्थ नहींथा। परंतु आत्मारामजीके अर्थसे तो बुद्धिमान् विचार अर्थात् अनुमान् सिद्ध करते हैं कि आत्मारामजी बहुत जनोंकी समुदाय लेकर जो २२ टोलाको छोड़कर आये और उत्कृष्टे आत्मार्थी और बहुश्रुत अर्थात् पंडितपनेमें प्रसिद्ध होगये परन्तु गाथाका जो अर्थ किया उस अर्थसे अपनी समुदायका निर्भाव किया क्योंकि (मूलगुण) इस शब्दसे जो उन्होंने कुशील सेवना और धन रखना और कच्चा सचित् पानी पीना इसी अर्थको उन्होंने मूलगुण समझ लिया क्योंकि आत्मारामजी २२ टोलाको छोड़नेके बाद किसी संवेगी साधू वो यती लोगसे तो जिन आगम देखे नहीं अर्थात् पढ़े नहीं केवल अन्यमतके जो पंडित हैं उनसे न्याय व्याकरण पढ़े और २२ टोलामें ढुंढियोंसे पढ़े हुयेथे परन्तु गुरुकुल वास बिना जिन आगमका रहस्य समझना मुश्किल है इसलिये श्री आनन्दघनजी महाराज श्री नेमनाथजीके स्तवनमें कह गये हैं कि "तत्त्वविचार सुधारस धारण। गुरु गम विण किम पीजेरे"। इसलिये आत्मारामजी गाथामें जो कर्त्ताका अभिप्रायथा उसको न पूगे खाली पासत्थोंका मार्ग पुष्ट किया और इस अर्थसे इनकी आत्माको अर्थ वा अनर्थ हुवा सो तो ज्ञानी महाराज जाने किंतु गाथामें तो केवल मूलगुण उत्तर गुणका दूषण लगनेका अर्थथा सो मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ यह है याने अवारके कालमें प्रायः शुद्ध आहार पानीके अभाव होनेसे आधाकर्मी आहार पानी लेना यह मूलगुणमें दूषण है और श्रावक दृष्टि रागसे बजारसे मोल लाकर वस्तु साधुओंको देते हैं ये उत्तर गुणका दूषण है। औरभी मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ दिखलाते है कि साधुके लिये चार वस्तु निर्दोष अर्थात् ४ दूषण करके रहित अर्थात् एकतो आहार दूसरा उपासरा अर्थात् मकान, तीसरा कपड़ा अर्थात् वस्त्र चौथा पात्र अर्थात् काष्ठादि पात्र आहार करनेके लिये इन चारोंको लेना चाहिये सो प्रथम आहार चार प्रकारका है १ अशनं अर्थात् अन्नादिक रँधा हुवा; २ पानं अर्थात्, पानी उष्ण अथवा २१ तरहके धोवनमेंसे कोई तरहका धोवन; ३ खाद्यमं अर्थात् अचित् वस्तु जिससे पेट न भरे; ४ स्वादं अर्थात् कारण पड़े तो इलाइची, सुपारी, लौंग चूरण गोली औषधि आदि इस चार प्रकारके आहारमें पानी तो प्रायः सब जगह आधा कर्मी अर्थात् साधुओंके निमित्तही होता है और उसी पानीको साधू लोग लायकर भोग उपभोगमें लाते हैं सो यह मूलगुणकाही दृष्टान्त है और आहार आदिकमें जब साधू विहार आदिक करते हैं तब रस्ते अर्थात् मार्गमें जो गांव आदि पड़े हैं उनमें

जिस जगह मन्दिर आमनावाले श्रावक नहीं उस जगह तो अलवत्त दूषण करके रहित आहार मिलता है और जहां मन्दिर आमनावाले जो श्रावक जिस गांवमें एक दो घर हों उस जगह तो सिवाय आधा कर्मीके निर्दूषण मिलना कठिन है और जिन नगरोंमें मन्दिर आमनायके बहुत घर हैं उस जगहभी प्रायः करके दृष्टि रागसे आहारमें दूषण लगताही है सो यह आहारकाभी दूषण मूलगुणमेंही लगेगा ऐसेही ओषधि आदिकमेंभी प्रायः करके साधुओंको निमित्त वैद्य हकीम आदि को लाते हैं और ओषधि (दवा) कराते हैं यह भी मूलगुण में ही दूषण आदि आहार में प्रायः करके लग रहे हैं सो बुद्धिमान् निष्पक्षपाती आत्मार्थियोंके लिये तो ऊपर लिखे दूषण मूल गुण में ही गिने गये नतु दम्भी मत ममत्ती आजीविका वाले आडम्बर से दुःख गर्वित मोह गर्वित वैराग वालों को । अब पुनः मकान या उपासरा के लिये देखो कि पहले तो साधू लोग बस्तीके बाहिर रहते थे अब काल दूषण होने से जंगलको छोड़ कर बस्तीमें रहने लगे तब गृहस्थ लोगों ने साधुवोंके निमित्त धर्मशाला उपासरा बनाये और बनाते हैं तो उन्हीं मकानों में प्रायः साधू ठहरते हैं हां कोई २ उत्कृष्ट उन मकानों को निषेध करके गृहस्थ के मकान में भी ठहरते हैं परन्तु जो निमित्त साधुवों के मकान बनाया उसमें ठहरने से साधुवों को मूल गुण में ही दूषण लगेगा क्योंकि साधू के तीन करण, तीन योग अर्थात् नौकोटी पच्चखान हैं फिर तीसरा जो कि वस्त्र साधुवों के वास्ते शास्त्रों में जीर्ण अभिप्राय धौला कहा है सो तो अब लेते हैं नहीं किन्तु नवीन वस्त्र लेते हैं तो प्रायः करके गृहस्थी लोग खरीद करके ही साधुवों को देते हैं यह भी मूलगुण में ही दूषण है । ४ जोकि पात्र सोभी गृहस्थ लोग नवीन बनवा नया रंगवाना खाली साधुवों के ही निमित्त बनवाते या रंगवाते हैं और साधुवोंको देतेहैं और दंड आदि खराद पर उतरा हुवा इत्यादि सब वस्तु साधुवों के लिये ही बनवाकर देते हैं यह भी सब मूल गुण में ही दूषण है नतु कुशील सेवना धन रखना कच्चा पानी पीना और उत्तर गुण का दूषण देखो कि यथावत् शास्त्र युक्त पड़ लेना वस्त्र आदि की न करना वस्त्र आदि धोना हाथ पैर आदि धोना अथवा शरीर आदि पोछना शरीर की विभुशा करना इत्यादि अनेक उत्तर गुण में दूषण लगते हैं ग्रन्थ विस्तार भय से किंचित् उपरोक्त लिखे दूषण वर्तमान् काल में बराबर लगते हैं ॥ और इसी आशय से श्री भगवती जी में कषाय और कुशील वाले पंचम काल में साधू पावेंगे ऐसा लिखा है और निर्ग्रंथ पणा तो परणाम की अपेक्षा से कोई होगा तो ज्ञानी जाने और फेर देखो कि पदच्छेद ग्रन्थों की जो बातें हैं सो साधुवों को छेद देना अर्थात् प्रायश्चित्त देने के ग्रंथ हैं नसीथ नाम नसीहत देना अर्थात् देखो गृहस्थी लोग भी जो अपने पुत्रादिक को नसीहत नाम शिक्षा करते हैं सो एकान्त में बैठकर करते हैं सर्वज्ञ वीतराग की भी यही आज्ञा है कि जो नवीन दिक्षा लिया हुवा साधू हो उसको पेश्तर फलाना ग्रंथ पढ़ाना और पांच वर्ष के बाद फलाना और सात वर्ष के बाद फलाना पढ़ाना इसी रीति से जब गुरु आदिच्छेद ग्रंथ के लायक समझें तब उसको च्छेद ग्रंथादिक बांचनें दें । सर्व ग्रन्थ के बांचने के लायक उस समय होता है जब साधू की २० वर्ष की सम्पूर्ण पर्याय हो जाती है तब ही सर्व ग्रन्थ का अधिकारी होता है तो देखो कि साधू को ही जैसा २ योग जाने तैसा गुरु

उपदेश करे ऐसा श्री पूज्यपाद उपाध्याय जी श्री यशोविजय जीका ढुंढिया लोग बनाया हुआ जो डेढसौ गाथा का स्तवन जिसका बालबोध किया हुआ श्री जय जी गणी का है उसके छटी ढालके बालाबोध में लिखते हैं सो स्तवन प्रकरण कर के तीसरे भाग में है जिस की इच्छा हो सो देख लो परन्तु इस पंचम काल में जिन मत में कोई सिरधरा न होने से धर्म की कैसी व्यवस्था हो गई हा ! इति मद. पाद श्री यशविजय जी उपाध्यायजी महाराज जो २ बातें कह गये हैं सो प्रगट हैं उनका साढेतीनसै गाथाके स्तवन पहली ढाल की १४ मीं गाथा यह है-" जिम बहु श्रुत बहु जन संमत बहु शिष्टें पर वरियो । तिम तिम जिन शासन नो ... नवी निश्चय दरी ओरे ॥ जिन० ॥ वी० ॥ १४ ॥ अब देखो श्री उपाध्याय जी जिन मत के गीतार्थ और जिन्होने परमत में काशीके पंडितों को जीत कर .. रद पद पाया ऐसे महापुरुषों ने जो ये गाथा बनाय कर लिखी है सो निज वे भी जानीकार थे क्योंकि जिन शास्त्रों में गीतार्थोंको कल्पवृक्ष और समुद्र आदिक की सोलह उपमा दीं और गीतार्थों को मुख्य आचार्य्य कहा और विजय जी महाराज ने गीतार्थों को पुष्ट किया और जिन शास्त्रों में यह भी लिखा है आचार्य्य लोग पांच २ सौ हज़ार २ साधुओं के साथ विचरते थे और जिन आचार्यों राजा आदिक मानते थे तो अब देखो कि इन बातों को जान कर फिरसे गाथा जो कही है सो कुछ अपेक्षा देख कर कही है सो इस गाथा का अर्थ मेरी ... परन्तु ऐसे गीतार्थों का आशय समझना कठिन है किन्तु ऐसे पुरुषों के किये हुये ग्रन्थोंपर मुझ को श्रृद्धा या विश्वास पूरा २ है इस आशयको लेकर कहताहूं कि बहुश्रुत कहता जो कि ब्राह्मण लोगोंसे न्याय व्याकरण आदि काव्य कोश पढ़े हुए हैं अथवा ब्राह्मण पंडितोंको अपने पास रखते हैं और स्वमतके गुरुकुल वास बिना अपनी बुद्धिसे अथवा उन पंडितोंकी बुद्धिसे स्वआत्म अनुभव शून्य होकर ग्रन्थोंको बाँचते हैं उत्तम कर्त्ताके अभिप्रायको बिना जाने स्वमति कल्पनासे शब्दका अर्थ न्याय व्याकरण अथवा कुयुक्तिसे लगायकर दुरस्त कर लेते हैं और उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य अपेक्षा द्रव्य क्षेत्रकाल भाव गुरु परम्परासे तो जानते नहीं क्योंकि अपेक्षा शब्द उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य सांकेत शब्दगुरु आदिकोंसे मालूम हो सक्ता है न कि स्वमति कल्पना या अन्यमतके पंडितोंकी सहायतासे और अपने तांई अपवाद मार्गको खेंचते हैं और जिससे विरोध हो उसके तांई उत्सर्ग मार्ग लेकर खंडन करते हैं ऐसे तो बहु श्रुत ॥ अब बहुजन संमत कहतां जो के अपनी दृष्टि राग बांधकर उनको काव्य अलंकारादि चरित्र अथवा राग रागिना सुनायकर अथवा गच्छका परम्परा बंधायकर वा मंत्र यंत्रादि बतायकर अपना दृष्टि राग बांध कर बहुमानादि अनेकरीतिसे लड़ायकर उनको अपने दृष्टि रागमें बांध लेते हैं अथवा उन लोगों का जिन धर्मको अर्थात् आत्मार्थकी अपेक्षा तो है नहीं केवल दृष्टिरागकी अपेक्षा है सो दशबीस बड़े आदमियोंको रागमें फँसाय लेते हैं याने वे भी उनके रागमें फँस जाते हैं और जो लोग हैं सो गांडर प्रभावके तुल्य हैं वा बहुत आडंबरादि होनेसेभी बहुत लोग उसको मानने लगते हैं ऐसे जो कि गच्छके रागसे वा आडम्बरसे वा स्तवन सिझायके गानेसे अथवा बड़े आदमियों

ग्य करनेसे बहुत जनोंके संमत हैं वह बहुजन संमत हैं और बहुशिष्य पत्तरियो कहतां
। कि मोल लेकर शिष्य करना अथवा भूखन मरते हुवे बालकोंको खानेके लालचसे
बरा जो गृहस्थी अपने पास आते हैं उनके लड़कोंको अनेक तरहका लालच देकर उस
से दूसरे गांव भेजकर दिक्षा देना वा महीना, दो महीना, चार महीना तक छिपाये
खना फिर उसको दिक्षा देना अथवा किसी भेषधारीके चेला आदिकको पुस्तक पन्ना
थवा खाने पीनेका लालच दिखायकर उसको अपना चेला बनाय लेना ऐसे शिष्योंकी
ो समुदायका गुरु अथवा इन शिष्योंको लेकर विचरनेवाला ऐसा बहु शिष्यवाला॥ जिन२
सन शासनके वैरी कहतां दुश्मन अर्थात् जैनकी हीलना करानेवाला है क्योंकि देखो
ो मोल लेकर शिष्यका करना उसमें तो कोई तरहका वैराग्य नहीं और इसलिये अपनी
नर (अवस्था) पर आयकर जिन धर्मकी हीलना करावेगा जो भूखे मरता वा खानेके
लिये शिष्य हुवा है प्रायः करके जब उसकी भूखकी निवृत्ति होगी और अच्छा माल
अथवा और अतक आदिकोंका संग करेगा तब हीलना धर्मकी करावेगा और इसी राग
न्वेगा। और तीसरा जो गृहस्थके बालकको बहकाय कर परदेश भेजकर दिक्षा देवे
ो तो अब देखो कि उसके माँ, बाप, लुगाई, बहन, भाई आदि विलपात अर्थात रोते पीटते
से जगह २ भटकते खोजते हुवे फिरते हैं और उनको नाना प्रकारके आर्त रुद्र ध्यान
दुख हुवे होते हैं और जब उनको यह खबर होती है कि हमारे बेटाको फलानी जगह
फलाने साधुने दिक्षा दीनी तो उस जगह वे गृहस्थी लोग भागकर पहुँचते हैं और साधु-
ओंसे लड़ते हैं यहां तक कि राजदरबारमें पहुंचते हैं। अब देखो विचार करो इससे ज़ियादः
धर्मकी हीलना क्या होगी क्योंकि देखो भगवानकी आज्ञा नहीं गुरुकी तथा माता, पिताकी
आज्ञा नहीं तो तीन प्रकारके अदत्ता या चोरीभी उनको आई और भेष जो दिक्षा लेने-
वाले हैं सोभी उल्टी जिन धर्मकी हीलना कराते हैं परन्तु धन्य है इन वर्तमान कालके
श्रावकोंको जो उनके विपरीत आचरण देखकर दबाते हैं कि जिन धर्मकी हीलना नहीं
हो परन्तु अन्य मतवाले देख २ कर हँसते हैं और कहते हैं कि देखो जैनके साधु ऐसा २
कर्म करते हैं और गृहस्थियोंके बेटोंको बहकाकर दूर भेजकर दिक्षा देते हैं इसलिये कहते हैं जैनके
साधुओंका संग नहीं करना हाय इति खेद! कि शास्त्रोंमें कहा है कि जिन मतके साधुओंकी
अन्यमत वालेभी शोभा करते हैं क्योंकि शांत दान्त देखकर हरेकका चित्त चलता है और
महात्माओंके पास आनेसे हरेक जीवको जिन धर्मसे धर्मकी प्राप्ति होती है सो अब हरेक जीव
जिन धर्मसे धर्म की प्राप्ति होना ऊपर लिखे हुवे लक्षणोंसे मिट गया क्योंकि हम जैनियोंमेंही
प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि अबके जमानेमें अजमेरमेंही दो चार चुन्नानी लोग रहतेथे उनके दो
एक लड़के बाले कभी२ हमारे पास आतेथे सोभी आत्मारामजीके [illegible] मैं जो कि [illegible]
जिसका उस जिनके मुनिके परिचयमें आतेथे तो उनके बाप महतारी मना करतेथे परन्तु वे
छुपका चोरी आतेथे जब मुझको इस बातकी खबर हुई कि उनके घरके लोग मना करते
हैं तब मैंने उनसे कहदिया कि भाई तुम मेरे यहां मत आवो क्योंकि तुम्हारे घरके लोग
तुम्हारे माँ, बाप मना करते हैं तो तुम मेरे यहां क्यों आते हो? तब उन्होंने कहा कि आप
तो ऐसा काम नहीं करते हो लेकिन हमारे देशमें जो लड़कोंको बहकायकर परदेश भेज-

कर दिक्षा दे दीनी इस डरसे हमारे माँ बाप हमको मना करते हैं अब देखो जब कोही ऐसा डर है तब तो और अन्य मतीयोंका तो कहनाही क्या । इस जिन हीलना करानेसे जैन मतके वैरी हैं जो नवी निश्चयने दरीयो कहतां निश्चय नाम गुरु कुल वास समगतके विना जिन्होंने ऊपरकी बातोंका आचरण किया है उनको गतादिक निश्चय ज्ञानकी प्राप्ती न भई इस रीतिसे इस गाथाका अर्थ मेरी तुच्छ आया जैसा मैंने वर्णन किया । अगाड़ी यातो उनका आशय वह जाने वा बहुश्रुत सो ठीक अब देखो कि खरतर गच्छकी आचार्य्य गद्दीके हीराचन्दजी यती जिनके श्री सुखलालजी उपाध्याय बड़ोदा शहरमें गयेथे उस जगह श्रावकोंने उनको कहा पानी मंगाते हो और ठंडा पानी पीते हो और लोग ठगाई करते हो जब उन्होंने उन वकोंको जवाब दिया कि भाई हमारे तो लोग ठगाईका कुछ काम नहीं ऊना पानी और ऊनाही पीते हैं जैसा हमारी गुरु परम्परामें हैं वैसाही शुद्ध उपदेश देते हैं हमारे भाई बन्धु अर्थात् जो जातिके यती लोग हैं सो कच्चा पानीभी पीते हैं और रखते हैं सो वे लोग शास्त्रकी अपेक्षा लेकर धन रखते हैं और कच्चा पानी पीते हैं उनका साधूपन नहीं जाता है इस बातको सुन श्रावक कहने लगे कि भला महाराज! शास्त्र युक्त बात है तो किस शास्त्रमें है जब उपाध्यायजीने आत्मारामजीका बनाया जैन तत्त्वादर्श ३ परिच्छेदमेंके १११ के पृष्ठमें लिखा है कि जो कुशील सेवे और रखे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन बिन अपेक्षा वह साधु नहीं। ऐसा ... कहने लगे कि जो प्रवचनकी अपेक्षासे यह काम करे तो साधु पनाही है इसवास्ते यती लोगभी शास्त्रकी अपेक्षा लेकरके कच्चा पानी पीते हैं और धन आदिक रखते हैं इनोंका उनका साधूपन नहीं जाता इस वचनको सुनकर वे श्रावक लोग इस जैन तत्त्वादर्श प्रमाणोंसे चुप होगये और कुछ जवाब न दे सके तो अब इस जैन तत्त्व दर्शके प्रमाण सुर्व यती लोगोंके पुष्ट किये अर्थात् धन रखने कच्चा पानी पीने और कुशील सेवनेसे साधूपन नहीं जाता वह प्रमाण सबको सिद्ध हो चुका और भी देखो कि चतुर्थ परिच्छेद १९९ के पृष्ठमें मंदिरकी पूजनमें अल्प पाप और बहुत निर्ज्जरा है ऐसा उनका ... जिन शास्त्रमें विरुद्ध मालूम होता है क्योंकि देखो कि आवश्यक आदि सूत्रोंमें ... लिखा है कि "शुभानु बंधी बहुनिर्जरा भवति" और श्री जवर सागरजी जो इनके भाई कुबेरायजीके शिष्य हैं उन्होंने रतलाममें राजेन्द्रसूरिसे झगड़ा कियाथा ... एकान्त निर्ज्जरा ठहराईथी इसवास्ते आत्मारामजी जो अल्प पाप श्री जिन राजकी ... में कहते हैं इसमें उनकी श्रद्धा विपरीत मालूम होती है क्योंकि शास्त्रोंमें एकान्त निर्ज्जरा मालूम होती है। और यह एकान्त निर्ज्जरा तुम्हारे चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां श्रा... दिनकृत्यमें मन्दिरजीकी पूजनकी विधि कहेंगे उस जगह युक्ति सहित और शास्त्रोंके दृष्टान्तोंसे ठहराई जावेगी उस जगह वर्णनकी जावेगी सो उस जगह देख लेना इनमें अनेक बातें हैं परन्तु मैंने प्रसंग वश थोड़ीसी बातें दिखलाई हैं अब देखो जो जन ... कि कालमें मुंहपत्ती बांधके व्याख्यान नहीं देना उनका कहनाभी ठीक नहीं क्योंकि ... आचार्योंने परम्परागत कानमें गेर कर व्याख्यान करना कुछ समझकरही बता...

जो कहो कि जब ढूंढियोंकी मुँहपत्ती बांधना क्यों निषेध करते हो तो हम कहते हैं कि ढूंढिया लोगतो अष्ट प्रहर मुंहपत्ती बांधते हैं इसलिये हम निषेध करते हैं तो भला तुम्हारा कानमें गेरना किसी सूत्रमें है या कोरी परम्पराको मानते हो. तो हम कहते हैं कि सूत्रतो सूचिमात्र होताहै और अर्थ गुरु आचार्यों की प्रवृत्ति मार्गसे मालूम होता सो प्रवृत्ति मार्गमें परम्परासे मुँहपत्ती कानमें डालकर व्याख्यान देतेहैं और जो तुम कहो कि हमको सूत्रमें बताओ तो हम कहते हैं कि सूत्रोंमें ऐसा लिखाहै कि जिस समयमें साधू टट्टेजाय उस समय कानमें घाले अथवा कानमें छिद्र न हो तो नासिकाको ढकके गुद्दीपर बांधे और जिस जगह वस्ती अर्थात् उपाश्रय वा धर्मशालामें पर मार्जन करे अर्थात् दन्डेसे काज्यानिकाले उस समय यातो कानमें मुंहपत्ती घाले या गुद्दी पर बांधे इन दो बातोंके वास्ते तो शास्त्रोंमें लिखाहुवा है तो इस जगहभी गीतार्थ आचार्योंने कारण कार्य लाभको जान करके व्याख्यानके समय मुंहपत्ती कानमें घालना चलाया होगा सो सफल है जो कहो कि बूटेरायजीने जो मुंहपत्तीकी चर्चा बनाई है उसमें श्रीकेशी कुमार देशना देतेथे उस समयमें जो परदेशी राजा गयाथा उस समयमें परदेशी राजाने अनेक तरहके निन्दा रूप विकल्प अपने चित्तमें उठाये परन्तु ऐसा विकल्प न उठा कि यह देखो मुंह बांधे देशना देता है इसलिये श्रीकेशीकुमारजी श्री गौतम स्वामीजी श्री सुधर्मा स्वामीजी आदिक १४ पूर्वधारी चार ज्ञानके धणियोंको कारण कार्य लाभ मालूम न हुआ और यह पंचम कालके तुच्छ बुद्धिवाले आचार्योंने लाभ कारण जान करके कानमें मुंहपत्ती घालके व्याख्यान बांचना चलाया सो ठीक नहीं है तो हम कहते हैं कि बूटेरायजी ने जैन मतके रहस्यके अभिप्राय बिना जाने श्रीकेशीकुमारजी आदि आचार्योंके नाम लेकर कानमें मुंहपत्ती घालना निषेध कियाहै जो तुम कहो कि अभिप्राय क्याहै तो हम कहते हैं कि अभिप्राय यहहै कि श्रीकेशीकुमार आदि आचार्य महाराजतो १४ पूर्व और चार ज्ञानके धणीथे सोभी वह १४ पूर्व देखकरके कुछ पुस्तक पनाहीके व्याख्यान थोड़ाही देतेथे इसलिये जब वह देशना देतेथे उस वक्त हाथमें [illegible] मुंहपत्ती रहता और दूसरे हाथसे देशना देतेथे [illegible] बिना पुस्तकके देशना देते और ऐसा करे तो कानमें घालनेकी कुछ जरूरत नहीं परन्तु [illegible] हाथमें लेकरके जो देशना देते [illegible] और इनके हाथमें [illegible] नहीं होती [illegible] और [illegible]

कहे तो धोनेकी विधि कहीहै पिण रंगनेकी आज्ञानहीं परन्तु पीले कपड़ेवाले ऐसा
है कि श्रीनसीथ सूत्र अथवा चूर्णी अथवा ओघ निर्युक्ती चूर्णीमें कारण पड़े रंगनेकी
कहि जिसवास्ते हमभी कारण पाय कर रंगते हैं क्योंकि वर्तमान् कालमें ढूंढियोंका
होनेसे पूर्व आचार्योंने यती लोगोंका शिथलाचार देखकर पीले कपड़े चलाये इसमें
हर्जनहीं। (प्र०) अजी महाराज साहब सफेद कपड़ोंकी तो आपने बहुत ग्रन्थकी
दीनी और पीलेकी तो आप दो ग्रन्थकी साक्षी देकर कारण बतलायकर अलग
परंतु आप तो कहते हो हम निर्पक्षपाती हैं तो इतने ग्रन्थोंकी साक्षी छोड़कर दो ग्रन्थों
की साक्षीसे पीले कपड़े आपने भी कर लिये यह तो आपको मुनासिब था कि जिसमें बहुत
ग्रंथका प्रमाण हो वह काम करते तब तो आप निर्पक्षपाती होते परन्तु आपको
पक्षपात है इसलिये आपनेभी पीले करलिये। (उत्तर) भोदे० जो तुमने कहा कि तुमारे
पक्षपात पीलेका है इसलिये पीले करलिये सो मेरे तो कुछ पक्षपात पीलेका है नहीं
कदाचित् जो मेरे पक्षपात होता तो ऊपर लिखे हुवे ग्रंथोंका श्वेत कपड़ोंके वास्ते
प्रमाण नहीं देता किंतु मैंने जो कारणसे पीले किये सो कारण यह है कि कोटि गच्छ वज्र
शाखा चन्द्र कुल खरतर विरुदमें श्रीक्षमा कल्याणकजी उपाध्याय जीने क्रिया उद्धार
करके पीले कपड़े किये थे उसी कुलमें आयकर मैंने जन्म लिया इसवास्ते मुझको पीले
करने पड़े दूसरा कारण यह कि श्री शिवजी रामजी महाराज अनुमान् २२ के सालमें यती-
पन छोड़कर क्रिया उद्धार करके २४-२५ के सालमें इस मारवाड़में विचरतेथे सो ४४ के
सालतक तो कुछ रगड़ा न उठा और ४४ के सालसे अभी (५० के साल) तक भेखधारी
ऐसा रगड़ा उठाया अर्थात् झगड़ा करते हैं कि कुछ लिख नहीं सकता जो सिर्फ उनके
सफेद कपड़े होनेसे ही। औरभी कई तरहका जाल उनके संगमें फँसाते हैं परंतु श्री शिवजी
रामजी तो अभी तक किसीसे दबे नहीं और अपने सफेद कपड़े रखे हुये हैं। विचरते हैं सो
मैंने भी ४१ के साल तक सफेद कपड़े रक्खेथे फिर मैंने इस झगड़ेको देखकर अपने दिल
में विचार किया कि इस वर्तमान कालमें भेष धारियोंके झगड़ेमें अपनी उमर खोना और
भेष धारियोंसे झगड़ा करना नाहक है क्योंकि मैंने जो अपना घर छोड़ा है सो आत्मा
कल्याणके वास्ते छोड़ा है सो आत्मका कार्य तो श्री वीतरागकी आज्ञाकर धर्म
करनेसे है और अपने परिणाम शुद्ध या वीतरागकी आज्ञाका विश्वास होगा तो आत्मा
कल्याण होगा क्योंकि वीतरागके कहे हुवे धर्म पर विश्वास करके आत्मा
कल्याणके स्वरूपको विचार कर परिणामको दृढ़ रक्खेगा तो आत्माका कल्याण होगा किंतु
पीले वा श्वेत वस्त्र नहीं तारते दूसरा मैंने यहभी अपने दिलमें विचार किया कि श्वेत वस्त्र
जीर्ण अल्पमूल्य अर्थात् पुराना वस्त्र देना ऐसी परमेश्वरकी आज्ञा है सो वर्तमान कालमें
[illegible] वस्त्र तो कोई देता है नहीं सस्ता श्वेत वस्त्र कोई दे तो भी शास्त्रोंमें [illegible]
[illegible] नहीं [illegible] इसवास्ते हे देवानुप्रिय ! जो आपने ऊपर लिखे
हुवे ग्रन्थोंके [illegible] इस हेतुसे मैंने पीले कपड़े किये हैं और मुझको पीले कपड़ोंका
कुछ आग्रह नहीं है जो [illegible] किया है सो मैं मुझको [illegible] बदलाऊं। (प्र०) अब कौन
[illegible] (उ०) भो० दे० तुम्हारे

तीनभी हैं और चारभी हैं (प्र०) तो आचार्य तीनको अंगीकार करे या चारको ?
(उ०) भो० दे० आचार्यों दोनों अंगीकार करे तीनवाला तीनको और चारवाला चारको
क्योंकि देखो तीन थुईका प्रमाण भी सिद्धान्तमें है इसलिये तीन करने वाला भी मिथ्या-
त्वी नहीं और चार थुई है सो आचरण अर्थात् आचार्योंकी प्रवृत्ती हुई है वह आचार्य
कैसे कि चौदह पूर्व धारी श्री भद्रबाहु स्वामीजी सो उनकी आचरणा सिद्धान्तसे विरुद्ध नहीं
किन्तु सिद्धान्तरूप श्रुतकेवलीकी आचरणा होनेसे सिद्धान्तरूप प्रमाणिक है इसलिये चार
करने वाला भी मिथ्यात्वी नहीं इसलिये जो श्री भद्रबाहु स्वामीकी पाट परम्परामें हैं उनको
चार थुई करनाही युक्त है और वे चार करने ही से भगवत् आज्ञा आराधक होंगे और जो कि
श्री भद्रबाहु स्वामीसे अलग आचार्य विचरतेथे और श्री भद्रबाहु स्वामीकी आचरणाको दूषण
भी नहीं देतेथे उन आचार्योंकी पाट परम्परामें जो चले आते हैं वो लोग जो तीन करें तो
वे भी भगवद् आज्ञा विराधक नहीं हैं। (प्रश्न) आपने जो ऊपर लिखाहै उससे तो राजे-
न्द्रसूरिका मत तीन थुईका चलाया हुवा पुष्ट होता है फिर उनको लोग जो मिथ्यात्वी कहते
हैं सो कहना ठीक नहीं है क्योंकि भगवान्की आज्ञा तो तीन थुईकी भी सिद्धान्तोंमें है ?
(उ०) भो० दे० हमारे मिथ्यात्वी कहना तो बुद्धिमें जचता नहीं क्योंकि जिस वचनसे
दुःखहोवे वसे वैसा वचन नहीं कहना चाहिये परन्तु राजेन्द्र सूरिजीने जो श्री सुधर्मा स्वामीसे
अपनी पाट परम्परा मिलाई है उस पाट परम्परासे राजेन्द्र सूरिजीसे चौथी पीढ़ीमें जो श्री
विजय देवेन्द्र सूरिजी हुये हैं उनके शिष्य श्री कल्याणविजयजी और क्षमाविजयजीके शिष्य
प्रमोदविजयजी थे इनके पाट परम्परा में तीन पीढ़ी हुई तो अब राजेन्द्र सूरिजी से पू-
छना चाहिये कि यह आपके तीन पीढ़ी वाले तीन थुई करते थे कि चार ? तो राजेन्द्र
सूरिजी को कहना ही पड़ेगा कि चार करते थे जब वे लोग चार करते थे तो इनका तीन
करना क्योंकर बनेगा क्योंकि देखो कि राजेन्द्र सूरिजी से तो श्री विजय देवेन्द्रसूरिजी
चारित्र पालने में वा गीतार्थ पने में गुरुकुल वास से थे हुये थे जो शास्त्रोंका रहस्य उनको
मालूम होगा सो राजेन्द्र सूरिजी को हमारी बुद्धिसे उतना न मालूमहोगा तो देखो कि
श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजीने श्री भद्रबाहु स्वामी के आचरणों को शुद्ध जानकर गुरु परम्-
परासे चली हुई जो चार थुईकी परम्परा उसको छोड़कर तीन अंगीकार न किया कदाचि-
त् वेही तीन करते होते तो जैसे पासचन्द्र और कड़वा मती आदिक जो तीन थुई करने
वाले हैं उन को लोग कहतेहैं कि उन्होंने नवीनमत निकाला तैसा श्री विजयदेवेन्द्र सूरि
जी का नाम सुनने में न आया इसलिये राजेन्द्र सूरिजी को अपनी बुद्धिसे विचारना
चाहिये कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजीने जो चार थुई अंगीकार की तिनको छोड़कर जो
मैं तीनथुई करूंगा तो इनकी आज्ञा का विराधक होजाऊंगा ऐसा तो राजेन्द्र सूरिजी को
ही विचारना चाहिये कि जो श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी की आज्ञाको लेकर जो उनको
अपने परम्परा में गुरुबुद्धि करिके मानना है तब तो उनको चारही करना उचित है क-
दाचित् जो श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी इनकी पाट परम्परा को छोड़कर जो कि श्री महा-
वीर स्वामी के वक्त से शुद्ध मार्ग के चलाने वाले आचार्य थे और जिन्होंने श्री भद्रबाहु
स्वामी के आचरण को निषेधभी न किया और अंगीकार भी न किया और हमेशा से जो

उनकी परम्परा सिद्धान्त रीतिसे चलीआई उन आचार्यों की परम्परा में जो आचा-
र्य्य विद्वानहो उनकी परम्परा वा गच्छको अंगीकार करके जो यह तीन थुई करें तो
है जब उन्हीं से अपनी पटावली मिलावे न कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी सूं क्योंकि
विजय देवेन्द्र सूरिजी से तो अपनी पाट परम्परा मिलाना और उनकी आचरण की
चार थुई का निषेध करना और उनको मिथ्यात्वी कहना और आप उनका शिष्य
होना तो वंझा के पुत्रके समान है क्योंकि देखो कोई पुरुष कहनेलगा कि मेरी माता
परन्तु है वांझ तो देखो मा कहना और वांझ बताना जैसे ही राजेन्द्र सूरिजी का क
ना हुवा कि चार थुई वाले को अपना गुरू भी बनालेना और उनकी जो कृत चार
आदिक उसको निषेध भी करना में तो जैसा मेरी तुच्छबुद्धि में तैसा उनको यह
अख्तियार उनको है जो चाहें सो अंगीकार करें अब जो कोई कहतेहैं कि चौथकी करने
वाला मिथ्यात्वी पंचमीकी छमछरी करनेवाला मिथ्यात्वी सो इन दोनों का कहना स्वप्न
रूप है क्योंकि देखो ५ मीं के करने वाले अनंती चौबीसी पंचमी की करनेवाले तीर्थंकर
को वा वर्त्तमान काल में महाविदे क्षेत्र आदिकों में करने वाले उनकी अशातना का सू
चक ५ मीको मिथ्यात्व का कहना है और जोकि चौथके करनेवालों को मिथ्यात्वी कहते हैं
वह लोगभी अज्ञान विवेक शून्यहोकर बोलते हैं क्योंकि जंगम युग प्रधान श्री
आचार्य्य जी महाराजजीने ५मी से चौथकी छमछरीको अंगीकार की सो भी शास्त्रों में लेख
है कि सर्वज्ञदेव वीतराग श्री महावीर स्वामी अपने मुखारविन्द से वर्णन करते
हैं कि पंचम काल में श्री कालका आचार्य्य होगा सो पंचमीकी चौथकरेगा सो मेरी आज्ञा
आराधक होगा तो देखो श्री महावीर स्वामी ने ऐसा फरमाया तो जो श्री कालकाचार्य
की परमपरा वाले शुद्धाचरणविधि मार्गके चलने वाले जो चौथकी छमछरी करते हैं सो
वे लोग तो भगवान् की आज्ञा के आराधक हैं परन्तु जो लोग इस परम्परा में से कद
ह वा गुरूआदिक पै द्वेष बुद्धिकर धूर्त्तपने से कपट क्रियाकरके भोले जीवोंको बहका
कर चौथकी निषेधकर पंचमी को चलाते हैं तो महामूढ़ अज्ञानी विवेकशून्य गुरु
परम्परा आचार्यों के विराधक होने से भगवत् आज्ञा के भी विराधक हैं
अब जो कोई साध्वी के व्याख्यान अर्थात् कथा करने को वा अंगोपांग आ
दि वांचने वा साध्वी को अंग आदिक पढ़ाने को निषेध करते हैं तो वह
उनका एकान्त कहना जो है सो जिन आगम के रहस्य को नहीं जानते
हैं अथवा कितने ही लोग अपनी महिमा घटजाने के लिये निषेध करते हैं
क्योंकि उनको इतना बोध तो है नहीं कि जो सभा रंजन करें और केवल यही ख्याल है
कि साध्वीका अच्छा व्याख्यान लोग सुनेंगे तो हमारे पास कोई नहीं आवेगा इसलिये
उनका एकान्त निषेध करना ठीक नहीं क्योंकि देखो वीतराग भगवान्का अनेकान्त
स्याद्वाद मत है सोही दिखाते हैं देखो कि जो साध्वीको अंगादि पढ़ाना निषेध होता तो
नीचे लिखी हुई बात क्योंकर बनेगी कि श्री वज्र स्वामीकों गुरु बहर करके झोलीमें
लायेथे उस वक्त गुरुने साध्वियोंको आज्ञा दीनी कि इस लड़केको तुम अपने उपासरे
रक्खो श्राविका लोग इसका पालन करेंगी सो श्री वज्रस्वामी पालनेमें झूलते २ ग्यारे अंग

याद कर लिये—क्योंकर याद किये ? कि वह जो साध्वी गुरुसे वांचना अर्थात् संथा लाय कर उपासरेमें घोकतीथी उनको घोकना सुनते २ ही श्री वज्रस्वामीने ११ अंग कंठ कर लिये यह बात कल्पसूत्रमें लिखी हुई है और लोगोंमेंभी प्रसिद्ध है अब इसपर कोई ऐसा कहे कि वह तो अगाड़ीका काल था परन्तु अबारका काल ऐसा नहीं क्योंकि देखो जब साध्वी व्याख्यान देती है तो व्याख्यानमें अनेक तरहकी चेष्टा करनी पड़ती है तो पुरुषोंके सामने स्त्रीको अनेक तरहकी चेष्टा करनी ठीक नहीं है औरभी देखो कि जो पुरुष अच्छे कपड़ा पहन अलंकार आदि शोभित तेल फुलेल आदि लगायकर जो व्याख्यानमें आते हैं उनको देखकर इतर आदिककी खुशबूही उड़नेसे साध्वीका उस पुरुषपर चित्त चल जानेसे चारित्र भ्रष्ट हो जायगा; औरभी देखो साधु रहते साध्वी व्याख्यान देगी तो साधुका जो ज्येष्ट धर्म अर्थात् बड़ापन है सो न रहेगा क्योंकि साध्वी सौ वर्षकी दीक्षित साधु एक दिनके दीक्षितको वन्दना करे इसलिये साध्वीका व्याख्यान न होना किन्तु साध्वीके पासमें पचखान करनाभी ठीक नहीं तो हम कहते हैं कि यह तो पंचम कालहीकी बातें हैं कुछ चौथे कालकी बातें नहीं हैं श्री वज्रस्वामी तो पंचम आरेमेंही हुवे हैं और फिर किसी गीतार्थ शुद्ध आचार्यने कि साध्वीके ग्यारह अंग आदिक पढ़ाना या व्याख्यान देना निषेधभी तो नहीं किया जो तुमने चेष्टाकी कही तो हम कहते हैं कि देखो कि जो वैराग्य रसमें परिपूर्ण अध्यात्म मार्गके बतानेवाले वा द्रव्यानुयोगके कथन करनेवाले शास्त्रोंका साध्वी व्याख्यान देतो कोई तरहका हर्ज नहीं है हां अलबत्त जैसे चन्द्रकी चौपाई चरित्र अथवा मानतुंगका चरित्र आदिक जो कि शृंगार रस अथवा स्त्रियोंके चरित्र वा अलंकार आदि हैं ऐसे ग्रन्थोंको वांचना तो साध्वीको उचितही नहीं है परन्तु जिनसे संसारसे उदासीन भाव होकर वैराग्यकी प्राप्ती होय और जो आत्माका कल्याण हेतु हो ऐसे शास्त्रोंका व्याख्यान साध्वी पुरुषोंकी सभामें अवश्यमेव दे। और जो ऐसा कहो कि अलंकार आदिसे साध्वीका चित्त चल जायगा ऐसा जो कहना है सो उनका विवेकशून्य जिन मतके अज्ञान कहनेका है देखो कि सर्व ग्रन्थमें तीन वेदोंके ऊपरपर कहा है कि पुरुष वेदतो तिनका या घासकी अग्निके समान है और स्त्रीका वेद छाणाकी अग्नि समान है और नपुंसक वेद नगर दाहके समान है अब देखो विचार करो कि जब साधु व्याख्यान दे रहा है उस समयमें जो स्त्री आदिक अच्छे गहने कपड़े पहनकर इतर फुलेल लगायकर बन २ करके व्याख्यानमें आती हैं उनके आभूषण (जेवर) के बाजेकी झनकार और चेष्टाको देखकर जो पुरुष वेद जो तिनकाकी अग्निके समान है सो तो उन स्त्रियोंकी चेष्टा देखकर तुरन्त चारित्रसे भ्रष्ट होजायगा अब तो साधुओंको स्त्रीके सामने व्याख्यान देना न बनेगा और साधुको गृहस्थीके घरमें आहार आदि लेनेकोभी जाना न बनेगा इसलिये ऊपर लिखे हुए वाक्योंसे जो कोई कहता है वह महामूर्ख अज्ञानी विवेकरहित जिन धर्मका उत्थापन करनेवाला चारित्रसे भ्रष्ट मालूम होता है जो ऐसा कहते हैं कि साधुका ज्येष्ठ धर्म है सो हम कहते हैं कि ये कहना तो उनका ठीक है क्योंकि जो साधु अच्छे महात्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव उत्सर्ग अपवाद कारण कार्यके जाननेवाले जिन मतके धारी हों और व्याख्यान देते हों उस जगह साध्वी उनके यहां जाकर व्याख्यान सुने

और अपने व्याख्यानको बंद करे और उस साधु मुनिराजसे
दिकभी पठन पाठनकरे और कदाचित् ऐसे महात्माके पास साध्वी न
और अपना व्याख्यान बन्द न करे और अपने रागियोंके अपनी दूकान जमानेके
में करके साधुवोंके पास न जानेदे वह साध्वी भगवान्की आज्ञा के विराधक है
जिसने साधु नाम धरायकर पीले कपड़े करालिये और जो लौकिकमें साधु
किन्तु व्यभिचारी हैं धन आदिकको रखते हैं किसी साध्वीने जो उनका संग किया उसके
चारित्रसे जो भ्रष्ट कर देने वाला है ऐसे साधुवोंके जो व्याख्यान आदिक भी होते हैं
और उनको लोग भी मानते हों तो जो साध्वी वैराग्यवान शुद्ध क्रियाकी चलनेवाली
धर्मको दीपाने वाली है वह उसके व्याख्यानमें कदापि न जाय अर्थात् उसका मुख भी
न देखे किन्तु जो लोग उसके रागमें फँसे हुवे हैं उनसे द्वेष बुद्धि मिटानेके वास्ते व्या
ख्यान न करे क्योंकि लोग तो गाडर प्रभाव है और दृष्टी रागमें गुण परीक्षा नहीं करते
अब इस लिखनेमें जो कोई पक्षपात समझे तो मेरे पक्षपात नहीं हैं क्योंकि देखो जो
मेरे पक्षपात होता तो मेरे व्याख्यानके दूबरदू कई साध्वीने व्याख्यान किया तो मैं भी
उसको निषेध करता क्योंकि देखो ३८ के सालमें गुलाबसेरी साध्वीने मेरे बराबर
व्याख्यान बांचाया और श्रावकोंने मना किया तो भी न मानी और ४३ के सालमें प्रताप
श्री साध्वीने व्याख्यान बांचाया और मैंने भी व्याख्यान बांचता था और ४९ के सालमें
लक्ष्मी श्रीने व्याख्यान बांचा लोगोंने मना भी किया परन्तु न माना तो अब देखो विचार
करो कि हम ऊपर लिख आये है उस बमूजिब साध्वीको व्याख्यान नहीं करना था और
उन्होंने किया भी तो भी मुझको शास्त्रसे विपरीति उनको निषेध करना न जनाये वा
बात मैंने अपना पक्ष छोड़कर लिखा जो मुझको पक्ष होता तो जैसा और लोगोंने
साध्वियोंके पास पच्चखानादि करना निषेध किया है तैसे मैं भी निषेध करता और
साध्वीयोंके व्याख्यान निषेध करनेमें कोई बुराभी न कहता परन्तु जिन्होंने स्याद्वाद अने
कान्त जिन मार्ग अंगीकार किया है उनको पक्षपात रहित होकर जिन वचनकी शु
परूपना करनी चाहिये अब हम सूत्रोंका प्रमाण देते हैं कि साध्वी पुरुषोंके सा
व्याख्यान दे सो सूत्र तो मेरे पास है नहीं परन्तु सूत्रोंके नाम लिखता हूं जिसको इच्छा
सो देखले नसीथ सूत्रकी चूर्णीमें १० वें उदेशमें कहा है कि सुगुरुका योग नहीं वहां
साध्वी व्याख्यान दे ऐसा ही तपगच्छमें श्री सेनसूरिजी महाराजका १३१ किया ई
ग्रन्थ प्रश्नोत्तरमें २५४ के प्रश्नमें श्रावक श्राविका सहित साध्वी उपदेश दे तथा महा
मल्लिया सुंदरीना चरित्र तथा रासमें मल्लिया सुन्दरी साध्वीने राजाको घने दिवस उप
दिया है और उपदेश मालामें भी साध्वीको व्याख्यान देना कहा इसलिये साध्वीका व्याख्य
देना ठीक है (प्र०) महाराज साहब आपने जो यह अ.पसमें ऐसी व्यवस्था कह
लिखाई इसमें हमको कँप्र प्रतीत हो कि कौन जैनी है क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि
मानेतरे इस वाक्यसे विपरीति कहने वाले जमाली की निन्हव और बहुत संसारी क
है अब आपके ऊपरके दिखाये हुवे आपसके फर्क जो हैं इनसे हम किसको तो अ
कहें और किसको निन्हव कहें और यह भी सुनते हैं कि श्री ऋषभदेव स्वामीके ८४

धरये उनके ८४ गच्छये और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नवगच्छये सो गच्छ नाम किस चीज़का है क्या समाचारिका फ़र्क़ होनेसे गच्छ है व गच्छ क्या चीज़ है सो आप कृपा करिके इस व्यवस्थाको समझा दीजिये। (उ०) भो० दे० इस हुंड सर्पिणी पञ्चम कालके दोष होनेसे इस श्री वीतराग जिन धर्मके मार्गकी व्यवस्था छिन्न २ होगई क्योंकि देखो कल्पसूत्रमें कहा है यदि उक्तं " बहुवो मुंडा अल्प सरमणा" मुंडा बहुत होंगे और साधु थोड़े होंगे देखो उपाध्यायजी श्री समयसुन्दरजीने वेकर जोड़ी स्तवनमें ऐसा कहा है "जिन धर्म २सब कहेरे थापे अपनी बात समाचारि जूई२करेरे सांसे परचो मिथ्यात" फिर भी देखो उपाध्यायजी श्रीजसविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमें कहते हैं गाथा सप्तमी "विषय रसमां गृही माचिया। नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधाने धमा धम चली ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ और देखो स्तवनकी गाथा—"परमपरादयी लोप अनादि करत विवाद अर्थ करे न्यारी सम्मेगी यती टूट सब मिलकर गच्छ बांध टोलाकर राह बिगारी" फिर देखो श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं "गच्छना भेद बहु नैन निहालता तत्त्वनी बात करतां न लाजे। उदर भर्णादि निज काज करतां थकां, मोह नडिया कलिकाल राजे" फिर देखो उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी कहते हैं श्रीचन्द्रानन प्रभुके स्तवनमें "गच्छ कदाग्रह साच वेरे माने धर्म प्रसिद्ध; आत्मगुण अकषायतारे धर्म न जाने शुद्ध ॥ " इत्यादि अनेक महत्पुरुष गीतार्थोंके वचन देखता तो अवारके वक़्तमें तो शुद्ध जिन धर्मकी परूपना करनेवाला गुरु कोई विरलाही होगा इसलिये भो देवानुप्रिय इस व्यवस्थाके प्रश्नोत्तरसे दिलको खेंचकर अपने घरका काज़ा निकालो देशका काज़ा किसीसे निकला नहीं इसवास्ते जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो जो हम कह आये हैं और जो अगाड़ी श्री वीतरागका मार्ग कहेंगे उन सभी बातोंको अपनी बुद्धिमें विचार कर शास्त्र और युक्ति सहित जो श्री वीतरागका मार्ग सत्य है उसको तो ग्रहण करना और असत्यको छोड़ देना ऐसा जो तुम अपनी बुद्धि में हेय और उपादेयको अंगीकार करोगे तो श्री वीतरागके मार्गकी प्राप्ती तुम्हारेको होकरके तुम्हारी आत्माका कल्याण हो जायगा जो तुमने गच्छके शब्दका अर्थ पूछा सो अब हम कहते हैं गच्छ नाम समुदायका है वा जो एक सुभियत शुद्ध गीतार्थकी आज्ञामें चलने वाले साधू साध्वी उनका जो समुदाय उसीका नाम गच्छ है और शास्त्रोंमें जो गच्छका लक्षण कहा है सो शास्त्रका प्रमाण देते हैं " जत्थ हिरणा सुवग्गं हत्येण परापगं पिनी छिप्पे कारण समप्पिय पेहु गोय मंगच्छं तपं भणिमो ॥ ७० ॥ पुढविदग अगणि मारुअ वणस्सइ तहत साणं वेविहाणं मग्णं त विन पीडाकीरइ मणसा तपं गच्छं ॥ ५१ ॥ " ऐसा जिसमें लक्षन है वोई गच्छ है और जो तुमने समाचारीके वास्ते पूछा सो अब हम कहते हैं कि हमारे अनुभवमें और शास्त्रके देखनेसे तो सर्व गच्छोंकी समाचारी एक मालूम होती है जो तुमने श्री ऋषभदेव स्वामीके चौरासी गणधर और चौरासी गच्छ कहे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नव गच्छ कहे इन सबोंकी समाचारी एक मालूम होती है जो जुदी २ इनकी समाचारी होती तो जमालीको क्यों माने अकेले इनने वचन उत्थापने निन्हव और समुदायके बाहिर न निकालते दूसरा जो गच्छोंमें फ़र्क़ होता तो [illegible]

मती निग्रह न कहते और देखो जिस वक्त श्री केशीकुमारजी श्री पार्श्वनाथजीकी परंपरामें चले आतेथे सो श्री महावीर स्वामीजीकी परम्परामें कई तरहका आचरणा था सो जब श्री गौतम स्वामीसे श्री केशीकुमार स्वामीका मुकाबिला हुवा तब केशीकुमार गुरुने शिष्योंकी शङ्का दूर करनेके लिये श्री गौतम स्वामीसे प्रश्नोत्तर श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी आचरणाको छोड़कर वर्तमान काल श्री शासननायक श्री वीर स्वामीके शासनकी समाचारी अंगीकारकी, यह अधिकार श्री उत्तराध्ययनजीमें है श्री जगह इसका विस्तार पूर्वक है ऊपर लिखी युक्ति और शास्त्रके प्रमाणसे समाचारी माल्लूम होती है नतुः जिन धर्म भिन्न समाचारी (प्र०) महाराज साहब आपने प्रश्न वास्ते मनाकिया परन्तु हम लोगोंके चित्तमें किंचित् सन्देह है-कि देखो श्री सर्वज्ञ देवका कहा हुवा स्याद्वाद मार्ग चिंतामणि रत्न समान जिन धर्मको पायकर आपसमें विरोध क्यों करते हैं इसका कारण आप कृपा करके बताइयेगा ? (उ०) भो० इसका कारण यह है कि श्री यशविजयजी उपाध्यायजी महाराज अध्यात्मसार ग्रन्थमें वैराग भेद अधिकारके विषयमें कहते हैं कि वैराग तीन प्रकारका है सो यहांके दो श्लोक ७ मा और ९ मा लिखते हैं- "गृहेन्नमात्रदौर्लभ्यं लभ्यंते मोदका व्रते । वैराग्यस्यात्म मर्येदि दुःखगर्भस्य लक्षणं ॥ ७ ॥ कुशास्त्राभ्याससंभूतभवनैर्गुण्यदर्शनात् । मोह गर्भ तु वैराग्यं मतं बालतपस्विनां ॥ ८ ॥ सिद्धान्तमुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाषिणः । तेष मप्येतदेवेष्टं कुर्वतामपि दुष्करं ॥ ९ ॥ संसारमोचिकादीनामिवैतेषां न तात्त्विका । शुभोपि परिणामो यज्जाता ज्ञानरुचिस्थितिः ॥ १० ॥ अमीषां प्रशमोप्युच्चैर्दोषपोषाय केवलं । अंतर्निलीनविषमज्वरानुभवसन्निभः ॥ ११ ॥ कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्वं शास्त्रार्थेषु विपर्ययः । स्वच्छंदता कुतर्कश्च गुणवत्संस्तवो ज्झनं" ॥१२॥ अर्थ-अहो घरमें तो पूरा अन्न पण मिले नहीं अथवा माता पिता मरगये इधर उधर भटकता फिरे अथवा किसीका देना बहुत होगया अथवा किसी राजाका भय आदिसे विचारने लगा कि इससे तो मेरेको दीक्षा अर्थात् किसी जैनी साधूका चेला होजाना ठीक है क्योंकि मुझको लाडू आदि अनेक मालकी प्राप्ती होगी तो दीक्षा लेनेमें कुछ दुःख नहीं ऐसा जान करके अथवा अपने दुःख निवृत्ति पट भरनेके वास्ते जो कोई दीक्षा लेता है उसका नाम दुःख गर्भित वैराग्य है अब मोह गर्भित वैराग्य के श्लोकों का अर्थ करते हैं : अर्थ-कुशास्त्र के अभ्यास होने से प्रगट हुवा जो संसारका निर्गुणपना उसीका नाम मोह गर्भित वैराग्य है जो बाल तपस्वी आदिक जानलेना ॥ ८ ॥ जो सिद्धान्तों से उपजीवन अर्थात् अपनी आजीविकाके वास्ते जो सूत्रका अर्थ विपरीत कहे है सो प्राणी दुष्कर करणी करतां कष्टकूपाकर है तो पिण उसको वैसाही जानलेना ॥९॥ संसारके दुःख छुड़ानेके अर्थ जो मुसल्मान धांढ़ आदिक को दुःखी देखकर उसको दुःख से छुड़ानेके वास्ते दया भाव करके मारडाले है वह मुसल्मान पिण शुभ प्रणाम की बुद्धि रखते है भी परमार्थ पापही जानना तैसे ही मोह गर्भित वैराग्य वालेको प्रणाम शुभ होय तो भी परमार्थ में ज्ञानकी रुचि होवे नहीं ॥ १० ॥ जैसे अन्तरंग में हाड़ज्वर शरीर में लीन होकर दुःखदायी होता है तैसे ही मोह गर्भित वैराग्यवालेको प्रसम आदि अर्थात् क्रिया भी

नुष्ठान आदिक जो करता है परन्तु वो क्रिया आदिक केवल दुःखदायी है लेकिन् गुणकारी नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व गयेविना वैराग्य भी दुःखदायी है ॥ ११ कुशास्त्र के अर्थ करने में बड़े चतुर हैं और शास्त्रका अर्थ विपरीत अर्थात् अपनी जुबान से निकले हुवे खोटे अर्थ को परभव से नहीं डरते हुये कुयुक्ति लगाय कर सर्वज्ञों के वचन को अन्यथा सिद्ध करते हैं और प्राचीन नवीन जो शुद्ध अर्थ कहने वाले हैं उनके अर्थ को नहीं मानते हैं और स्वइच्छा बमूजिब चलते हैं और किसी के साथ में मेल नहीं रखते हैं कैसाही कोई गुणी होय उसकी कदापि प्रशंसा नहीं करें किन्तु अपनी प्रशंसा और दूसरे गुणी जनकी निन्दा से काम रक्खे हैं ॥ १२ ॥ अब देखो श्री यशविजय जी महाराजके कहने से ऊपर लिखे तीन वैराग्य में से प्रायः करके दुःख और मोह वैराग्य की बाहुलता दीखे है इस कारण से जो वर्तमान कालमें साधू लोग जब तक उनके दुःखकी निवृत्ति वा अपनी दुकानदारी न जमे तब तक तो वे क्रिया अनुष्ठान कपटसे करके लोगोंको अपने रागमें बांधकर दूसरे साधुओंसे द्वेष करायकर निश्चल हो बैठते हैं क्योंकि जो वे लोग अपना राग और दूसरेसे द्वेष न करावें तो जो लोग उनके पास आने वाले हैं जो वे दूसरेके पास जाय और उनकी सोहबत करें और उनसे जो होय गुणकी प्राप्ति उस गुणसे बुद्धिकी निर्मलता होनेसे पहले जो बँधा हुवा दृष्टी राग और उनकी कपट क्रिया और दम्भपना मालूम हो जाय तो फिर वो उनका संग न करे इसलिये वो पहलेसे ही अपनी दृष्टीरागमें फँसायकर कहते हैं कि देखो जो तुम उनका संग करोगे तो तुम्हारी समगत भ्रष्ट हो जायगी क्योंकि उनकी श्रद्धा ठीक नहीं है इतने वचनको वो सुनकर रागी श्रावक उन्हींके पशु बने रहते हैं औरोंके पासमें नहीं जाते हैं और उस दृष्टि रागसे उन श्रावकोंको उन साधुवोंके अवगुण भी नहीं दिखता है क्योंकि जगत्की चालहै—(दोहा) रागी अवगुणना गिने, यही जगतकी चाल ॥ देखो काले कृष्णको कहत जगत सब लाल ॥ और भी देखो श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते हैं कि दृष्टि रागनो पोष जहां समकितगीनि स्याद्वादकी रीति न देखे निज पनै ॥ इसवास्ते इस हुन्डा सर्पिनीके दूषणसे पञ्चम कालमें ज्ञान वैराग्यकी अधिक न्यूनता होनेसे और दो प्रकारके ऊपर लिखे हुये वैरागकी बाहुल्यता होनेसे जिन धर्मकी ऐसी व्यवस्था हो रही है सो इनके ऊपर एक दिवाली कल्पका दृष्टान्त देता हूं कि मैंने एक दफे दिवाली कल्पमें ऐसा बांचाथा कि जिसका भावार्थ थोड़ासा यहां लिखताहूं सो वह भावार्थ यह है—"कि जंगलमें एक सिंह रहताथा सो वो सर्व पशुओंका तिरस्कार करताथा सो उसकी दहशतसे कोई पशु उसका सामना करनेके योग्य नहींथा परन्तु कितनेही दिनके बाद उस सिंहका जीव तो निकल गया और खाली शरीर रहगया सो उस सिंहके शरीरको देखकर कोई पशु उसके पासमें आयकर तिरस्कार न करसका क्योंकि पहिलेके जो प्रबल तेज उसके डरे हुए तिरस्कार न करसके परन्तु उस सिंहके शरीरमें जो उत्पन्न हुई कृमि वो कृमिही उस सिंहका तिरस्कार करने लगी। इस दृष्टान्तको दार्ष्टान्त पर उतारते हैं देखो कि श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका चलाया हुवा जो स्याद्वाद जिन धर्मरूपी सिंह जिसमें प्रबल प्रतापवाला जाति स्मरण आदि ज्ञान प्रबल तेजरूप सिंहके जीवने अन्यमत सर्व पशुवोंका कियाथा तिरस्कार सो तो हुंडा सर्पिनी पंचम

कालके दूषणसे जिन धर्म सिंहका जातिस्मर्ण ज्ञानादिवाला जीव तो चला
जिन धर्मरूपी शरीर रहगया सो इस शरीरसे इस शरीरका अभ्यमत सर्व पशु
डरे हुये तिरस्कार न करसके परन्तु इस जैनरूपी शरीरमें उत्पन्न हुई कृमि नाम
सो आपसमें विरोध अर्थात् झगड़ा करते हुये जैनरूपी शरीरका तिरस्कार करते हैं
ऊपर लिखी बातोंसे ज्ञान वैराग्यके न होनेसे यह व्यवस्था हो रही है शास्त्रोंके
ऐसा मालूम होता है कि राग द्वेष अनन्तान बंधी चौकडी आदिकोंको जिन मार्गमें है
तिसे जैनी लोगोंको मिटाना चाहिये परन्तु मिटना तो एक तरफ़ रहा और प्रबल होता
चला जाता है कि देखो आत्मारामजी लिखते हैं कि गुजरातके लोग बड़े हठीले और पक्ष
पाती होते हैं और जितने मत मतान्तरकी खेंचतान गुजरातमें है जितनी किसी जगह न
होगी और जितनी बातें नवीन जिन धर्ममें चली हैं सो सर्व गुजरातसेही चलती हैं परन्तु अब
पंद्रह सोलह वर्षसे मारवाड़ लश्करादि पूर्व देशमें वा दिल्ली आदि देशोंमें भेष धारियों
ऐसा राग द्वेष बढ़ा दिया है कि देखो ३४ के सालसे पहले लश्कर वा आगरेमें ऐसा
ममता पुरणामथा कि क्षेत्रोंकी सब कोई शोभा करतेथे और धर्मका अच्छी तरहसे निर्वाह
होता था परन्तु ३४ के सालसे ऐसा कदाग्रह हो गया है कि बिलकुल श्रावकोंमें सम्पत
न रहा और राग द्वेष इतना बढ़गया कि सिवाय क्लेशके बिलकुल धर्मकी व्यवस्था न रही
और देखो मारवाड़में पाली अजमेर आदि क्षेत्रोंमें जो कि अगाड़ी किंचित राग द्वेष और
खेंच तान आपसमें करतथे सो २७–२९ के सालमें जो श्री शिवजी रामजी पाली आदिक क्षे-
त्रोंमें विचरते थे सो ३१–३२ के साल तक सब जगहकी खेंचतान मिटाय करके सर्व
समुदायको इकट्ठी करदी और आपसमें सब लोगोंमें सम्मत करादी और अच्छी तरह
धर्म ध्यान होता था ऐसा मेरे श्रवण करनेमें श्रावक लोगोंकी जुबानीसे आया है
परन्तु उनदिनोंमें साधु लोगोंका श्रावक लोगोंके बहुत परच्याराथा और साधु लोगोंका विच-
रना इस मुल्कमें कमथा यह समुदायका रंग मैनेभी ३१–३९ के सालमें चौमासा करके
देखा तो उन दिनों तो समुदायमें कोई तरहका विषमवाद न था परन्तु उसही ३९ के
सालमें जयपुरमें श्रावक श्राविकोंमें इतना राग द्वेष हुवा सो अभीतक बढ़ता हुवा चला
जाता है और अजमेरभी श्रावकोंके आपसमें मन राग तो इतना है कि उनकी आत्मा अथवा
या ज्ञानी जाने सिवाय द्वेष बढानेके किंचितभी सम होनेका कोई उपाय नहीं दीखता अब
मालूम इन लोगोंकी क्या गति होगी कि यह नाम तो साधु धराते हैं आप लडते हैं और दूस-
रोंको लड़ाते हैं; अन्य मतीको हँसाते हैं; जिन धर्मकी हीलना कराते हैं; हा! इति खेद!
इस जैन धर्ममें कोई शिरधरा न होनेसे इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम आरेमें दुःख गर्भित
मोह गर्भित वैराग्य वालोंकी कैसी बन पड़ी दुःखसे छुटाना और माल्टाका माना और जगह
छुड़ाना और ऐसा सोचना कि "यह भव तो परभव किसने दीठा" ऐसा इनका जो विचार
होना सो इनकी बड़ी भारी अज्ञान दशा है कि देखो श्री यशोविजयजी उपाध्याय अध्यात्म
मत परीक्षा ग्रन्थमें कहते हैं कि जो भवभागी गृहस्थियोंके गोंसे २ माल खायके माते हैं
परन्तु उनको परभवमें उन गृहस्थियोंके गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा आदि बनकर उस मत्र
खानेका बदला देना पड़ेगा और भी देखो वर्तमानमें कई साधु साध्वी ऐसा भी करते

के संयुक्त कहता हूं कि प्रथम इस सर्वज्ञ देव वीतरागकी वाणीका संबंध आदि कहताहूं कि प्रथम ग्रन्थकी आदीमें १ सम्बन्ध २ विषय ३ प्रयोजन और चौथे यह चार अनुबन्ध होतेहैं जब तक यह चार अनुबन्ध ग्रन्थके आदिमें नहीं हों तब जिज्ञासुकी प्रवृत्ति नहीं होती इसवास्ते ग्रन्थकर्ताको सम्बन्ध आदिक चतुष्टय कहना चाहिये (शंका) कोई ऐसा विचार करे कि ग्रन्थकी आदिमें करना चाहिये तो प्रश्नोंके पहले संबन्ध आदि चतुष्टय क्यों नहीं कहे ? (समाधान) आदिके जो तीन के उत्तर दिये हैं उनकी आदिमें जो संबन्ध आदिक चतुष्टय नहीं किये उसका है कि उन तीन प्रश्नोंके उत्तरमें वीतरागकी स्याद्वाद रूप वाणीका है ज्ञेय देय रूप कथन नहीं था किंतु जिज्ञासूको दृढ़ करानेके वास्ते उन तीन प्रश्नों के आदि में एक वाक्य रूप विलास दिखायाथा इसवास्ते न किया दूसरा कर्ता की इच्छाके अभाव से तीन प्रश्नकी आदि में न किया तीसरा कारण यह है कि जो वीतराग सर्वज्ञ देवाधिदेव श्री अरहंत भगवंत के वचन रूप अमृत को पान करने वाला योग्य होगा सो ही करेगा इसवास्ते कर्ता ने सम्बन्धआदि चतुष्टय वीतराग के ग्रन्थ के उद्देश निरूपण मेंही मुख्यता जानकर और उनकी यहां कहने की इच्छा करके आदि में न कहे क्योंकि इस ग्रन्थकर्ता को वीतरागके हेय ज्ञेय उपादेय रूप उपदेश पर दृढ़ श्रद्धान और रुचि होने से भव्य जीवों का इसी प्रश्न के उत्तर में उपकार जाणकर इस जगह ही वर्णन करने की इच्छा हुई सो सम्बन्ध चतुष्टय यह है कि १ सम्बन्ध २ विषय ३ प्रयोजन ४ अधिकारी। प्रथम सम्बन्ध किस को कहते हैं कि ग्रन्थका और विषय का प्रतिपाद्य और प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है ग्रन्थ प्रतिपादक है और विषय प्रतिपाद्य है जिस का प्रतिपादन करने वाला होवे सो प्रतिपादक है और जो प्रतिपाद्य करने के योग्य होवे सो प्रतिपाद्य है और अधिकारी का वा फल का प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है फल प्राप्य है अधिकारी प्रापक है जो वस्तु प्राप्त होवे उसको प्राप्य कहतेहैं जिस को प्राप्त होवे सो प्रापक कहिये अधिकारी और विचार का कर्तृ कर्त्तव्य भाव सम्बन्ध है अधिकारी कर्ता और विचार कर्त्तव्य है करने वाला होवे सो कर्ता कहिये है और करने के योग्य होवे सो कर्त्तव्य कहिये है ऐसही जन्य जनक सम्बन्ध आदि अनेक प्रकार के सम्बन्ध जानने इस ग्रन्थ में विषय क्या चीज है जो वीतराग की कही हुई वाणी जिस में जो हेय ज्ञेय उपादेय आदिक है यही इस ग्रन्थका विषय है जिस चीज को प्रतिपादन करी है सो विषय कहलाता है इस ग्रन्थ का प्रयोजन क्या है ? ज्ञेय को जानना और हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना उसम जो परमानन्द की प्राप्ति होना और जन्म मरण आदि दुःखरूपहेतु अनर्थ उसको हेय जानकर छोड़ना अर्थात् उससे निवृत्तहोना यही इस का मुख्य प्रयोजन है अब अधिकारीका लक्षण कहते है कि अधिकारी भव्यजीव है भव्यजीवों का लक्षण यह है — पंचमलाय आदि [illegible] ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय प्रगट होनेका यह [illegible] का [illegible] हुआ अब संसारी जीव तीन प्रकार का है एकतो अभव्य २ दूसरे भव्य ३ भव्य अब अभव्य सो उस को कहते हैं कि जिसे कैसा ही होय मर्याद [illegible] के किसी रीतिसे [illegible] नहीं हो ऐसेही अभव्य जीव जो है सो भी वैराग्य आदि [illegible]

अंगीकार करे परन्तु अन्तरङ्ग चारित्र में पलटण स्वभाव न होने से देवलोकादि में तो जाय परन्तु मोक्षमें न जाय दूसरा जातीभव्य जैसे औरत का व्याह हुवा और पति मरगया उस औरत में सन्तान होने की कुदरत तो है परन्तु पुरुष का संयोग न होने से सन्तान नहीं हो ऐसेही उसे जातीय भव्य जीवको कारण संयोग मिलने से तो मोक्षकी प्राप्तिहोय परन्तु अनन्ता काल होगया और अनन्त काल होजायगा किन्तु उस निगोद मेंही बना रहेगा इसलिये उसको जातीय भव्य कहा तीसरा जो भव्य है उसके दो भेद हैं एकतो दूर भव्य दूसरा निकट भव्य दूर भव्य उसको कहते हैं कि जैसे स्त्री का व्याह हुवा और पुरुष का संयोगभी हमेशा उसका बना रहा है और सन्तानकी उत्पत्ति बहुत काल पीछे होवे है उसको दूरभव्य कहते हैं कि जैसे स्त्री का व्याह होतेही सन्तान की उत्पत्तिहो-जाय तैसेही निकटभव्य को कारण सामग्री मिलने से मोक्षकी प्राप्ती होय ऐसे श्री वीतरा-ग अरिहंतदेवने केवल ज्ञानसे देखकर शास्त्रों में वर्णन किया सो मैंने भी उनके अनुसार किञ्चित् रूप करके जीवों का स्वरूप लिखा अब जो कोई कहे कि उस भव्य जीवको क्या कारण सामग्री मिलने से मोक्षहोती है ? सो कहो तो हम कहते हैं कि जीव अना-दि कालका मिथ्यात्व में पड़ा हुवा नदी घोल न्यायेन अर्थात् जैसे कोई पहाड़ के ऊपर पानी बरसने से उस पानी के साथ पत्थर पड़कर नदी में लुड़कता हुवा पानीके वेगमें ठोकर खाताहुआ चिकना सुहावना अर्थात् कोई तरहका एक आकार को प्राप्त हुवा तैसेही वह जीव जन्म, मरण अकाम निर्जरा करता हुवा संज्ञी पंचेन्द्रिय वा मनुष्यपने को प्राप्त हुवा ऐसी काल लब्धीके संयोगसे मर्घट वैराग्य अथवा और कोई कारणसे वैराग्य उदासीन प्रणामसे ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी, वेदनीय अंतराय ४ कर्मोंकी ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति और गोत्र कर्म नाम कर्मकी २० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति है और मोहनी कर्मकी ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति है और एक आयु कर्मको छोड़कर ऊपर लिखे सात कर्मोंकी एक कोड़ा कोड़ी सागरोपममेंसे १ पल्योपनका असंख्याता भाग करे और एक भाग उस कोड़ा कोड़ी सागरोपममेंसे कमती करके ऊपर लिखी कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति राखे बाकी १९और ६९ और २९ कोड़ा कोड़ी सागरोपम और कुछ अधिक खपावे अर्थात् दूरकरे इसको यथा प्रवृत्ति करण कहतेहैं इस करण को जीव अनंतीवार करे परन्तु कोई कार्यकी सिद्धि होय नहीं इसलिये इसको यथा प्रवृत्ति करण कहा है जैसे कोठीमें नाजभरा हुवा है और नीचेका ढकना खोलनेसे बहुत नाजका नीचे वा बाहिर हिगला हो जाय परन्तु उस कोठीके चारों तरफ़ और कोनोंमें लगा हुवा नाज उस ढक्कनके खोलनेसे नहीं निकलता इसलिये जीव १ कोड़ा कोड़ी सागरोपम पल्योपमका असंख्यातवां भाग न्यून स्थिति रखकर बाकी सब कर्म दूर करदे उस वक्त कोई जीव किञ्चित् विशेष प्रणामसे अपूर्व करण करे सो अपूर्व करण ऐसा स्वरूप है—जो एक कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थितिसे कुछ कम जो स्थिति उसमेंसे एक अंतर महूर्त्त अर्थात् दोघड़ीसे कुछ कम और अनादि मिथ्यात्व जो अनंतान वन्धी क्रोधमान माया लोभकी चौकड़ी है सो खपानेके लिये अज्ञान जो हेय है उसको छोड़े और ज्ञान जो उपादेय है उसको आदरे वा अंकीकार करे यह इच्छा रूप अपूर्व अर्थात् पहले कभी नहीं आया होय ऐसा जो परिणाम उसको अपूर्व करण कहते

हैं इस अपूर्व करणमें त्यागरूप, और ग्रहण रूप परणाम पेश्तर कभी नहीं इसलिये इसको अपूर्व करण कहा अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि अपूर्व नाम थोड़ीसी देर ठहरनेका है क्योंकि थोड़ीसी देर ठहरकर फिर परणाम गिर जाय। जाय जैसे किसीके पुत्र होकर मरगया और फिर दूसरा पुत्र हुवा तब वो उसको मानकरही आनन्द मानेगा ऐसा अपूर्वका अर्थ होता है तो हम कहते हैं कि जिसको शंका होती है और जो ऐसी कोटी उठाता है वह जिन आगमके रहस्यको नहीं जानता है क्योंकि देखो जो कि पेश्तर अपूर्व करण करता है सो अपूर्व करण अनादि शांत है इसलिये अपूर्व करण यही बनेगा और जो यह थोड़ी देर ठहरनेको अपूर्व मानते हैं शांत अपूर्व करण है और अपूर्व करण करनेके बाद अनिवृत्ति करण करके जो समगतकी प्राप्ती होवे उसके बाद फिर इन पिछले किये हुवे करणोंको कोई जीव न करेगा इसलिये यह अपूर्व करण अनादि शांतही है देखो यहां दृष्टान्त देते हैं–कि कोई तीन पुरुष मन वांछित नगरकी इच्छा करके पुरसे चले सो महा विकट अटवी अर्थात् जंगलमें गये सो रास्तेमें जाते हुवे दो चोरोंको सामनेसे आते हुवे देखे उन चोरोंको देखकर एक तो पीछा पर भग गया और दूसरेको पकड़ लिया और तीसरा उनसे लड़कर और मार पीटके अपने प्रबल बलसे अगाड़ी चल दिया यह दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्ति कहते हैं–कि अभव्य और दूरभव्य और निकट भव्य ये तीनों समगत रूपी नगरके वास्ते जातेथे सो जन्म मरण रूपी अटवीमें राग द्वेष रूपी चोरोंको आते देखकर अभव्य तो भग गया और दूर भव्यको अपूर्व करणके पासही पकड़ लिया और निकट भव्य जो था सो उन राग द्वेष रूपी चोरोंसे मार पीटकर अपूर्व करणसे निकलकर अनवृत्ति करणमें प्रवेश कर गया। अब यहां प्रसंग गत बात याद आगई है सो भी लिखते हैं कि कितनेही आम्नाय अनुसार तथा किं परम्परा वाले कहते है कि भव्यको पूर्व सुर्त नहीं होय तथा कोई एक ग्रन्थमें ऐसा कहा है कि पूरा दश पूर्व नहीं होय नो पूर्वसे कुछ अधिक होय अब इस जगह बहु श्रुत कहे सो ठीक परन्तु जिसने दशा पूर्व संपूर्ण पढ़े होंय उससे अगाड़ी चौदह पूर्व तक नियम करके समगत है यदि युक्तं श्री कल्प भास्ये"चउदसदसय अभिन्ने नियमा सम्मत्त सेसयामयणा" पूर्वोक्त अपूर्व कारण उससे निकलकर जो ग्रन्थीको भेदनेके वास्ते वज्ररूपी परिणाम करके तथा भूतो जीव विशुद्ध मन परणामको निर्मलता बढनेसे मुहूर्त मात्र अनिवितौ करनेमें गयोयको ग्रन्थ भेद करता अन्तर मुहूर्त लगे जिहां चढते परिणामे ग्रन्थी भेदकरी अनिवितीं करण करे तिस कार्ले अति विशुद्ध परिणाम धारामूं मिथ्यात्व मोहनीके पुञ्जकी दो स्थिति होय तिसमें पहली स्थिति अन्तर मुहूर्त वेदै याने एक अन्तर मुहूर्त जो कि कोड़ा कोड़ी सागरोपममां पल्योपमका असंख्यातमां भाग न्यून, प्रणाम जो स्थिति रहीथी उसमेंसे अन्तर मुहूर्त प्रमाण जुदी सं बाकी शेष रही इईको जुदो पुञ्जरामे इन दोनों स्थितिके बीचमें जो खाली जगह रही उस अनिवृत्ति करणके जोरसूं अन्तर करण करे वो अन्तर मुहूर्तके दलियोंको सर्वे और मोटी स्थितिमेंसे आवते दलियोंको उप समावे अर्थात् दबाय देवे, अन्तर मुहूर्त तक उदय न आवे ऐसा करे इसलिये अनवृत्ति करणमें दो कार्य करे एक तो मिथ्यात्व स्थितिके दो भाग करे और अन्तर करण करे और दूसरे अन्तर मुहूर्त बेदे

प्रथम उघु स्थितिको खपावे इतनेमें अनवृत्ति करण काल सम्पूर्ण होय तिस पीछे अगाड़ी अंतरकरणमें प्रवेश करे उस वक्त हे नाथ ! आपकी कृपासे क्षायक आदनी परे उत्कृष्टो नहीं तिण सामान्य पणे अल्पकाल उप समनाम समकित पावे सो समकित पानेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है सो उपमा करके दिखाते हैं कि जैसे कोई पुरुष शूरवीर रण संग्राममें चढ़े और वैरीको जीते उस वक्त परमानन्दको प्राप्त होता है वैसेही अनादिकाल का ये राग द्वेषरूप महान् शत्रु तज्जनत अनन्तानुवंधी क्रोध, मान, माया लोभ ये चार वैरियोंको जीतकर परमानन्द सरीखी समकितको पायकर जो अन्तरकरण करता है और जो आनन्द होता है सो गाथासे दिखलाते हैं गाथा-"संसार गिमत विगो ॥ दत्तो गोसी सर्वदण रसोव्वं, अई परम निवुं इकरं, तस्सं वेलहइसम्मवं ॥" संसार गिम्म क० कोई बटोई उष्णकालके मध्याह्न समय मरुस्थल देश सरीखे जंगलमें चलते हुये सूर्यकी किरणोंकी उष्णतासे तप्त होकर और लूओंकी झपटसे अतिव्याकुल और तृषा जिसको लगरही है इत्यादि अनेक व्याकुलता संयुक्त उस बटोईको उस जंगलमें शीतल मकान मिले फिर कोई उस मकानमें बावना चन्दन का रस उसके ऊपर छींटे और शीतल जल पिलावे उस वक्त उस बटोईको कैसा आनन्द प्राप्त होय इसीरीतिसे यहां भव्य जीवरूप बटोई अनादिकाल का संसाररूप अटवी में उग्र उष्णकाल जन्म मरणादिरूप निर्जल वन में कषायरूप उग्र ताप करके पीड़ित और रोग शोक आदि लूहके झपट्टा उन करके जलाहुवा तृष्णारूप मोटी प्यास करके गला सूखता हुवा अत्यन्तपीड़ा पाता हुवा अनवृत्ति करणरूप शुद्धसरल मार्ग दूरसें अन्तरकरणरूप शीतल स्थान देखकर खुश होकर घुसताहुआ उस स्थानमें बवना चन्दनरूपी उपसम समकित को प्राप्त होता हुवा उस वक्त अनन्तानुवंधी मिथ्यात्व कृत परिताप अथवा तृषाआदि सर्व व्याधि मिटगई इसरीतिसे तीन करण का स्वरूप कहा अब इसजगह प्रसङ्गगत सिद्धान्त से और कर्म ग्रन्थ का जो भिन्न २ मतान्तर है उसको किञ्चित् दिखाते हैं कि सिद्धान्त मत से तो विराधक समगती समगतसे गिराहुवा अनवृत्ति करणमें जो कही हुई स्थिति उससे उत्कृष्टी कर्मोकी स्थिति न बांधे और दूसरा सिद्धान्तमें यहभी है कि समकितसे गिराहुवा फिर समकित पाय करके कोई जीव एक जीव छठी नारकी तकभी जाय और कर्मग्रन्थ वाला ऐसा कहता है कि जो समकित पाय करके समकितसे पीछा पड़े तो कर्मोकी उत्कृष्टी स्थिति नहीं बांधे सो उत्कृष्टी स्थिति ३०,२० और ७० की न बांधे इससे कमती कितनी ही बांधो और दूसरा जो समकितसे पड़ाहुवा फिर समगत पावे तो वैमानिक बिना दूसरी आयू बांधे नहीं यदि युक्तं "सम्मत्तंमिवलद्दे विमाणवज्जं न बंधए आउ । जइवत्र संमत जहो, अहवनबंधा उ अोपुब्बिं ॥" अब ये जो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थका जो आपसमें विरोध है इस में जीवोंको कईतरहके विकल्प उठते हैं सो सिद्धान्तके रचनेवाले तो सर्वज्ञ हैं जो कोई ऐसा कहै है कि सर्वज्ञकी कहीहुई द्वादशाङ्गी तो बारह वर्ष दुःख काल आदि पड़नेसे साधुओंको कंठस्थ न रही इसवास्ते पीछेसे श्री देवर्धिक्षमाश्रमन आदि आचार्योने साधुओंको इकट्ठे करके जो कण्ठस्थ रहे उनका संग्रह करके पुस्तकमें लिखा है तो हम कहैहैं कि श्री देवर्धिक्षमाश्रमण आदिक आचार्य्य पूर्व धारीथे इसवास्ते किंचित् श्रुत केवली

के समानहीथे और कर्म ग्रन्थके कर्त्ताभी गीतार्थ बहुश्रुतथे फिर सिद्धान्तसे मतान्तर कहना सो सम्भव नहीं होता इसवास्ते इन दोनो सिद्धान्तकार और कर्मग्रन्थके कर्त्ताका विरोध मिटानेके वास्ते जैसा मेरे अनुभवमें दोनोंका अभिप्राय आता है सो लिखाताहूं कि देखो सिद्धान्तकार जो कोड़ा कोड़ी सागरोपम किंचित् न्यून स्थिति मानते हैं सो अभिप्राय या है कि जो उत्कृष्टी स्थिति कर्मोंकी बांधनेवाली जो अनादिकालकी मिथ्यात्वरूप ग्रन्थीथी सो तो निवड मिथ्यात्वरूप ग्रन्थीको पेश्तर छेदकरे समगतकी प्राप्तीकी तो जो अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप ग्रंथी कर्मोंकी उत्कृष्टी स्थिति बांधतीथी सो तो नष्ट होगई और समगतसे गिरहुवे जीवको निवड मिथ्यात्वरूप अनादिकी ग्रंथी तो फिर उत्पन्न होय नहीं इसवास्तेही वह फिर यथा प्रवृत्ति अनिवृत्ति आदिक करण न करे अनादि मिथ्यात्व न होनेसे जो स्थिति सिद्धान्तमें कही है उससे ज़ियादः न बांधे और जो कदाचित् उत्कृष्टी स्थिति मानोंगे तो ग्रन्थी भेद करनेवाला और दूसरा नहीं करनेवाला दोनों बराबर हो जायगे और समगत पायके बाद जो उत्कृष्टा संसारमें रुले तो अर्ध पुद्गल परावर्त करे सो इस कहनेकोभी विरोध आजायगा क्योंकि जैसे ग्रन्थी अभेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे वैसेही ग्रंथी भेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे तो ग्रन्थी भेद करनेका फलही क्या हुवा इसवास्ते कर्मग्रंथ करनेवालेका अभिप्राय ऐसा मालूम होता है कि जो सिद्धान्तमें कहा है उससे उत्कृष्टी स्थिति न बांधे क्योंकि उत्कृष्टीस्थिति नबांधे ऐसा कर्म ग्रन्थवाला कहता है इससे हम यह अभिप्राय लेते हैं कि जो शास्त्रमें कही उससे उत्कृष्टी न बांधे क्योंकि जो गीतार्थ बहुश्रुत होते हैं सो सिद्धान्तसे विरुद्ध कदापि न कहेंगे जो ऐसेही बहुश्रुत सिद्धान्तोंसे विरुद्ध कहेंगे तो फिर सिद्धान्तोंका कहना कौन मानेगे इसवास्ते सिद्धान्तोंमें कही जो स्थिति उससे उत्कृष्ट स्थिति बांधनेका अभिप्राय कर्मग्रन्थकर्ताका नहीं और इसी रीतिसे जो समकित पड़ाहुवा फिर समगत पावे और कोई जीव (६) छठे नरकमें जाय सो सिद्धान्तकारका कहना मेरे अनुभवमें ऐसा बैठता है कि छठे नरककी आयु बाँधके पीछे समकित पावे वह जीव नरकमें जाय क्योंकि देखो कि कृष्ण श्रेणक आदिकों को आयु कर्म बांधेके बाद समकितकी प्राप्ती हुई इस अभिप्रायसे सिद्धान्तकार कहता है और कर्मग्रन्थके कर्ताका ऐसा अभिप्राय मालूम होता है कि जो आयु कर्म नहीं बांधे होय वह देवलोकके सिवाय दूसरी गतिमें नहीं जाय क्योंकि समकित पायाहुवा जीव ऐसे नरकादि गतिका आयु बांधनेका पापादिक ही न करे कदाचित् जो देवलोकके सिवाय दूसरी गति नहीं जाय तो कृष्ण श्रेनकादिक क्यों नरकमें गये इसवास्ते ऊपर कहे हुवे अभिप्रायसे मतान्तरका विरोध मिटता है आगे तो बहुश्रुत कहे सो ठीक अब जो कोई कहे कि पूर्व आचार्य ऐसे २ होगये उनको ऐसा अभिप्राय न मालूम हुवा कि जो सिद्धान्त और कर्म ग्रन्थकर्ताका विरोध मिटते तो हम कहे हैं कि जैसा मेरे अनुभवमें अभिप्राय आया वैसा कहा न कुछ बहुश्रुत नहीं हूं जो मेरे इस कहनेमें जो कुछ सिद्धान्त व बहुश्रुत से विपरीत होय तो मैं मिथ्या दुःकृत देता हूं क्योंकि मुझको अपने वचन कहनेका पक्ष नहीं है क्योंकि मैंने तो शुद्ध "वीतराग" का मार्ग बहुश्रुत गीतार्थोंके किएहुवे ग्रन्थोंके आसरेसेही कहा है आगे तो जो ज्ञानी बहुश्रुत कहे सो मुझको प्रमाणहै । (प्र०) रत

लोगोंको इस कथनके सुनते ही बड़ा आश्चर्य पैदा हुवा कि ऐसे (अमृतरूपी) वाक्यको पूरा करते हो आपने मिच्छा दुक्कड़त क्यों दिया कि जिससे हजारहां आदमी तिरजांय क्यों-कि आपने सिद्धान्त और कर्म ग्रंन्यकर्ताके दीखते विरोधको यदि जो निश्चयमें नहीं है इस तरहसे मिलाया कि जो परस्पर फर्क नजर आताथा और जिससे श्रद्धा विपरीति होजातीथी वह बिल्कुल मिट गया और यहभी तो है कि आपने ऐसे दीखते परस्पर विरोध मिटानेको जो कोटी लिखी सो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थसे विपरीत नहीं है और आपने किसीको झूठाभी न कहा? (३०) हे भोले भाइयो! कुछ इधरतो दृष्टी करो कि 'वीतराग'का मार्ग बहुत नाजुक है अर्थात् इसका रहस्य समझना बहुत कठिन है क्योंकि देखो जिस चौथे आरेके समयमें जो चौदह पूर्वधारी और छत्तीस गुणके धारण करनेवाले चार ज्ञान सहित आचार्य्य विचरतेथे उस समयमें कि जिन के सामने सामान्य केवली व्याख्यान न दे और वे आचार्य सभामें व्याख्यान देतेथे कि जिनकी सभामें सामान्य केवलीको आदि लेकर साधु साध्वी श्रावक श्राविका चतुर्विध संघ व्याख्यान सुनतेथे उस समय उन आचार्योंके केवल ज्ञान न होनेसे अर्थात् छद्मस्त होनेसे कोई वचन केवलियोंके ज्ञानसे विपरीति निकलता तो व्याख्यानके बाद केवली महाराज उन आचार्योंसे कहते कि केवली ऐसा देखता है कि तुमने जो यह कहा सो केवलीके देखनेसे भिन्न है तो उसी समय ऐसे आचार्य्य महाराज सभाके समीप कहते कि केवली ऐसा देखते हैं मैंने जो वचन कहा है तिसका मिथ्या दुकड़त देता हूं तो देखो हे देवानुप्रिय! मैंने अनादि कालसे इस संसार रूपी अटवीमें जन्म मरण करना हुवा इस हुंडा सर्पिनी कालके पंचम आरेमें जन्म लिया परन्तु कोई शुभ कर्म उदयसे वीतरागका कहा हुवा स्याद्वाद जिनधर्म चिन्तामणी रत्न मेरे हाथ लगा फिर भगवत् आज्ञा संयुक्त जो चतुर्थ विध संघ तिनके चलाने वाले जो सिद्धान्ती और बहुश्रुत गीतार्थोंके वचन हें उनकी कोई तरहकी असातना होनेके डरसे मैंने मिथ्या दुकड़त दिया क्योंकि मुझको इतना भी निश्चय नहीं किमें भव्य हूं या अभव्य हूं इस बातको ज्ञानी जाने तो फिर उस चिन्तमणी रत्नको कि जो शुभ कर्मके उदयसे मुझे प्राप्त हुवा अभिमान रूपी वचन कागलेके पीछे फेंककर अपना बहुल संसार क्यों करूं? इसलिये मेरेको देना उचित था सो दिया, बहुश्रुतके वचन प्रमाण हें, प्रसंगसे इतनी बात कही अब ऊपर लिखे वमूजिब जो समगत पाया हुवा भव्यजीव विवेक वैराग्य षट् संपत्ति मुमुक्षुता ये चार साधन संयुक्त है वो इस ग्रन्थका अधिकारी है विवेक उसको कहते हें जिसको हेय उपादेय अर्थात् सत असत्का विचार है कि जैसे मेरी आत्मा सत्य अविनाशी है सो उपादेय है अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है तैसे ही परवस्तु अर्थात् पुद्गलविनाशी असत् है सो हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य है इसका नाम विवेक है जिसको विवेक नहीं उसको वैराग्य आदि कारण सर्व निष्फल हें विवेक अर्थात् विचार ही सर्वका हेतु है वैराग्य नाम त्यागका है जो संयमादि क्रिया अनुष्ठान उसके फलकी इच्छा अर्थात् निदान नहीं करना अर्थात् मोक्षकी इच्छाका भी त्याग उसीका नाम वैराग्य है षट् संपत्ति नाम शम, दम, श्रद्धा, उपराम, तितिक्षा और समाधि है समनाम मनको विषयसे रोककर एकाग्र करना है और इन्द्रिय गणों को अपने विषय से रोकना उसी का नाम दम है और सर्वज्ञ देवके कहे हुये सिद्धान्त उनके सतः

उपदेश देने वाले गुरूके वचनों पर विश्वास करना उसी का नाम श्रद्धा है . संसार के स्त्री पुत्र कलत्र आदि अथवा इन्द्रिय आदिकों के विषय से ऐसा भागे कि सर्पको देख करके भागतेहैं उसीका नाम उपशम है और क्रिया अनुष्ठान करता हुवा शीत ताप, क्षुधा, तृषा अर्थात् परीसोंको सहता हुवा अपनी संयमरूपी क्रतको न छोड़े उसी का नाम तितिक्षा है और चित्तकी एकाग्रताका नाम समाधि है और अपने स्वरूपको प्राप्ति और बन्धरूप कर्मकी निवृत्ति होनेकी इच्छा उसीका नाम मुमुक्षता है संबंध आदि करनेके अनन्तर वीतरागको उपदेश कहते हैं सो पहले देव गुरु और धर्मकी परीक्षा करे तो इस जगह अब "पदार्थ ज्ञाने प्रति पक्षी नियामका" इससे क्या आया कि पदार्थके ज्ञानके लिये प्रतिपक्षी नियम करके होता है तो पहले देव और गुरू और धर्मके प्रतिपक्षी कुदेव कुगुरु और कुधर्म हुवा इसवास्ते पेश्तर कुदेव और कुगुरु और कुधर्मका स्वरूप दिखाते हैं क्योंकि पहले खोटेको देखकर खोटेको खोटा जानले तो सत्यको देखतेही उसपर विश्वास उसी दम हो जाता है इसवास्ते प्रथम कुदेवका लक्षण कहते हैं जो देव तो है नहीं परन्तु लोगोंने अपनी बुद्धिसे परमेश्वरका आरोप कर लिया है सो उस कुदेवका स्वरूप तो आगे देवका स्वरूप कहेंगे उसके स्वरूपसे विपरीति होने वालेको सर्व बुद्धिमान् आपही जानेंगे परन्तु किंचित् स्वरूप जो कि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमें कहा है उसको हम यहीं दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ "ये स्त्री शस्त्राक्ष सूत्रादि, रागाद्यंक कलंकिताः निग्रहानु ग्रहपरा, स्ते देवास्युर्न मुक्तये ११॥ १॥स्त्री जिसके पास होय और शस्त्र अर्थात् धनुष, चक्र, त्रिशूल आदि जिसके पासमे होय और अक्ष सूत्र जपमाला आदि शब्दसे कमंडलु होवे फिर राग द्वेष आदि दूषणोंका चिह्न जिनमें होवे वे कुदेवके लक्षण हैं, शापका देना और वरका देना ये भी कुदेवके लक्षण हे, स्त्रीका जो संग है सो कामको कहता है शस्त्र जो है सो द्वेषको कहता है जयमाला है सो व्यामोहको कहनेवाली है और कमंडलु अशुचिको कहता है और निग्रह अर्थात् क्रोध करके शाप देकर रोग शोक आदि निर्धनादि नाना प्रकारके दुःखोंमें पटकना यहभी कुदेवके लक्षण हैं और जो अनुग्रह अर्थात् खुशी हो करके जो देवलोक इन्द्रादि पदवी देना अथवा राज्य आदि पदवी अथवा पुत्र कलत्र धन आदि नाना प्रकारके सुख देनेवालाभी कुदेव है अब देखो देव वा कुदेव प्रत्यक्ष तो है नहीं परन्तु जिसने जो २ देवमाने हैं उन्होंने अपने २ शास्त्रोंके अनुसार अपने २ देवोंकी मूर्ति व चित्र बनायकर जैसा उनके शास्त्रों में लिखा है उस चिह्न संयुक्त मकानों में अर्थात् मन्दिरों में स्थापन कररक्खे है और उनकी सेवा पूजन करते हैं सो उन मूर्तियों के चिह्नों को देखकर आत्मार्थी देव और कुदेव की परीक्षा आपही करलेगा परन्तु तो भी एक दृष्टांत लिखते हैं:— उज्जैन नगरीमें राजा भोजके समयमें राजाका जो पुरोहित था उस पुरोहित का कुछ अगाड़ी का धन उसके घर मे था परन्तु उसको मिलता न था सो उस समय में एक आचार्य उस उज्जैन नगरी में आये सो उन आचार्य्य से उस पुरोहितके आगे से कुछ गृहस्थीपने का परिचय था इसवास्ते वह पुरोहित उन गुरू महाराज के पास में गया और जायकर वन्दना नमस्कार करके उन के समीप बैठगया थोड़ी देरके बाद कहनेलगा कि गुरूमहाराज मेरे घर में जो पहले का धनथा सो नहीं मिलता है सो

ाप कुछ कृपाकरो तो वह धन मेरे हाथ लगे तो मेरा मनोर्थ सिद्धहोय तब गुरू महाराज
हे कि भाई ! हमारे को क्या लाभहोगा तो पुरोहित कहने लगा कि महाराज जो मेरे
का धन मेरे हाथ लगेगा तो मैं आपको आधा धन बांटदूंगा तब गुरूमहाराज कहने
गे कि देवानुप्रिय ! तू पक्का रहना हम तेरे से आधा लेलेंगे इतना कहकर लाभकारण
ानकर उसको उपाय बतलाय दिया उस उपाय से उस पुरोहित के घरका धन हाथ लग
या तब वह पुरोहित उस धन में से आधाधन लेकर गुरू महाराज के पास पहुँचा और
रू महाराज से कहने लगा कि मेराधन मिलगया सो आप ये आधाधन लीजिये उससमय
रू महाराज कहने लगे कि हे भाई ! इस धनकी तो मुझे दरकार नहीं क्योंकि साधू
ो द्रव्य नहीं रक्खे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज मैंने तो आपसे आधे धनका
रार किया सो आप लीजिये तब गुरूमहाराज कहने लगे कि हेभाई यह ! धन तो हमको
हीं चाहिये तेरे घर में जो धन है उसमें से आधादे तब पुरोहित कहने लगा कि और
या धन है जिसमें से आधादूं जब गुरू महाराज बोले कि हे देवानुप्रिय ! तेरे दो पुत्र
प धनहैं तिस में से एक पुत्ररूप आधा धनदे इस बात को सुनकर वह पुरोहित गुम्म
ागया और चित्त में विचारने लगा कि जो पुत्रों को कहूं और पुत्र कोई अंगीकार न
रे तो फिर मैं गुरू महाराज को क्या जवाब देऊंगा। उसने ऐसा चित्त में विचारकर
रू महाराज को कुछ उत्तर न दिया और उदास होकर अपने घरको चला आया फिर
ज्जाके मारे महाराज के पास न जासका और गुरूमहाराज भी २ तथा ४ दिवस के
ाद वहां से अन्यत्र विहार करगये वह पुरोहित भी कुछ काल के बाद आयु कर्म पूर्ण
ाने के समय गुरूमहाराज को वचन दिया था उस वचन को विचारता हुवा दुःख पाता
ा और दोनों पुत्र पास में बैठेहुये थे अपने पिताका हाल देखकर कहने लगे कि
पिता जी आप किसी चीज में चित्त मतरक्खो और परलोक सुधारो जो
ापकी इच्छा होय सो आप हमारे ऊपर आज्ञा करो हम उस को करेंगे आप
ोई तरह की चित्त में न रक्खो जो आपके दिल में होय सो आप फरमाइये
स वक्त पुरोहित ने सारी बात पिछली कह करके कहा कि मेरे को उस आचार्य
रू महाराज का ऋण देना है सो तुम दोनों जनों में से एकजना जायकर उनके
ास दीक्षा लो तो मेरा ऋण अर्थात् कर्ज़ा दूर होजाय जो मेरे दिलकी बातथी सो मैंने
हदी अब तुम दोनों मेंसे जिसकी खुशी होय सो दीक्षा लो इस बातको सुनकर बड़ा
ड़ा तो उदास होकर नीचेको देखने लगा और कुछ न बोला उस समय छोटा पुत्र कहने
गा कि हे ! पिताजी जो आपने फरमाया है सो मैं आपके परलोक हो जानेसे १२ दिनके
ाद गुरु महाराजके पास जाकर दीक्षा ले लूंगा आप कोई तरहकी चिन्ता मत करो अपना
रलोक सुधारो मैं आपके वचनको पूरा करूंगा इतनी बात सुनकर पुरोहित परलोक
र्थात् देवलोकमें गया १२ दिनके बाद उस छोटे लड़केने उन आचार्यके पास जाकर
ीक्षा लेली और बड़े पुत्रको पुरोहित पदवी मिली सो वह पुरोहित जैन मत साधोंसे द्वेष
रने लगा और अनेक तरहके उपद्रव करने लगा और जैनके साधुको जहां तक बनसका
हां तक नगरमें न घुसने देता देखा जब उपद्रव होने लगा तब वहांके श्रावकोंने उन

आचार्योंको समाचार भेजा कि महाराज आप इस पुरोहितके भाईको दीक्षा न देते तो क्या जिन धर्ममें साधुवोंकी कमी होजाती इस पुरोहितके भाईको दीक्षा देनेसे इस नगरमें साधु लोगोंका आना प्रायः करके बंद होगया क्योंकि पुरोहित साधुवोंको दुःखदेता है साधुवोंके नहीं आनेसे धर्मकी हम लोगोंके बहुत अन्तराय पड़ती है इसवास्ते आप कृपा करके ऐसा उपाय कहिये कि जिससे हमारा सुखसे धर्म ध्यान होवे ऐसी खबर सुनकर आचार्य महाराजने उस पुरोहितके छोटे भाईको उपाध्याय पद देकर कहा कि तुम साधुवोंको संग ले जायकर जो उज्जैन नगरीमें तुम्हारा जो गृहस्थीपनेका भाई है उसको प्रतिबोध देवो कि जिससे वहांके श्रावकोंके धर्मकी अन्तराय दूरहोजाय ऐसा गुरु महाराजका हुक्म सुनकर उसने साधुवोंको साथले वहांसे विहार किया रास्तेमें भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुवे उज्जैन नगरीके पास आये सायङ्काल देख करके दरवाजेके बाहिर ही ठहर गये रातभर उसी जगह अपना धर्म ध्यानकरते रहे और प्रातःकाल अपनी क्रियासे निवृत्त होकर नगरमें प्राप्त होते हुवे दरवाजेमें घुसते हुवे उनका गृहस्थीपनेका भाई सामनेसे आता हुआ मिला और उन साधुवोंको देख करके कहता हुवा कि "गर्दभ दन्त भदन्त नमस्ते" इतना शब्द सुनके उपाध्याय महाराज उस पुरोहितसे कहने लगे कि "मरकटास्य वयस्य सुखं" जब पुरोहितने ऐसा शब्द सुना तब तो अपने मनमें विचारने लगा कि यह तो मेरा छोटा भाई दीसे ऐसा समझकर लज्जा खायकर कहने लगा कि आप कहां ठहरेंगे उस समय मुनिराज ऐसा कहने लगे कि जहां तुम आज्ञादोगे वहां ही ठहरेंगे इतना वचन सुनकर दरवाजेके बाहिर अपने कामको चला गया और मुनिराज जिस जगह जिन भगवान्का मन्दिर था उस जगह दर्शन करनेके वास्ते पहुँचे जब तक मुनिराज भगवान्के दर्शन करतेथे उतनेमें श्रावक लोगोंको खबर लगनेसे वे भी आपहुंचे और इधरसे वह पुरोहित भी आपहुंचा और मुनिराजसे विनती करके अपने घरले गया और अपनी आज्ञासे उन साधुवोंको उतार दिये और अपने घरमें उन साधुवोंके वास्ते नाना प्रकारके भोजन तय्यार कराये और आयकर साधुवोंसे कहने लगा कि महाराज भोजनके लिये पधारिये तब मुनिराज कहनेलगे कि जो हमारे निमित्त करे उसके घरका आहार हमको न कल्पे इसवास्ते हम दूसरे गृहस्थियोंके घरमें जांयगे जैसा शुद्ध आहार मिलेगा वैसा ले आवेंगे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज! वक्त होगया और साधुभी झोली पातरा ले करके गृहस्थियोंके घरमें जाने लगे वह पुरोहित भी उन साधुवोंके संग हो लिया और किसी गृहस्थीके घरमें पहुँचे सो उसके और सो आहारका संयोग मिलानहीं परन्तु वह एक दहीका हांडी लेकर सामने आया और कहा कि यह शुद्ध आहार है जब साधु पूछने लगे कि भाई यह कितने दिनका है उस वक्त गृहस्थी कहने लगा कि दिन चारेकके करीबका होगा साधु कहने लगे कि यह तो हमको नहीं कल्पे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज क्या इसमें जीव पड़ गये तब साधु कहने लगे कि गुरुजाने पुरोहितने उस हांडाको लेलिया और गुरुके पास आया और कहने लगा कि जो इसमें जीव पड़ गये सो मुझको दिखावो इसमें तो जीवका नाम ही नहीं क्यों तुम लोग वृथा किया कलाप दुःख उठाते हो तब गुरु महाराज कहने लगे कि जो इसमें जीव हम तुम्हारेको दिखादें तो तुम क्या करोगे तब

तक इतना वचन सुनकर पुरोहित कहने लगा कि मैं आपका धर्म अङ्गीकार करूंगा जब गुरु महाराजने इसी समय अलता अर्थात् पोथी मंगाय कर पानीसे भिजोयकर उसका मुँह बांधकर धूपमें रखदी उसके धूप लगनेसे उसमें जो सफेद कृमि पड़ी हुईथी सो ठंढक जानकर उस लाल वस्तु पर रिंगने अर्थात् चलने लगी जब तो पुरोहितने यह देखकर उनका धर्म अंगीकार किया और श्रावकके १२ वृत ले लिये और जिन धर्मको अच्छी तरहसे मन वचन काय करके पालने लगा और लोगोंके जो धर्मकी अंतरायथी सो दूर होकर सुखसे धर्म ध्यान होने लगा फिर कुछ दिनके बाद राजा भोजको किसीने कहा महाराज! आपका पुरोहित जिन धर्मी हो गया सिवाय जैन देवके दूसरेको नहीं मानता तब राजाने पुरोहितकी परीक्षाके वास्ते नाना प्रकारके पूजनके द्रव्य केशर चंदन आदि मँगाय कर थालमें रक्खे और पुरोहितको बुलायकर कहा कि देवकी पूजन कर आवो और आदमियोंको साथ भेजे कि यह कहां कहां जाय और किस २ जगह पूजन करे और पुरोहित हाथमें थाल लेकर वहांसे चला और अपने मनमें विचारने लगा कि किसीने राजासे मेरी चुगली खाई है इसलिये राजा मेरी परीक्षा करता है सो खैर मेरे तो सिवाय वीतराग देवके दूसरा कोई देव नहीं मैं तो वीतराग देवहीकी पूजन करूंगा जो कुछ होना है सो हो जायगा और उस सभासे निकलकर पहले देवीके मकान पर पहुंचा और उस देवीका स्वरूप देखा कि एक हाथमें तो खड्ग और दूसरे हाथमें मनुष्यका शिर कटा हुवा लिये हुये है ऐसा विकरालरूप देखकर वहांसे लौट आया फिर शिवके मन्दिरमें गया उस जगह योनिमें लिङ्गका आकार देखकर वहांसेभी लौट आया और फिर ब्रह्माके मन्दिरमें पहुँचा उस जगहभी हाथमें माला और कमंडलु देखकर लौट गया और फिर रामचन्द्रके मन्दिरमें पहुचा उस जगहभी उनको धनुष बाण हाथमें लिये हुवे देखकर वहांसेभी लौट आया फिर श्री कृष्णके मंदिरमें पहुँचा उस जगह स्त्रीको पास बैठी हुई देखकर अपना एक कपड़ा उनके सामने आड़ाकर वहांसेभी चल दिया फिर श्रीऋषभदेव स्वामीके मंदिरमें पहुँचा और सामनेसे भगवतका शांतिरूप योग मुद्राको देखकर नमस्कार कर विधिसे पूजन करने लगा और जो आदमी उसके पीछे आयेथे वह दम दम राजाको खबर पहुंचाते रहे और आखिरकार खबरदी कि पुरोहितजी तो जिन मन्दिरमें पूजा करनेलगे इधरसे पुरोहितभी पूजनसे निश्चिन्त हो चैत्य वन्दन आदिक करके राजसभामें पहुंचा तो राजा पूछने लगा कि पुरोहित जी पूजन कर आये? जब उसने कहा कि हे राजन! कर आया तब राजाने पूछा किसका पूजन किया जब पुरोहित कहने लगा कि आपने देवका नाम लियाथा सो मैं देवकी पूजन कर आया जब राजाने पूछा कि आप इतने मन्दिरोंमें गये क्या वहां देवपना नहीं था सो आप सबको छोड़कर जिन मन्दिरमेंही गये और उसी जगह आपको देवकी प्रतीति हुई तब पुरोहित कहने लगा कि हे राजन्! जो मैं कहता हूं सो ध्यान देकर सुनो कि जब मैं देवीके मकान पर गया तो विकरालरूप देखकर मुझको भय मालूम हुवा सो पूजन न करसका फिर मैं महादेवके मन्दिरमें गया तो मैंने योनिमें लिङ्ग देख कर विचारा कि इनके चरण तो हैहीं नहीं तो नमस्कार किसको करूं फिर मस्तकभी इनके नहीं है केशर चन्दनादि किसको चढ़ाऊं इसीलिये वहांसेभी चल दिया और ब्रह्माके

मन्दिरमें पहुँचा वहांभी देखा कि वे माला लिये जप कर रहेथे तो मैंने विचारा कि तो किसीका जप कर रहे हैं सो देव औरही है जिसका यह जप करते हैं फिर मैं ... मकान में पहुंचा तो धनुष बाण हथियार सजे देखकर विचार करने लगा कि यह तो के लिये तय्यार हुवे हैं तो इनका कोई शत्रु है जिसके शत्रु हैं उसमे देवपना कदापि होगा देवके शत्रुका काम क्या फिर वहांसे लौटकर मैं कृष्णके मकानपर पहुँचा तो उनके एक औरतको देखा और मुझे बड़ी शरम आई और दिलमें विचारने लगा कि नीति शास्त्रमें कहा है कि जिस जगह दो मनुष्य बैठे हों उस जगह तीसरेको नहीं जाना चाहिये और जिस जगह स्त्री पुरुष हों उस जगह विशेष करके नहीं जाना चाहिये इस शर्मसे मैंने अपना कपड़ा ढक दिया कि और कोई इनको आपकर न देखे और वहांसे चलकर श्री वीतराग अरिहंतके मन्दिरमें पहुँचा और शांतरूप निर्विकारी योग मुद्रा पद्मासन दृढ़ ध्यान देखकर चित्तमें विचारने लगा कि राजाने जो देवका पूजन कहा है सो देवपना इस में है इस के सिवाय दूसरा देव जगत् में कोई नहीं क्योंकि जो देव आप तिरा होगा वोही दूसरे को तारेगा इसवास्ते हे राजन्! मैंने उस देवाधि देव का पूजन किया जो आप कहते कि फलाने का पूजन कर आओ तो मैं उसी का कर आता इसवास्ते मैंने देव की परीक्षा करके देवकी पूजन की। पुरोहित की इतनी बात सुन राजा चुप हो रहा और पुरोहित जी फिर सुख से अपने धर्म ध्यान में मग्न अपनी आत्मा का कल्याण करने लगा॥ अब बुद्धिमान् पुरुषों को अपनी बुद्धि से देव और कुदेव का स्वरूप जान लेना चाहिये. और कुगुरु का वर्णन हम पीछे कर आये हैं क्योंकि जो अनात्मा का उपदेश करने वाले और शुद्ध देव का स्वरूप न बताने वाले और अपने भ्रमजाल में फँसाने वाले और संसार में जन्म मरण कराने वाले हैं वही कुगुरु हैं और जो हम गुरु का लक्षण कहेंगे उससे भी कुगुरु की प्रतीति हो जायगी जो कुदेव और कुगुरु का उपदेश है वही अधर्म है अब इस निष्प्रयोजन को बहुत बढ़ाने से सरा अर्थात् लिखाना ठीक नहीं है अब शुद्ध देव का स्वरूप कहते हैं—'सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देवः' अब अरहंत का लक्षण कहते हैं कि अरहंत शब्द के तीन भेद है— १ अरुहंत २ अरहं ३ अरिहंत। तो नाह रुही अंकुरा यस्य स अरुहंतः २ अर्थात् नहीं है जन्म मरण रूपी अंकुरा जिसमें उसका नाम अरुहंत ऐसा कौन २ कि सिद्ध भगवान् हैं और अरहं शब्द जो है सो पूजावाची है अर्थात् पूजनेके जो योग उस का नाम अरहंत इन्द्रादि देवता और चक्रवर्ती को आदि लेकर जो मनुष्य इस का पूजन अर्थात् सेवा करने के योग्य हो सो कौन है कि श्री तीर्थंकर महाराज चतुर्विध संघ के स्थापन करके तीर्थ की चलाने वाले उन का नाम अर्हं है। और अरिहंत उस को कहते हैं कि अरि जो वैरी तिस को जो हने सो अरिहंत सो अरिहंत दो प्रकार का है एक तो लौकिक २ लोक उत्तराश्रय लौकिक अरिहंत, राजा आदिक को कहते हैं क्योंकि राजा आदिक भी अपने शत्रु को हनते है और लोक उत्तर का लक्षण यह है कि "चित्त धारि कर्मा निर्पति याने केवलं मुक्तपादय इति अरिहंत" और लक्षण उस को कहते हैं कि जिस में अति व्याप्ति और अव्याप्ति और असंभव ये तीन दूषण न हों अब इन तीनों को दृष्टान्त देकर बतलाते हैं जैसे कि गाय सींग वाली होती हैं तो अब

इस लक्षण से बकरी भैंस इत्यादि सींगवाले सब जानवर आगये यह अति व्याप्ति है क्यों-
कि जो लक्षण बहुत जगह चला जाय उसी को अति व्याप्ति कहते हैं; अव्याप्ति उस को
कहते हैं कि जो सिर्फ़ एक देश में रहकर सर्व सजाती का स्वरूप न कहे जैसे गऊ काली
होती है तो देखो गऊ काली भी होती है पीली भी होती है इसलिये सर्व गौवों का लक्षण
न हुवा इसलिये अव्याप्ति हुवा असम्भव उस को कहते हैं कि जिस चीज़का लक्षण करे उस
का तो एक अंशभी न आवे और दूसरी जगह चलाजाय जैसे एक खुरवाली गऊ होतीहै तो
एक खुरतो गधे वा घोड़े के होता है और गऊ तो दो खुर ही होती है तो गाय में एक अंश भी
लक्षण का न गया इसलिये असंभव हो गया तो गाय का असल लक्षण क्या हुवा कि
जैसे गऊ के सासन् अर्थात् गले का चमड़ा लटकता हुवा और सींग और पूंछ हो उस
का नाम गाय है इस लक्षण से सर्व गायों की प्रतीति हो जायगी अर्थात् गऊ के सिवाय
और में यह चिह्न न पावेंगे। इसी रीति से सब जगह लक्षण का स्वरूप जान लेना ऐसे
ही श्रीअरिहंतका लक्षण जान लेना कि चार कर्मघाती को हने और केवल ज्ञान केवल दर्शन
प्रगट अर्थात् उत्पादन करे ऐसा जो अरिहंत सो देव है अब यहां कोई ऐसी शंका करे
कि कर्मों को जब हनं नाम मारे तो फिर इन को अहिंसक कैसे कहना तो हम कहते हैं
कि हे भोले भाइयो! जिन आगमके रहस्य को जान और हिंसा का स्वरूप देख क्या होता
है कि "प्राण वियोग अनुकूल व्यापारा इति हिंसा" अर्थ-कि प्राण जुदे होने का
व्यापार करना उस को हिंसा कहते हैं सो इस जगह कर्म जो है सो पुद्गल अर्थात् अजीव
है इस अजीवरूपी कर्मों में कोई प्राण है नहीं इसलिये कर्म हनने में हिंसा न हुई अब
इस जगह सजाती विजाती की चौभंगी दिखाते हैं, सजाती नाम जिस का है कि जिस का
लक्षण गुण एक मिले जैसे जीवका लक्षण उत्तराध्ययनजी में ऐसा कहा है (गाथा)
नाणंच दंसणंचेव चारित्तंच तवो तहा वीरियं उवओगो य एयं जीवस्स लक्खणं ॥" अर्थ-१ज्ञान
२ दर्शन ३ चारित्र ४ तप ५ वीर्य और ६ उपयोग ये छः जीवका लक्षण है इस में वि-
जाती वह है जिस में यह लक्षण न मिले, तो सजाती तो कौन हुवा कि जीव और वि-
जाती पुद्गल अर्थात् कर्म अजीव हैं इन दोनों की चौभंगी इसतरह होती है कि १ जीव
को जीवहने, २ जीवको अजीव हने, ३ अजीव को जीवहने और ४ अजीव को अजीव
हने, (प्रथम भंग) जैसे [illegible]
[illegible]

मन्दिरमें पहुँचा वहांभी देखा कि वे माला लिये जप कर रहेथे तो मैंने विचारा कि तो किसीका जप कर रहे हैं सो देव औरही है जिसका यह जप करते हैं फिर मैं ... मकान में पहुंचा तो धनुष बाण हथियार सजे देखकर विचार करने लगा कि यह तो के लिये तय्यार हुवे हैं तो इनका कोई शत्रु है जिसके शत्रुहैं उसमे देवपना कदापि न होगा देवके शत्रुका काम क्या फिर वहांसे लौटकर मैं कृष्णके मकानपर पहुँचा तो उनके पास औरतको देखा और मुझे बड़ी शरम आई और दिलमें विचारने लगा कि नीतिशास्त्रमें कहा है कि जिस जगह दो मनुष्य बैठे हों उस जगह तीसरेको नहीं जाना चाहिये और जिस जगह स्त्री पुरुष हों उस जगह विशेष करके नहीं जाना चाहिये इस शर्मसे मैंने अपना कपड़ा ढक दिया कि और कोई इनको आयकर न देखे और वहांसे चलकर श्री वीतराग अरिहंतके मन्दिरमें पहुँचा और शांतरूप निर्विकारी योग मुद्रा पद्मासन दृढ़ ध्यान देखकर चित्तमें विचारने लगा कि राजाने जो देवका पूजन कहा है सो देवपना इस में है इस के सिवाय दूसरा देव जगत् में कोई नहीं क्योंकि जो देव आप तिरा होगा वोही दूसरे को तारेगा इसवास्ते हे राजन्! मैंने उस देवाधि देव का पूजन किया जो आप कहते कि फलाने का पूजन कर आओ तो मैं उसी का कर आता इसवास्ते मैंने देव की परीक्षा करके देवकी पूजन की। पुरोहित की इतनी बात सुन राजा चुप हो रहा और पुरोहित जी फिर सुख से अपने धर्म ध्यान में मग्न अपनी आत्मा का कल्याण करने लगा॥ अब बुद्धिमान् पुरुषों को अपनी बुद्धि से देव और कुदेव का स्वरूप जान लेना चाहिये. और कुगुरु का वर्णन हम पीछे कर आये हैं क्योंकि जो अनात्मा का उपदेश करने वाले और शुद्ध देव का स्वरूप न बताने वाले और अपने भ्रमजाल में फँसाने वाले और संसार में जन्म मरण कराने वाले हैं वही कुगुरु हैं और जो हम गुरु का लक्षण कहेंगे उससे भी कुगुरु की प्रतीति हो जायगी जो कुदेव और कुगुरु का उपदेश है वही अधर्म है अब इस निष्प्रयोजन को बहुत बढ़ाने से सरा अर्थात् लिखना ठीक नहीं है अब शुद्ध देव का स्वरूप कहते हैं—'सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देवः' अब अरहंत का लक्षण कहते हैं कि अरहंत शब्द के तीन भेद हैं— १ अरुहंत २ अरहं ३ अरिहंत। तो नाह रुही अंकुरा यस्य स अरुहंतः २ अर्थात् नहीं है जन्म मरण रूपी अंकुरा जिसमें उसका नाम अरुहंत ऐसा कौन २ कि सिद्ध भगवान् है और अरहं शब्द जो है सो पूजावाची है अर्थात् पूजनेके जो भोग उस का नाम अरहंत इन्द्रादि देवता और चक्रवर्ती को आदि लेकर जो मनुष्य इस का पूजन अर्थात् सेवा करने के योग्य हो सो कौन है कि श्री तीर्थंकर महाराज चतुर्विध संघ के स्थापन करके तीर्थ की चलाने वाले उन का नाम अर्हं है और अरिहंत उस को कहते हैं कि अरि जो वैरी तिस को जो हने सो अरिहंत सो अरिहंत दो प्रकार का है एक तो लौकिक २ लोक उत्तराश्रय लौकिक अरिहंत, राजा ... को कहते हैं क्योंकि राजा आदिक भी अपने शत्रु को हनते हैं और लोक उत्तर ... न यह है कि "चित्त घाति कर्मा निर्यति यानेकेवलं मुक्तापाद्य इति अरिहंत" और ... को कहते हैं कि जिस में अति व्याप्ति और अव्याप्ति और असंभव ये तीन अब इन तीनों को दृष्टान्त देकर बतलाते हैं जैसे कि गाय सींग वाली है

निमित्त कारण अङ्गीकार करे और जो अपने गुण प्रगट करनेके वास्ते भाव देव माने इस कोभी अपेक्षासे भाव निक्षेपा कहतेहें । (११) प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहें कि जैसे जिस कालमें इस भरत क्षेत्रमें केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर विचरतेथे उस वक्त जो लोग देखतेथे उन देखनेवालोंको वो प्रत्यक्ष देवथे वा जैसे महाविदेह क्षेत्रमें केवली तीर्थंकर महाराज उपदेश देते हुवे विचरतेहें वेभी प्रत्यक्षदेवहें अथवा उन प्रत्यक्ष देवोंको देखकर जो उनके आकारसे चित्र अथवा मूर्ति बनाई है उससे वो प्रत्यक्ष देव हें क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जिन प्रतिमा जिनके समान है (१२ अनुमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहें-अनुमान किसरीतिसे है कि जैसे धूमको देखनेसे अग्निका अनुमान होता है कि अग्नि है इसीतरह वचनके सुननेसे पुरुषका अनुमान होताहै तो इस जगहभी पक्षपात रहित अनुभवरूपी स्याद्वाद अनेकान्त करके संसारका स्वरूप मोक्षका मार्ग बतायाहै ऐसे वचनों करके मालूम होता है कि कोई सर्वज्ञ देव है अथवा उसका चित्र वा मूर्ति देखनेसे अनुमान करतेहें कि जैसे यह मूर्ति शांति ध्यानारूढ़ पद्मासन लगाये है और अविकारी है इसके देखनेसे भव्य जीव अनुमान करतेहें कि जिसकी यह मूर्ति है उसकाभी स्वरूप शान्त ध्यानारूढ पद्मासन अविकारी है कोई देवही होगा इस अनुमानसे देवका स्वरूप कहा । (१३) उपमा प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहें-कि जैसे लोक व्यवहारमें कहतेहें कि यह पुरुष कैसा वीतराग है इस वीतराग शब्दकी उपमा देनेसे सिद्ध होताहै कि कोई वीतराग था कि जिसकी उपमा देतेहें अथवा जैसे श्रेणकका जीव आवती चौवीसी में तीर्थंकर होगा तो उनको उपमा देते हैं कि जैसे इस काल में श्री महावीर स्वामी हुये उस मुवाफ़िक़ श्री पद्मनाथ स्वामी होंगे वर्त्तमान काल के चौवीसवें तीर्थंकर की भविष्यत् काल में होनेवाले प्रथम तीर्थंकर है उनको उपमा देकर वर्णन किया यह उपमा प्रमाण हुवा (१४) आगम प्रमाण से देवका स्वरूप कहते हैं कि जो आगमों में देव का स्वरूप लिखा है कि ३४ अतिशय ३५ वाणी इत्यादि अनेक प्रकार करके आगमों में बहुत वर्णन किया है सो यहां लिखने की कुछ जुरूरत है नहीं क्योंकि आगम में प्रसिद्ध है इस करके देव का स्वरूप कहा (१५) द्रव्य थी देव का स्वरूप कहते हें सो द्रव्ययोंके दो भेद हें १ लौकिक. २ लोकउत्तर. लौकिक देव तो उसको कहते हें कि जो भवन पति, व्यंतर, ज्योतिषी वैमानिक हें जैसे अमरकोप में कहा है कि " अमरा निर्ज्जरा देवा " इन को लौकिक में द्रव्यथी देव कहते हें लोक उत्तरदेव उसे कहते हें कि जिस समय में तीर्थंकर महाराज दीक्षालेकर चार ज्ञान सहित विचरते थे अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञानकरके सहित देशना न देवे उसवक्त में द्रव्यदेव होते हें इस रीति से द्रव्यथी देवका स्वरूप कहा। (१६) क्षेत्र थी देवका स्वरूप कहते हें-कि जिस क्षेत्र में तीर्थंकर विचरे उसको क्षेत्रथी कहते हें जैसे १५ कर्म भूमि इस में ५ भर्त और ५ अईर वृत और ५ महाविदेह इन १५ क्षेत्रों में विचरने वाले जो हें उस में भी जैसे भरत क्षेत्र में २५ आर्य्य देश कहे तथा जिन क्षेत्रों में तीर्थंकरों का गर्भ उत्पत्ति जन्म दीक्षा केवल ज्ञान निर्वाण होय वा केवल ज्ञानी विचरे उनको क्षेत्रथी देव कहिये (१७) कालथी देवका स्वरूप कहते हें कि जिस काल में तीर्थंकरों का जन्म अथवा दीक्षा होय वा केवल ज्ञान होय जैसे श्री ऋषभदेव स्वामी

तीजे आरे में उत्पन्न हुये जबसे लेकर २४ में श्री महावीरस्वामी चौथे आरे के मोक्ष गये तो इन दश क्षेत्रों की अपेक्षा से काल इसी रीतिसे लिया जायगा और पांच महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा करके तो काल शास्वता है क्योंकि उन क्षेत्रों में कोई समय ऐसमा नहीं कि जिस समय में तीर्थंकर वा केवली न पावे ये काल से देवका स्वरूप कहा। (१८) भावसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जिस समय समोसरण में बैठेहुवे भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हैं आत्मा का स्वरूप बताय कर भव्य जीवों को मोक्षमें पहुंचाते हैं उस समय में भावसे देव कहना चाहिये यह भावसे देवका स्वरूप हुवा। (१९) अब अनादि अनन्त भांगे से देवका स्वरूप कहते हैं—कि अनादि अनन्त शब्द का अर्थ यह है कि-जिस की आदि नहीं और अन्त नहीं उसको अनादि अनन्त कहते हैं तो देखो कि 'अरिहंत' इस शब्द को अनादि अनन्त कहते हैं क्योंकि यह शब्द कब उत्पन्न हुवा सो नहीं कह-सके और यह शब्द कभी नष्ट होजायगा येभी नहीं कहसके इसलिये नाम से अनादि अन-न्त देव हुवा स्थापना में जो कि शास्वती जिन प्रतिमा है क्योंकि न तो वे किसी की बनाई हुई हैं और न कभी उन जिन बिम्बों का अभाव होगा इसलिये स्थापना करके अनादि अनन्त है महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा करके एकसमा कभी न होगा कि उस जगह छद्मस्थ तीर्थंकर न पावे और इसी क्षेत्रकी अपेक्षा करके कभी भाव तीर्थंकर न पावे न पावेंगे ऐसा कोई काल में न होगा इसरीतिसे अनादि अनन्त देवका स्वरूप हुवा। (२०) अब अनादि सांत भांगे से देवका स्वरूप कहते हैं—जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे देव को मानता हुवा और ऋजुसूत्र नयसे अपने में ही देवपना उपयोग देकर मानने लगा अथवा बारवें गुण ठाणे चढ़के क्षीपक श्रेणी करके बाद में गुण ठाणे में अपना देवपना प्रगट किया तो जो अन्य को अनादि से देव बुद्धिमान गया यह बुद्धि अन्यको देव मानने की अनादि की थी सो उसजगह शान्तहोगई यह अनादि सांत भांगे से देवका स्वरूप कहा। (२१) अब सादि सांत भांगे से देवका स्वरूप कहते हैं—कि जो भव्यजीव व्यवहार नय से अन्य भ.व जो तीर्थंकरों का देवपना है उस को निमित्त कारण मानकर स्तुति करता है और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ध्यान द्वारा अपनी आत्मा में उ-पयोग देता हुवा अपने ही को देव मानता हुवा फिर ऋजुसूत्र नय का उ-पयोग छूट गये तब व्यवहार नयसे अरिहंत को देव मानने लगा तो अपनी आत्मा को देव माना उस की आदि है फिर जब अरिहंत को देव मान-ने लगे आत्मा का देव माना था जिस का अन्त हुवा अथवा दूसरी रीति से कि जिस वक्त शुद्ध देवका देव बुद्धि करके मानता है उस वक्त तो शुद्ध देव मानने की [illegible] आदि हुई और फिर मिथ्यात्वके प्रकृत उदय होनेसे शुद्धदेवको छोड़ कुदेवको मानने लगा इस रीतिसे सादि सांत भांगेसे देवका स्वरूप कहा॥ (२२) अब सादि अनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जैसा जो तीर्थंकरोंके भाव देव हुवे उन्होंने [illegible] देवपना प्रगट हुवा उस देवपनेके प्रगट होनेकी तो आदि है फिर उसका [illegible] कभी विनाश नहीं इसलिये सादि अनन्त हुवा अथवा जिस किसी भव्य जीव-[illegible] अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त

र्थ प्रगट किये और जो प्रगट हुआ देवपना उसकी तो आदि है और उस देवपनेका कभी अन्त नहीं होगा इसलिये अनन्त है यह सादि अनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहा। (२३) अब नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं—कि देव जो है सो नित्य है क्योंकि सिद्धकी अपेक्षा करके देव नित्य है अब कोई ऐसी शङ्का करके चार घाति कर्म क्षय करे उसको देव माना है फिर सिद्धिमें क्यों घटाते हो तो हम कहते हैं कि देखो अरिहंत यह शब्द नित्य है अब यहां कोई ऐसी शङ्का करे कि जिस वक्त सर्पनी उत्सर्पनी कालके बीचमें जो धर्मका बिल्कुल उच्छेद हो जाता है फिर नवीन तीर्थंकर नोकारादि बताते हैं जैसे अब प्रथम श्री ऋषभदेव स्वामी उत्पन्न हुयेथे उनके पेश्तर तो नोकार कोई नहीं जानता था श्री ऋषभदेव स्वामीके पीछे "नमो अरिहंताणं" इस पदको जानने लगे ऐसेही पञ्चमे आरेके अन्तमें जब धर्म विच्छेद होगा तो नोकारभी विच्छेद हो जायगा फिर जब श्री पद्मनाभ तीर्थंकर उत्पन्न होंगे तब फिर "नमो अरिहंताणं" इस पदको जानेंगे इसलिये यह अनित्य ठहरा तो इस शङ्काका समाधान यह है कि—"००नमो अरिहंताणं" यह पद तो नित्य है परन्तु धर्मके जानने वालेके अभावसे इस पदका ओवान होगया लिये यहपद नित्यही दूसरा ठहरा समाधान यह है कि महाविदेह क्षेत्रमें इस पदका किसी कालमें ओवान नहीं होता है और उस महाविदेह क्षेत्रमें द्रव्य और भाव करकेभी अरिहंतका किसी कालमें अभाव नहीं इसवास्ते देव नित्य ठहरा यह नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२४) अब अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जो भव्य जीवने ... गुण ठानेमें च्यार घाति कर्म क्षय करके जो केवल ज्ञान, केवल दर्शन, उत्पन्न किया सो अपना देवपना प्रगट होनेसे अन्यदेवको जो देव बुद्ध करके मानता था सो वह अन्य... बुद्धी अन्यतताको प्राप्त हो गई यह अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२५) अब (एक) पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जो चारघाति कर्म क्षय करे और केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न करे वह सर्व जीवोंकी एक रीति है क्योंकि कोई इस रीतिके सिवा दूसरी रीतिसे केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं करसके इसीवास्ते जिन धर्ममें "नमो अरिहंताणं" इस पदके कहनेसे सर्व तीर्थंकर और सामान्य केवली सर्व इस पदके अन्तर्गत होनेसे एक पदसे सर्वको नमस्कार हो गया यह एक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२६) अब अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं—कि जैसे अबकी चौबीसीमें चौबीस तीर्थंकर हुये उनको जुदे२ तीर्थंकर मानते हैं और उनकी देहकी अवगाहना जुदी २ होनेसे जुदे २ देव कहे जाते हैं और जिस २ भव्य जीवको जिस तीर्थंकरके शासनमें समकित या मोक्षकी प्राप्ति होय वह भव्य जीव उसी तीर्थंकरको विशेष अपेक्षासे देव मानता हुआ; इसवास्ते अनन्ती चौबीसीमें अनन्ते तीर्थंकर हुवे तो द्रव्य करके अनन्ते देव हुवे; यह अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२७) अब सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं—कि देवका द्रव्य, देवका क्षेत्र, देवका काल, देवका भाव, इन करके तो देवपना सत्य है—तो देवका द्रव्य क्या है कि गुण पर्यायका भाजन उसीको द्रव्य कहते हैं क्षेत्र उसको कहते हैं कि जिसने ज्ञानादि गुण रहे अब काल उत्पाद व्यय अर्थात् जिस समयमें ज्ञान है उस समयमें दर्शन नहीं और जिस समयमें दर्शन है उस समयमें ज्ञान नहीं इस तरह जो ज्ञान और दर्शनका उत्पाद

व्यय उसीका नाम काल है; भाव उसको कहते हैं-कि जो अपने स्वरूपमें रमणता करना करके देव सत्य है अथवा देव उसीका नाम है जो तारनेवाला है क्योंकि वह उपदेशक है और सत्य स्वरूपही है जो उसके सत्य स्वरूपको देखकर उसके कहेहुये उपदेशको ग्रहण करके जो क्रिया करेगा सो सत्य स्वरूपको प्राप्त होगा यह सत्य पक्षसे स्वरूप कहा। (२८) अब असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि असत्य देव देवका द्रव्य कुदेवका क्षेत्र, कुदेवका काल, कुदेवकाभाव व इन चारों करके कुदेवके स्वरूपसे पका स्वरूप असत्य है जो कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य न माने तो कोई सिद्धि नहीं होय और सत्यदेवपनेमें भी असत्यपना आजाय और भव्य जीवोंका कोई सिद्धि न होय इसवास्ते कुदेवकी अपेक्षासे सत्यदेव भी असत्य है यह असत्य पक्षसे स्वरूप कहा ॥ (२९) अब वक्तव्य । (३०) अवक्तव्य इन दोनों पक्षोंसे स्वरूप कहते हैं वक्तव्य क० देवका स्वरूप अनेक रीतिसे जिज्ञासूको समझाते हैं और स्तुतिआदिक करते हैं परन्तु उसके गुण स्वरूपका पार नहीं आता है इसवास्ते अवक्तव्य स्वरू है क्योंकि जैसा देवका स्वरूप है वैसा मनुष्य, देवता, की तो क्या चले परन्तु भगवान् ज्ञानसे जाने किन्तु वचनसे कह नहीं सके यह वक्तव्य, अवक्तव्य पक्षसे देवक स्वरूप कहा। (३१) अब भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं-देखो कि जित तीर्थंकर होते हैं उन सबमें आपसमें अवगाहना लक्षणोंसे भेद होता है अथवा सामान केवलीसे तीर्थंकरोंमे भेद होता है क्योंकि देखो तीर्थंकर महाराज त्रिगडामें बैठकर देश देते हैं और सामान्य केवली बिना त्रिगडेमें बैठे देशना देते हैं अथवा केवली देशनाही नहीं देते हैं एक तो इसरीतिसे भेद स्वभाव है दूसरी रीतिसे यह है कि जो जीव स्तुति आदिक करता है कि हे प्रभु ! मेरेको तारो भेद स्वभाव होनेही से यह कार बनता है अथवा २४ तीर्थंकरोंको जुदा २ देव मानते हैं ये भेद स्वभावसे देवका स्व कहा। (३२) अब अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं-कि जितने तीर्थंकर अथवा जितने सामान्य केवली हुये उनमें कोई तरहका भेद नहीं है क्योंकि अपने ज्ञा दर्शन चारित्रमें रमणता करना यही सबका स्वभाव है इस रमणता रूप स्वभावमें किसी में फर्क नहीं अथवा जिस वक्तमें जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे स्तुति करता हुआ वही एवंभूत भाव स्वरूपका विचारता हुआ ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे अप शक्ति भावमें देवकी व्यक्ति भावका अध्यारोप अभेद करके अभेद स्वभाव मानता है, यह अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा। (३३) अब भव्य स्वभाव और (३४) अभव्य स्वभा देवका स्वरूप कहते हैं भव्य नाम उसका है कि जिसका पलटण स्वभाव हो तो है सो देवका भव्य स्वभाव न हो तो जो सेवक पलटण रूप उसकी कदापि न देख अथवा जो भव्य जीव देवके स्वरूपको विचारे है उस वक्त जो २ देवके स्वरूपके स्वरूपका कारण हुआ [illegible] उस भव्य जीवका परिणाम जो है सो उस प्रभुके गुण [illegible] पलटण हुआ [illegible] है सो देवका भव्य स्वभाव होनेसे उस देवको मानने [illegible] भव्य स्वभाव हुआ अब इसमें जो विपरीत स्वभाव है जो कदापि न पलटे उ अभव्य स्वभाव कहते हैं सो [illegible] देवमें देखना प्रगट हुआ सो कदापि न पलटेगा [illegible]

जो कोई भव्य जीवने शुद्ध निश्चनयसे जो देवका स्वरूप जौल खलिया (जानलिया) वो उस भव्य जीवसे देवका स्वरूप कदापि न जायगा इसरीतिसे भव्य अभव्यसे देवका स्वरूप कहा। (३५) नित्य स्वभाव (३६) अनित्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं देवमें भव्य जीवको तारनेकाही नित्य स्वभाव है अथवा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उसमें जो रमणता वही उसका नित्य स्वभाव है इससे जो विपरीति सो अनित्य स्वभाव है अर्थात् परवस्तुमें न रमणता करना उस परवस्तुमें प्रवृत्त न होना इसकी अपेक्षा करके अनित्य स्वभाव है अथवा जो जीव उसकी देव न माने उस जीवको वो न तार सके इस अपेक्षासे देवका अनित्य स्वभाव हुवा। (३७) परम स्वभाव देवका यही है कि जो भव्य जीव देवको देवबुद्धि मानकर उनके उपदेशको अंगीकार करे उसीको वे तारतेहैं उनमें जो तारनेका स्वभाव वोही परमस्वभाव है यह देवमें परम स्वभाव कहा। अब छः कारकसे देवका स्वरूप कहते हैं (३८) कर्ता (३९) कर्म (४०) कारण (४१) सम्प्रदान (४२) अपादान (४३) आधार-जिस वक्तमें जो जीव देवपना प्रगट करनेको प्रवृत्त होता है वह जीव कर्ता है और देवपना प्रगट होना वह उसका कार्य्य है और जो शुक्ल ध्यानादिकसे जो गुणठाणेका चढ़ना है उसमें कारण है जिसके अर्थ कार्यको करे उसका नाम सम्प्रदान है तो इस जगह सम्प्रदान कौन है कि आत्मामें रमणके वास्ते-यह सम्प्रदान हुवा अपादान उसको कहते हैं कि पहली पर्यायका व्यय होना और नवीन चीजका उत्पाद होना उसका नाम अपादान हैतो इस जगह चार कर्म घातियोंका क्षय होना और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अनन्त वीर्य्य का प्रगट होना यह इस जगह उपादान हुवा आधार उस को कहते हैं कि जो प्रगट हुई चीज को धार रक्खे तो इस जगह आधार कौन है कि जो गुण प्रगट हुए उन को आत्मा मे धारण किया इसलिये आत्मा मे आत्मा का आधार है अब ७ नय से देव का स्वरूप कहते हैं (४४) नैगम नय से जिस वक्तमें तीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ उस वक्त में इन्द्र ने अवधि ज्ञान से देख भगवत् का जन्म जान अपने देवलोक में घंटा बजाया इसी लिये ६४ इन्द्र भगवत् का जन्म महोत्सव के वास्ते भगवत् को मेरु पर ले जाय कर महोत्सव करके अपने जन्म को सफल करते हैं इस जगह भगवत् की पूजा अतिशय प्रगट हुई। (४५) अब संग्रह नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब भगवान् को लोकान्तिक देवों ने आय कर वधायन अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभो! तीर्थ को प्रवर्तावो और भव्य जीवों को तारो फिर भगवान् वर्षी दान देने लगे और फिर वर्षीदान देकर दीक्षा महोत्सवमें मनुष्य और देवता सब इकठ्ठे होकरके वनमें जहां उन को दीक्षा लेनी थी वहां जाय पहुँचे यहां तक संग्रह नय का स्वरूप हुवा। (४६) अब व्यवहार नय से देव का स्वरूप कहते हैं-कि जब भगवत् ने आभरणादिक सब उतार कर सर्व वृत्त सामायिक उच्चारण किया और पंचमुष्टी लोच करके अनगार अर्थात् साधु बन गये और पांच समिती तीन गुप्ती पालते हुये देशों में विचरने लगे यहां तक व्यवहार नय हुई। (४७) अब ऋजुसूत्र नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब भगवत् अपनी आत्मा का अन्तरंग उपयोग देकर आठमे गुण ठाणे में सविकल्प पृथक्त्व सवीचार शुक्ल ध्यान का प्रथम पाया में आत्म स्वरूप विचारने लगे यहां तक ऋजुसूत्र नय हुई। (४८) अब शब्द

नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब क्षीण मोही बारहमे (१२) गुण ठाणे हुवे तब एकत्व वितर्क अप्र विचार नामा दूजे पाये में स्थित होकर चार घन [illegible] क्षय करते हुवे यहां तक शब्द नय हुवा। (४९) अब समभिरूढ नय से [illegible] कहते हैं कि जब चार घन घाती कर्म को क्षय किया उसी वक्त केवल, ज्ञान, दर्शन, उत्पन्न होकर लोक अलोक के भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालके स्वरूप को देखते हैं; ज्ञान से जानते हैं; यहां तक रूढ समभिनय से देव का स्वरूप हुवा। ([illegible]) अब एवं भूत नय से देव का स्वरूप कहते हैं-कि जब भगवत् को केवल ज्ञान, दर्शन उत्पन्न हुवा उसी वक्त ६४ इन्द्र आय कर चार निकाय के देवताओंने मिलकर समवसरण की रचना करी और आठ महा प्रतिहार संयुक्त सिंहासन के ऊपर भगवत् [illegible] न हुवे तीन छत्र शिर के ऊपर ढलते हुवे इन्द्र चमर करते हुवे तीनों तरफ तीन बिंब भगवत् विराजमान होते हुवे चौतीस अतिशय पैंतीस वाणी चार परखदा के सामने देते हैं उस वक्त एवं भूत नय वाला देव माने ७ नय करके देव का स्वरूप कहा इन [illegible] अनेक भेद हैं क्योंकि नय चक्र में २८ भेद कहे हैं विशेष आवश्यक में ५२ भेद कहीं ५०८ भेद कहे हैं और कहीं सातसौ भेद भी कहे हैं; अब जो सब खुलासा करके सबों का स्वरूप कहें तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जाय इसलिये दिग्मात्र ही यहां कहा है-अब सप्त भंग से देवका स्वरूप कहते हैं। प्रथम (५१) स्यात अस्तिभंगा है स्यात शब्द का अर्थ कहते हैं कि स्यात अव्यय है सो अव्यय के अनेक अर्थ होते हैं यदि उक्तं "धातूनां [illegible] अव्ययानां अनेक अर्थानी की व्याख्यी" इसवास्ते स्यात पद दिया जाता है स्यात [illegible] स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभाव करके अस्ति है यह प्रथम भांगा हुवा। (५२) [illegible] नास्ति देव जो है सो स्यात नहीं है किस करके कि कुदेव करके सो कुदेवका द्रव्य, [illegible] काल भाव करके नास्ति है जो कुदेव करके देव मे नास्तिपना नहीं मानें तो [illegible] [illegible] सिद्धी नहीं हो क्योंकि कुदेव में तो कुगति देने का स्वभाव है और देव में [illegible] [illegible] अर्थात् मोक्षही देने का स्वभाव है जो देव में कुदेव का नास्तिस्वभाव न होता तो [illegible] मोक्ष साधन निमित्त कारण कभी नहीं बनता इसवास्ते 'स्यात् देवो नास्ति' यह दूसरा भांगा हुवा। (५३) अब स्यात अस्ति स्यात नास्ति भांगा कहते हैं कि जिस समय में देवमें देवत्वपनका अस्तित्व है उसी समय देव में कुदेवपने का नास्ति [illegible] पना है सो यह दोनों धर्म एकही समय में मौजूद है इसवास्ते तीसरा भांगा हुवा। ([illegible]) अब स्यात अवक्तव्य चौथा भांगा कहते हैं सो स्यात देव अवक्तव्य है [illegible] [illegible] [illegible] में न आवे तो जिस समय देव में देवत्वपनेका अस्तिपना है उसी समय देव में कुदेवपनेका नास्तिपना है सो दोनों धर्म एक समय होने से जो अस्ति कहें [illegible] [illegible] नास्तिपनेका मृषावाद आता है और जो नास्ति कहें तो अस्तिपनेका मृषावाद आता है [illegible] [illegible] है क्योंकि दो अर्थ कहनेकी एक समयमें वचनकी शक्ति नहीं। कि जो एक [illegible] [illegible] [illegible] इसवास्ते अवक्तव्य है। ([illegible]) अब स्यात अस्ति अवक्तव्य [illegible] [illegible] [illegible] अवक्तव्य [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] अस्तिपना है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

करके रस और इन्द्रियसे प्राप्त हुवा जो गानेका रस उसको जानता है परंतु वचनसे यह ही कहता है कि आहा! क्या बात है. अथवा शिर हिलानेके सिवाय कुछ नहीं कह सक्ता तो देखो कि उस राग रागिनीका मजा तो उस पुरुषके अस्तिपनेमें है परन्तु वचन करके न कहसके इसीरीतिसे देवमें देवत्वपनेमें जानने वालेको देवत्वपना उसके चित्तमें अस्ति है परन्तु वचनसे न कहसके इसवास्ते स्यात् अस्ति अवक्तव्य पांचमा भांगा हुवा (५६) अब स्याद नास्ति अवक्तव्य भांगा कहतेहैं स्यातदेव नास्ति अव्यक्तव्यतो नास्तिपनाभी देवमें नास्तिपनेसे है परन्तु वचनसे कहनेमें नहीं आवे क्योंकि जिस समयमें देवका अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तिपना उस देवमें घने हुवेको विचारने वाला चित्तमें विचारता है परन्तु जो चित्तमें ख्याल है सो नहीं कह सकता है इसलिये स्यात नास्ति अवक्तव्य छठा भांगा हुवा (५७) अब स्यात अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य भांगा कहतेहैं कि स्यात्देव अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य तो जिस समय में देवमें अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तित पना युग पद कहतां एक काल में अवक्तव्य कहतां जो नहीं कहसके क्योंकि देखो मिश्री और कालीमिर्च घोटकर जो गुलाब जल मिलाकर बनाया है जो पुरुष उस प्याले को पीता है सो उस मिश्री का और मिर्च का एक समय में पीता हुवा स्वाद को जानता है परन्तु उनके जुदे २ स्वभाव एक समय कहने के समर्थ नहीं क्योंकि वह जानता तो है कि मिर्च का तीखापन है और मिश्री का मीठापन है क्योंकि गलेमें मिर्च तो तेजी देती है और मिश्री मीठी शीतलताको देती है परंतु दोनोंके स्वादको जानकर कह नहीं सके इसीरीतिसे देवका स्वरूप विचारने वाला देवमें देवत्वपनेका अस्ति और कुदेवत्वपनेका नास्ति युग पदको तो एक समयमें जानता है परन्तु कह नहीं सके इस करके स्यात अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य सातमा भांगा कहा, यह जो सप्तभंगी है सो नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, वक्तव्य, अवक्तव्य, भिन्न, अभिन्न, भव्य, अभव्य ऐसे अनेक रीतिसे गुणमें, पर्यायमें, द्रव्यमें उत्पन्न होती है जो कि ५७ बोल देवके ऊपर उतारके देवका स्वरूप बतलाया है उन हर एक बोलके पांच २ भेद होते हैं सो पांच बोल उतारकर दिखाते हैं—१ ज्ञेय २ हेय, ३ उपादेय, ४ उत्सर्ग, ५ अपवाद ५७ बोल करके जो व्यवहारसे देवका स्वरूप कहा है उसमें इन पांचोंको दिखलाते हैं—कि ज्ञेय कहतां जो जाननेके योग्य है तो यहां देव और कुदेवका स्वरूप जाननेके योग्य है और कुदेव हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है और देव उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है और देवके ज्ञान, दर्शन चारित्र अव्या बाधादिक निज गुणको निमित्त कारण जानकर विचारना सो उत्सर्ग मार्ग है और जब इसमें चित्त न ठहरे अथवा देवके निज गुणके विचारनेकी समझ न होय तो बाह्य रूप ३४ अतिशय ३५ वाणी८महा प्रत्यहारादि विचार अथवा हे प्रभु! तू तारने वाला है मुझको मोक्ष दे मैं तेरे आधीन हूं मैं तेरा सेवक हूं हे नाथ! तेरे सिवाय और कोई मुझे तारनेवाला नहीं इत्यादिक अनेक निमित्त कारण तिस मुख्य कर्ता देवकोही मानकर स्तुति करे वह अपवाद मार्ग है अब दूसरी तरहसे जो भव्य जीव हैं और जिन्होंने शुद्ध गुरुकी संगतसे आत्मस्वरूपको जाना है उनके वास्ते व्यवहारसे देवके स्वरूपमें इन्हीं पांच बातोंको दूसरी रीतिसे उतारते हैं कि ज्ञेयसे तो देवका स्वरूप जानना और देवमें हेय क्या चीज़ है उसको दिखलाते हैं जिस वक्तमें भव्य

और देवके अंतरंग गुणोंको सुमरने लगा उस वक्त बाह्य जो देवताकृत वह महा प्रातिहारादि हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है और भगवत्के निज गुण जो हैं अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य हैं ॥ और उत्सर्ग मार्गसे भगवत्के गुणोंको आत्मगुण में अभेद से विचारने लगा जब तक चित्तकी वृत्ति भगवत् के गुण आत्मगुण में अभेदता रही तब तक उत्सर्ग मार्ग है और जब उस अभेद वृत्ति में स्थिरतारूप नहीं रही तब प्रभुके गुणों को जुदा २ विचारने लगा सो अपवाद मार्ग है निश्चय से देवका स्वरूप जो ऊपर लिख आये हैं उस में भी यह ही पांच बोल उतारते हैं करके तो आत्म का स्वरूप जो जाने उस आत्मस्वरूप में ही देवबुद्धिको जाने और उस में ही गुरुबुद्धिभी जाने क्योंकि "तत्त्वं गृह्णाति इति गुरुः" जो तत्त्व को ग्रहण करे उसी का नाम गुरु है तो यह आत्माही ग्रहण करने वाली है धर्म क्या कि आत्मा का स्वरूप सोही धर्म है इस करके तो ज्ञेय हुवा जोकि निमित्त कारण आलम्बन पहले किया था उस को हेय अर्थात् छोड़कर निरालम्ब होकर अपनी आत्मा को ग्रहण करना हुवा इस का नाम उपादेय हुवा. अब उत्सर्ग मार्ग से जो स्वरूप ऊपर लिखा उस स्वरूप का निर्विकल्प एकत्वपने से जो विचार करे सो उत्सर्ग मार्ग है उस में निर्विकल्प में चित्त की वृत्ति न ठहरने से अपवाद मार्ग अंगीकार करे तब सविकल्प पृथक्त्व स पारिविचार अर्थात् सविकल्प से आत्मध्यान करे उसका नाम अपवाद मार्ग है अब यहां सविकल्प और निर्विकल्प का दृष्टान्त कहकर दार्ष्टान्त को दिखाते हैं:-सविकल्प उसको कहते हैं कि जिस वस्तुका विचार करे उसी वस्तु के अवयवों का जुदा २ स्वरूप विचारे अन्य का नहीं जैसे गऊ का स्वरूप विचारने लगे तब गऊ के अवयवों को स्मरण करे, कि जैसे गऊ के सींग होते हैं; गऊ के पूंछ होती है; गऊ के एक पग में दो खुर होते हैं; और गऊ के सासन अर्थात् गलेका चमड़ा लटका रहता है इन अवयवों को विचारना इस विचारका नाम गऊ का सविकल्प विचार है; निर्विकल्प उस को कहते हैं कि गऊ के अवयवों को जुदा २ न विचारे केवल ऐसा विचारे कि गऊ है; यह तो दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्त कहते हैं-कि अपनी आत्मा का अवयवों में विचार करे कि मेरे में अनन्त ज्ञान है मैं अनन्त दर्शनमयी हूं; मैं अनन्त चारित्रमयी हूं, मैं अनन्त वीर्यमयी हूं; मैं अव्याबाध हूं; मैं अमूर्तिक हूं; मैं निरंजन हूं ऐसा जो अपनी आत्मा के ही निःकेवल अवयवों का विचार करना उसका नाम सविकल्प है अब इन अवयवों को छोड़कर केवल सब अवयवों संयुक्त आत्माही का विचार करने में लवलीन हो जाना उसका नाम निर्विकल्प है। इसरीति से तो इन दो भेदों को इन पांच पांच बोल करके दिखाए और यही पांच बोल इसीरीति से (५७) बोलके भी ऊपर उतार सकते परन्तु ग्रन्थ के विस्तार भयसे यहां सब बोलों को नहीं उतारा इसी का नाम वीतरागका स्याद्वाद कहा है इसीरीति से जो स्याद्वाद समझो अंगीकार करनेवाले और गुरुकुल वास सेवन किया है जिन्होंने वही लोग यथार्थ इस स्याद्वाद के भेद हैं जिसे दिगम्बराद जिन मत को नाम होंगे सतु जैनी नाम धराने से क्या भेद है से इस रीतिसे ५७ बोल करके किंचित् इसका स्वरूप कहा. अब मध्यस्थी के लिये कुछ का स्मरण करते हैं.— यथा [illegible] मार्गात् श्रीजिनः। सामान्यकरणा धर्म

षेसका गुरवो मता ॥" अर्थ—अहिंसादिक पंच महाव्रतका पालनेवाला होय और आपदा नाम कष्ट पड़ने से धीर बनारहे अर्थात् अपने व्रतों को किसी तरह का दूषण न लगावे और मधुकर अर्थात् भौंरा की तरह ४२ दूषण टालकर गृहस्थों के यहां से भिक्षावृत्ति अपने चारित्र पालने के लिये और शरीर के निर्वाह के वास्ते भोजनकरे सोभी पूराभोजन न करे दूसरे दिनके लिये रात्रिको आहारादि न रक्खे और धन धान्य आदि कुछभी संग्रह न करे सिवाय उपकरण के और कुछ न रक्खे राग द्वेष रहित होकर मध्यस्थ वृत्ति से रहे अर्थात् समता परिणाम रक्खे और जो धर्म का उपदेश भव्यजीवों को दे तो सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र रूप जो अरिहंत भगवान्‌ने स्याद्वाद अनेकान्त रीति से कहा है वैसा उपदेश दे और उस में भगवत् वचन में कोई तरह का भिन्न उपदेश न करे और जिन भव्य जीवों को उपदेशदे उन भव्य जीवों से भोजन वस्त्र पात्र किसी तरह की कांक्षा न रक्खे और धर्म उपदेश के अर्थात् आत्मा के अर्थके विना ज्योतिष शास्त्र, ग्रह गोचर, मंत्र, यंत्र, तंत्र औषधि, जड़ी, बूटी, रसायन आदि कुछ न बतावे और अपनी मान बड़ाई के वास्ते उनकी किसी तरह की शिष्टाचारी न करे उसी को जिनमत में गुरू कहना नतु भेष मात्रसे गुरु होगा ॥ अब पांच महाव्रतका स्वरूप कहते हैं—प्रथम अहिंसा व्रत है त्रस जीव, बे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चो इन्द्रिय, पंचइन्द्रिय और स्थावरमें पृथ्वी काय अपकाय अर्थात् जल अग्नि काय वायु काय और वनस्पति काय इन त्रस और स्थावर जीवोंके प्रमादके वश होकरके मन, वचन, काय करके आप मारे नहीं दूसरेसे मरावे नहीं मारते को भलाजाने नहीं इस रीतिसे अहिंसाव्रत पाले अब दूसरा महाव्रत कहते हैं कि साधु ऐसा वचन बोले कि जिस वचनके सुनतेही दूसरा जीव हर्ष पावे और वचन दूसरेको हित अर्थात् लाभकारी हो और सत्य वचन हो परन्तु इतना विशेष है कि व्यवहारसे सत्यभी हो परंतु अगल जीवको दुःखदायी होवे ऐसा वचन न बोले क्योंकि देखो काणेको काणा और अंधेको अंधा चोरको चोर इत्यादि कहनेमें दूसरेको दुःख होता है इसलिये न बोले तथा ऐसा भी वचन न बोले कि अगाड़ीको अनर्थका हेतु हो । अब तीसरा अदत्ता दान अर्थात् चोरी का व्रत कहते हैं कि मालिकके दिये बिना जो वस्तुका लेना उसका नाम चोरी है सो चोरी चार प्रकार की है प्रथम (१) "स्वामी अदत्त" कि जो जीवरहित घास काष्ठ पाषाणादि वस्तुको स्वामीके विना पूछे जो साधु ले तो स्वामीकी चोरी लगे । (२) जीव अदत्त उसको कहते हैं कि जैसे हिंसक लोग भेड़, बकरी, गाय कसाइयोंके बेंचे और कसाई लोग उनको मारें परन्तु स्वामीने तो उसको दे दिया किन्तु उस जीवने तो अपना शरीर नहीं दिया इसका नाम जीव अदत्त है (३) तीर्थंकर अदत्त उसको कहते हैं कि जो २ वस्तु आधा कर्मादि आहार अचित जीव रहित है और उस वस्तुका देनेवाला स्वामी भी है परन्तु तीर्थंकरकी आज्ञा नही है और साधु जो उस वस्तुको लेवे सो तीर्थंकरों की चोरी है । (४) गुरु चोरी कहते हैं कि जो वस्तु निर्दोष है आहार पानी आदि उसके देनेवाला स्वामी भी है और तीर्थंकरोंने उस वस्तुको निषेध भी नहीं किया परन्तु गुरुकी आज्ञा विना जो साधु उस वस्तुको लेवे सो गुरुकी चोरी है इसीरीतिसे अदत्ता दान कहा (५) अब मैथुन महाव्रतका स्वरूप कहते हैं कि देवताकी जातिके जो देवी और मनुष्य संबंधी जो स्त्री आदि

और तिर्यंच संबंधी जो विषय आदिकका जो सेवन करे करावे करतेको भला जाने वचन, काय करके ऐसा जो मैथुन सेवनेका जो त्याग करे उसको ब्रह्मचर्य व्रत कहते पांचमां परिग्रहव्रत उसको कहतेहैं कि जो नौ विध परिग्रह है उसमेंसे कोई न रक्खे, धर्म के उपकरणके सिवाय कुछ न रक्खे उसके उपरांत रक्खे सो साधु नहीं यह पंच कहे। अब प्रथम महाव्रतकी पांच भावना कहते हैं॥ श्लोक॥ मनो गुप्त्येषण दाने, या. समितिभिः सदा दृष्टान्न पान ग्रहणो नाहिंसा भावयेत्सुधिः॥ १॥ (व्याख्या) पापके काममें न प्रवर्ते किन्तु पापके कामसे अपने मनको अलग कर लेवे इसको गुप्ति कहते हैं यदि पके काममें मन प्रवर्तावे और बाह्य वृत्ति करके हिंसा नहीं भी हो तो भी प्रश्न श्रीचन्द्रराज ऋषिजोकी तरह सातवीं नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है इसवास्ते मुनिको मनोगुप्ति करनाही चाहिये यह प्रथम (१) भावना कही। दूसरी भावना एषणा सुमति है सो आहारादि चार वस्तु आधा कर्मादिक बयालीस दूषण रहित लेवे सो पिंड निर्युक्ति वा पिंड विशुद्धि श्री जिन वल्लभसूरिजी कृत वा प्रवचन सार उद्धार आदि ग्रन्थोंसे जान लेना किञ्चित् यहां भी कहते हैं- पहले गृहस्थी १६ दूषण लगाता है सो गृहस्थीको न लगाने चाहिये आधा कर्मी साधुके वास्ते अधिक आहार रांधके दे और कुछ अपने वास्ते भी करे। (२) उद्देशक दोष जो साधुके वास्तेही आहार बना कर देवे (३) प्रति कर्म यह शुद्ध आहारमें अशुद्ध आहार पानी पड़ते हुवे दे; कैसे दे कि जैसे कच्चे पानीके वर्तनमें शुद्ध आहार देना (४ मिश्र जाति दोष-ये सब भेषधारी पाखंडी साधु साधर्मी आदिक सबके ताईं करके दे (५ स्थापना दोष-साधुके वास्ते दूध दही आदिक थाप करके रक्खे कि साधु आवें तब दे (६) प्राभृत दोष जो सुखड़ी प्रमुख भोजन साधुको देवे (७) प्रादुष्कृत दोष-अन्धेरेमें किया हो और उजीतेमें प्रगट करे पीछे बहरा देवे (८) क्रृत दोष-साधुके वास्ते आहार मोल लेकर देवे। (९) प्रामित्य दोष-अपने घरमें वस्तु नहीं हो दूसरेके पाससे उधार लायकर साधुको देवे। (१०) प्रावर्त- साधुके वास्ते अपने घरका निरस आहारके बदलेमेंसे दूसरे घरसे सरस आहार लाकर दे। (११) अभिहृतदोष-साधु बहरनेके वास्ते घर आया आहारथाली आदिक प्रमुखमें सामने लेकर आवे (१२) उद्भिन्नदोष कुवा वा हांडी मुद्रा लगी हुई हो उसको खोलकर घी आदिक वा ताला आदिक खोलकर आहारादिक दे। (१३) मालहृतदोष-जो ऊपर छींके पर रक्खी हुई चीज साधुको दे अथवा नीचे भूमिमेंसे निकालकर साधुको दे। (१४) अछ दोष-जो जोरावरी दूसरेसे छीनकर साधुको आहार दे। (१५) अनिसृष्टदोष जो दो चार जनेके साझेका आहार होय और उनके छाने साधुको दे। (१६) अध्यव पूरक दोष-जो दाल अथवा दाल थोड़ी हो उसमें पानी मिलाय करके जियादा बनायकर साधुको दे ये उद्गमनके सोलह दोष गृहस्थीको लगते हैं सो उसको न लगाने चाहिये। अब उत्पादके सोलह दोष साधु लगाते हैं सो कहते हैं (१) धात्री पिंड दोष-धायकी तरह गृहस्थीके बालकको रमावे व चुटकी आदिक बजायकर उनके माता पिताको राजी करके आहार ले। (२) दूति पिंडदोष-दूतकी तरह ग्राम, नगर आदि सम्बन्धियोंके समाचार कहकर आहार लेवे। (३) निमित्त पिंडदोष-टेवा, जन्मपत्री, ग्रह, गोचर, ज्योतिष

करकर आहार लेवे । (४) आजीविका दोष—अपनी उत्तम जाति गृहस्थको जनायकर आहार ले । (५) वनीपक दोष—दातारकी खुशामद करके उसकी शोभा दिखायकर अपनी दीनताकर आहार ले । (६) चिकित्सा दोष—नाड़ी देखकर औषधि चूर्णादि देकर आहार ले (७) क्रोधपिंड दोष—शाप देवे रोष करे भय प्रमुख दिखायकर आहार लेवे (८) मान पिंडदोष- साधुओंमें अहंकार सहित प्रतिज्ञा करके गृहस्थीके घरसे आहार लावे (९ मायापिंड दोष—कपटाई करी रूप परावर्त वचन परावर्त करके अषाढ भूत साधुकी तरह आहार लेवे । (१०) लोभपिंड दोष—रसका गृधी होकर जिस गृहस्थोंके सरस आहार मिले वहींके घरोंसे मूर्छितपने व्याकुल होकर सरस आहार ले । (११) संस्तव दोष—दातारकी प्रशंसा करे और कहे कि तुम्हारे माता पिता बड़े दातार, उदारचित्तथे सो तुम्हारे घरकी क्या शोभा करें अथवा सासू श्वसुरकी बड़ाई करे और उससे आहार ले । (१२) विद्यापिंड दोष—आहारके वास्ते उसको विद्या भणावे अथवा देवी आदिकका आराधन बतावे (१३) मंत्रपिंड दोष—मंत्र, तंत्र, यंत्र, आदिक उनको सिखावे अथवा आप करके दे और आहार लेवे । (१४) चूर्णपिंड दोष—औषधादि चूर्ण गोली दे अथवा स्नान करावे ज्वरादिकसे अथवा किसी कारतबके वास्ते उसको वास क्षेपदे । (१५) योगपिंड दोष—वशीकरण अंजन इन्द्रजाल आदि चमत्कार दिखावे सौभाग्य आदिकका कारण बतायके आहार लेवे । (१६) मूलपिंड दोष—गर्भपात करायके आहार लेवे अथवा मूल जेष्ठा आदि नक्षत्रोंका पूजन कराय कर आहार ले यह १६ दूषण साधु लगाता है सो साधुको नहीं लगाने चाहिये कदाचित् वे कारण जो साधु लगाते हों वो भगवान्की आज्ञामें नहीं अब १० दोष जो साधु और श्रावक दोनोंसे उपजे हैं सो ग्रहण एषणा दोष कहलाते हैं सो लिखते हैं-(१) संकित दोष- आधा कर्मी दोषकी शंका होते हुवे आहार लेवे देवे । (२) मृक्षित दोष—सचित् चीजसे शुद्ध आहार खरड़ा हुवा अथवा हाथादिकके सचित् चीज़ लगी हो फिर उससे आहार देना । (३) निक्ष प्रदोष—अकल्पनीय वस्तुमें आहार पड़ा हो उसे लेवे । (४) पिहित दोष—जो सचित् वस्तुसे आहार ढका हुवा हो उसे ले । (५) साहरित दोष—भारी ठाममेंसे छोटी ठाममें करके आहार ठहरावे या पछा कर्म अर्थात् पीछेसे वर्तन धोवे । (६) दायक दोष—जो गर्भकी अथवा रोगी असमर्थ अथवा अंधा, लूले, पागलेसे आहारादि बहरे । (७) उनमिश्र दोष—अकल्पनीय आहार मिलाय करके वहरावे । (८) अपरिणत दोष—जो पूरा आहार पका नहीं जो पूपरी तथा मक्कीया प्रमुख लेवे । (९) लिप्त दोष—जो दही, दूध, क्षीर, प्रमुख पतला द्रव्य हाथपर लगेहुए को पीछे पानीसे धोवे । (१०) छर्दित दोष—जो घृतसे झरता हुवा टपका पड़ता हुवा आहार लेवे यह सर्व मिलकर ४२ दूषण हुए इन सर्व दूषणोंको टालकर जो साधु आहार लेते हैं वो जिन मतमें शुद्ध साधु हैं अब साधुके आहार करते समयके पांच दूषण औरभी कहते हैं प्रथम संयोज़न दोष जो क्षीरमें मीठा थोड़ा हो फिर दूसरी जगहसे लायकर उसमें मिलावे तथा खिचड़ीमें दूसरी जगहसे घृत लायकर खावे (२) अप्रमाण दोष—सिद्धान्तमें कहे प्रमाणसे अधिक आहार करे अर्थात् ३२ कवाल्लसे विशेष आहार करे अथवा नित्य भोजी एकवारसे

दूसरीवार विन कारणके गोचरी करे । (३) इग्ना दोष- आहार करते समय आहारकी करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रकोंको मिलाके समान काला करे (४) ष-आहारकी निन्दा करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रको धुवांके समान करे । (५, आकारण दोष-आहार करनेके कारण दो हैं एक तो वियावच्च करनेके वास्ते दूसरा ई- रिया सुमती सिद्याय ध्यान प्रमुख करनेके वास्ते दो कारणके वास्ते साधु आहार करे इनके विना जो शरीरपुष्टी अथवा रूपादिक बल बढानेके वास्ते करे वो साधु नहीं ये मांडलीके पांच दूषण हुये सर्व मिलके ४७ दूषणोंको आत्मार्थी शुद्ध साधु टाले क्योंकि अशुद्ध आ हार लेता महापाप लगे इसवास्ते टालना चाहिये । अब तीसरी भावना आदान भंडमंत नि- खेवणा सुमती है जो कुछ पात्रदण्ड फलक इत्यादिक लेना पड़े और भूमिपर रखना पड़े सो पहले उसको देखकर पीछे रजोहरण करके पूंज लेवे पीछे लेना होय तो ले और रख- ना होय तो रक्खे क्योंकि विच्छू सर्पादिक अनेक लेहरी जीव उस उपकरणके ऊपर बैठ जाते हैं जो रजोहरणसे उपकरणों वा जमीनको पूंजे तो वह जीव अलग हो जाय जो ऐसा न करे तो वह जानवर अपनेको काट खाय तो अपनेको जहर आदिककी व्याधि होय उससे सिजाय ध्यानादिक न बने अथवा कोई कोमल जीव आके बैठा हो तो हाथके स्पर्शसे वह जीव मरजाय तो उसका पाप लगे इसवास्ते यत्न पूर्वक वह काम करना चाहिये अब चौथी इरिया सुमती कहते हैं कि जब साधु मार्गमें चले तब अपनी आंखोंसे चार हाथ भूमि देखता हुवा चले क्योंकि देखकर चलनेमें कई गुण प्राप्त होते हैं एक तो पैरमें कांटा न लगे दूसरे ठोकर न लगे तीसरे कोई जीव कीड़ी मकोड़ी आदिका भी बचाव होवे चौथे लौकिकमें ही लोग देखे तो शोभाकरे कि देखो यह मुनिराज कैसे हैं कि जिनकी दृष्टि ऐसी है कि मार्गमें ही देखते हुये जाते हैं और इधर उधर कुछ नहीं देखते हैं। अब पांचवीं भावना कहते हैं कि साधु अन्न पानी गृहस्थीके घरसे प्रकाश वाली जगहमें लेवे अंधकारकी जगहमें न लेवे क्योंकि अन्धकारकी जगहमें एक तो कीड़ी मकोड़ी जीवा- दिक न दीखे और उनकी हिंसा होय । (२ सर्प, विच्छू काटने का डर रहता है । (३) गृहस्थकी कुछ वस्तु जाती रहे तो गृहस्थीको अनेक तरहकी शंका उत्पन्न हो जाती है क्योंकि क्या जाने अन्धेरेमें साधु जी ले गये होंय अथवा अंधेरेमें साधुका अच्छा रूप देखकर विकार वाली स्त्री उसके लिपट जाय तो साधुका चारित्र जाय और दूसरा कोई देखता होय तो धर्मकी हीलना होवे अथवा स्वरूपवान् स्त्रीको देखकर साधु का चित्त चलजाय और उस स्त्रीको साधु पकड़े और स्त्री हल्लामचावे तो धर्मकी बहुत हानि होवे और साधुकी प्रतीति उठजाय इसवास्ते साधु अंधेरी जगहसे आहारादिक न लेवे यह प्रथम महाव्रतकी पञ्च भावना कहीं ॥ अब दूसरे मृषावादकी भावना कहते हैं (१) भावनाका स्वरूप कहते हैं कि साधु किसीकी हँसी न करे क्योंकि "रोगकाघर खासी और लड़ाईका घर हांसी" देखो श्री रामचन्द्रका दृष्टान्त देते हैं कि रावणकी बहन शूर्पणखा की हँसी श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जीने करीथी तब शूर्पणखा क्रोधमें होकर अपने भाई रावणके पास गई और सी- ताका रूप वर्णन किया तो रावण सीताको हरले गया। तब रामचन्द्रने रावणसे बड़ा भारी संग्राम किया सो कथा आज तक लौकिकमें चली आती है इस सारी रामायणका सारांश

कुरंबला की हँसी है। इसवास्ते साधु किसीसे हँसी न करे ॥ दूसरी भावना लोभ का त्याग करना है क्योंकि जो लोभी होगा तो अवश्य अपने लोभके वास्ते अवश्य झूठ बोलेगा क्योंकि यह बात सर्व लोकोंमें प्रसिद्ध है जो लोभी होगा वह अवश्य झूठ बोलेगा ये दूसरी भावना हुई॥ तथा भय न करना क्योंकि भयवंत पुरुषभी झूठ बोल देता है, ये भय त्याग रूप तीसरी भावना हुई॥ तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा वह दूसरोंके हुए अनहुए दूषण जरूर बोलेगा, इसवास्ते क्रोध त्याग रूप चौथी भावना हुई॥ तथा प्रथम मनमें विचार करलेवे पीछेसे बोले क्योंकि जो विचार करे विना बोलेगा वह अवश्य झूठ बोलेगा इसवास्ते विचारपूर्वक बोलना, ये पांचवीं भावना; ये दूसरे महाव्रतकी पांच भावनाहैं ॥ अब तीसरे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं जिस मकानमें साधुको रहनेकी इच्छा होवे तो उस मकानके स्वामीकी आज्ञालेकर रहे और आज्ञा न ले तो चोरी लगे, विना आज्ञाके जो ठहरे तो कदाचित् मकानका स्वामी रातको बाहर निकाल दे तो रात्रिको साधु कहां जा सकताहै और नाना प्रकारके क्लेश उत्पन्न होंय इसलिये स्वामीकी आज्ञा लेकर रहे ॥ अब दूसरी भावना कहतेहैं कि मकानके स्वामीकी वारम्वार आज्ञा लेनी चाहिये क्योंकि कदाचित् साधुको कोई रोग उत्पन्न होय तो उसके मल मूत्र करनेके लिये जगह जरूर होनी चाहिये, घरके स्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मल मूत्र करे तो चोरी लगे इसलिये घरके स्वामीकी वारम्वार आज्ञा लेनी चाहिये दूसरी भावना हुई ॥ तीसरी भावना यह है कि मकानके भूमिकी मर्यादा करलेवे कि हमको इतनी जगह तक तुम्हारी आज्ञा रही जो मर्यादा न कर लेवे तो अधिक भूमिको काममें लानेसे चोरी लगती है इसवास्ते मकानकी मर्यादा पहले ही करलेवे ये तीसरी भावना हुई ॥ अब चौथी भावना कहें हैं कि जो साधु समानधर्मी होवे और वह पहले ही किसी जगहमें उतरा हुवा होवे, पीछे दूसरा साधु जो उस मकानमें उतरना चाहे तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहे जो प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे तो स्वधर्मी अदत्त लगे ॥ पांचवीं भावना यह है कि साधु जो कुछ अन्न पान वस्त्र पात्र शिष्यादिक लेवे सो सर्व गुरुकी आज्ञासेलेवे जो गुरुकी आज्ञाविना लेलेवे तो गुरु अदत्त लागे, यह पांचवी भावना हुई। ये तीसरे महाव्रतकी पञ्च भावना हुई ॥ अब चौथे महाव्रतकी पांच भावना कहतेहैं। जिस मकानमें स्त्री आदिकके चित्रामनहीं और नपुंसक तिर्यंच स्त्री जिस मकानमें न हो वह मकान ऐसा हो कि जिसकी भीतके पास ऐसा मकान कोई न हो कि जहां कोई स्त्री आदिक अपने मकानमें क्रीड़ा करती हों उनका शब्द आवे अर्थात् और भी कोई उस मकानमें ऐसा शब्द उनके कानमें न पड़े कि जिससे मोह रूपी विकार पैदा हो यह प्रथम भावना हुई ॥ दूसरी भावना यह है कि सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्ता न करे और स्त्रीके देश, जाति, कुल शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वदा न करे क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित काम शास्त्र इत्यादिककी कथा करेगा तो अवश्य विकार भावको प्राप्त होगा इसलिये कोई कथा वा चारित्र जनक शृंगार रस और स्त्रियोंके चरित्र हों वो साधु न कहे ॥ अब तीसरी भावना कहतेहैं। दीक्षा लियेके पहले जो कि गृहस्थीपनेमें स्त्रीके संगमें काम क्रीड़ा, विषय, सेवन, प्रमुख नाना प्रकारके संसारी भोग विलास करतेहैं उनको साधु कदापि मनमें न चिंते क्योंकि पिछला भोग याद करनेसे काम

रूपी अग्नि जागती है, यह तीसरी भावना हुई ॥ अब चौथी भावना कहते हैं कि अंगो पंग अर्थात् आंख, नाक, मुख, स्तन, आदिक सहराग दृष्टिसे न देखे क्योंकि दृष्टि देखनेसे विकार आदिककी उत्पत्ति होवे इसलिये साधुको देखना मना है राग रहित दृष्टिसे देखनेमें आजावे तो कुछ दोष नहीं तथा अपने शरीरको स्नानादिक हाथ, पग मल २ के धोना तेल आदिक लगाना नख, दांत, केश आदि पर्वोंकी सम्हारना अच्छा वस्त्रादिक चमकता हुवा पहरना इत्यादिक अनेक विकार चेष्टा न करे, यह चौथी भावना हुई। अब पांचवीं भावना कहते हैं-स्निग्ध मधुर रस ऐसी चीजोंका अधिक आहार करना और निरस आहारको न लेना ऐसा साधु न क्योंकि साधुको ऐसा करना चाहिये कि जहां तक बने वहां तक रूखा आहार लायकर करे सो भी पूरा पेट न भरे क्योंकि रूखा सूखा पेटभर खाने से इन्द्रियों की पुष्टि होती है इसवास्ते साधु पूरा पेट न भरे क्योंकि शास्त्रों में ऐसा कहा है कि साधु पेटके चार भाग करे सो दोभागतो अन्नसे भरे एकभाग जलसे भरे और एकभाग खाली रक्खे जिससे श्वासो श्वास सुगमता से आता जाता रहे यह पांचवीं भावना कही ॥ अब पांचवें महाव्रतकी पांच भावना कहते हैं कि पांचों इन्द्रियों की जो पांच विषय रस, वर्ण, गंध, स्पर्श आदिक में जो अत्यन्त गृद्धिपणा है सो वर्जना और स्पर्श आदिक अमनोज्ञ पांच विषयों में द्वेष न करना यह पांचवें महाव्रतकी पांच भावना कही इन पांच महाव्रत की पचीस भावना जिसमें होवें वह जैनका साधु और गुरु है और चरण सित्तरी और करण सित्तरी इन करके संयुक्तहो सो ही जिन मत में गुरु है। अब चरण सित्तरी के नाम लिखते हैं-५ महाव्रत, १० यतिधर्म १७ प्रकार का संयम १०प्रकार की वियावच्च और ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य्यकी वाड १२ प्रकार का तप और क्रोधादि ४ कषाय निग्रह, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र यह कुल चरण सित्तरी के ७० भेदहुये इनकरके जो संयुक्तहो सो गुरु है और करण सित्तरी के भेद यह हैं-पिंड़विशुद्धि ४ प्रकार की ५ सुमती. १२ भावना १२ पडिमा ५ इन्द्रियों का निग्रह. २५ पडलेहना. ३ गुप्ती और ४ प्रकारका अवग्रह यह ७० भेद करण सित्तरी के हैं, इस करण सित्तरी, चरण सित्तरी के जो बोल हैं इनका जो अर्थ सो बहुत ग्रन्थो में लिखा हुवा और जिन मत में प्रसिद्ध है इस वास्ते मैने इन बोलो का अर्थ नहीं किया दूसरा इन को निश्चय, व्यवहार, द्रव्य, क्षेत्र,काल भाव, की अपेक्षा लेकर जो इसका अर्थकरूं तो ग्रंथ बहुत बढ़जाय इस भयसे मैं नहीं लिख सका ऊपर लिखी हुई वृत्ति समुजिब जो कोई होय वही जैनका गुरु है इसरीतिसे साधु का स्वरूप कहा इस से जो जो विपरीत हो सो साधु नहीं। (प्रश्न) तो वर्त्तमान काल मे इस वृत्ति वाला कोई साधु देखने में नहीं आता है तो फिर इन को साधु वा गुरु मानना क्योंकर बनेगा? (उत्तर) भो देवानुप्रिय ? यह तुम्हारा एकान्त करके निश्चय करना ठीक नहीं क्योंकि जैन मत में स्याद्वाद, उत्सर्ग, अपवाद, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे वर्तमान कालमें भी आत्मार्थी भगवत् आज्ञानुसार अल्प मुनि राज पावेंगे क्योंकि भगवत्‌ने ऐसा कहा है कि मेरा शासन पंचमे आरेके अन्त तक रहेगा इसवास्ते इस कालमें भी जो आत्मार्थी निष्कपट होकर जो भगवत्‌ने आज्ञाकी है वही

[illegible] उपदेश देने वाले भव्य जीवोंको मार्ग बतलाने वाले जो मुनिराज हैं उनको साधु वा गुरु नहीं माननेसे भगवत् आज्ञा विरोधक होते हैं क्योंकि देखो श्री भगवती जी सूत्रके पचीसवें शतकके छठे उद्देशामें लिखा है कि इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम आरे में दो तरहके साधु होंगे उनसे मेरा शासन चलेगा और निर्ग्रन्थ तो प्रमाणकी अपेक्षा कोई विरलेमें पावेगा मुख्यतामें दोही रहेंगे इसलिये उनको साधु मानना ठीक है उन दोका नाम बकुश और कुशील है। अब बकुश और कुशीलका स्वरूप लिखते हैं जो बकुश निर्ग्रन्थ है तिनके दो भेद हैं सो कहते हैं. तहां जो वस्त्र पात्रादिक उपकरणकी विभूषा करे सो "उपकरण बकुश" यह प्रथम भेद और जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे सो शरीर बकुश यह दूसरा भेद जानना इन दोनों भेदोंके पांच भेद हैं–प्रथम आभोग बकुश, जो साधु जानता है कि यह करनेके योग्य नहीं तो भी उस कामको जो करे सो आभोग बकुश; और जो अनजाने करे सो दूसरा अनाभोग बकुश; और जो मूल गुण, उत्तर गुणमें छुप कर दोष लगावे सो संवृत बकुश; और जो मूल गुण उत्तर गुणमें प्रगट दोष लगावे सो चौथा असंवृत बकुश; और जो नेत्र, नासिका, मुखादिकका मैल दूर करे सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जानना; ॥ अथ उपकरण बकुशका स्वरूप कहते हैं–जो उपकरण बकुश है सो पावसऋतु बिनाभी जल क्षारसे वस्त्र धोता है। पावस ऋतुमें तो सब गच्छवासी साधुओंको आज्ञा है क्योंकि जो वर्षाके पहिले एक वार सर्व उपकरणको जल क्षारसे न धो लेवे तो वर्षाऋतुमें मैलके संसर्गसे निगोद आदिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावे और यह जो बकुश निर्ग्रन्थ सो पावस ऋतुसे अन्यऋतुमेंभी जल क्षारसे उपकरण आदिक धो लेता है और बकुश निर्ग्रन्थ [illegible] सुकोमल वस्त्रभी धारता है और कुछ उपकरण विभूषा शोभाके वास्ते धारता है और पात्र दंड आदिक घोटके घोटकर [illegible] करे तथा [illegible] और विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रखे ॥ अब शरीर बकुशका स्वरूप कहते हैं [illegible] बकुश जो है सो बिना कारण हाथ, पग, आदिककी विभूषा कर [illegible] उपकरण और शरीर यह दोनों प्रकारका बकुश निर्ग्रन्थ [illegible] और [illegible] [illegible] ऐसे [illegible] [illegible] [illegible]

करे सो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कुशील जानना. और कषायके वश
दे और जो मनमें क्रोध आदिकको सेवे सो यथा सूक्ष्म कुशील है अथवा
ज्ञानादिककी विराधना करे सोभी ज्ञान कुशील जानना ये दो प्रकारके साधु पंचमे
छेठे तक रहेंगे इसलिये इनको साधु मानना अवश्य है । (प्र०) उत्तर गुण
किसको कहते हैं ? (उ०) मूलगुण उसको कहते हैं कि जो अहिंसादिक
कहे हैं उनमें दूषण लगे उसको मूलगुण दूषण कहते हैं कि जैसे वर्तमान कालमें
करके गरम पानी गृहस्थी लोग साधुके निमित्त करते हैं वह पानी साधु जो
साधुवोंको मूलगुणमें दूषण लगता है अथवा जो साधु दृष्टि राग बांध करके
आहारादिक लावे अपने दिलमें जानता है कि यह मेरे निमित्त बनाया है और
आहारको भोगता है वहभी मूलगुणमें दूषण है और उत्तर गुण उसको कहते है कि
गृहस्थी साधुकी दृष्टि रागसे बाज़ारसे मोल लायकर आहार वस्त्र पात्र . . .
और उस आहारादिकको साधु भोगे तो वह उत्तर गुणमें दूषण है इसरीतिसे मूलगुण और
गुणके दूषण होतेहैं (प्र०) ऐसे दूषण लगानेका कारण क्या है ? (उ०) दूषण लगानेका
ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि अवारके कालमें दुःख गर्भित, मोह गर्भित . . .
और ज्ञानगर्भित वैराग्यवाले आत्मार्थी प्रायः करके किंचित् मालूम होतेहैं इसवास्ते
गर्भित, मोहगर्भित वैराग्य वालेको अपने आत्मार्थकी इच्छा तो है नहीं केवल अपने . . .
की इच्छा और मान बड़ाईके वास्ते आपसमें एक दूसरेसे कलह करते हैं और गृहस्थि
अपने रागमें फँसानेके वास्ते जुदी २ परुपना करते हैं इसीवास्ते उपाध्यायजी मह
श्री यशविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमें ऐसा लिखतेहैं सो प्रकरण रत्नाकर भाग
के लेखानुसार दिखाते हैं गाथा —"विषय रसमें गृहीमांचया । नाचिया कुगुरुमद पूरे
धूमधामे धमाधम चली । ज्ञान मार्ग रह्यो दूरे ॥ स्वामी० ॥ ७ ॥ व्याख्या गृही क
गृहस्थ जो विषय रसमें ही राच्या अनादि अभ्यास छः और सुगुरुकाने न लाग्या ते
अने कुगुरुने मद पूरे माच्या अन्न पान दातारना मान माटे निज उत्तर
एम करतां बहुने धर्मकी खटपट टलीत माटे धूम धामे धमा धमाम चली
उनमार्गज चाल्यो इत्यर्थः ॥ यहां धमाधम कहतां धक्का धूम तेणेकरी धमा धमक०
मस्ती चाली शुद्ध क्रिया वेगली रही अशुद्ध क्रिया ना धणी डाकड मारया मांडे
में मांची आया पछे केवल धांगाणु प्रवर्त्युं वली पोते गृहस्थने प्रेरणा करे कि
आवता विशेष सामा आववुं, विशेष सामहुं (सामैणो) करो विशेष प्रभावना करो
जिन शासननी उन्नति दिखायण धूम केमके कुमारगनुं वचम छः जे कारणः पोतेज
मयाँ यथा त्यां धर्म गयां कमके साधुनां माण एवां छः कांईपण उन्नति थांयः
सहेज मांदे थाय तो थावा ते माटे सदा धूमते उनमार्गी पासत्थादिकनुं प्राक्रम अने
धमाधी मेला गृहस्थ लोकनुं प्राक्रम तया धमाधमते एवननी करनी जाणवी वली शरीरनी
राखे शरीरनो मेल दूर कर शरीर लुहे: सरस आहार करे नौकल्पी व्यवहार न करे
श्रावकोने घणो परिचय करे, आवस्ने पर भणावाजाय श्रावक साथे घणी मिठासी
पोतानां आत्मानो अर्थ साधन नहीं भला चन्दुआ बंधाय तहां रहे रेशमी नया वस्त्र

धोया वस्त्र पहिरे हृष्ट पुष्ट शरीर राखे वस्त्र पात्रना दूषण धरे गीतार्थनी आज्ञा न मानें आप्योमार्ग चलावे अणजण्यो कहे मार्गे हिंडता वात करे गृहस्थ साथे घणी अलाप करे इत्यादिक एहवी करणी ए पोते साधु पणुं पोता मांहे सर्दहे अने गृहस्थने पण साधु सर्द हरावे दर्शननी निंदा करे पोता पणु वखाणे पोतानो आडम्बर चलावो गृहस्थ पासे पोतानी भक्ति प्रमुख नो आडम्बर चलावरावबो इत्यादिक सर्व ठामे १ धूम. २ धाम धमाधम. ए तीन बोल जाणवा ज्ञानादिक मार्ग पुस्तकादिके हतो ते करवा-जाणवा मा- वेगलो रह्यो झूंठा बोला पणाछः ॥ ७ ॥ गाथा १० मी ॥ बहु मुखे बोल एम साभली नवि धरे लोक विशवासरे ॥ ढूंढता धर्म ने ते थया ॥ भमर जेम कमल निवासरे ॥ १० ॥ व्याख्या ॥ एम बहुमुखे के० घणाने मोढे बोल जुदा २ सांभलीने लोको विश्वासने धरे नहीं! अने जेम भ्रमरा कमलिनी वासनी इच्छाये भ्रमता फिरे पण करे डोयते न पामे तेम ते लोको धर्मने ढूंढता थया, जे कोण साधु पास धर्म होसे १ एवा सव भ्रमे फरे" ॥ १० ॥ इत्यादिक अनेक रीति से इस जैन मतमें बखेड़ा होनेसे जो किश्चित् कोई आत्मार्थी है उसको उपद्रव होने से जैन मत पालना मुश्किल होगया अर्थात् अपनी आत्माका अर्थ करना मुश्किल होगया इसलिये जो कोई आत्मार्थी हो सो द्रव्यक्षेत्र काल भावसे देखकर अपनी आत्मा अर्थ करे. किञ्चित् गुरूका स्वरूप कहा बुद्धिमान् इसको जियादः समझलेगा ॥ अब धर्मका स्वरूप कहना चाहिये सो. प्रथम धर्मका लक्षण कहतेहैं कि:-"अधोगति पतन ज्ञानादि अनंत चतुष्टय सादि अनन्त सुखस्व सुभाव धारियेति धर्मः" धर्मका यह लक्षणहै- जो कहो कि धर्म किसको करना है तो हम कहें है कि जो संसारी जीव है उसको करना है-संसार अर्थात् जगत् सत्य है वा असत्यहै और इस जगत्का अनादि होनेसे क्या और बाद होगा इस जगह प्रसंगत ख्यातिका कहना जरूर हुवा क्योंकि इस जगत्के बादमें कई मतवाले अपनी २ ख्याति कहतेहैं ॥ ख्या प्र कथन धातुकी ख्याति बनती है जो जिस रीतिसे कथन करे सो उसकी ख्याति है सो छः ख्यातिहै छः के अनेक भेदहै उन छः ख्यातियोंके नाम यहहैं-(१) असत्य ख्याति (२) आत्मख्याति (३) अन्यथा ख्याति. (४) आख्याति. (५) अनिर्वचनीय ख्याति (६) सत्य ख्याति. इनके अंतर भेद भी कई हैं परन्तु मुख्य भेद ६ हैं-सो अब कौन. कौनसो ख्याति मानते हैं, सो ख्याति कहतेहैं-दोहा । चिदानन्द विन कोइ ना. कह्या ख्याति परसंग । स्याद्वाद जिन धर्ममें, ख्याती सत्य अभंग ॥१॥ अनुभव गुरुकुल वास विन. मिले न पूरो मर्म । प्रथम अंग रूप ख्यातिका, खोल दिया सब भर्म ॥ २ ॥ ख्यातिनाम कथनका है जगत्की निर्वृत्तिके जैसे रज्जु और सुकतिमें जो सर्पका और चांदीका भ्रम होता है तैसे ही इस जगत्कोभी सद्रूप मानतेहैं जब रज्जु अर्थात् जेवड़ी जिसको कोइ रस्सी और कोई सींधड़ा भी कहतेहैं उसमें अज्ञानसे सर्पका भ्रम होताहै उस भ्रमको दूर करनेके वास्ते आचार्य जब उसको यथावत् जेवड़ी का ज्ञान कराय देते हैं तब सर्परूप जो भ्रम है सो दूर हो जाता है ऐसे ही शुक्ति अर्थात् सीपमें अज्ञानसे रजत अर्थात् चांदीका भ्रम होता है उसको भी जब गुरु उपदेश देकर यथावत् सीपका ज्ञान कराय देता है तब चांदीका जो भ्रम होता है सो इसीदम भ्रम दूर हो जाता है इस रीतिसे जगत् जो अनादिका भ्रम रूप अज्ञानसे विभाव दशामें पड़के अपने

स्वरूपका यथावत् नहीं जाननेसे जन्म मरण रूपी संसारमें भ्रमण करता है जब कोई
उपदेशक यथावत् उसकी आत्माका स्वरूपको बतायकर ज्ञान कराय देता है तब
रूप जो भ्रम सो दूर हो जाता है इस भ्रम स्थलमें जो कथन करना उसीका नाम
सो नास्तिक मतवाला असत् ख्यातिको अंगीकार करके जगत्को असत्य कहता है और
विज्ञानवादी अर्थात् बौद्ध मतवाला आत्मख्याति अंगीकार करता है और नैयायिक और
वैशेषिक अन्यथा ख्यातिको अंगीकार करते हैं और साङ्ख्य मतवाला आख्यातिको अं
गीकार करता है और वेदान्ती अनिर्वचनीय ख्यातिको अंगीकार करता है और जि
नमतमें सत्यख्याति अंगीकार है सो इस जगह ख्यातियोंकी रीति कहकर उनका
खण्डन दिखलाते हैं सो इस जगह चार ख्यातियोंको अनिर्वचनीय ख्यातिसे खण्डन
करके फिर अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन दिखायकर सत ख्यातिका निरूपण
करेंगे सो प्रथम असत्य ख्यातिके तीन भेद हैं तिसमें प्रथम शून्यवादीकी रीतिसे
असत्यख्यातिका वाद और उसका खण्डन दिखाते हैं—असत्यख्याति वाला अनुभव
और युक्तिसे शून्य है किसीकी बुद्धिमें आरूढ होवे नहीं इसलिये इसका निराकरण है
तथापि थोड़ासा कहते हैं एक तो शून्यवादी नास्तिक असत्यख्याति माने है उसके
मतमें तो सारे पदार्थ असत्यरूप हैं इसलिये सीपमें चांदी भी असत्य है शून्य
वादीके मतमें तो असत् अधिष्ठानमें रजत् असत है इसलिये निराधिष्ठान भ्रम है इसलिये
ज्ञाता ज्ञान भी असत् है यह कहना इसका अनुभव विरुद्ध है । क्योंकि शून्यवादमें सर्व
स्थानोंमें शून्य है इसलिये किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नहीं होना चाहिये और शून्यके
जो व्यवहार होवे तो जलका काम अग्निसे और अग्निका काम जलसे होना चाहिये अग्नि
और जल सत् वा मिथ्या कही है नहीं केवल शून्य तत्त्व है तो सर्व जगह एकरस है उसमें
कोई विशेषता नहीं जो शून्यमें विशेष मानोगे तो शून्यवादकी हानि होगी क्योंकि वह
विशेष भी शून्यसे भिन्न है जो एसा कहे कि शून्यमें विशेष है उसको विलक्षणता कहते
हैं जिससे व्यवहार भेद होवे है वह विशेष और व्यवहार तथा व्यवहारका कर्त्ता भी परमार्थमें
शून्य है इसलिये शून्यताकी हानि नहीं यह कहना उसका असम्भव है क्योंकि शून्यमें
विशेष है यह कहना विरुद्ध है क्योंकि विशेष वाला कहे तो शून्यताकी हानि होवे और
जो शून्य कहे तो विशेषता की हानिसे व्यवहार भेदका असंभव है इसरीतिसे शून्यवादी
का कहना संभव नहीं अब दूसरा नास्तिककी रीतिमें असत्यख्याति की रीति कहते हैं
उसके मतमें शुक्ति आदि पदार्थ व्यवहारिकतो असत् नहीं किन्तु भ्रम ज्ञानके विषय जो चां
दी आदिक माने है वह असत् है इसलिये व्यवहारिक चांदी आदिक अपने देशमें है तिनका
सीपमें संबन्ध नहीं और अन्यथा ख्याति वादीकी तरह शुक्तिमें रजतकी प्रतीति भी
होवे नहीं और अनिर्वचनीयमें रजत उपजे नहीं और आत्मख्यातिवादीकी तरह ही
ज्ञान भी नहीं, शून्यवादीकी तरह शुक्ति असत् नहीं और ज्ञाता ज्ञान भी असत् नहीं
शुक्ति किन्तु सुकती ज्ञान ज्ञाता सत्य है दोष सहित नेत्रका शुक्तिसे सम्बन्ध होवे तब शुक्तिका
ज्ञान होवे नहीं किन्तु शुक्ति देशमें असत् रजतकी प्रतीति होवे है यद्यपि अन्यथा ख्याति
वादमें रजत् असत् है और स्त्रीके हाथमें तथा हृदयमें सत् रजत् दोनों मतमें है तथापि

अख्यातिवादमें देशांतर स्था सत् रजत् शुक्ति रजतत्वका शुक्तिमें भान होवे है और
[illegible] वादमें देशांतरमें रजत तो है तिसके धर्म रजतत्वका शुक्तिमें भान होवे
किन्तु असत् गोचर रजत ज्ञान है शुक्तिके दोष सहित नेत्रके संबन्धसे रजत भ्रम होता
[illegible] विषय शुक्ति नहीं जो रजत भ्रमका विषय शुक्ति होता तो " इदंशुक्ति " ऐसा
[illegible] चाहिये जो शुक्तित्व रूप विशेष धर्मका दोष बलसे भान नहीं होता सामान
[illegible] (इदं) इतनाही ज्ञान होना चाहिये इसलिये भ्रमका विषय शुक्ति नहीं ऐसेही भ्रम
[illegible] विषय रजत भी नहीं क्योंकि सन्मुख देशमें तो रजत है नहीं ॥ और देशांतरमें रजत है
[illegible] नेत्रका संबन्ध नहीं । इसरीतिसे रजत भ्रमका विषय कोई नहीं और शुक्ति ज्ञान
[illegible] " अत्र निर्दोष रजतं नास्ति " ऐसी प्रतीति होती है इसलिये रजत भ्रम
[illegible] होनेसे असत् गोचर होवो असत् गोचर ज्ञानको असत् ख्याति कहते हैं ॥
[illegible] न्याय वाले स्वत्वकार की रीति से असत् ख्यातीवाद—इस की रीति से कहते हैं
[illegible] ऐसा कहता है कि शुक्ति से नेत्र के सम्बन्ध से रजत् भ्रम होवे इसलिये रजत् भ्रम
[illegible] विषय शुक्ति है परन्तु शुक्ति में शुक्तित्व और शुक्तित्व तत्त्व का समवाय दोनों दोष से भान
[illegible] किंतु शुक्ति में रजतत्व का समवाय भान होता है सो रजतत्व का समवाय शुक्ति
[illegible] नहीं इसलिये असत्ख्याति है रजतत्त्व प्रतियोगी का शुक्ति अनुयोगिक समवाय
[illegible] है । इस की ख्याति कहिये प्रतीति उसको असत्ख्याति कहते हैं रजतत्त्व प्रति
[illegible] समवाय रजत् में रजतत्व का प्रगट है और शुक्ति अनुयोगिक समवाय शुक्ति में
[illegible] का प्रसिद्ध है ॥ और रजत् प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है ॥
[illegible] अनुयोगिक नहीं और जो शुक्ति अनुयोगिक समवाय प्रगट है सो शुक्तित्व प्रति
[illegible] है रजतत्व प्रतियोगिक नहीं इसरीति से रजतत्व प्रतियोगिक शुक्ति अनुयोगिक
[illegible] अप्रगट होने से असत् है उसकी प्रतीति को असत्ख्याति कहते हैं ॥ शुक्ति
[illegible] अनुयोगी कहिये धर्मी होवे उसको शुक्ति अनुयोगिक कहते हैं रजतत्व जिसका
[illegible] होवे उसको रजतत्व प्रतियोगिक कहते हैं: इसका भाव ऐसा है कि केवल
[illegible] प्रसिद्ध है और रजतत्व प्रतियोगिक समवाय भी रजत् से प्रसिद्ध है और शुक्ति
[illegible] समवाय भी शुक्ति धर्म का शुक्ति में प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध समवाय में सम-
[illegible] है रजतत्व प्रतियोगित्वभी समवाय से प्रसिद्ध है जैसे ही शुक्ति अनुयोगित्व भी
[illegible] प्रसिद्ध है परन्तु रजतत्व प्रतियोगित्व, दोनों धर्म एक स्थान में समवायमें अन-
[illegible] होने से शुक्ति अनुयोगित्व विशिष्ट रजतत्व प्रतियोगित्व विशिष्ट समवाय अप्रसिद्ध होने
[illegible] है उसे असत्ख्याति कहते हैं. यह न्याय वाचस्पत्याकारका मत है । इसरीतिसे
[illegible] को मानि करके असत्ख्याति दो प्रकार की माने है ॥ एक तो शुक्ति अधिष्ठान में
[illegible] की प्रतीति है । और दूसरी शुक्ति में असत् रजतत्व समवाय की प्रतीति रूप
। ऐसे असत् ख्याति का खंडन—इन दोनों अर्थों का कहना असंगत है क्योंकि
[illegible] ख्याति मानते हैं उनको ऐसा पूछना चाहिये कि असत्ख्याति इस वाक्य
[illegible] विकल्प असत् शब्द का अर्थ है या असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है. जो कहे
[illegible] शब्द का अर्थ [illegible] है तो ([illegible] सिंहो नास्ति) इस वाक्य की तरह

असत्ख्याति वाद का अङ्गीकार करने का काम निर्लज्जपना है क्योंकि
रहितको निःस्वरूप कहते हैं इसलिये सत्ता स्फूर्ति शून्य भी प्रतीति होवैहै
ख्यातिवाद है तैसे सिद्ध होवे है "सत्ता स्फूर्ति शून्य की प्रतीति कहना विरुद्ध
लिये अवंध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ कहें हैं तो अवंध्या विलक्षण वंध्या
वंध्याके योग को वंध्या कहें हैं इसरीति से वंध्या के योग की प्रतीति अर्थात् बांझ
के समान असत् ख्याति सिद्ध हुई, इसलिये असत् ख्याति का मानना असङ्गत है
दूसरी आत्म ख्याति का अभिप्राय और खण्डनः—आत्मख्याति वादी भी असङ्गत
कि विज्ञानवादीके मत में आत्मख्याति है क्षणक विज्ञान को विज्ञानवादी
कहते हैं जिसके मत में बाह्य रजत तो है नहीं किंतु अंतर विज्ञान रूप आत्मा है
धर्म रजत है दोष बल से बाह्य प्रतीति होती है शून्यवादीके मत बिना अंतर
की सत्तामें किसी सुगत शिष्य का विवाद नहीं बाह्य पदार्थ तो कोई मानता है
नहीं मानता है इसलिये बाह्य पदार्थ की सत्ता में तो उनका विवाद है और
विज्ञान का निषेध शून्यवादी बिन कोई नास्तिक करे नहीं इसलिये अंतर रजत का
ज्ञान रूप आत्मा अधिष्ठान है जिसका धर्म रजत अंतर है दोष बल से बाह्य की तरह से
होवे है ज्ञानमें रजतके स्वरूपसे बाद होवे नहीं किन्तु रजतकी बाह्यताका बाद होवे है
लिये आत्मख्याति मतमें रजतका तो बाध मानते हैं नहीं क्योंकि शून्यवादीसे भिन्न
सौगतके मतमें पदार्थोंकी अंतर सत्तामें विवाद नहीं इसलिये स्वरूपसे रजतका
होई नहीं केवल बाह्यताका रूप इदन्ताका बाद मानतेहैं क्योंकि आत्मख्यातिमें
बिना इदंता रूप धर्म मात्रके बाधको ही मानेहैं यह आत्मख्यातिवादीका अभि[illegible]
मतमें रजत अन्तर सत्य है जिसकी बाह्य देशमें प्रतीति भ्रम है इसलिये रजत
रजत गोचरत्व अंश भ्रम नहीं किंतु रजतका बाह्यदेश स्थितत्व प्रतीत अंशमें भ्रमहै॥ इसका खंडन:
यह कहना आत्मख्यातिवाले का समीचीन नहीं क्योंकि रजत अन्तर है ऐसा अनुभव
किसी को होवे नहीं भ्रमस्थल में वा यथार्थ स्थल में रजतादिकों की अन्तरता किसी प्रमा
णसे सिद्धहोवे नहीं क्योंकि सुखादिक अन्तर है और रजतादिक बाह्य है यह अनुभव सर्व
को सिद्ध है रजत को अन्तरमानना तो अनुभव से विरुद्ध है और अन्तरताका साधक प्रमाण
वा युक्ति कोईहै नहीं इसलिये अन्तर रजतकी बाह्य प्रतीति मानना असंगतहै और भी आत्म
ख्याति माननेवालेके भी बाह्यपदार्थों में तो भेदहै सो इसजगह ग्रन्थके बढ़ने के भयसे नहीं
लिखे और दूसरा इन में कोटियों की क्लिष्टता भी है और इसकी जिनमत में प्राप्ति
कम है इसवास्ते दिग्मात्र प्रसंग से दिखाई है ॥ अब अन्यथा ख्यातिवादी का कहना
कहते हैं—कि जिस पुरुषको सत्यपदार्थ के अनुभव जन्य संस्कार होवें जिसके दोष सहित
नेत्रका पूर्व दृष्ट सदृश पदार्थ से सम्बन्ध होवे वहां पूर्वानुभूत सदृश पदार्थ के सामान्य ज्ञान
से पूर्वदृष्टकी स्मृति होवे है अथवा स्मृति नहीं होवे सदृश के ज्ञान से संस्कार उद्बुद्ध होवे
है जिस पदार्थ की स्मृति होवे अथवा जिस के उद्बुद्ध संस्कार होवें उस पदार्थ का
पुरोवर्ती पदार्थ में प्रतीतिहोवे है जैसे सत्य रजतके अनुभवजन्य संस्कार सहित पुरुषका
रजत सदृश शुक्तिसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत की स्मृतिहोवे है जिस स्मृ[illegible]

को रजतका रजतत्व धर्म शुक्ति में भासे है अथवा नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत भ्रम में विलम्ब होवे नहीं इसलिये नेत्र सम्बन्ध और रजत के प्रत्यक्ष भ्रमके अन्तराल में रजत की स्मृति नहीं होवे है किन्तु रजतानुभवके संस्कार उद्भूतहोय के स्मृति के व्यवधान विना शीघ्रही शुक्ति में रजत्व धर्मका प्रत्यक्ष होवे है। स्मृति स्थल में जैसे पूर्व दृष्ट सदृश्य के ज्ञान से संस्कारका उद्बोध होवे है। तैसे भ्रमस्थल में पूर्वदृष्टके सदृश्य पदार्थ से इंद्रियका सम्बन्ध होतही संस्कारका उद्बोध होयके संस्कार गोचर धर्मका पुरोवर्ति में भानहोता है इसको अन्यथा ख्याति कहते हैं अन्य रूप से प्रतीति को "अन्यथा ख्याति" कहते हैं शुक्ति पदार्थ में शुक्तित्व धर्म है रजत्व नहीं है और शुक्तिकी रजत्व रूप से प्रतीतहोवे है इसलिये अन्य रूपसे प्रतीति है ॥ (इदं रजतं) इत्यादिक भ्रमतो उक्त रीतिसे संभव नहीं, क्योंकि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध और रजत्व स्मृतिको (इदंरजतं) या ज्ञानकी कारणता माने जिसको यह पूछते हैं कि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध होयके शुक्ति रजत साधारण धर्म चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान होयके रजतकी स्मृति होती है इसके उत्तर भ्रमहोता है अथवा शुक्तिके सामान्य ज्ञान से पूर्वही शुक्ति से नेत्रका सम्बन्ध होते उसीकाल में रजत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिहोय के (इदंरजतं) यह भ्रमहोता है कि जो प्रथम पक्ष कहे तो सम्भव नहीं क्योंकि प्रथम तो शुक्तिका सामान्य ज्ञान जिससे उत्तर रजतत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिसे उत्तर रजत भ्रम इसरीति से तीनों ज्ञानों की धारा अनुभवसे बाधित है (इदंरजतं) यह एकही ज्ञान सर्वकी प्रतीति होता है ॥ और जो ऐसा कहे कि प्रथम सामान्य ज्ञान शुक्तिके हुए विना शुक्ति से नेत्रके संयोग काल में रजतकी स्मृति होयके (इदंरजतं) यह भ्रम होता है। सो भी संभव नहीं क्योंकि सकल ज्ञान चेतनरूप स्व प्रकाश हैं वृत्तिरूप ज्ञान साक्षी भास्य हैं; कोई ज्ञान किसीकाल में अज्ञात होवे नहीं (यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे) इसलिये शुक्ति में नेत्रके संयोगकाल में रजतकी स्मृति होती तो स्मृतिका प्रकाश होना चाहिये स्मृति में चेतन भागतो स्वयंप्रकाश है और वृत्ति भागका साक्षी आधीन सदा प्रकाश होता है. इसलिये स्मृतिका अनुभव होना चाहिये। और नैयायिक को शपथ पूर्वक यह पूछते हैं कि शुक्ति में (इदंरजतं) इस भ्रमसे पूर्वकाल में रजत स्मृति का अनुभव तेरको होताहै। तब यथार्थवक्ता होवे तो स्मृति के अनुभव का अभावही कहे, इसलिये शुक्ति से नेत्र संयोग काल में भ्रम के पूर्व रजत की स्मृति संभव नहीं। और जो ऐसा कहे कि रजतानुभवजन्य रजत गोचर संस्कारसहित नेत्र संयोग से रजतभ्रम होता है. संस्कार गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं, किन्तु अनुमेय है; इसलिये उक्त दो नहीं ॥ तथापि उसको यह पूछते हैं कि उद्बुद्ध संस्कार भ्रम के जनक हैं अथवा उद्बुद्ध और अनुद्बुद्ध दोनों संस्कार भ्रमके जनक हैं ॥ जो दोनोंकी जनकता कहे तो संभव नहीं क्योंकि अनुद्बुद्ध संस्कारसे स्मृत्यादिक ज्ञान कदापि नहीं होवे जो अनुद्बुद्धसेभी स्मृति होवे तो अनुद्बुद्ध संस्कारसे सर्वदा स्मृति होनी चाहिये। इसलिये उद्बुद्ध संस्कारसे स्मृति होती है उससे भ्रम ज्ञानभी उद्बुद्ध संस्कारसेही संभव है इसलिये उद्बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक है यह कहना सो भी संभव है नहीं [illegible]

असत्ख्याति वाद का अङ्गीकार करने का काम निर्लज्जपना है क्योंकि रहितको निःस्वरूप कहते हैं इसलिये सत्ता स्फूर्ति शून्य भी प्रतीति होवेहै ख्यातिवाद है तैसे सिद्ध होवे है "सत्ता स्फूर्ति शून्य की प्रतीति कहना विरुद्ध लिये अवंध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ कहैं हैं तो अवंध्या विलक्षण वंध्या वंध्याके योग को वंध्या कहैं हैं इसरीति से वंध्या के योग की प्रतीति अर्थात् बाँझ के समान असत् ख्याति सिद्ध हुई, इसलिये असत् ख्याति का मानना असङ्गत है॥ दूसरी आत्म ख्याति का अभिप्राय और खण्डनः—आत्मख्याति वादी भी असङ्गत कि विज्ञानवादीके मत में आत्मख्याति है क्षणक विज्ञान को विज्ञानवादी कहते हैं जिसके मत में वाह्य रजत तो है नहीं किंतु अंतर विज्ञान रूप आत्मा है धर्म रजत है दोष बल से वाह्य प्रतीति होती है शून्यवादीके मत विना अंतर की सत्तामें किसी सुगत शिष्य का विवाद नहीं वाह्य पदार्थ तो कोई मानता है नहीं मानता है इसलिये वाह्य पदार्थ की सत्ता में तो उनका विवाद है और विज्ञान का निषेध शून्यवादी विन कोई नास्तिक करे नहीं इसलिये अंतर रजत का ज्ञान रूप आत्मा अधिष्ठान है जिसका धर्म रजत अंतर है दोष बल से वाह्य की तरह से होवे है ज्ञानसे रजतके स्वरूपसे बाद होवे नहीं किन्तु रजतकी वाह्यताका बाद होवे है लिये आत्मख्याति मतमें रजतका तो बाध मानते हैं नहीं क्योंकि शून्यवादीसे भिन्न सौगतके मतमें पदार्थोंकी अंतर सत्तामें विवाद नहीं इसलिये स्वरूपसे रजतका बाध तेहैं नहीं केवल वाह्यताका रूप इदन्ताका बाद मानतेहैं क्योंकि आत्मख्यातिमें विना इदंता रूप धर्म मात्रके बाधको ही मानेंहैं यह आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय है। मतमें रजत अन्तर सत्य है जिसकी वाह्य देशमें प्रतीति भ्रम है इसलिये रजत ज्ञा रजत गोचरत्व अंश भ्रम नहीं किंतु रजतका वाह्यदेश स्थित्व प्रतीत अंशमें भ्रमहै॥ इसका खं यह कहना आत्मख्यातिवाले का समीचीन नहीं क्योंकि रजत अन्तर है ऐसा अ किसी को होवे नहीं भ्रमस्थल में वा यथार्थ स्थल में रजतादिकों की अन्तरता किसी प्र पसे सिद्धहोवे नहीं क्योंकि सुखादिक अन्तर है और रजतादिक वाह्य हैं यह अनुभव को सिद्ध है रजत को अन्तरमान तो अनुभव से विरुद्ध है और अन्तरता का साधक प्र वा युक्ति कोईहै नहीं इसलिये अन्तर रजतकी वाह्य प्रतीति मानना असंगतहै और भी अ ख्याति माननेवालेके भी वाह्यपदार्थों में दो भेदहै सो इसजगह ग्रन्थके बढ़ने के भयसे लिखे और दूसरा इन में कोटियों की क्लिष्टता भी है और इसकी जिनमत में प्रा कम है इसवास्ते दिग्मात्र प्रसंग से दिखाई है ॥ अब अन्यथा ख्यातिवादी का त कहते हैं—कि जिस पुरुषको सत्यपदार्थ के अनुभव जन्य संस्कार होवे जिसके दोष नेत्रका पूर्व दृष्ट सदृश पदार्थ से सम्बन्ध होवे वहां पुरोवर्ति सदृश्य पदार्थ के सामान्य से पूर्वदृष्टिकी स्मृति होवे है अथवा स्मृति नहीं होवे सदृश्य के ज्ञान से संस्कार उद्बु है जिस पदार्थ की स्मृति होवे अथवा जिस के उद्बुद्ध संस्कार होवे उस पदार्थ का पुरोवर्त्ती पदार्थ मे प्रतीतिहोवे है जैसे सत्य रजतके अनुभवजन्य संस्कार सहित पु रजत सदृश शुक्तिसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत की स्मृतिहोवे है जिस स

को जिसका रजतत्व धर्म शुक्ति में भासे है अथवा नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत भ्रम में विलम्ब होवे नहीं इसलिये नेत्र सम्बन्ध और रजत के प्रत्यक्ष भ्रमके अन्तराल में रजत की स्मृति नहीं होवे है किन्तु रजतानु भवके संस्कार उद्भूतहोय के स्मृति के व्यवधान विना शीघ्रही शुक्ति में रजत्व धर्मका प्रत्यक्ष होवे है । स्मृति स्थल में जैसे पूर्व दृष्ट सदृश्य के ज्ञान से संस्कारका उद्बोध होवे है । तैसे भ्रमस्थल में पूर्वदृष्टके सदृश्य पदार्थ से इंद्रियका सम्बन्ध होतेही संस्कारका उद्बोध होयके संस्कार गोचर धर्मका पुरोवर्ति में भानहोता है इसको अन्यथा ख्याति कहते हैं अन्य रूप से प्रतीति को " अन्यथा ख्याति " कहते हैं शुक्ति पदार्थ में शुक्तित्व धर्म है रजत्व नहीं है और शुक्तिकी रजत्व रूप से प्रतीतहोवे है इसलिये अन्य रूपसे प्रतीति है ॥ (इदं रजतं) इत्यादिक भ्रमतो उक्त रीतिसे संभव नहीं; क्योंकि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध और रजत्व स्मृतिको (इदंरजतं) या ज्ञानकी कारणता माने जिसको यह पूछते हैं कि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध होयके शुक्ति रजत साधारण धर्म चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान होयके रजतकी स्मृति होती है इससे उत्तर भ्रमहोता है अथवा शुक्तिके सामान्य ज्ञान से पूर्वही शुक्ति से नेत्रका सम्बन्ध होवे उसीकाल में रजत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिहोय के (इदंरजतं) यह भ्रमहोता है कि जो प्रथम पक्ष कहे तो सम्भव नहीं क्योंकि प्रथम तो शुक्तिका सामान्य ज्ञान जिससे उत्तर रजतत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिसे उत्तर रजत भ्रम इसरीति से तीनों ज्ञानों की धारा अनुभवसे बाधित है (इदंरजतं) यह एकही ज्ञान सर्वकी प्रतीति होता है ॥ और जो ऐसा कहैं कि प्रथम सामान्य ज्ञान शुक्तिके हुए विना शुक्ति से नेत्रके संयोग काल में रजतकी स्मृति होयके (इदंरजतं) यह भ्रम होता है । सो भी संभव नहीं क्योंकि सकल ज्ञान चेतनरूप स्व प्रकाश हैं वृत्तिरूप ज्ञान साक्षी भास्य है; कोई ज्ञान किसीकाल में अज्ञात होवे नहीं (यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करेंगे) इसलिये शुक्ति में नेत्रके संयोगकाल में रजतकी स्मृति होती तो स्मृतिका प्रकाश होना चाहिये स्मृति में चेतन भागतो स्वयंप्रकाश है और वृत्ति भागका साक्षी आधीन सदा प्रकाश होता है, इसलिये स्मृतिका अनुभव होना चाहिये । और नैयायिक को शपथ पूर्वक यह पूछते हैं कि शुक्ति में (इदंरजतं) इस भ्रमसे पूर्वकाल में रजत स्मृति का अनुभव तेरेको होताहै । तब यथार्थवक्ता होवे तो स्मृति के अनुभव का अभावही कहे, इसलिये शुक्ति से नेत्र संयोग काल में भ्रम के पूर्व रजत की स्मृति संभव नहीं । और जो ऐसा कहै कि रजतानुभवजन्य रजत गोचर संस्कारसहित नेत्र संयोग से रजतभ्रम होता है, संस्कार गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं, किन्तु अनुमेय है; इसलिये उक्त दो नहीं ॥ तथापि उसको यह पूछते हैं कि उद्बुद्ध संस्कार भ्रम के जनक हैं अथवा उद्बुद्ध और अनुद्बुद्ध दोनों संस्कार भ्रमके जनक हैं ॥ जो दोनोंकी जनकता कहें तो संभव नहीं क्योंकि अनुद्बुद्ध संस्कारसे स्मृत्यादिक ज्ञान कदापि नहीं होवे जो अनुद्बुद्धसेभी स्मृति होवे तो अनुद्बुद्ध संस्कारसे सर्वदा स्मृति होनी चाहिये । इसलिये उद्बुद्ध संस्कारसे स्मृति होती है उसेव भ्रम ज्ञानभी उद्बुद्ध संस्कारसेही संभव है इसलिये उद्बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक है यह कहना सो भी संभव है नहीं क्योंकि संस्कारके उद्बोधक सदृश्य दर्शनादिक हैं इसलिये शुक्तिसे नेत्रके

संयोगसे चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पीछे रजत गोचर संस्कारका उद्बो-
है. नेत्र शुक्तिके संयोग कालमें रजत गोचर संस्कारका उद्बोध संभव नहीं इसलिये
मानना होवेगा. प्रथम क्षणमें नेत्र संयोग. द्वितीय क्षणमें चाक चिक्य धर्म वि-
शुक्तिका ज्ञान, जिससे उत्तर क्षणमें संस्कारका उद्बोध जिससे उत्तर क्षणमें भ्रम
संभव है । इसीरीतिसे नेत्र संयोगसे चतुर्थ क्षणमें भ्रम ज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई
अनुभवसे बाधित है नेत्र संयोगसे अव्यवहित उत्तर क्षणमें चक्षु ज्ञान होता है वैसाही अनु-
भव होता है इसलिये उक्त रीतिसे असंगत है ॥ अन्यथा ख्यातिका संक्षेप वर्णन
किया ॥ अब आख्यातिका वर्णन करते हैं–प्रभाकरका आख्याति वाद है सो उसका
तात्पर्य यह है कि अन्य शास्त्रोंमें यथार्थ अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका ज्ञान कहते हैं
उन शास्त्रकारोंका यह अभिप्राय है कि यथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवे
है और अयथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवे है यह कैसा सकल शास्त्रोंका अप-
हन है क्योंकि अयथार्थ ज्ञान अप्रसिद्ध अर्थात् है ही नहीं सारे ज्ञान यथार्थही होते हैं जो
अयथार्थ ज्ञानभी होता तो पुरुषको ज्ञान होते ही ज्ञानत्व सामान्य धर्म देखिके उत्पन्न हुये
ज्ञानमें अयथार्थता संदेह होनेसे प्रवृत्ति निवृत्तिका अभाव होवेगा क्योंकि ज्ञानमें यथार्थत्व
निश्चय और अयथार्थता संदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिका हेतु है और अयथार्थ-
ताके संदेह होनेसे दोनों सम्भव नहीं और अयथार्थ ज्ञानको नहीं माने तब उत्पन्न हुये
ज्ञानमें उक्त संदेह होवे नहीं क्योंकि कोई ज्ञान अयथार्थ होवे तो तिसकी ज्ञानत्व धर्मसे
समानतासे अपने ज्ञानमें देखकर अयथार्थत्व संदेह होवे सो अयथार्थ ज्ञान है नहीं । सारे
ज्ञान यथार्थही हैं इसलिये ज्ञानमें अयथार्थता संदेह होवे नहीं इस रीतिसे भ्रम ज्ञान अप्र-
सिद्ध है जहां शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवे है और भय हेतु रज्जुमें निवृत्ति होवे है
तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है जो रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान
और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान उक्त स्थलमें होवे तो यथार्थ तो संभव नहीं इसलिये अयथार्थ
होवे सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है इसवास्ते उक्त स्थलमें रजतका और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान
नहीं किन्तु रजतका स्मृति ज्ञान है और शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष, वैसे
पूर्वानुभव सर्पका स्मृति ज्ञान है और सामान्य इदं रूपसे रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है इसलिये
तहां रज्जुमें दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध होवे है इसलिये शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरू-
पसे नहीं किन्तु सामान्यरूप इदंता भान है और शुक्तिमें नेत्रके सम्बन्धजन्य ज्ञान हुये
रजतके संस्कार उद्बुद्ध होवे है शुक्तिके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें रजतकी स्मृति होवे है
वैसे रज्जुके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें सर्पकी स्मृति होवे है यद्यपि सकल स्मृति ज्ञानमें
तत्तांशकी [illegible] है तथापि दोष सहित नेत्रके संबन्धसे संस्कार उद्बुद्ध होवे वहां
[illegible] तत्ता अंशका प्रमोष होवे है इसलिये प्रमुष्ट तत्ताकी
स्मृति होवे है प्रमुष्ट [illegible] लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो प्रमुष्ट तत्ताक
स्मृतिका अर्थ है इसलिये (इदं रजतं अयं सर्पः) इत्यादिक स्थलोंमें दो
ज्ञान हैं तहां शुक्तिका और रज्जुका सामान्य इदं रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान यथार्थ
है और रजतका तथा सर्पका स्मृति ज्ञानभी यथार्थ है । यद्यपि [illegible]

शुक्ति और रजत भागको त्यागके प्रत्यक्ष ज्ञान हुवा है और तत्ता भाग रहित स्मृति ज्ञान हुवा है तथापि एक भाग त्यागनेसे अयथार्थ ज्ञान होवे नहीं किंतु अन्यरूपसे ज्ञानको अयथार्थ कहे हैं इसलिये उक्त ज्ञान यथार्थ है अयथार्थ नहीं इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अप्रसिद्ध है यह इसका कहना समीचीन नहीं क्योंकि शुक्तिमें रजत भ्रमसे प्रवृत्ति हुवे पुरुषको रजतका लाभ नहीं होनेसे पुरुष ऐसा कहता है कि रजत शून्य देशमें रजत ज्ञानसे मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अनुभव सिद्ध है जिसका लोप संभव नहीं और मरुभूमिमें जलका बाध होवे तब पुरुष यह कहताहै कि मेरेको मरुभूमिमें मिथ्या जलकी प्रतीति हुई इस बाधसेभी मिथ्या जल और उसकी प्रतीति होवे है और आख्यातिवादीकी रीतिसे तो रजतकी स्मृति और शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहमें मेरी शुक्तिमें प्रवृत्ति हुई ऐसा बाद होना चाहिये और मरुभूमिके प्रत्यक्षसे और जलकी स्मृतिसे मेरी प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध होना चाहिये और विषय तथा भ्रम ज्ञान दोनों त्यागके अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना आख्यातिवादमें है तथाही नेत्र संयोग हुवे दोषके महात्म्यसे शुक्तिका विशेष रूपसे ज्ञान होवे नहीं यह कल्पना विरुद्ध है तैसेही तत्तांशके प्रमोषसे स्मृति कल्पना विरुद्ध है और विषयका भेद है सो भावे नहीं ऐसे ज्ञानोंके भेदहै सो भी भावे नहीं यह कल्पनाभी विरुद्ध है और रजतकी प्रतीति कालमें सन्मुख देशमें रजत प्रतीति होवे है इसलिये आख्याति वाद अनुभव विरुद्ध है और आख्यातिवादीके मत में रजतका भेद ग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेसे रजतके भेदग्रहका अभाव जैसे रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु माना है तैसेही सत रजत स्थलमें रजतका अभेदग्राह निवृत्तिका प्रतिबोधक अनुभव सिद्ध है इसलिये रजतके अभेद ग्राहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवेगा इसरीतिसे रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है और रजतके अभेद ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है शुक्ति देशमें(इदं रजतं) ऐसे दो ज्ञान होवें तहां आख्याति वादीके मतमें दोनों हैं क्योंकि शुक्तिमें रजतका भेद तो है परन्तु दोष बलसे रजतके भेद-का शुक्तिमें ज्ञान होवे नहीं इसलिये प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेद ज्ञानका अभाव है और शुक्तिमें रजतका अभेद है नहीं और आख्याति वादमें भ्रमका अंगीकार नहीं इसलिये शुक्तिमें रजत का अभेदका ज्ञान संभव नहीं इसरीति से शुक्ति से रजतार्थी की निवृत्ति का हेतु रजत के अभेद ज्ञानका अभाव है रजतार्थी की सामग्री दोनों हैं और प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों परस्पर विरोधी हैं और एक काल में दोनों संभव नहीं और दोनों के असंभव होनेसे दोनों का त्याग करे सोभी संभव नहीं क्योंकि प्रवृत्ति का अभावही इस स्थान में निवृत्त पदार्थ है इसलिये प्रवृत्तिका त्यागकरे निवृत्तिका प्रायः होवे है और निवृत्तिका त्यागकर प्रवृत्ति प्रायःहोवे है इसरीति से दोनों के त्याग में और दोनों के अनुष्ठान में आसक्तहुवा आख्यातिवादी को व्यकुल होके लज्जासे बोलना न बनेगा इस अर्थ में अनेक कोटी है कठिन होने से इसजगह नहींलिखी ॥

अब अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन मण्डन तो दूसरे प्रश्न में जहां वेदान्तमत दि-खाया है उसीजगह अच्छीतरह से लिखआये हैं परन्तु प्रसंगवश से किञ्चित् अनिर्वच-नीय ख्याति का स्वरूप कहते हैं:—अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रद्वारा निकलके विषयों के स-मान आकार को प्राप्तहोती है जिस से विषयों का आवरण भंगहोके उसको प्रतीति होतीहै,

तहां प्रकाश भी सहायक होता है, प्रकाश विना पदार्थ की प्रतीति
जहां रज्जु में भ्रम होता है तहां अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा
और रज्जु से उसका सम्बन्ध भी होता है, परन्तु तिमिरादिक दोष
इसलिये रज्जु के समानाकार वृत्तिका स्वरूप होता नहीं, इसलिये रज्जु
आवरण नाशी नहीं; इसरीति से आवरण भंग का निमित्त वृत्तिका सम्बन्ध होवे
भी, जब रज्जु का आवरण भंग होता नहीं तब रज्जु चेतन में स्थित अविद्या में
क्षोभ होके सो अविद्या सर्पाकार परिणाम को प्राप्तहोती है सो अविद्या का कार्य्य सर्प सत्
होता तो रज्जु के ज्ञान से उसका बाध होतानहीं और बाध होता है इसलिये सत्यनहीं और
असत् होता तो वंध्या पुत्र की नाई प्रतीति नहीं होती और प्रतीति होती है इसलिये असत्य
भी नहीं किन्तु सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है, शुक्ति आदिक में रूपादिक भी इसी
रीति से अनिर्वचनीय उत्पन्न होती है उस अनिर्वचनीय की जो ख्याति कहिये प्रतीति
और कथना, सो अनिर्वचनीयख्याति है. जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है तैसे उस की ज्ञान
रूप वृत्ति भी अविद्या काही परिणाम है. अन्तःकरण का नहीं क्योंकि जैसे रज्जु ज्ञान से
सर्प का बाध होता है वैसे उसके ज्ञान का भी बाध होता है अन्तःकरण का ज्ञान होता
तो बाध नहीं होना चाहिये, इसलिये ज्ञानभी सर्पकी नाई अविद्याका कार्य
सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है परन्तु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित तमोगुण प्रधान
अविद्या अंशका परिणाम सर्प है और साक्षी चेतनमें स्थित अविद्याके सतोगुणका परिणाम
वृत्ति ज्ञान है रज्जु चेतनकी अविद्याका जिस समय सर्पाकार परिणाम होता है वही समय
साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम होता है क्योंकि रज्जु चेतन आश्रित अवि
द्यामें क्षोभका जो निमित्त है, उस निमित्तसेही साक्षी आश्रित अविद्या अंशमें क्षोभ होता
है इसलिये भ्रम स्थलमें सर्पादिक विषय और उनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होता है
और रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानमे एकही समय लीन होता है इसरीतिसे सर्पादिक
भ्रम विषय बाह्य अविद्या अंश सर्पादिक विषयका उपादान कारण है, और साक्षी चेतन
आश्रित अंतर अविद्या अंश उनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादान कारण है और स्वप्नमें तो
साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामको प्राप्त होता है
उस अविद्यामें सतोगुण अंश ज्ञानरूप परणामको प्राप्त होता है इस स्वप्नमें अंतर
अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारणहै इसीसे बाह्य रज्जु सर्पादिक और
अन्तर स्वप्न पदार्थ साक्षी भाष्य कहतेहै, अविद्याकी वृत्तिद्वारा जिसको साक्षी भासे कहिये
प्रकाशे सो साक्षी भाष्य कहिये॥ यह तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति नहीं बनी॥ शंका॥
रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बने नहीं क्योंकि मिथ्या वस्तुका जो अधिष्ठान होवे उस
अधिष्ठानके ज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होती है; यह अद्वैत वादका सिद्धान्त है और मिथ्या
सर्पका अधिष्ठान रज्जुचेतनहै, रज्जुनहीं. इसलिये रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बने नहीं
॥ इसका समाधानः-रज्जु आदिक जड़पदार्थका ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्ति रूप होता है
तहां आवरण भंग वृत्तिका प्रयोजन है सो आवरण अज्ञानकी शक्तिहै इसलिये आवरण
जड़के आश्रितहै नहीं, किन्तु जड़का अधिष्ठान जो चेतन, उस के आश्रित है

भूख लगी है उसको स्वप्नमें नाना प्रकारके भोजन मिले और उस पुरुषने स्वप्नमें तरहसे खाया और तृप्त हुवा और जब वो जगा तब भूख उसको बनी रही उसने भोजन भी तृप्त होकर किया पर जाग्रतकी भूख न मिटी अब देखो कि जब सम साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं है तो हे विचार शून्य बुद्धि विचक्षण मीचकर हृदयमें विचार करो कि रज्जु सर्पकी सत्ता प्रतिभासक मानो हो तो रज्जु सर्प भासिक हुवा और उसका साधक रज्जुका विशेषरूप करके जो अज्ञान तिसको मानो तो इस अज्ञानकी सत्ता व्यवहारिक है इसलिये यह अज्ञान व्यवहारिक ठहरा रज्जुके ज्ञानसे प्रतिभासक सर्पकी निवृत्ति मानो हो तो इस रज्जुका ज्ञानभी व्यव सो सर्प प्रतिभासक कैसे हो सके जो सर्प प्रतिभासक होय तो व्यवहारिक रज्जुका अज्ञान इस सर्पका साधक हो सके नहीं और रज्जुका व्यवहारिक ज्ञान सर्पका बाधक हो सके नहीं ऐसेही स्वप्नमें समझो कि व्यवहारिक जो निद्रा सो तो स्वप्नकी साधक है और व्यवहारिक जो जाग्रत वा सुषुप्ति यह स्वप्नके बाधक हैं तो स्वप्न प्रतिभासिक कैसे हो सके और देखो कि ब्रह्मको तुम सर्वका साधक मानों हो तो ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता है और सर्व जगत् व्यवहारिक सत्ता है तो अब देखो कि तुम्हारा सिद्धान्त तुमकोही बाधा देता हुवा तुमको समझाता है परंतु शुद्ध गुरुके बिदून तुमको तुम्हारा अभिप्राय नहीं प्रतीति होता क्योंकि देखो समान सत्ताकाही साधक बाधक है तो ब्रह्म किसीकाभी साधक बाधक नहीं होना चाहिये इसलिये सर्वकी साधकता बाधकताके निर्वाहके अर्थ सर्वकी एकही सत्ता मानो अब जो सर्वकी प्रतिभासिक सत्ता मानोगे तब तो ब्रह्मकोभी मिथ्या मानना पड़ेगा सो तो तुमको अभिमत है नहीं और जो सर्वकी व्यवहार सत्तामानो तो ब्रह्म व्यवहारिक पदार्थ सिद्ध होगा तो तुम व्यवहारिक पदार्थको जन्य मानों तो ब्रह्मकोभी जन्य मानना पड़ेगा सो यहभी तुमको अभिमत है नहीं इसलिये सर्वकी परमार्थ सत्ता अर्थात् सत्त सत्ता मानों इस सत्ताके माननेमें तुम्हारे सर्व काम सिद्ध हो जायगे इस युक्तिको सुनकर वेदान्ती [illegible] होकर अनिर्वचनीय ख्याति माननेमें उत्साहवान् होकर आगे अनिर्वचनीय होगये अर्थात् वचन करनेके योग्य न रहे और इन ख्यातिके विषय समझाने वाले गुरु कोई [illegible] है अब इन चार युक्तियोंको सुनकर [illegible] होकर इस अनिर्वचनीय ख्या[illegible] [illegible] इनका उद्धार होगा. ननु अन्य रीतिसे सो बेचारी युक्तियां यह [illegible] [illegible] अनुभव विरुद्ध तुम्हारा [illegible] और सकल शास्त्रोंसे विरुद्ध तुम्हारीसे विरुद्ध तुम्हारा [illegible] तुम्हारा [illegible] [illegible] होगा अब प्रथम [illegible] तुमको विरुद्ध युक्ति दिखाते है जिस [illegible] युक्ति और रज्जु अर्थात् जेवरी जिसे सीदड़ी भी कहते हैं; अथवा [illegible] [illegible] और जो भ्रम स्थलके स्थान हैं वे सब इसी रीतिसे जानना [illegible] देखो [illegible] जिस [illegible] पुरुषको भ्रम ज्ञानसे जिस वस्तुके इष्ट मानकर की इच्छासे इस भ्रम [illegible] [illegible] [illegible] पहुंचनेही उस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होवे यह पुरुष कहता है कि मेरेको सत्य इष्ट वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा मेरी मेहनत वृथा गई इस कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस पुरुषको शुक्ति [illegible] पहुंचनेसे और रजतके न मिलनेसे यह पुरुष कहता हुवा कि मेरेको

मेरेको मिथ्या ज्ञान हुवा अर्थात् विरुद्ध ज्ञान हुवा इसलिये इसमें मेरी प्रवृत्ति वृथा हुई प-
रन्तु वह पुरुष ऐसा नहीं कहता कि मेरेको अनिर्वचनीय रजतका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु यही
कहता कि मेरेको सत् रजतका भ्रम ज्ञान हुवा, ननु अनिर्वचनीय रजतका,
इसीरीतिसे रज्जुमें जहां दंड, सर्प, माला इत्यादिक भिन्न पुरुषोंको भ्रम ज्ञान होता
है उस जगह भी रज्जु देश जाने पर वे सर्व पुरुष अपने २ भ्रमको कहते हुवे
कि हमको रज्जुमें सत् सर्पका मिथ्याभाव हुवा कोई कहता है कि मेरेको
मालाका भ्रम रज्जुमें मिथ्या होगया इत्यादि जिस २ पुरुषको जिस २ सत्य वस्तुका भ्रम
हुवा है वह उसीका नाम लेकरही भ्रमज्ञान कहता है परन्तु अनिर्वचनीय दंड अनिर्वचनीय
माला अनिर्वचनीय सर्प इत्यादि भिन्न २ अनिर्वचनीय नाम लेकर कोई नहीं कहता कि
मेरेको अमुक अनिर्वचनीय वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु जो कहता है सो सत्यवस्तुकाही
भ्रम ज्ञान कहता है यह अनुभव लोकमें प्रसिद्ध है सो बुद्धिमान् पुरुष भ्रमस्थलमें सत्य
वस्तुकाही भ्रम ज्ञान माने तो क्या अपूर्व है परन्तु जो पामरलोग विवेक रहित नाई, धोबी
तेली, तम्बोली, जाट, गूजर, भील, आदिकोंसे पूछो तो वे भी भ्रमस्थलमें रजत अर्थात्
चांदी वा सर्प, माला दण्ड इत्यादिकोंका नाम लेकर कहेंगे कि हमको इन वस्तुवोंका भ्रम
ज्ञान हुवा परंतु ऐसा कोई नहीं कहेगा कि हमारेको अनिर्वचनीय अमुक वस्तुका भ्रमज्ञान
हुवा इसरीतिसे लोक अनुभव विरुद्ध सिद्ध हुवा दूसरा तुम्हारे विना सकलशास्त्रसे विरुद्धभी
देखोकि तुम्हारे मुख्य वेद अर्थात् श्रुति जिसमें मंत्र वा मंत्रोंकी व्याख्यामें कहींभी अनिर्वचनीय
पदार्थका कथन नहीं अथवा अनिर्वचनीय कोई पदार्थ नहीं माना गया [illegible] इसके सिवाय
और कोई तीसरा अनिर्वचनीय पदार्थ नहीं इस वेदके सिवाय न्याय, बौद्ध, सांख्य, मीमांसा,
पातञ्जलि, जैनी आदिक कोईभी इस अनिर्वचनीय पदार्थको नहीं मानते हैं। और किसी
शास्त्रमें अनिर्वचनीय पदार्थका कथनभी नहीं है। हां अलबत्ता अनिर्वचनीय शब्दका तो प्रयोग
शास्त्रोंमें दीखता है सो शास्त्रकार अनिर्वचनीय वाक्यका अर्थ करते हैं कि जो न कहनेमें
आवे उसीका नाम अनिर्वचनीय है इसलिये तुम्हारा अनिर्वचनीय पदार्थ मानना तुम्हारे
विना सकल शास्त्रोंसे विरुद्ध सिद्ध हो गया। अब तीसरी युक्तिसेभी विरोध सिद्ध
दिखलाते हैं:—कि देखो वेदान्तशास्त्रमें तीन सत्ताका अंगीकार है सो एक तो परमार्थ,
दूसरे व्यवहारिक, तीसरे प्रतिभासिक इन तीनों सत्ताओंमें से कोई किसीका
बाधक साधक नहीं क्योंकि समसत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं इस बातको
तुम अंगीकार करो हो तो अब देखो कि जिस जगह शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस जगह
तुम सत् रजततो मानो नहीं अनिर्वचनीय पदार्थ प्रातिभासिक रजत मानो हो और दूसरा
यहभी मानो हो कि शुक्तिका ज्ञान होनेसे रजतकी निवृत्ति होवे है तो अब देखो इस
जगह नेत्र बन्दकर हृदय कमल ऊपर बुद्धिसे विचार करो कि समसत्ता साधक बाधक है
तो शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजतकी निवृत्ति माननी असंभव है क्योंकि शुक्ति तो
व्यवहारिक सत्तावाली है और अनिर्वचनीय रजत प्रातिभासिक सत्तावाली है तो व्यवहा-
रिक सत्तावाली शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजत प्रातिभासिक सत्तावालीका क्यों-
कर बाद हुवा कदाचित् शुक्ति ज्ञानसे अनिर्वचनीय रजतका बाद मानोगे तो समसत्ता साधक

बाधक है । इस कहनेको जलाञ्जली देनी पड़ेगी और विषमसत्ता साधक बाधक हो तो ऊपर लिखी युक्तिसे विरोध होगा. चौथे तुम्हारेको तुम्हारे ही सिद्धान्तका सो देखो कि तुम्हारा ऐसा सिद्धान्त है कि समसत्ता साधक बाधक है इस समसत्ताको साधक बाधकही सिद्धकरनेके वास्ते तुम्हारे ही शास्त्रोंमें लिखा वेद और गुरु सत् नहीं किन्तु मिथ्या है क्योंकि जगत् प्रपंच मिथ्या है तो जो वेद गुरु सत्य होय तो मिथ्यात्वकी निवृत्ति होय नहीं इसलिये वेद और गुरु मिथ्या मिथ्यात्व वेद गुरुसेही प्रपंचकी निवृत्ति होगी तो तुम्हारा मुख्य समसत्ता साधक का सिद्धान्त हुवा तो जहां शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान हुवा है उस जगह अर्थात् प्रतिभासिक रजत उत्पन्न हुई है सो व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक की निवृत्ति बने नहीं जो तुम्हारे को तुम व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक रजत अनिर्वचनीय की निवृत्ति मानोगे तो तुम्हारे सिद्धान्तका त्यागभी हो गया इस सिद्धान्तके त्याग होनेसे आशक्त होकर अनिर्वचनीय ख्यातिवादी व्याकुल होकर लज्जासे प्राणत्याग करनेके समान अनिर्वचनीय अर्थात् बोलनेके योग्य न रहा इस जगह अनेक कोटी हैं परन्तु क्लिष्ट अर्थात् कठिन बहुत हैं इसलिये नहीं लिखी क्योंकि कठिनतासे जिज्ञासुको मुश्किल पड़ेगा और जिज्ञासु न समझनेसे आलस्य करके ग्रन्थका बांचना छोड़ देगा ॥

अब पंच ख्याति निरूपणके अनन्तर किंचित् सत ख्यातिका वर्णन करते हैं-कि श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने इस जगत्का सास्वतः अनादि अनन्तरीतिसे कथन किया इसलिये सत ख्याति माननेसे जगत्की निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होगी इसलिये जिस जगह जिस वस्तुका भ्रम होता है उस जगह जो भ्रमवाली वस्तु है जिसका जिसमें भ्रम हुवा है दोनों यह और तीसरा भ्रम चौथा भ्रम करनेवाला यह चारों पदार्थ सत् हैं, इनकी सतताका वर्णन तो हम इन चारों वस्तुओंको प्रतिपादन करनेके बाद अच्छीतरह कहेंगे कि यह चारों वस्तु सत् हैं, प्रथम तो हम तुमको यह दिखलाते हैं कि जिस जगह भ्रम होता है तिस जगह किस २ कारणकी उस भ्रमस्थलमें आवश्यकता होती है सो उन कारणोंको दिखलाते है कि १ प्रथम तो प्रबल यह है कि प्रकाश अन्धकारका अभाव अर्थात् जिस जगह भ्रम होगा उस जगह न तो पूरा २ प्रकाश होगा क्योंकि जो पूरा २ प्रकाश होतो वस्तु भिन्न २ दृष्ट आवे इस लिये पूरे प्रकाशका अभाव है तैसे ही पूरा अन्धकार भी नहीं क्योंकि जो पूरा अन्धकार होता तो वस्तु दृष्टि नहीं आती इसलिये पूरा अन्धकार भी नहीं । २ दूसरे नेत्रोंमें तिमिर आदि दोष। ३ तीसरे जिस वस्तुका यथावत ज्ञानका अनुभव होय । ४ चौथे इष्ट साधन प्रवृत्तिका कारण है और अनिष्ट साधन निवृत्तिका कारण है इतने कारण होनेसे भ्रमस्थलमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती है अब देखो कि जिस समय शुक्तिमें रजतका भान अर्थात् प्रतीति जिस पुरुषको होती है उस समय न तो बहुत प्रकाश है और न बहुत अन्धकार है उस समयमें दोष सहित नेत्रोंसे सादृश्य जो वस्तु इष्ट साधन थी उस पुरुषको जिस जगह पड़ी हुई थी उस जगह ऊपर लिखे दोषोंके बलसे उस पुरुषको ऐसा ज्ञान हुवा कि (इदंरजतं) अर्थात् चांदी पड़ी हुई है इस विपरीत ज्ञानमें पंचख्यातिवादका मत दीखाकर अब सिद्धांती

में पुरुष भ्रम होवे तहां स्थानु में पुरुष के अवयव हस्त पादादिक मानने होवेंगे काल और हस्त पादादिक तो महत्वशून्य संभव नहीं और रजतत्व जाति तो अनुभवरूप है इसलिये सूक्ष्मावयव में भी रजत व्यवहार संभव है और घटत्व कपालत्व हस्त पादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान् अवयवी मात्र वृत्ति है तिसके सूक्ष्मावयव में कपालत्वादिक जाति संभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठानदेश में आरोपित के व्यवहार अवयव होवें तो तिन की प्रतीति होनी चाहिये इस लिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक को दर्शन कहना असंगत है ऐसी वेदान्ती शंका करता है, तिस का समाधान इस रीति से है-सो दिखलाते हैं शुक्ति रजत द्रष्टान्त से प्रपंच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे है इस द्रष्टान्त दार्ष्टान्त की विसंमता अर्थात् द्रष्टान्त दार्ष्टान्त बनता नहीं है सो हम पीछे दिखावेंगे परन्तु पहले जो इन वेदान्तियों की बालक की तरह शुष्क तर्कें उठती हैं उन का समाधान इस रीति से है शुक्ति ज्ञान से अनन्तर (कालत्रयेपि शुक्तो रजतं नास्ति) इस रीति से शुक्ति में त्रैकालक रजताभाव प्रतीति होवे है तो हम तुम्हारे को यह पूछें हैं कि जिस पुरुष को शुक्ति में त्रिकालक रजताभाव है उस समय में उस पुरुष की (इदं रजतं) इस रजत के ज्ञान से रजत के उठाने की प्रवृत्ति कदाचित् भी न होगी क्योंकि उस जगह रजत है ही नहीं सो प्रवृत्ति क्यों कर बनेगी जो तुम ऐसा कहो कि अनिर्वचनीय रजत तो मध्यकाल में होवे है और व्यवहारिक रजताभाव त्रिकालक है और व्यवहारिक रजत होवे तिस काल में व्यवहार रजताभाव संभव नहीं इस लिये त्रिकालिक रजताभाव की प्रतीति से व्यवहारिक रजत कहना विरुद्ध है तो हम तुम्हारे को पूछें हैं कि अनिर्वचनीय रजत जो मध्यकाल में प्रतीति होवे है सो व्यवहारादिक रजत से भिन्न है वा अभिन्न है जो कहो कि भिन्न है तो उस अनिर्वचनीय रजत को किसी ने देखा सुनाया अनुभव भी किया है वा नहीं तो तुम को यही कहना पड़ेगा कि व्यवहारिक रजत से व्यवहारिक रजत का प्रभाव होय और व्यवहारिक रजत के सी प्रतीति होय उसीको हम अनिर्वचनीय अर्थात् प्रतीति मात्र रजत माने है तो हम तुम्हारे को कहे है कि हे भोले भाइयो ! इतनी गहरी कल्पना करने से व्यवहारिक रजत के सादृशी ही मानने लगे तो पेश्तर ही सत् रजत को क्यों नहीं मानकर सत् ख्याति को अंगीकार करो जो कहो कि अभिन्न है तो तुमको हमारा ही शरण लेना हुवा कि सत् रजत भ्रम काल में शुक्ति देश में भावरूप मानने से ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है और जो तुम ऐसा कहोगे कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति में तो प्रसिद्ध रजत की सामग्री चाहिये नहीं दोष सहित अविद्या से ताकी उत्पत्ति होवे है और व्यवहारिक रजत की उत्पत्ति रजत की प्रसिद्ध सामग्री विना होवे नहीं सो शुक्ति देश में रजत की प्रसिद्ध सामग्री है नहीं इस लिये सत रजत की शुक्ति देश में मानना ठीक नहीं है तो हे भोले भाइयो ! आंख मींच कर बुद्धि से हृदय में विचार करो कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति में तो प्रसिद्ध रजत की सामग्री चाहिये नहीं इस तुम्हारे वाक्य को सुन कर हम को बड़ा हास्य उत्पन्न होता है कि आत्म अनुभव शून्यबुद्धि की चातुरीय दिखलाते हैं अजी देखो जिस को सत् रजत का ज्ञान नहीं होगा उस पुरुष की प्रवृत्ति कदापि न होगी क्योंकि जिस पुरुषको रजतका ऐसा ज्ञान है कि रजत अर्थात् चांदीसे कड़े, कंठे,

सूक्ष्म अवयव में कपालत्वादिक जाति संभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठान देशमें व्यवहारिक अवयव होते तिनकी प्रतीति होनी चाहिये सो होवे नहीं इसलिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक की उत्पत्ति मानना असंगत है अब इसका समाधान इसी रीतिसे है कि शुक्ति देशमें रजत के साक्षात् अस्तिरूप तो है नहीं किन्तु शुक्तिदेश में शुक्ति के अवयव अस्तिरूप होकर आविर्भाव होरहे हैं तैसेही शुक्ति देशमें रजत के नास्तिरूप अवयव शुक्ति अवयवों में बनेहुवे हैं अस्तिरूप होकर, क्योंकि अनेक धर्मात्मिक वस्तु अर्थात् वस्तु में अनेक धर्महोते हैं वह वस्तु में अनेक धर्म नहीं होय तो परस्पर जुदी २ वस्तु ही प्रतीति नहीं होय क्योंकि देखो जिस वस्तु में एक अपेक्षा से तो अस्तिपना है दूसरी अपेक्षा से नास्तिपना तीसरी से नित्यपना, चौथी से अनित्यपना, पांचवी से एकपना, छठी से अनेकपना भिन्न अभिन्नादि अनेक अपेक्षा धर्म वस्तुमें बना हुवाहै क्योंकि देखो जैसे एक पुरुषमें पुरुषत्वपना तो एक है परन्तु अपेक्षा धर्म देखें तो अनेक धर्म प्रतीति मालूम होते हैं जैसे एक पुरुषको कोई तो पुत्र कोई पिता, कोई काका, कोई भतीजा; कोई नाना; कोई दुहिता; कोई मामा; कोई भानजा; कोई साला, कोई बहनोई; कोई ससुरा; कोई जवाई; कोई दादा; कोई पोतादि अनेक सम्बन्ध उस एक पुरुषमें मालूम होते हैं इस रीतिसे सर्व वस्तुमें अनेक धर्म अपेक्षासे कोई धर्म अस्तिरूप होकरके कोई नास्तिरूपादिक करके सदा बने रहते हैं सो जिस समयमें भ्रमज्ञान होता है उस समयमें प्रथमतो प्रकाश अंधकार दोनोंका प्रभाव दूसरा जिस चीजका भ्रमहो उसके सादृश्यवत् होना तीसरा दोष सहित नेत्रोंका सम्बन्ध चौथे इष्ट साधन वस्तुकी प्रबल इच्छा होती है, उस समय शुक्तिमें जो रजतके अवयव नास्तिरूप थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे अस्तिरूप रजतके अवयव प्रतीतिहोने लगे तैसेही वल्मीकदेशमें घटके और स्थाणुदेशमें पुरुषके साक्षात् नास्तिरूप अवयव थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे झटिति अर्थात् शीघ्रतासेहो सत् रजतादिककी उत्पत्ति होवे है क्योंकि दोषके उद्भुतमहात्मसे नास्तिरूप अवयव अस्तिरूप होकरके प्रतीतिदेते हैं और शुक्ति आदिके जो अस्तिरूप अवयव थे सो नास्तिरूप होकर के प्रतीति देते हैं उसीका नाम विपरीति है अर्थात् भ्रमज्ञान है इस लिये भ्रमके अधिष्ठानमें आरोपके अवयव प्रतीति होवें नहीं और व्यवहारिक सत् रजतादिक नकेहैं अथवा शुक्ति देश में जो शुक्ति के अवयव अस्तिरूप अविर्भाव थे सो ऊपर लिखे दोष भ्रमके बल से अस्तिरूप अवयव थे सो त्रोभाव को प्राप्त हो कर उसी क्षण में सत् रजत के नास्तिरूप अवयव त्रोभाव थे सो दोष बल से आविर्भाव हो कर प्रतीति देने लगे इसी रीति से भ्रम की अधिष्ठान में आरोपितके अवयव हैं तो भी अधिष्ठान के विशेषरूप से प्रतीति की प्रतिबन्धक है इस लिये विद्वान को महत् अवयव का प्रत्यक्ष होवे नहीं और रजत की निवृत्तिमें शुक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किन्तु रजत ज्ञानाभावसे रजतकी निवृत्ति होय है क्योंकि जितने काल रजतका ज्ञान रहे उतने कालही रजत रहेहै कहीं तो शुक्तिका ज्ञान रजत ज्ञानकी निवृत्ति का हेतु है कहीं शुक्ति ज्ञान विना अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति होवे है तो रजत ज्ञानकीनिवृत्तिसे उत्तर क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है अथवा रजत ज्ञानकी निवृत्ति

होवे तैसेही रजतज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है सो ज्ञान कालमें रजतकी स्थिति होनेसे यद्यपि प्रतिभासक रजतादिक है तथापि अनिर्वचनीय नहीं किन्तु सत् रजत हैं क्योंकि देखो जैसे तुम्हारे शास्त्रोंमें अर्थात् वेदान्तमें सुखादिक प्रातिभासिक हैं तो भी स्वप्न सुखादिकसे विलक्षण मानो हो अथवा नैयायक मतवाले भी द्वित्वादिक प्रतिभासिक मानके व्यवहारिकको सत् मानेहैं तैसे ही इस जगह भी रजतादिक प्रतिभासक है तो भी व्यवहारिक रजत सत् है इसलिये रजत ज्ञानकी निवृतिसे उस क्षिणमें रजतादिककी निवृत्ति होवे है अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थंतरका ज्ञान तिससे भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है शुक्ति ज्ञानसे ही रजतकी निवृत्ति होवे है यह नियम नहीं हैं। इस समाधानको सुनकर चौंक पड़ा और ऐसी शंका उठाने लगा कि ऐसा कहो तो लोक अनुभवसे विरोध होगा और सकल शास्त्रोंसे भी विरोध होगा सिद्धान्तका त्याग होगा युक्ति विरोधभी होगा क्योंकि शुक्तिज्ञानसे रजतभ्रमकी निवृत्ति होवे है यह सब लोगोंमें प्रसिद्ध है और सकल शास्त्रमेंभी प्रसिद्ध है और सत् ख्यातिका यह सिद्धान्त है कि विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान रजत अवयवके ज्ञानका प्रतिबाधक है इस लिये रजत अवयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निरनीति है सो रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्ति ज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी मानना क्लृप्त कल्पना है निर्णीत कुक्लृप्तकहे हैं सो शुक्तिज्ञानसे विना अन्यसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति मानोगे तो अक्लृप्त कल्पना हो जावेगी इस लिये क्लृप्त कल्पना योग्य है या युक्तिसे भी विरोध होगा इस लिये शुक्तिज्ञानसे ही रजतकी और ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी ठीक है इस वेदान्तीकी शंका को सुनकर करुणा सहित हास्य उत्पन्न होता है कि यह अज्ञानरूपी भंगके नशे में अपना विरोध दूसरे में लगाते हैं सो इस जगह एक मसल देकर इनकी शंका दूर करते हैं, सोमसल यह है कि "स्याबाश! बहुतेरे नखरे की पादे आप लगावे लड़के को" अब देखो जो तुमने कहा कि लोक अनुभव से विरुद्ध होगा सो तो तुम अपने हृदयकमल में नेत्र मींचकर बुद्धिसे विचार करो कि सत रजत का भ्रम होना यह सबको अनुभव सिद्ध है क्यों कि सत् रजत सबको देखने में आवती है नतु अनिर्वचनीय रजत किसीने देखी है कि वह अनिर्वचनीय किस रूपरंगवाली है अथवा तुम्हारे को पूछे कि तुमही बतावो कि तुम्हारी अनिर्वचनीय रजत किसरूपरंगकी है सो रूपरंग तो कुछ कह सकोगे नहीं किन्तु उस अनिर्वचनीय रजत के संग तुमको अनिर्वचनीय ही होना पड़ेगा और जो सकल शास्त्रका विरोध होगा यह कहनाभी तुम्हारा असंभव है क्योंकि सकल शास्त्र में तो हमाराभी शास्त्र आगया तो हम हमारे शास्त्र से विरोध कदापि न कहेंगे किन्तु शास्त्र के अनुसारही कहेंगे परन्तु अलबत्ता तुम्हारे शास्त्र मानने से विरोध तुमको तुम्हारी बुद्धिमें मालूम होता है नतु सकल शास्त्र से और जो तुमने कहा कि सिद्धान्तका त्याग होगा यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि सिद्धान्त शब्दका अर्थ क्या है ! तो देखो कि सिद्धान्त नाम उसका है कि जिसको वादी और प्रतिवादी दोनों अंगीकार करें तो इस जगह तो वाद होरहा है तो सिद्धान्त का त्याग किस रीतिसे हुवा और तुमने युक्तिसे विरोध बतलाया तो तुम्हारी युक्ति तो यही है कि सत ख्याति में विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान र---

बंधक है इसलिये रजत अवयव के ज्ञानका विरोध शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी माननाक्लृप्त कल्पना है शुक्ति ज्ञानके विना अन्य से रजतज्ञानकी निवृत्तिमानें तो अक्लृप्त कल्पना होजायगी इसलिये क्लृप्त कल्पना योग्य है यह तुम्हारी युक्ति सुनकर हमको हास्यभी उत्पन्न होता है और तुम्हारे पर करुणाभी आती है कि यह विचारे आत्मानुभव शून्यबुद्धि विचक्षणपणा दिखाते हैं अरे भाइयो! कुछ बुद्धिका विचार करो कि जैसे सुवर्णकार देखते हुवे सोनेको हरता है अर्थात् चुराता है इसीरीति से तुमभी वाक्यरूप सोनेको देखते हुवेही चुराते हो क्योंकि देखो जब हम कहते हैं कि शुक्तिज्ञान से भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति होती है और अन्य पदार्थके ज्ञानसे भी रजतज्ञानकी निवृत्ति होती है सोई अब हम अन्यपदार्थ के ज्ञान से निवृत्तिको दिखाते हैं कि जिस समय जिस पुरुषको शुक्ति में रजत ज्ञानका भ्रमहुवा उसीसमय भ्रमवाले पुरुष को अन्यपुरुषने कहा कि तेरा पुत्र मरगया इस कुवाक्य को सुनतेही उस रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति होकर पुत्रके शोकमें सब भूलगया अथवा जिस पुरुषको शुक्ति में रजतका भ्रम हुवा उसीसमय में अन्यपुरुष को नङ्गी तलवार लिये मारने को आता हुवा देखकर अपनी जान बचाने के वास्ते वहां से भाग उठा और रजतज्ञान और उस रजतकी निवृत्ति होगई यह अनुभव सबको सिद्ध है और तीसरी युक्ति और भी देखो कि जिस पुरुष को शुक्ति देश जिस क्षण में रजत ज्ञान हुवा उसी क्षण में उस शुक्तिदेश और उस पुरुष के बीच में सुवर्णका ठेला अथवा पन्नाकी मणी पड़ीहुई दिखलाई दी उसके लेने में रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति विना भये तो उसका सोना वा पन्नाकी मणी उठाना नहीं बनेगा और वह उठाता है क्योंकि उस रजत से वह सुवर्ण व पन्ना विशेष इष्टसाधन है इसलिये अन्यपदार्थ के ज्ञानसे रजतज्ञान की निवृति होती है और रजत ज्ञानकी निवृत्ति स रजत की निवृत्ति होती हां अलबत्ता उस रजत से विशेष पदार्थ भ्रमक्षणमें प्रतिबंधक न होय तब तो शुक्तिज्ञान सेही रजतज्ञान और रजत की होवेगी क्योंकि अनेक धर्मात्मिकवस्तु ऐसा स्याद्वाद जिनमत का सिद्धान्त है इसलिये अनेक हेतुओं से प्रवृत्ति निवृत्ति होती है ननु एकान्त हेतु से अब फिर भी गूढ़ नास्तिक शुष्कतर्क करता है सो शङ्का फिर दिखलाते है जो रजत ज्ञानाभाव से रजत की निवृत्ति मानो और रजत ज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानो तो वक्ष्यमाण दोषोंसे सत् ख्यातिका उद्धार होवे नहीं सो दोष यह है जहां शुक्ति में जो क्षणमें रजत भ्रम होवे तिसी क्षणमें शुक्ति अग्निका संयोग होके उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंस और भस्मकी उत्पत्ति होवे तहां रजत ज्ञान की निवृत्तिका साधन कोई हुवा नहीं इस लिये शुक्ति ध्वंश और भस्मकी उत्पत्तिसे प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेसे भस्म देशमें रजतका लाभ होना चाहिये क्योंकि रजत द्रव्य तैजस है ताका गंधकादि संबन्ध विना ध्वंश होवे नहीं इस लिये भ्रमस्थल में व्यवहारिक रजत रूप सत् पदार्थकी ख्याति कहो हो इस लिये सत् ख्याति असंगत है "समाधान" वाहरे बुद्धि विचक्षण! जिस क्षणमें शुक्ति में रजतका भ्रम हुवा तिस क्षणमें शुक्तिसे अग्नि का संयोग होके उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंश और उत्पत्ति हुई तहां रजत ज्ञानकी निवृत्ति का साधन कोई नहीं यह तुम्हारा कहना बाल जीवोंकी तरहका है क्योंकि देखो अग्निका

शुक्तिमें संयोग होते ही अग्निकी झलकको देखकर बुद्धिमान् विचार करेगा कि इस जगह चांदीका भ्रम हुवा किन्तु चांदी नहीं जो चांदी होती तो अग्नि कदापि नहीं लगती क्योंकि चांदी तैजस पदार्थ है सो विना संयोग धातुके जले नहीं सो यह अग्नि ही शुक्ति में संयोग होकर जो शुक्तिका ध्वंश होना सो ही रजत ज्ञान और रजतकी निवृत्तिका हेतु होगया ननु शुक्ति ज्ञानका और जो तुमने कहा कि भ्रमस्थलमें व्यवहारिक रजतरूप सत् पदार्थ की ख्याति है सो सत् रजत शुक्तिके भ्रममें रजतका लाभ होना चाहिये यह कहनाभी तुम्हारा ऐसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कुल्हडेमें कंटको खोजता हो क्योंकि देखो और बुद्धिका विचार करो कि रजतका लाभ होता तो रजतका भ्रम ज्ञान ही क्यों कथन करते इस लिये इस भ्रमस्थल में रजता भ्रम ज्ञान है इस रजतका लाभ नहीं फिरभी दूसरी शंका करता है सो शंका यह है कि—जहां एक रज्जु अर्थात् जेवरी में अनेक पुरुषोंको भिन्न भिन्न पदार्थका भ्रम होवे किसीको दंडका किसीको मालाका किसीको सर्प का किसीको जल धाराका इत्यादिक एक रज्जु पदार्थ में अनेक पदार्थोंका भ्रम हो वे है इस जगह स्वल्प रज्जु देशमें संभवे नहीं क्योंकि मूर्त्तद्रव्य स्थानका निरोध करे है इस लिये स्वल्प देशमें इतने पदार्थके अवयव संभवे नहीं और भ्रमकाल में दंडादिक अवयवी सर्वथा संभवे नहीं । और हमारे सिद्धान्तमें तो अनिर्वचनीय दंडादिक है तो व्यवहारिक देशका निरोध करे नहीं । और जो सत् ख्याति वादमें तिन दंडादिकनमें स्थान निरोधादिक फल नहीं मानोतो दंडादिकको सत कहना विरोध और निष्फल है । दंडादिककी प्रतीति मात्र होवे है अन्य कार्य तिनसे होवे नहीं ऐसा कहो तो अनिर्वचनीय वाद ही सिद्ध होवे है इसका समाधान यह है कि हे मिथ्या अभिनिवेश भ्रमजालके फसे हुवे ! कुछ बुद्धिसे विचार करोकि जहां एक रज्जु में अनेक पुरुषोंको भिन्न २ पदार्थोंका भ्रम होवे इस जगह अनेक पुरुषोंको ऊपर लिखी हुई भ्रमकी सामग्री अर्थात् इष्टपदार्थ की इच्छा और अनिष्ट पदार्थकी अनिच्छा अर्थात् द्वेषके कारणसे जैसा २ जिस पुरुषको सत् वस्तुका इस भ्रमस्थल जो रज्जु देशमें वैसाही सत वस्तुका भ्रमज्ञान होता है क्योंकि देखो इस रज्जु में रज्जुके द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप सत् अवयव अस्तिरूप है और इस रज्जु में दंड माला सर्प जलधारा इत्यादिकोंके स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप अवयव नास्तिरूप होकर अस्तिरूप तिरोभाव होकर रहे है सो जिसकाल में जिस २ पुरुषको जिस जिस सत्य वस्तुका भ्रम होता है उस भ्रम काल में उसी वस्तुके अवयव नास्तिरूप अस्ति होकर तिरोभाव में थे सो ही अवयव ऊपर लिखी सामग्रीके बलसे नास्ति रूप से अस्ति भाव होकर आविर्भाव होते हुवे । इस लिये इस एक रज्जु देशमें भिन्न २ भ्रम ज्ञान सत् वस्तुका ही सिद्ध हो गया और जो तुमने स्थान निरोधका आपत्ति दोनों सोभी नहीं बनती है क्योंकि एक वस्तु में दूसरी वस्तु मूर्ति द्रव्य होवे तो स्थान निरोधपणे परन्तु इस जगह तो एक वस्तु में मूर्ति द्रव्य एक ही [illegible] वस्तुका है किन्तु इस वस्तुके धर्म [illegible] में अनेक वस्तुके नास्तिरूप अर्थात् अभावरूप बने रहते है क्योंकि अनेक धर्म अनन्त वस्तु एक वस्तु में स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप बनते हैं [illegible] सत् और परद्रव्य क्षेत्रकाल भाव करके नास्तिरूप बना हुवा है सो स्याद्वाद [illegible]

भाव नहीं मानोंगे तो किसी पदार्थका निर्वाह नहीं होगा इस लिये स्याद्वादसिद्धान्तकी शरण गहो जिससे तुम्हारा मिथ्या ज्ञान मिटे और आत्मज्ञान होय सो हे भोले भाइयों! स्याणु निरोधकी आपत्तिरूप हाथी बनाया था उसका तेज स्याद्वादसिंहके सामने न ठहरा किन्तु भागकर वनकी सैर करता हुवा और जो तुमने कहा कि सत् ख्याति वादी भीति न दंडकादिकन में स्थानू निरोधादिक फल नहीं मानें तो दंडादिकनको सत् कहना विरुद्ध अर्थात् निष्फल है तो अब इस जगह भी नेत्रमींचकर हृदयको देखो कि जिस पुरुषको सत्य वस्तुका यथावत् ज्ञान होगा उसीको उस सत्य वस्तुका भ्रम ज्ञान होगा नतु अज्ञानी अर्थात् अजानको होगा तो सत्य वस्तुके यथावत् ज्ञान विना भ्रम कालमें किस वस्तुका भ्रम ज्ञान मानोगे क्योंकि उस भ्रम वाले पुरुषको सत्य वस्तुका ज्ञान तो है नहीं जो सत्यवस्तुका ज्ञानही नहीं है तो उस पुरुषको इष्ट अनिष्ट साधनका भी विवेक न होनेसे उस पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिही, न बनेगी इसलिये हे भोले भाइयो! अनिर्वचनीय ख्यातिको छोड़कर सत्य ख्यातिकी शरण गहो अमरपद लहो संसार समुद्रमें क्यों बहो जो तुम आत्मस्वरूप चाहो; तब इस वाक्यको सुनकर वेदान्ती चौंककर बोलता हुवा कि भ्रमस्थलमें सत् पदार्थ की उत्पत्ति मानो हो तो अंगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे है तहां जलसे अंगार शांति हुवा चाहिये और 'तुला' अर्थात् रूईके ऊपरी धरे हुवे गुंजा अर्थात् लाल चोंटनीके पुंजसे अग्नि भ्रम होवे है तहां तुलाका दाह होना चाहिये और जो ऐसा कहे कि दोष सहित कारणते उपजे पदार्थकी अन्यको प्रतीत होत नहीं जाके दोषसे उपजे है ताहीको प्रतीति होवे है तो दोषके कार्य्य जल अग्निसे आर्द्रीभाव दाह होवे नहीं तो तिनको सतही कहना हास्यका हेतु है क्योंकि अवयव तो स्याणु निरोधादिक हेतु नहीं है और अवयवीसे कोई कार्य्य होवे नहीं ऐसे पदार्थको सत् कहना बुद्धिमानोंको हास्यका कारण है इसलिये सत्यख्याति असंगतही है अब इनका समाधान सुनो कि जो तुमने कहा कि जहां अंगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे तहां जलसे अंगार शीन हुवा चाहिये इस तुम्हारी तर्करूप 'टटुवानी' अर्थात् निर्बल बछेरीको देखकर हास्य सहित करुणा आती है कि यह निर्बल जर्जरीभूत स्याद्वादयुक्ति रूप चाबुक क्योंकर सहेगी सो युक्तिरूप चाबुकका स्वाद तो चक्खो कि जिस पुरुषको जलभ्रम होता है वह पुरुष जल भ्रम स्थलमें पहुंच कर जल नहीं पानेसे अर्थात् न होनेसे निराश होकर क्या बोलता है सो कहो तो तुमको कहना ही पड़ेगा कि वह पुरुष कहेगा कि जल विना मिले मेरेको जलका भ्रम हो गया कारण कि इस भूमिमें अंगार की तेजीसे जल कीसी दमक होनेसे मेरेको जलका धोखा होगया ऐसा कहेगा तो फिर तुम अनिर्वचनीय! अनिर्वचनीय!! अनिर्वचनीय!!! तोतेकी तरह टें टें क्या पुकारते हो और जो तुमने कहा कि रूईके ऊपर धरी हुई लाल चोंटनीमें अग्निभ्रम हो तहां रूईका दाह होना चाहिये सो भी कहना विवेक शून्य मालूम होता है क्योंकि देखो जो रूईका दाह हो जाता तो उस जगह अग्निका भ्रम ज्ञान जहां होता किन्तु सत्य अनित्य प्रतीति देती सो उस जगह रूईका दाह तो हुवा नहीं इसलिये इस जगह सत्य अग्निका भ्रम ज्ञान हुवा है इसीलिये उसको भ्रमस्थलमें भ्रम ज्ञान कहते हैं इसलिये तुम्हारी युक्ति ठीक न बनी और जो तुमने कहा कि ऐसे पदार्थोंको सत्य कहना बुद्धि

है सो सिद्ध न हुई इस वाक्यको सुनकर मिथ्यात्वरूपी प्यालेके नशे में चकचूर होकर बोलता हुआ कि अजी तुमने अनिर्वचनीय ख्यातिका तो युक्तिसे खंडन करदिया परन्तु तुम्हारी मानी हुई जो सत्य ख्याति वाद में शुक्तिमें रजत सत्य है सो दृष्टान्त देकर सर्व में मिथ्यात्व सिद्ध होवे नहीं इस लिये सत्य ख्यातिभी न बनी फिर कौनसी ख्याति माननी चाहिये सो कहो अरे भोले भाइयों! इस तुम्हारे वाक्यको सुनकर बुद्धिमानो को हास्य आता है क्योंकि जैसे बहरेको गीतका सुनना और अंधेके सामने आईना दिखाना तैसे ही हमारी इतनी युक्तियोंका कथन करना हो गया परन्तु खैर अब और भी तुमको दृष्टान्त दार्ष्टान्त उतार कर दिखाते हैं सो देखो कि इस जगत् में जो जो पदार्थ है सो सो स्व २ रूपा करके सर्व सत् हैं परन्तु पदार्थ के ज्ञान होनेसे क्या नियम होता है सो हम कहते हैं कि "पदार्थज्ञाने प्रतिपक्षी नियामकः" इसको सब कोई मानते हैं क्यों कि प्रतिपक्षी बिना पदार्थका ज्ञान नहीं होता है इस लिये यह प्रतिपक्षी पदार्थको दिखाते हैं कि प्रतिपक्षी किसको कहते हैं जैसे सत्यासत्य अर्थात् सत्यका प्रतिपक्षी झूंठ और झूंठका प्रतिपक्षी सत्य है तैसे ही खरा, खोटा, और स्त्री, पुरुष, नर, मादी, सुख, दुःख, बुरा, भला, राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, तृष्णा, संतोष, मीठा, कड़वा, नरक, स्वर्ग, जन्म, मरण, रात, दिन, छाया, धूप, और प्रकाश, जीव, अजीव, बंध, मोक्ष इत्यादि अनेक वस्तुओं में प्रति पक्षी इसी रीतिसे जान लेना सो यह वस्तु सर्व जगत् अर्थात् संसार में अनादिकाल शाश्वत द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके स्वसत्तासे सत सत्ताशाली है इस लिये जगत् में जो पदार्थ है सो सभी अपनी २ अपेक्षासे सत् हैं परंतु पर अपेक्षासे प्रतिपक्षी पदार्थ में असत्पना है इसी लिये श्री वीतरागसर्वज्ञकी वाणी स्याद्वादरूप है इस स्याद्वादके बिना जाने यथार्थ ज्ञान होना कठिन है अब देखो इसी स्याद्वादरीतिको समझो कि दृष्टान्त तो शुक्ति में रजतका भ्रम ज्ञान होता इस दृष्टान्तकी यथार्थ व्यवस्था दिखाते हैं कि जिस पुरुषको रजत अर्थात् चांदीका यथावत् ज्ञान इसमाधनताका बोध होगा उसही पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान होगा नतु अन्य पुरुषको. और भी समझो कि शुक्तिके सिवाय और भी जो रजत सादृश्य पदार्थ हैं उन में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है जैसे सफेद दमकता कपड़े में कोई वस्तु बंधी होय, अथवा चूनाकी डेलियाँ सफेद पत्थर में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है क्योंकि रजतके सादृश्य होनेसे; इसी रीतिसे सर्व भ्रमस्थलों में सादृश्य वस्तु से अन्य वस्तुका भ्रमज्ञान होता है और जो जो सादृश्य पदार्थ नहीं है उसमें किसीको भ्रम ज्ञान नहीं होता है कदाचित् असादृश्य पदार्थ में भ्रमज्ञान मान लोगे तो वस्तुमें वस्तुका भ्रम ज्ञान हो जायगा इसी लिये सादृश्य पदार्थ में ही भ्रमज्ञान होता है नतु असादृश्य में और जिस वस्तु में भ्रम होता है सो भी स्वसत्ता करके सत्य है और जिस वस्तुका भ्रम हुआ सो भी स्वरूप करके सत् है परन्तु पर अपेक्षा से असत्य है जो स्व से असत् नहीं माने तो भ्रमज्ञान होवे नहीं इस लिये स्वसत्ता करके सत्य और [illegible] करके असत्य है इस रीति से दृष्टान्तकी व्यवस्था जानो अब दार्ष्टान्तको उतारते हैं कि आत्मा सत् चित् [illegible] है सो [illegible] उत्पाद व्यय [illegible] काल में रहे सत्ही मान करते हैं और चित् [illegible] है [illegible]

नाम चेतन अर्थात् प्रकाशवाले का है और आनन्द नाम सुख का है इसी रीति से तीन काल रहे और ज्ञान स्वरूप आनन्दमय सो आत्मा है इस जगह शंका होती है कि आत्मा आनन्दमय है तो आत्मा क्या चीज है और किसने देखा है तो हम कहते हैं कि आनन्दभी कुछ वस्तु है परन्तु अनुभव सिद्धि है सो अनुभवको अनुमानसे आनन्दकी सिद्धि दिखाते हैं क्योंकि देखो जब स्त्री और पुरुष दोनों आपसमें क्रीड़ा आरंभ करते हैं तबसे लेकर वीर्य्य स्खलित अर्थात् निकलनेके अंततक जो सुख (आनंद) आता है तिस आनंदको मनुष्यमात्र अथवा पशु, पक्षी, आदि सर्व जीवोंको अनुभव हो रहा है उसी संसारी आनंदमें फँसे हुवे सर्व जीव जन्म मरण करते हैं इस लिये आनन्द अनुभव सिद्ध हो चुका तो आनन्द कुछ वस्तु है परंतु इस पुद्गलीक अर्थात् विषय आनन्दके अनुभवसे अनुमान करते हैं कि आत्मा आनन्दमयी है इस लिये आत्मा सत् चित् आनन्दमयी हो चुका इस रीतिसे दृष्टान्तकी व्यवस्था कही अब दोनोंको द्राष्टान्त उतार कर दिखाते हैं कि जैसे शुक्तिमें सादृश्य होनेसे सत् रजतका शुक्तिमें भ्रमज्ञान होता है तैसेही प्रपंच अर्थात् जगतमें आवरण दोषसे पुद्गलीक सुखमें आत्मसुखका भ्रमज्ञान होता है तो जैसे शुक्तिके ज्ञानसे अथवा अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होती है तैसेही जगत्के यथावत् ज्ञान होनेसे अथवा आत्मा स्वरूपके ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होती है और मोक्षकी प्राप्ति होती है इस लिये शुक्ति रजतके दृष्टान्तसे प्रपंच अर्थात् जगत्की निवृत्ति सत् ख्यातिवादसे सिद्ध हुई क्योंकि यह जगत् अनादि अर्थात् शास्वत है और सत् है इस लिये सत्य ख्याति वादके माने विना अन्य पंचख्यातिवादसे जगत्की निवृत्ति होवे नहीं इसी लिये अनेकांत स्याद्वादपरूपक ऐसे श्री वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको हृदयमें धरो संसार समुद्रको तिरो मिथ्यात्वको परिहरो जन्म मरणसे डरो सत्यख्यातिसे कल्याण करो जिससे भवसागरमें न फिरो मुक्तिको जायवरो दिग् इति ॥ अब ख्याति कहनेके अनंतर जगत्की सत्यता ठहरातो अब जो सर्वज्ञदेवने जो पदार्थ माने हैं उनको कहते हैं इस जगत्में दो पदार्थ हैं १ जीव २ अजीव। और द्रव्य छः हैं जिसमें एक तो जीव द्रव्य है और पांच अजीव हैं जिसमें एक आकाशास्तिकाय, दूसरा धर्मास्तिकाय, तीसरा अधर्मास्तिकाय, चौथा पुद्गलास्तिकाय, यह चार द्रव्य तो मुख्य द्रव्य हैं और पांचवा कालद्रव्य उपचारसे है, और तत्व ९ माने हैं १ जीव. २ अजीव. ३ पुण्य. ४ पाप. ५ आश्रव. ६ संवर. ७ निर्जरा. ८ बंध ९ मोक्ष ये नव तत्व हैं, अब किंचित् छः द्रव्यके गुण पर्याय बताते हैं:—जीवके चार गुण यह हैं:— १ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन, ३ अनन्तचारित्र, ४ अनन्तवीर्य। और चार पर्याय यह हैं:— १ अव्याबाध, २ अनवगाह, ३ अमूर्ति ४ अगुरुलघु। आकाशास्तिकायके चार गुण— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ अगुरु लघु। और पर्याय यह हैं:— १ खंद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु॥ धर्मास्तिकायके चार गुण यह हैं:— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ गतसहायगुण। और पर्याय यह हैं:— १ खंद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु॥ अधर्मास्ति कायके चार गुण यह हैं:— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थिरसहायगण। और पर्याय यह

प्रदेश, ४ अगुरुलघु ॥ पुद्गलास्तिकायके चार गुण यह हैं:- १ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ मिलन, विछरन पूरण, गलन। और पर्याय यह हैं:- १ वरण, २ गन्ध, ३ रस ४ स्पर्श अगुरुलघु कालके गुण यह हैं:-१अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय नवा पुराणा वर्तना लक्षणे। और पर्याय यह हैं:- १ अनागत २ अतीत ३ वर्तमान ४ अगुरु लघु ॥ पदार्थ और द्रव्य और तत्वोंका विस्तार तो बहुत ग्रन्थोंमें लिखा है इस वास्ते यहां नहीं लिखते हैं परन्तु किंचित् षट् द्रव्योंमें कितने पक्ष मिलायकर कि जिसमें जिज्ञासुका उस स्वरूपका उपयोग होनेसे कल्याणका हेतु विशेष हो सो लिखते हैं:-उन पक्षोंके नाम तो हम देवके स्वरूपमें लिख आये हैं. १ निश्चयसे जीविका स्वरूप कहते हैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य अव्याबाधादि, अनंतगुण जिसमें हैं, वो जीव है चिदानन्दरूप अविनाशी, अक्षय, अमर, निरंजन, निराकार ज्योतिःस्वरूपी ऐसा जो हो उ-सीको जीव कहते हैं। २ व्यवहारसे जीवके अनेक भेद हैं-१ स्थावर, २ त्रस, स्थावरके पांच भेद हैं-१ पृथ्वीकाय, २ अपकाय, ३ तेजकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, त्रसके बे इन्द्री, तेइन्द्री, चोइन्द्री, तिर्यंच पंचेन्द्री और मनुष्यके यह छः भेद हैं। त्रसके देवता और नारकी इत्यादि अनेक भेद हैं फिर जीवके चौदः भेदभी हैं और पांचसौ त्रेसठ ५६३ भेद भी हैं और एक इसी रीतिसेभी भेद होते हैं कि संसारीजीवके दो भेद हैं, १ अयोगी चौदवें गुण ठाणे वाला, २ संयोगी। संयोगीके २ दो भेद हैं। १ केवली, २ छदमस्त; छदमस्तके दो भेद एक क्षीणमोही बारवें गुण ठाणेमें वर्तता हुवा जिसने मोहनीकर्म खपाया: दूसरा उपशांतमोही; उपशांतमोहीके दो भेद १ अकषाई ११ गुण ठाणेके जीव। दूसरा सकषाई सकषाईके दो भेद-१ सूक्ष्म कषायी दशवां गुण ठाणाके जीव. २ बादर कषाई. बादर कषाईके दो भेद. १ श्रेणीवाले २ श्रेणीरहित। श्रेणी रहितके दो भेद. १ अप्रमाद. २ प्रमादी. प्रमादीके दो भेद. १ सर्वविरति, २ देश विरति. देश विरतिके दो भेद १ विरतिपरिणामी, २ अविरति परिणामी. अविरतिके दो भेद. १ अविरतिसमगति, २ अविरति मिथ्यात्वी. उस मिथ्यात्वीके दो भेद. १ भव्य, २ अभव्य. उस भव्यके दो भेद. १ ग्रंथीभेदी, २ ग्रंथी अभेदी। इस रीतिसे जिसको जैसा देखे वैसा कहे, यह व्यवहारसे जीवका स्वरूप कहा। (३) द्रव्य. (४) भाव करके जीव स्वरूप कहते हैं। द्रव्य करके जीवका स्वरूप जिस समय जिस गतिका आयुकर्म वा प्राणोंको बन्ध करे उस समय वो द्रव्य जीव है। भावजीव उसको कहते हैं कि जो जिस गतिका आयुकर्म बांधा था उस गतिमें आयकर प्राण वा इन्द्री प्रगटपनेमें भोगने लगा उसको भाव जीव कहते हैं। (५) (६) अब सामान्य और विशेष करके जीवका स्वरूप कहतेहैं। कि सामान्य करके तो चेतना लक्षण वोही जीव. सो चेतन दो प्रकारकाहै. १ अव्यक्तचेतन. २ व्यक्तचेतन. अव्यक्त चेतन पृथ्वी आदि पांच स्थवरोंमें है और व्यक्त चेतन बेन्द्रीको आदि लेकर पंचेन्द्री पर्यन्त त्रिसजीवमें हैं। विशेष करके कहते हैं कि जैसे जीवमें ६ लक्षण होय सो जीव यदि युक्तं श्री उत्तराध्ययनजीमें "नाणं च दंसणं चके चारितंच तवो तहा ॥ वीरियं उवोच्छो अ, एअंजी अस्सलक्खणं ॥" अब यहां कोई द्वेषी शङ्का करे कि स्थावर वनस्पति आदिकोंमें तो यह ६ लक्षण नहीं मालूम पड़ते हैं तो उनको जीव मानना कैसे बनेगा तो हम कहते हैं

कि ज्ञान दृष्टिसे विचार करो और विवादको छोड़ कर आत्मार्थीके वास्ते किञ्चित् युक्तिसे इनकों लक्षण दिखाते हैं कि देखो जो वनस्पति है उसकोभी दुःख सुखका भान है कि दुःख होनेसे कुम्हलाई हुई मालूम होती है और सुख होनेसे परिफुल्लित मालूम होती है तो दुःख सुखका जाननेवाला ज्ञान होता है सो इस रीति अव्यक्तज्ञान उसमें सिद्ध होगया; ऐसेही दर्शनके दो भेद-१ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ऐसा शास्त्रोंमें माना है अचक्षुदर्शन सिद्ध होगया तीसरा चारित्र तो चारित्र नाम त्यागका है त्याग भी दो प्रकारका है-१ जानकर त्यागकरना, २ अनजान तथा अनमिलेका त्याग होना तो देखो कि वनस्पतिको जलादिकके नहीं मिलनेसे उसके भी अव्यक्तका त्याग तथा अनमिलेका त्याग तो इस हेतुसे अकाम निर्जराका हेतु चारित्र भी किञ्चित् ठहरा । अब चौथा तप भी ठहरता है कि देखो तप नाम शीत उष्ण सहता हुवा सन्तोष पावे उसको तप कहते हैं; तो देखो शीत उष्णता सहना तो उसमें भी है इसलिये किञ्चित् तप भी ठहरा. ५ वीर्य नाम पराक्रमका है उसको बल वा शक्ति भी कहते हैं. तो देखो जो उसमें पराक्रम न होता तो उसका फूलना बढ़ना न बनता इसलिये वीर्य्य भी ठहरा । ६ उपयोग नाम उसका है जो अपनी इच्छासे अवकाश पाता हुवा जाय जिधर अवकाश न मिले उधरसे फिरकर दूसरी तरफको चला जाय सो उपयोग भी ठहरता है इस रीतिसे सामान्य और विशेष करके जीवका स्वरूप कहा।(७,८,९,१०) अब चार निक्षेपासे जीवका स्वरूप कहते हैं। कि नाम जीव उसके दो भेद हैं. १ अकृत्रिम अनादि. २ कृत्रिम नाम कर्म के उदय से. अकृत्रिम अनादि तो जीव वा आत्मा, यह तो अनादि नामहै अकृत्रिम है; और कृत्रिम, राम, लछमन, कृष्ण, देवदत्त आदि अथवा नाम कर्मके उदय से जिस योनिको प्राप्त होय वैसाही बोलाजाय। स्थापना निक्षेपा कहते हैं- स्थापना जीव उसको कहते हैं कि जिस योनि(जून) में जाय उस योनिका जैसा आकार होय उस आकार को प्राप्त होय अथवा जैसा जीवने औदारिक शरीर वा वैक्रिय शरीर कर्म के उदय से पाया था वैसाही किसी चित्रकारका बनाया चित्राम, सो स्थापना। द्रव्यजीव उसको कहते हैं कि जिस को अपनी आत्माका उपयोग नहीं सो द्रव्य जीव है सो एकेन्द्री से पंचेन्द्री पर्यन्त जानना. भाव से जीव का स्वरूप कहते हैं जिसको अपनी आत्मा का उपयोग है सो भाव जीव यह चार निक्षेपा से जीवका स्वरूप कहा। अब चार प्रमाण से जीवका स्वरूप कहते हैं प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव चेतना लक्षण है सो प्रत्यक्ष सबहीको के देखने में आता है परन्तु इस जगह किञ्चित् चार्वाक नास्तिक का मत दिखाते हैं कि चार्वाक नास्तिक जीवको नहीं मानता है वह ऐसा कहता है कि जीव कुछ नहीं है आकाश, पृथ्वी, अग्नि, तेज और वायु इनके मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है कि जैसे पानी, आटा गुड़ मिले रहते हैं और उनमें पड़ कर पैदा होती है ऐसेही वस्तुओं के मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है उसको चैतन्य जीव मानते हैं और भी देखो कि जैसे कत्था और चूना ये लाल नहीं परन्तु इन दोनों के मिलने से और पान के मिलने से एक लाल विलक्षण रंग पैदा होता है ऐसेही चार भूतोंके मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है परन्तु जीव कुछ पदार्थ नहीं है इत्यादि अनेक तरह की बातें करते हैं सो उनका [illegible]

प्रदेश, ४ अगुरुलघु ॥ पुद्गलास्तिकायके चार गुण यह हैं:– १ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ मिलन, विछरन पूरण, गलन । और पर्याय यह हैं:– १ वरण, २ गन्ध, ३ रस ४ स्पर्श अगुरुलघु कालके गुण यह हैं:–१अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय नवा पुराना वर्तना लक्षण । और पर्याय यह हैं:– १ अनागत २ अतीत ३ वर्तमान ४ अगुरु लघु ॥ पर्याय और द्रव्य और तत्वोंका विस्तार तो बहुत ग्रन्थोंमें लिखा है इस वास्ते यहां नहीं लिखते हैं परन्तु किंचित् षट् द्रव्योंमें कितने पक्ष मिलायकर कि जिसमें जिज्ञासुका उस स्वरूपका उपयोग होनेसे कल्याणका हेतु विशेष हो सो लिखते हैं:–उन पक्षोंके नाम तो हम देवके स्वरूपमें लिख आये हैं. १ निश्चयसे जीविका स्वरूप कहते हैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य अव्याबाधादि, अनंतगुण जिसमें हैं, सो जीव है चिदानन्दरूप अविनाशी, अलख, अमर, निरंजन, निराकार ज्योतिःस्वरूपी ऐसा जो हो उसीको जीव कहते हैं । २ व्यवहारसे जीवके अनेक भेद हैं–१ स्थावर, २ त्रस, स्थावरके पांच भेद हैं–१ पृथ्वीकाय, २ अपकाय, ३ तेजकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, त्रसके बेइन्द्री, तेइन्द्री, चोइन्द्री, तिर्यच पंचेन्द्री और मनुष्यके यह छः भेद हैं । त्रसके देवता और नारकी इत्यादि अनेक भेद हैं फिर जीवके चौदः भेदभी हैं और पांचसो त्रेसठ ५६३ भेद भी हैं और एक इसी रीतिसेभी भेद होते हैं कि संसारीजीवके दो भेद हैं, १ अयोगी चौदवें गुण ठाणे वाला, २ संयोगी । संयोगीके २ दो भेद हैं । १ केवली, २ छदमस्त; छदमस्तके दो भेद एक क्षीणमोही बारवें गुण ठाणेमें वर्तता हुवा जिसने मोहनीकर्म खपाया: दूसरा उपशांतमोही; उपशांतमोहीके दो भेद १ अकषाई ११ गुण ठाणेके जीव । दूसरा सकषाई सकषाईके दो भेद–१ सूक्ष्म कषायी दशवां गुण ठाणाके जीव. २ बादर कषाई. बादर कषाईके दो भेद. १ श्रेणीवाले २ श्रेणीरहित । श्रेणी रहितके दो भेद. १ अप्रमाद. २ प्रमादी. प्रमादीके दो भेद. १ सर्वविरति, २ देश विरति. देश विरतिके दो भेद १ विरतिपरिणामी, २ अविरति परिणामी. अविरतिके दो भेद. १ अविरतिसमगति, २ अविरति मिथ्यात्वी. उस मिथ्यात्वीके दो भेद. १ भव्य, २ अभव्य. उस भव्यके दो भेद. १ ग्रंथीभेदी, २ ग्रंथी अभेदी । इस रीतिसे जिसको जैसा देखे वैसा कहे, यह जीवका स्वरूप कहा । (३) द्रव्य. ([illegible]) भाव करके जीव स्वरूप कहते हैं । जीवका स्वरूप जिस समय जिस गति [illegible] आयुकर्म वा प्राणोंको बन्ध करे वह द्रव्य जीव है । भावजीव उसको कह[illegible] कि जो जिस गतिका गतिमें आयकर प्राण वा इन्द्री प्रगटप[illegible] [illegible] उसको भाव जीव [illegible]
(६) अब सामान्य और विशेष कर[illegible] [illegible]
चेतना लक्षण वोही जीव सो चेत[illegible] [illegible] गुण और [illegible]
अव्यक्त चेतन पृथ्वी आदि पांच स्थाव[illegible] [illegible]
पर्यन्त त्रसजीवमें है । विशेष करके [illegible]
युक्तं श्री उत्तराध्ययनजीमें "नाणं च [illegible]
य, एअंजी अस्तलरकणं ॥" अब [illegible]
तो यह ६ लक्षण नहीं मालूम पड़[illegible]

मोक्ष रूप कार्य्य सिद्ध होय यह तीजा कारक कहा (४) सम्प्रदान कारक कहते हैं–कि आत्मा की सम्प्रदा जो ज्ञान पर्याय उसका दान आत्मा का आत्मगुण प्रगट कर वा रूप देना उसी का नाम संप्रदान है। (५) अपादान कारक कहते हैं:–कि आत्मा के समवाय सम्बन्ध से जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र वो आत्मा का स्वधर्म है उससे जो विपरीति मोह आदि कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति सो परधर्म है इन दोनों का आपस में विवेचन करके अर्थात् भिन्न करना सो अशुद्धता का उच्छेद अर्थात् त्याग होना और आत्म स्वरूप अर्थात् आत्म गुणका प्रगटहोना अर्थात् अशुद्धता रूप का व्ययहोना और आत्मगुणका प्रगटहोना अर्थात् उत्पाद होना इस करके अपादान कारक कहा (६) आधारकारक कहते हैं:–समस्त आत्मा के जो गुण पर्याय प्रगटहुए जो व्याप्य, व्यापक सम्बन्ध अथवा ग्राह्य, ग्राहक, सम्बन्ध वा आधार आदि सम्बन्ध इन सबोंका क्षेत्र आत्मा है सो इनको धारण करनेवाली जो आत्मा इस लिये आत्मा आधार कारक कहा। यह छः कारकों से मोक्ष के साधन करनेवाले जीव का स्वरूप कहा॥ अब किञ्चित् नयका स्वरूप कहते हैं:–नयके दो भेद हैं–(१) द्रव्यार्थिक, (२) पर्यायार्थिक सो प्रथम द्रव्यार्थिक वो है जो उत्पाद व्ययपर्याय गौण पणे, और प्रधान पणे द्रव्यके गुण सत्ता को ग्रहे सो इसके १० भेद यह हैं:–(१) सर्वद्रव्य नित्य है सो नित्य द्रव्यार्थिक, (२) अगुरु लघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करे और मूल गुणको पिण्ड अर्थात् मुख्यपणे ग्रहणकरे वो " एक द्रव्यार्थिक " (३) ज्ञानादिक गुण करके सब जीव एक सरीखा हैं इसलिये सर्व को एक जीव कहे स्वद्रव्यादिको ग्रहण करेसो "सत्यद्रव्यार्थिक" जैसे सत्यलक्षणं द्रव्यं, (४) द्रव्य में कहने योग गुन अंगीकार करे सो " व्यक्तव्य "द्रव्यार्थिक, (५) आत्मा को अज्ञानी कहना वो " अशुद्ध " द्रव्यार्थिक, (६) सर्व द्रव्यगुण पर्याय सहित है ऐसा कहना सो " अन्वय " द्रव्यार्थिक. (७) सर्व जीव द्रव्यकी मूलसत्ता एकसत्ता है सो " परम " द्रव्यार्थिक नय है (८) सर्वजीवके आठ प्रदेश निर्मल है जिन आठों के कर्म नहीं लगे क्योंकि जो लगभी जाय तो अचेतन होजाय इसी वास्ते उनको आठ रुचक प्रदेश कहते हैं सो " शुद्ध " द्रव्यार्थिक नय है (९) सर्व जीवों के असंख्यात प्रदेश एकसरीखे हैं सो " सत्ता " द्रव्यार्थिकनय. (१०) गुण गुणीद्रव्य सो एक है जैसे मिश्री और मीठापन तो मिश्री मीठापनसे जुदा नहीं. सो " परमभाव ग्राहक " द्रव्यार्थिक नय॥ अब पर्याय र्थिक नय कहते हैं जो पर्याय को ग्रहण करे सो पर्यायार्थिकनय है उस के छःभेदहैं सो यह हैं–(१) " द्रव्य पर्याय" सो जीवका भव्यपना और सिद्धपना को कहते हैं। (२) " द्रव्य व्यंजन पर्याय" सो द्रव्यके प्रदेशमान। (३) " गुण पर्याय" जो एक गुणसे अनेकता हो जैसे धर्मादिक द्रव्य अपने चलन सहकारादि गुण से अनेक जीव और पुद्गल को सहाय करे। (४) " गुण व्यंजन पर्याय " जो एक गुणके अनेक भेद हों। (५) " स्वभावपर्याय " सो अगुरु लघुपर्याय से जानना यह पांच पर्याय सब द्रव्यों में हैं (६) छठाविभाव पर्याय सो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में ही है वहां जीव सो चार गतिके नवे २ भवकरे सो जीव में विभाव पर्याय तथा इस पुद्गल में खंधपना सो विभाव पर्याय जानना. यह नयके भेद कहे। अब नयके लक्षण तथा अर्थ कहते हैं–(१) "नैगम नय" [illegible]

कल्पे आरोपे और अंश करके वस्तुको माने उसे नयगमनय कहते हैं। (२) "संगृह्णाति वस्तु सत्तात्मकं सामान्यं स संग्रहः" ॥ जो सबको संग्रह सर्व को ग्रहण करे वस्तु का छत्तापणा सामान्य पणे से ग्रहण करे उसको संग्रह नय जानना. (३) "संग्रह ग्रहितं अर्थ विशेषेण विभजतीति व्यवहारः" संग्रह नय करके ग्रहण करे जो सामान्य तिसको अंश २ भेद करके जुदे २ विवेचन करे उसको व्यवहार नय कहते हैं (४) "ऋजु अतीतानागत वक्रत्व परिहारेण ऋजु सरलं वर्तमानं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः" जो ऋजु सरल वर्तमान अवस्याको ग्रहण करे अतीत अनागतकी व्यक्तव्यताको लेखे नहीं उसको ऋजु सूत्रनय कहते हैं। (५) "शब्दार्थरूपं तत्-द्धर्मरूप परिणति इति शब्दः"। प्रकृति प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्ति करके जो उत्पन्न हुवा शब्द तिसमें जो पर्यायार्थ बोला जाय अर्थात् परणमें उस करके जो वस्तु माने सो शब्दनय। (६) "सम्यक् प्रकारेणार्थपर्याय वचना पर्यायता सकल भिन्न वचन भिन्न भिन्नार्थत्वेन तत् समुदाय युक्ते ग्राहक इति समभिरूढनयः" जो वस्तु कि विद्यमान पर्याय तथा जो नाम यावत् वचन पर्याय है वो सर्व शब्दके भिन्न है जैसे घटकुंभ इत्यादि जो शब्द करके भिन्न है उसका अर्थ परमतद्भावरूपपणे भिन्न वह सर्व वचन पर्यायरूप परिणमती वस्तुको वस्तुपणे ग्रहण करे उसको समभिरूढनय कहते हैं। (७) "सर्व अर्थ पर्याये स्वक्रिया कार्य पर्णत्वेन एवं यथार्थतया भूतः एवंभूतः" ॥ सर्व अर्थ पर्याय अनंत संपूर्ण अपनी क्रिया कार्य पूर्ण जो वस्तुका धर्म सम्पूर्ण हो गया हो उसको माने उसका नाम एवंभूतनय है यहां श्रीमद्र गणिक्षमा श्रवणमे १ नयगमनय, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजु सूत्र। इन चार नयको द्रव्यार्थिक पणोमें द्रव्य निक्षेपा माना है और शब्दादिक ३ नयको पर्यायार्थिक पणेमें भाव निक्षेपा माना है तथा श्री सिद्ध सेन दिवाकरने आदिके ३ नयको द्रव्यार्थिक पणे कहा है और ऋजु सूत्र आदिक चार नयको भाव पणे कहा है जिसका आशय ऐसा है कि वस्तुकी अवस्था तीन है। १-प्रवर्ती, २ संकल्प, ३ परिणती यह तीन भेद है इनमें जो योग व्यापार संकल्प सो चेतनाके योग सहित मनके विकल्प इसको श्री जिन भद्र गनिक्षमा श्रवण प्रवृत्ति धर्म कहते है तथा संकल्प धर्मको उद्रेक मिश्रपना करके द्रव्यनिक्षेपा कहते है और मात्र एक परिणीत धर्मको भाव निक्षेपा कहा है और श्री सिद्धसेनदिवाकरने विकल्प जो चेतना है उसको भावनय गवेष्या अर्थात् जाना है और प्रवृत्ति रूप व्यवहार नय है और संकल्प सो ऋजु सूत्रनय है तथा एक वचन पर्याय रूप परिणती सो शब्दनय है और संकल्प वचन पर्यायरूप प्रणती सो समभिरूढनय है और वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण सो एवं भूतनय है इसलिये शब्दादिक ३ नय सो विशुद्ध नय है और भाव धर्ममें मुख्य भावतामें उत्तर उत्तर सूक्ष्मताका ग्राहक हैं ॥ अब सात नय करके जीवका स्वरूप कहते हैं नैगमनयमें गुण पर्यायवंत शरीर सहित सो जीव इस कहनेसे इसमें पुद्गल और धर्मास्तिकायादिकके सर्व जीवमें गीन लिये जब संग्रह नय वाला कहने लगा कि जो असंख्यात प्रदेशी है सो जीव है तो इसने एक आकाश प्रदेश को छोड़कर बाकी सबको लिया जब व्यवहार नयवाला बोला कि जो विषय आदिक अथवा सुखादिककी इच्छा करे काम आदिककी चितवे सो जीव

इसने धर्मास्तिकायादि और शरीरसे अलग जो पुद्गल है उनको तो छोड़ा परंतु पांच इन्द्री और मन तथा लेश्या यह भी पुद्गल हैं इनको इसने जीवमें गिना क्योंकि विषयादिक तो इन्द्री लेती है जीव तो अपने ज्ञानादिक गुणका भोक्ता है और पुद्गलसे न्यारा है परंतु व्यवहार नय वालेने तो इतना पुद्गल इसके साथमें लिया तब ऋजु सूत्रवाला बोला कि जो उपयोगवंत हो सो जीव है. इस नय वालेने इंद्रियादिक सब पुद्गलको छोड़ा परंतु अज्ञान तथा ज्ञानका भेद नहीं किया तब शब्द नय वाला बोला कि नाम जीव, स्थापना जीव, द्रव्य जीव और भाव जीव. तो इस जगह गुणी निर्गुणीका भेद न हुवा उस समय समभिरूढ नय वाला बोला कि जो ज्ञानादिक गुणवन्त सो जीव तो इस जगह मति ज्ञान, श्रुति ज्ञानादिक साधक अवस्थाका गुण सो सर्व जीव स्वरूपमें लिया एवं भूतनय बोला कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य शुद्धसत्तावाला सो जीव इसने एक सिद्ध अवस्थामें जो गुण हों उसी गुणको अंगीकार किया यह सात नयसे जीवका स्वरूप कहा। अब नयगमके तीन भेद। १ आरोप, २ संकल्प, ३ अंश; अथवा १ अतीत, २ अनागत, ३ वर्तमान इन तीन भेदोंको द्रव्यार्थिक दस भेदसे गुणा करे तब ३० भेद हो जाते हैं. संग्रह नयके दो भेद हैं- १ सामान्य २ विशेष, इनके भी दस द्रव्यार्थिकसे गुणा करनेसे २० भेद होते हैं। व्यवहारनयके भी दो भेद हैं. १ सामान्य, २ विशेष अथवा १ शुद्धव्यवहार २ अशुद्धव्यवहार. इन दो भेदों को दश द्रव्यार्थिक नयसे गुणा करनेसे २० भेद होते हैं इन तीनों नयको मिलानेसे ७० भेद हुवे अब ऋजुसूत्रनयके दो भेद हैं- १ सूक्ष्म २ बादर इनको पर्यायार्थिक के छः भेदसे गुणा करनेसे १२ होते हैं। शब्द समभिरूढ और एवं भूतनयके भेद नहीं हैं इन को पर्यायार्थिकके ६ भेदोंसे गुणा करें तो १८ भेद हो जाते हैं यह सर्व मिलकर सातों नयके सौभेद हुवे इन (१००) भेदों में अस्ति नास्ति रूप सत्त भंगीके उतारने से ७०० भेद नयके हो जाते हैं परन्तु इस जगह ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसेनहीं लिखे किञ्चित् १०० के नाम मात्र दिखाया है कि इस तरहसे ७०० भेद होते हैं. अब सप्त भंगी जीव ये उतारते हैं। (१) स्यात अस्ति जीव तो जीव स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव करके अस्ति है परन्तु परद्रव्य अजीवादिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके जीव में स्यात नास्ति पना है यह दूसरा भांगा हुवा ३ अब जिस समय में जीव में जीवपन तो अस्ति है उसी समय अजीवका अजीवपन उन में नास्ति है इस रीति से अस्ति नास्ति भांगा हुवा। (४) स्यात अवक्तव्यजीव तो जो जीवको अस्ति कहते हैं तो उस समय नास्ति मृषावाद लगता है और जो नास्ति कहे तो अस्तिका मृषावाद आवे इस लिये स्यात अवक्तव्य भांगा है (५) अब स्यात अस्ति अवक्तव्य जीव और (६) स्यात नास्ति अवक्तव्य जीव यह दो भांगे कहते हैं कि जीव मे अस्ति रूप ऐसे कई गुन हैं कि जो वचनसे कहे न जांय ऐसे ही जीव में नास्ति रूप कई गुन हैं कि जो वचन से कहे न जायें इस रीतिसे स्यात अस्ति अवक्तव्य जीव और स्यात नास्ति अवक्तव्य जीव इस रीतिसे जीव का स्वरूप कहा। अब (७) स्यात अस्ति नास्ति युगपद् अवक्तव्य जीव, तो इस जगह भी एक समय में अनेक गुण अस्ति अनेक रूप नास्ति हैं परन्त —

से न कहे जांय इस रीतिसे स्यात अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य जीवका स्वरूप कहा। इस जगह यह ५७ बोलसे सामान्य करके जीवका स्वरूप कहा और विशेष करके तो देवके ऊपर जो ५७ बोल उतारे थे उन में युक्ति हेतु दृष्टान्त करके कह आये हैं सो समझना। जिस रीतिसे हमने जीवका या देवका स्वरूप उतारा है इसी रीति पांच द्रव्य अथवा ९ तत्व अथवा कारण कार्य्य सब में उतारकर भव्य जीव अपनी आत्मा में विचार करे और ज्ञेय अर्थात् इस स्याद्वादसैलीको जानकर हेय अर्थात् छोडनेके योग्य हो उसे छोडे और उपादेय अर्थात् ग्रहण करने के योग्य हो उसको ग्रहण करे इसी रीति से सर्वज्ञ श्री वीतराग का स्याद्वाद उपदेश किञ्चित् मात्र मैंने कहा अब कारण, कार्य, साध्य, साधन संक्षेपसे कहते हैं सो। कारणके दो भेद हैं एक तो उपादानकारण दूसरा निमित्तकारण उपादान कारण उस को कहते हैं जो कारण कार्य को उत्पन्न करे और अपने स्वरूपसे बना रहे और कारण के नष्ट होनेसे व कार्य्य नष्ट हो जाय और निमित्त कारण उस को कहते हैं कि जो कारण कार्य्यसे भिन्न हो और कार्य को पैदा करे और कारण के नष्ट होनेसे कार्य नष्ट न हो उसका नाम निमित्त कारण है और शास्त्रों में कारण के चार भेद भी किये हैं-१ समवाय, २ असमवाय, ३ निमित्त, ४ अपेक्षा अब साध्य नाम तो कार्य का है और साधन नाम जिन २ कारणोंसे हो अब यहां भव्य जीवको मोक्ष रूपी कार्य्य अर्थात् जन्म मरणका मिटना यह तो साध्य है तथा कार्य है समगत आदि देव गुरु शुद्ध परुपक अथवा द्रव्य भाव रूपक्रिया यह सब साधन है अब जो भव्य जीव समगत द्रष्टी या देश वृत्ति के जो साधन हैं सो कहते हैं:- जिसके अनन्तानुबन्धी क्रोधादि क्षय होनेसे अथवा उपसम होनेसे समगत की प्राप्ति होती है उसको समगत दृष्टि कहते हैं और आठ प्रकृति (चार तो अनन्तानुबन्धी और चार अप्रत्याख्यानी) का क्षय वा उपसम होनेसे देश वृत्ति की प्राप्ति होती है सो देश वृत्ति का किञ्चित् स्वरूपआगे लिखेंगे और बारह प्रकृतिका क्षयहोना अथवा उपसम होना एकतो अनन्तानुबन्धी चौकड़ी दूसरी अप्रत्याख्यातिकी चौकडी तीसरी प्रत्याख्यातिकी चौकड़ी। यह बारह प्रकृतिका जिसके क्षय वा उपसम है उसको सर्व विरतिकी प्राप्ति होती है इसकाभी स्वरूप किञ्चित् आगे कहेंगे अब इन तीन भेदोंके जो भव्यजीव हैं उनको जो दिन भरमें कृत करनेका भगवत्ने स्वरूप कहा है सो कहते हैं परंतु इस जगह प्रथम समगत दृष्टिकी विधि कहनेके अनुक्रमेण होनेसे नैमोंकाचितारना प्रतिक्रमण पच्चखानादि करनेकी रीति देसविरति श्रावकके वर्णनमें कहेंगे परन्तु इस जगह प्रथम समगत दृष्टीकी अपेक्षासे प्रथम देवकी भक्ति वा मन्दिरकी विधि क्रिया अनुष्ठानको कहते हैं कि श्रावकके मन्दिरमें किस विधिसे जाना और क्या क्या कृत करना सो कहते हैं:-कि जिस समय श्रावक प्रातःकालमें ऐसी इच्छाकरे कि श्रीवीतराग देवका दर्शन करूं अथवा मन्दिरमें चलके पूजनादि करूं उस समय जब ऐसा विचार होय तब कोई आचार्य्य कहते हैं कि उस समय "निस्सही" करके घरसे चले और कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि मन्दिरके पगोतियेपर पहुँचे उस समय "निस्सही" कहै क्योंकि गृहस्थी घरपर जो 'निस्सही' कहेगा तो रस्तेमें कोई उसका जरूरी काम आलगा तो उसकाममें चले जानेसे 'निस्सही' भंग होगी अथवा 'निस्सही' के डरसे जो मन्दिरमें

जायगा तो अच्छी तरहासे विधिपूर्वक दर्शन कर सकेगा क्योंकि उस जरूरी कामके वास्ते चित्तकी चंचलतारहेगी इस वास्ते मन्दरके पगोतीया पर निस्सही कहना चाहिये; अब जो कोई शङ्काकरे कि कितनी "निस्सही" कहनी चाहिये, तो हम कहते हैं कि एक निस्सही कहनी चाहिये जो कोई कहे कि शास्त्रमें तो तीन-निस्सही कही है तो हम कहते हैं कि तीन निस्सही कही है परन्तु उन तीन निस्सहीका जुदा २ प्रयोजन है सो दिखाते हैं कि देखो जो पूजन आदिक न करे केवल चैत्यवन्दनही करताहै सो पहले उसके वास्ते तीन निस्सही कहने की विधि कहते हैं कि प्रथम निस्सही मन्दिरजीके पगोतीयापर कहनी चाहिये उस निस्सहीके कहनेसे अपना जो संसारी कृत कि जिसमें कर्मबंधका हेतु है और सावद्य व्योपार संसार बंधनेका हेतु उस सर्वका निषेध किया परन्तु मन्दिरजी संबन्धी जो कार्य है सो सर्व कहना बाकी रहगया इस लिये यह प्रथम निस्सहीका प्रयोजन हुवा; अब श्रावक जो है सो मन्दरके भीतर जायकर सर्व मन्दर की निगाहकरे और टूटा फूटा इत्यादिक देखे और जो आदमीको कहके करानाहो सो तो उस आदमीसे करावे अथवा जिसके सुपुर्द वह मन्दिरजीहो उससे कहे कि इस चीज़की संभाल करो नहीं तो असातना होती है, यहां जो कोई ऐसी शंका करे कि दर्शन करनेको तो हरेक कोई जाता है क्या सब ऐसाकाम करें? तो हम कहते हैं कि सर्व भव्य जीवोंको करना चाहिये क्यों कि मन्दिरजीकी असातना होनेसे श्रीसंघमें हानि होती है इस वास्ते सर्व भव्य जीवोंको मन्दिर जीकी सार समार अर्थात् जिससे असातना होय उस असातना टालनेके वास्ते मन, वचन काय करके भव्य जीवोंको करनी चाहिये इत्यादि काम करके बाद फिर तीन प्रदक्षिणा देकर और भगवत्के सन्मुख होके दूसरी निस्सही कहे, इस दूसरी निस्सही से जो मन्दिरजीके काम मध्ये कहना सोभी निषेध होचुका फिर वह श्रावक चावलहाथमें लेकर मंत्रसहित चावलोंको भगवतके आगे चढ़ावे सो मंत्रतो हम पूजाकी विधिमें कहेंगे अब जो चावल आदि चढ़ानेकी विधिकहते हैं कि पेस्तर तो ज्ञान, दर्शन चारित्र की तीन ढिगली करे और मनमें ऐसाविचारे कि मेरेज्ञान, दर्शन चारित्र प्रगट फेर चावलोंसे सातियाका आकार बनावे उस समय मनमें यह विचारना चाहिये कि चार गती जो हैं उन से मैं निकलूं फिर सिद्ध सलाका आकार बनावे उस समयमें ऐसा विचार करे कि मेरेको सिद्धसलाका प्राप्तहोय, फिर फलादि चढ़ाना होयतो मंत्रबोलकर चढ़ावे सो मंत्र पूजाकी विधिमे लिखेंगे इस रीतिसे करके फिर तीसरी निस्सही कहे उससे फलादि सचित्त चीजों का निषेध करके भगवत् का चैत्य वन्दन आदिक करे उस चैत्य वन्दन करती दफै अपने चित्त में भगवत्के गुण आदिक विचारे अथवा उन भगवत्के गुणों को अपने गुणों में एकता करे यह चैत्य वन्दन की विधि कही अब आचार दिनकर ग्रंथ अनुसार विधि लिखते हैं:-प्रथम तरी निस्सही उस रीतिसे सर्व काम देखकर और स्नान आदि करे उसकी विधि प्रथमरीति कहते हैं:-श्रावक स्नानका वस्त्र पहन कर उष्ण पानीसे स्नान करे सो स्नान करने की विधिका श्लोक कहते हैं:-"स्नानं पूर्व मुखी भूय: प्रतीच्यां दंत धावनं। उदीच्यां श्वेत वस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरा मुखी"॥ १ ॥ अर्थ-पूर्व मुख करके स्नान करना चाहिये और पश्चिम दिशा मुख करके दंत धावन करना चाहिये और उत्तर दिशि सन्मुख होकरके नवीन वस्त्र पहिने और श्रीजिनदत्त

कीजे यह दूसरी चंदन पूजा कही फिर पुष्प पत्रादिक हाथमें ले कर यह मंत्र कहकर पुष्प चढ़ावे इस पुष्प पूजा करने के बाद फिर अक्षत हाथमें ले यह मंत्रकहे ॥ मंत्र-ॐ अर्हतं श्रीशालि निर्म्मलं बल्यं, मांगल्य सर्व सिद्धिदं। जीवनं कार्य संसिद्धौ भूयात्मे जिन पूजने ॥ १ ॥ यह मंत्र गुणकर अक्षत जिन प्रतिमा आगे चढाइये यह चौथी अक्षत पूजा कही ॥ ४ ॥ इसके बाद नैवेद्य भोजन थालमें रखकर यह मंत्रकहे ॥ मंत्र-"ॐ अर्हतं नानाद्रस संपूर्ण नैवेद्यं सर्वमुत्तमं जिनाग्रेढौकिते सर्वसंपदा मम जायतां ॥ १ ॥ यह मंत्र कह कर नैवेद्य थाल जिन प्रतिमा आगे रखने यह पंचमी नैवेद्य पूजा कही ॥ ५ ॥ इसके पीछे सुपारी जायफलादि वर्तमान कालकी ऋतुके फल आम नीबू आदिक हाथमें लेकर यह मंत्र कहे । (मंत्र) ॐ अर्हं दु जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यफलं मोक्षफलं ॥ दद्याज्जिनार्चने चैव जिनवदाग्रहसंस्थितं ॥ १ ॥ यह मंत्र पढकर जिन प्रतिमा आगे फल रखने यह छट्ठी फल पूजा कही ॥ ६ ॥ इस पीछे धूप हाथमें लेकर यह मंत्र कहे ॥ मंत्र। ॐ ह्रीं रं श्रीखंडागरु कस्तूरीद्रुमनिर्यासंभवः प्रीणनः सर्वदेवानां धूपोस्तु जिनपूजने ॥ १ ॥ यह मंत्र कह धूप अग्नि पर रख कर जिन । प्रतिमा आगे धूप रखे यह सातवीं धूप पूजा कही ॥ ७ ॥ तिसकेबाद दीवा जोकर हाथ में पूजा लेकर यह मंत्र कहे । (मंत्र) ॐ अर्हं रं पंचज्ञानमहाज्योतिर्म्मयायध्वान्तघातिने ॥ द्योतनाय प्रतिमायदीपो भूयात्मदार्हते ॥ १ ॥ यह मंत्र कहे कूल मंत्रकर दीवेमें डालकर प्रतिमाके जीमणे हाथकी तरफ रखने यह आठमी दीप पूजा कही ॥ ८ ॥ इसके बाद कुसुमांजली लेकर यह मंत्र गुणे:-ॐ अर्हं भगवन्तो अर्हन्तो जल गंध पुष्पाक्षत फल धूप दीपैः संप्रदान मस्तु ॐ पुन्याहं पुन्याहं प्रियंतां प्रियन्तां भगवंतो अर्हतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृति द्रव्य भाव युत स्वाहा ॥ यह मंत्र गुणकर कुसुमांजली प्रतिमाके चरणमें डाले. उसकी पीछे वास क्षेप लेकर यह मंत्र पढ़े ॥ मंत्र ॥ ॐ सूर्य्यसोमांगारक बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु मुखा, ग्रहाः ॥ इह जिनपदाग्रह समायांतु पूजां प्रतीछंतु" ॥ इस मंत्रसे वास क्षेप मंत्र कर जिन प्रतिमा आगे नवग्रहका पाटा होवे तो उसपर वास क्षेपकीजे जो नवग्रहका पाटा न हो तो जिस बाजोट पर भगवानको स्नान कराया है उस बाजोट पर वास क्षेपकीजे फिर उस पर अष्ट चढाइये और अष्ट द्रव्यसे पूजन करिये ऐसा बोलता जावे कि 'गन्धं अस्तु' 'अस्तु' शब्द सर्व द्रव्योंके पीछे लगाना चाहिये इस रीतिसे अष्ट द्रव्यसे पूजनेकिये के बाद कुसुमांजली हाथमें लेकर इसमंत्र को गुणे:-ॐ सूर्य सोमांगारक बुध, गुरु शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु मुखाग्रहाः सुप्रीतिना संतुः सानुग्रहाः संतुतुष्टिदाः संतुपुष्टिदाः संतुमांगल्यदाः संतुमहोत्सवदाः संतु ॥ यह मंत्र कह कर ग्रह पट्टा पर कुसुमांजली छोड़े पीछे वास क्षेप हाथ में ले कर इस मंत्र को पढ़े:- ॐ इन्द्राग्नि यम नैऋत्य वरुण वायु, कुबेर ईशान, नाग ब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः इह जिन पादाग्रे समागच्छंतु पूजां प्रति च्छंतु ॥ इस मंत्रसे वास क्षेप मंत्र स्नान पाटा पर वास क्षेप कीजे पीछे उस पर अष्टकी धार दीजे ' आचमनमस्तु ' ऐसा सर्व द्रव्यों में ' मस्तु ' शब्द लगाना और अष्ट द्रव्यसे पूजन करना फिर हाथ में कुसुमांजलि लेकर इस मंत्र को गुणे:-ॐ इन्द्राग्नि यमनैऋति वरुण वायु कुबेर ईशान नाग ब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुप्रीता संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥

मंत्रको कहकर पाटा ऊपर कुसुमांजली छोडे फिर कुसुमांजली हाथमें लेकर इस मंत्रको कहे मंत्र-ॐ अस्मत्पूर्वजागोत्रसंभवाः देवगतिगताः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाःसंतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु इस मंत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमांजली डाले फिर कुसुमांजली हाथमें लेकर इस मंत्रको कहेः—ॐ अर्हं अर्हद्भक्त्याष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतीच्छंतु सुपूजिताः संतु ॥ इस मंत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमांजली छोडे फिर पुष्प थाली हाथमें लेकर मौन पणे मंत्रका स्मरण करे मंत्र ॐअर्हंनमो अरिहंताणं ॐ अर्हंनमो सयं संबुद्धाणं ॐ अर्हंनमो पारगयाणं ॥ इस मंत्रको १०८ एकसौ आठ बार अथवा ५४ बार अथवा २७ बार २१ बार मनमें जप कर जिन प्रतिमा के चरण में फूल चढ़ावे. इस मंत्रकी महिमा ॥ शास्त्रों में है इस लिये यहां नहीं लिखते। जिनेश्वरकी अष्ट प्रकारी पूजाकरे बाद जो किसी को स्थिरता नहीं हो तो यह लोक पालादिककी पूजा न करे और भगवत् की अष्ट द्रव्यकी पूजन किये बाद तीसरी 'निस्सही' कहकर चैत्य वन्दन करके चला जाय फिर जो समस्त लोकपाल आदिक की पूजा करे सो नैवेद्यका थाल वहां चढाय कर जललेकर इस मंत्रको बोले।(मंत्र)ॐ सर्वे गणेश क्षेत्रपालाद्याः सर्वे ग्रहाः सदिक्पालाः सर्वे अस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतदेव जातयःसदेव्योऽर्हद्भक्ता अनेन नैवेद्येन संतर्प्पितास्संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाःसंतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु। यह मंत्र कहकर जल थालपर डाले इस जगह जिन अर्चन विधिहुई फिर मंगलके अर्थ कुसुमांजली हाथमें लेकर यह काव्य कहेः—यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनैश्च ॥ देवैः प्रदत्तः कुसुमांजलिस्सददातु सर्व्वाणि समीहितानि ॥१॥ यह काव्य कहकर कुसुमांजलि डालेफिर कुसुमांजलि हाथमें लेकर यह काव्य कहे। राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन छत्रध्वजांकयुतयोः पदयोर्जिनस्य। क्षिप्तोतिभक्तिभरतः कुसुमांजलिर्यः सप्रीणयत्वनुदिनं सुधियां मनांसि ॥२॥ यह काव्य कही तीजी कुसुमांजली हाथमें लेकर यह काव्य कहेः—देवेन्द्रैः कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतैः संदेहव्यवरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्ध्याशयैः। आमोदान्वितपारिजातकुसुमैर्यः स्वामिपादाग्रतो मुक्तः सप्रतनोतु चिन्मयहृदां भद्राणि पुष्पांजलिः ॥ ३ ॥ यह काव्य कहकर तीजी कुसुमांजली छोडे जिसके बाद लूण की पोटली हाथमें ले और यह दो (२) श्लोक कहता दोय वार लूण उतारे ॥ काव्य। लावण्यपुण्यांगभृतोर्हतोयस्तद्दृष्टिभावं महसैवधत्ते ॥ सविश्वभर्तुर्लक्षणावतारो गर्भावतारं सुधियां विहंतु ॥ १ ॥ लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् लवणस्तारणः कुर्यात् भवसागरतारणं ॥ २ ॥ यह दो काव्य कहकर लूण उतारे उस के बाद लूण मिश्रित पाणि करी यह वृत कहेता मंगलीक भूण पाणी उतारे ॥ श्लोक ससारतां सदासक्तां निहंतुमिव सोद्यतः। लवणाब्धिर्लवणांबुमिषात्ते सेवते पदौ ॥ १ ॥ यह श्लोक कहकर लूण पाणी उतारे पीछे एकलो पाणी कलस हाथमें लेकर यह काव्य कहे ॥ भुवनजनपवित्रताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः। जलं विकलमस्तु तीर्थनायकमसंस्पर्शि सुखावहं जनानां ॥ १ ॥ यह काव्य कहकर पाणी उतार चार दिशीदोलिये जिसके पीछे सात बत्ती दीवेकी आरती उजवाले यह दोय वृत्त कहते हुवे सात वार आरती उतारे। (श्लोक) सप्तभीतिविघातार्हं सप्तव्यसननाशकृत ॥ यत्सप्त

नरकद्वारं ससारिनुलांगतं ॥ १ ॥ काव्यं । ससांगराज्यफलदानकृत् प्रमोदं सम्यक् तत्वविदनंतकृतं प्रबोधं । तच्छकहस्तधृतसंगतसप्तद्वीपमारात्रिकं भवतु सत्तमहद्रुगाय ॥ २ ॥ यह दो काव्य कह कर आरती उतार कर मंगल प्रदीप नीचे रखकर चार श्रुति कहे ॥ श्लोक ॥ त्रिजगत्प्रभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥ चिन्मंगलं श्रीजिनेंद्रात्मार्पनीयं दिनेदिने ॥१॥काव्यं॥ यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्रीसंदोजनैः प्रतिथभूव विवाहकाले ॥ सर्वसुरासुर वधूमुखगीयमानं सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणं ॥ २ ॥ दास्यं गतेषु सकलेषु सुरासुरेषु राज्ये ऽर्हतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् । संमंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारिपाद्य निषेकविधिनात्युपचीयमानं ॥ ३ ॥ यद्विश्वाधिपतिः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे तीर्थं पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृद्धिंगते मंगलम् ॥ तत्संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मना मर्हतां भूयान्मंगलमक्षयंच जगति स्वस्त्यस्तु संघायच ॥ ४ ॥ यहचार श्रुति कहकर आरती वो मंगल प्रदीप उल्लासकरे। इस जगह अब तीसरी निस्सही कहे फिर चैत्यवंदन करे॥ जो हम अगाड़ी अल्प पाप और बहु निर्जरा पर कह आयेथे सोअब इस जगह उसका निर्णय करते हैं:- कितनेक भोलेजीव बाह्यक्रिया में जो जल पुष्प अग्निका किंचित् आरंभ देखकर अन्तरंग उपयोग शून्य गुरु कुल वासके अभावसे स्याद्वादसैलीके अजान जल पुष्पादिक जीवों की हिंसा समझकर अल्प पाप और बहुनिर्जरा कहते हैं उनके अज्ञानको दूर करनेके वास्ते शास्त्रोक्त प्रमाण और युक्तिसे एकान्तिक निर्जरा होती है श्री जिन राजकी द्रव्य पूजनमें पाप शब्द कहने वालोंका वचन अयुक्त है इसीवास्ते श्री आवश्यक जी वृहद्वृत्ति के हितिपसंग्रह का पाठ बताते हैं सो पाठ यह है:-जहां नव नगरादे संनिवेसे केविप भूर जलाभावनोत् तण्हाए परिगतातदपनोदणकूवं खणंतितेसिंचजइवित एहाइआवाहांनि भंवंति अक्कद्दमादी इयमई लिहाणंति तहाविनडुम्भंरणं चेवपाणपणंते सिंतेतल्लहादि आमो पमलो पुष्फगोय किट्ठंनि सेसकालंच तेनदभेय लोग्य सहभागिणो भवंति एवंदयत्थ वेजहोअसंजमो तहाविन आचितमा परिणामसुद्धीभवइ जानं असंजमो वडिइझीअं अन्नंच निरवसेसंमवे इति तम्हाविरया विरएदिएम दघत्थवो कायवत्वो सुहाणुबंधीय भूततरनिज्जराफलोयत्तिकाऊणमिति ॥ जिसतरह नवानगर प्रमुखग्राम में बहुत जलके अभाव से कोईलोग प्यासे मरते थे उस प्यासके दूर करनेके वास्ते कुवाखोदे उनलोगों को यद्दीप्यास प्रमुख कुवांखोदनेसे बढ़ती है और मट्टी कीचड़ प्रमुखकरके मलीनहोते हैं तथापि उस कुवेके खोदे बाद जो पानी पैदाहुवा उसकरके उनलोगोंकी वो प्यास प्रमुख और वह मिट्टीमल मट्टी कीचड़से जो लगाथा सो सबै दूरहोजाता है जिसपीछे हमेशा के लिये वह सोदेनवाले पुरुष वा और लोगभी उसपानी से सुखभोगते है इसीतरह द्रव्यपूजा में यद्यपि जीव विराधना होतीहै तथापि उसी पूजासे ऐसी प्रणाम शुद्धिहोती है कि जिससे वह असंजमजनित वो अन्यभी दोष नष्टहोजाते हैं इसवास्ते देशविरति श्रावकों को यह द्रव्यपूजा करनी उचित है ऐसाकहकर बतलाया कि यहपूजा शुभानुबंधी अत्यन्त निर्जराफलकी देने वाली है ॥ अब हासमोंको भुलानेका जो अन्य पाठमें बतलाते हैं सो वो प्रमाण साधुके वास्ते का है इसवास्ते जिनराजकी पूजामें नहीं लगसकता परन्तु तोभी इसपाठका प्रकरण दिखाते हैं सो पाठ यह है:- समणो वा समणं वा अणगारं समणं वा माहणं वा अफासु अणे सणिज्जेणं

जो देने की विधि कही है उससे विशुद्ध दूषण सहित सचित्त दान साधुको देनेसे अल्प पाप बहुनिर्जरा निबंध अनुष्ठान तो पक्ष है उसको क्षुल्लक भव ग्रहण निमित्तता असाधन करते हैं उसमें जिन पूजाद्यनुष्ठानके विषय में अतिव्याप्ति रूप हेतु दिया है वो हेतु यदि विशेषण रहित सामान्य करके सर्व जिन पूजनादि अनुष्ठान विषय करेंगे तब तो पूर्वोक्त अनेक सिद्धान्तोंके प्रमाणसे विरुद्धता इस हेतुको होजायगा तब असद हेतु हुवा इस लिये हेत्वाभास हो गया तब अपने साध्यको भी नहीं सिद्ध कर सकेगा तब तो बड़ा भारी दूषण हो जायगा इस वास्ते पूर्व प्रकरणके संयोगसे हेतु में भी अविधि सेवत जिन पूजाद्यानुष्ठान अल्प पाप बहु निर्जरा का कारण जानना चाहिये अन्यत्रके पाठसे विरोध देख कर अनुक्त भी विशेषण अवश्य ही लगाना पड़ता है अविधिसे अल्प पाप और बहु निर्जरा अंगीकार करो सो अविधिका करना तो जो हम पूर्वविधि पूजन की लिख आये हैं उस में अविधिका तो कुछ काम ही नहीं और इस जगह तो हमारा प्रकरण जो जिन मतके अजान अपने को पंडित अभिमानी मान कर द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप मानते हैं उनके लिये हमारा यह कहना है कि द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप नहीं है क्योंकि पापादिक का कोई हेतु नहीं है देखो श्री ठाणांग सूत्र में पंचम स्थान के दूसरे उद्देश मे पांच द्वार परुवन किये हैं सो पाठ यह हैः–पंच आसवदारापन्नतं। जहामिच्छत्तं १ अविरई २ पमीओ ३ कषाया ४ जोग ५ अर्थ– कर्म बन्ध करनेके कारण पांच हैं मिथ्यात्व १ अविरति २ प्रमाद ३ कषाय ४ योग ५ इनके सिवाय अन्य कोई कारण कर्म बंध का सिद्धान्त में कहा नहीं अब विचार करना चाहिये कि यहां जिन पूजामें पाप बंध किस कारणसे उत्पन्न हुवा भाव सहित विधिसे जो पूजा करता उसको उस समय उस करनी में मिथ्यात्व अविरिति प्रमाद कषाय निमित्तक तो कर्म बंध कह सकते नहीं किन्तु केवल योग निमित्तक बंधका सम्बन्ध है तिस में फेर विचार करो कि योग २ प्रकारके श्री भगवती में कहे हैं प्रथम तो शुभ योग द्वितीय अशुभ योग २ तिस में शुभ योग पुण्य बंधका कारण और अशुभ योग पाप बन्धका कारण है सो यहां जिन पूजा में अशुभ योग तो कह सकते नहीं केवल शुभ योग रहा वह पुण्य बन्धका कारण है फिर कारण बिना पाप रूप कार्यकी उत्पत्ति किस तरह हो सकती है. अब जो कहो कि उस जगह शुभ जोग परणामकी धारा नहीं रहे उस जगह अशुभ जोग आजायतो फिर अल्प पाप और बहुत निर्जरा हो सकती है तो हम कहते हैं कि हे भोले भाइयो ! तुमको जिन आगमका रहस्य न मालूम होनेसे ऐसा विकल्प उठता है अब देखो एक दृष्टान्त देते हैं कि–जैसे किसी पुरुषने चम्बेलीका फुलेल बनानेके वास्ते तिलोंको चम्बेलीके फूलोंमें रक्खा परन्तु वहां किसी कारणसे चम्बेलीके फूलोंमे सुगन्ध जाती रही और वे फूल कुम्हलायकर कैंद गये अर्थात् बिगड़ गये फिर उस आदमीने उन तिलोंको इकट्ठा करके उनमेंसे तेल निकाला सो उस तेलमें तो कमतीपन न हुवा परन्तु खुशबू म न आई जितना तेल था उतनाही तेल निकला उन फूलोंके कैंद जाने अर्थात् बिगड़ जानेसे तेलमें कमतीपन न हुवा. इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तको उतारते हैं–कि देखो कि श्री जिनराजकी पूजन जिस मनुष्यने किया उस समय किंचित् परणामकी धारा अशुभ प्रवृत्तीमें हुई अर्थात् जैसे पुष्पोंकी सुगन्ध जाती

जो देने की विधि कही है उससे विशुद्ध दूषण सहित सचित दान साधुको देनेसे अल्प पाप बहुनिर्जरा निबंध अनुष्ठान तो पक्ष है उसको क्षुल्लक भव ग्रहण निमित्तता करके साधन करते हैं उसमें जिन पूजाद्यनुष्ठानके विषय में अतिव्याप्ति रूप हेतु दिया है वह हेतु यदि विशेषण रहित सामान्य करके सर्व जिन पूजनादि अनुष्ठान विषय करोगे तब तो पूर्वोक्त अनेक सिद्धान्तोंके प्रमाणसे विरुद्धता इस हेतुको होजायगा तब असद हेतु हुआ इस लिये हेत्वाभास हो गया तब अपने साध्यको भी नहीं सिद्ध कर सकेगा तब तो बड़ा भारी दूषण हो जायगा इस वास्ते पूर्व प्रकरणके संयोगसे हेतु में भी अविधि सेवत जिन पूजाद्यनुष्ठान अल्प पाप बहु निर्जरा का कारण जानना चाहिये अन्यत्रके पाठसे विशेष देख कर अनुक्त भी विशेषण अवश्य ही लगाना पड़ता है अविधिसे अल्प पाप और बहु निर्जरा अंगीकार करो सो अविधिका करना तो जो हम पूर्वविधि पूजन की लिख आये हैं उस में अविधिका तो कुछ काम ही नहीं और इस जगह तो हमारा प्रकरण भी जिन मतके अजान अपने को पंडित अभिमानी मान कर द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप मानते हैं उनके लिये हमारा यह कहना है कि द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप नहीं है क्योंकि पापादिक का कोई हेतु नहीं है देखो श्री ठाणांग सूत्र में पंचम स्थान के दूसरे उद्देश मे पांच द्वार पदवन किये हैं सो पाठ यह हैः-पंच आसवदाराणप० तं० । जहामिच्छत्तं १ अविरई २ पमीओ ३ कषाया ४ जोग ५ अर्थ- कर्म बन्ध करनेके कारण पांच हैं मिथ्यात्व १ अविरति २ प्रमाद ३ कषाय ४ योग ५ इनके सिवाय अन्य कोई कारण कर्म बंध का सिद्धान्त में कहा नहीं अब विचार करना चाहिये कि यहां जिन पूजामें पाप बंध किस कारणसे उत्पन्न हुवा भाव सहित विधिसे जो पूजा करता उसको उस समय उस करनी में मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय निमित्तक तो कर्म बंध कह सकते नहीं किन्तु केवल योग निमित्तक बंधका सम्बन्ध है तिस में फेर विचार करो कि योग २ प्रकारके श्री भगवती में कहे हैं प्रथम तो शुभ योग द्वितीय अशुभ योग २. तिस में शुभ योग पुण्य बंधका कारण और अशुभ योग पाप बन्धका कारण है सो यहां जिन पूजा में अशुभ योग तो कह सकते नहीं केवल शुभ योग रहा वह पुण्य बन्धका कारण है फिर कारण बिना पाप रूप कार्यकी उत्पत्ति किस तरह हो सकती है. अब जो कहो कि उस जगह शुभ योग परिणामकी धारा नहीं रहे उस जगह अशुभ जोग आजायगा फिर अल्प पाप और बहुत निर्जरा हो सकती है तो हम कहते हैं कि हे भोले भाइयो ! तुमको जिन आगमका रहस्य न मालूम होनेसे ऐसा विकल्प उठता है अब देखो एक दृष्टान्त देते हैं कि—जैसे किसी पुरुषने चमेलीका फुलेल बनानेके वास्ते तिलोंको चमेलीके फूलोंमें रक्खा परन्तु वहां किसी कारणसे चमेलीके फूलोंमें सुगन्ध जाती रही और वे फूल दुर्गन्धदायक होकर सड़ गये अर्थात् बिगड़ गये फिर उस आदमीने उन तिलोंको इकट्ठा करके उनमेंसे तेल निकाला सो उस तेलमें भी फुलेलपन न हुवा परन्तु सुगन्ध न आई जितना तेल था उतना ही तेल निकला उन फूलोंके सड़ जाने अर्थात् बिगड़ जानेसे तेलमें फुलेलपन न हुवा. इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तको बताते हैं—कि देखो कि श्री जिनराजकी पूजन जिस मनुष्यने किया उस समय किंचित् परिणामकी धारा मन्द परिणामोंमें हुई अर्थात् जैसे पुष्पोंकी सुगन्ध जाती

तैसेही उस जीवका पूजन करती दफे परणाम बिगड़नेसे वो बहुत निर्जरारूप जो प्रापी सो न हुई परंतु जैसे तिलोंका तेल कमती न हुवा तैसेही शुभानुबन्धी फल का न गया अर्थात् पुण्य बन्धन उसका न गया क्योंकि देखो सूत्रोंमें शुभानुबन्धी, तर निर्जरा, इस वास्तेही दो पद जुदे मालूम होते हैं कि जहां शुभ परणाम सहित जो गवत्का पूजन है वहां तो पुण्यबन्धन निर्जरा दोनोंकी प्राप्ती है और जिस जगह शुभ म नहीं है उस जगह पुण्य बन्धनका हेतु तो है और निर्जराकी भजना है इस लिये जो ल्प पाप द्रव्य पूजामें मानते हैं उनका मानना ठीक नहीं और इस वचनसे जिन आग- के रहस्यसे वे लोग अजान हैं क्योंकि देखो इस जगह चौभंगी कहते हैं कि १ साविद्य योपार साविद्य परणाम. २ साविद्य व्योपार निर्विद्य परिणाम. ३ निर्विद्य व्योपार साविद्य परिणाम ४ निर्विद्य व्योपार निर्विद्य परिणाम ॥ इस चौभंगीमें प्रथम भांगा तो अन्यमत आश्रय है और द्वितीय भांगा समकित दृष्टि देशवर्त्ती आश्रय है, देखो कि जिन पूजा तीर्थयात्रा आदिकमें देखनेमें सा विद्य व्योपार मालूम होता है परन्तु समकित दृष्टि देशवर्तिके जीव हिंसाका परिणाम नहीं इस लिये वह जीवोंकी हिंसा देखने मात्र स्वरूप हिंसा है वो स्वरूप हिंसाका पाप वंझाके पुत्रके समान है इस लिये जो वंझाके पुत्र होय तो उस स्वरूप हिंसाका फल होय औरभी इसका हेतु इस चौभंगीके बाद लिखेंगे और तीसरा भांगा जो है सो प्रश्न चन्द्र राजऋषिके दृष्टान्त आश्रय जान लेना और चौथा भांगा जो है सो साधु मुनिराज आश्रय है इस चौभंगीसेभी अल्प पाप कहनेवालेका निराकरण होता है औरभी देखो हम एक दृष्टान्तभी देते हैं कि देखो जैसे कोई डाक्टर बीमारको दुःखी देखकर उस बीमारके शरीरका रोग दूर करनेके वास्ते उसे अनेक प्रकारकी कड़वी दवाइयां देताहै अ- थवा उस रोगीके शरीरको चीरफाड़ नश्तर आदिकोंसे करता है उन कड़वी दवाइयोंका वा चीरफाड़से उस रोगीको नाना प्रकारके दुःख वेदना आदि होती हैं उस वेदना दुःख आदिसे वह रोगी पीड़ित हुवा थकाभी डाक्टरको बुरा नहीं कहता और लोगभी उस डाक्टरको रोगीकी चीर फाड़ करते हुयेको देखकर बुरा वा निर्दयी नहीं कहते इस दृष्टांतसे देखो समकित दृष्टि वा देशवर्ती इन जीवोंकी अनुकम्पा करके इनके मिथ्यात्वरूप रोगको दूर करनेके वास्ते भगवत् सेवामें उनको पहुँचाते हैं अब देखो इस दृष्टान्तसेभी जिनराजकी पूजा निर्वध्य ठहरती है इसी वास्ते जो हम पूजा आगे लिख आये हैं कि जल, [illegible] वनस्पति आदिकोंको निःपापकरे उन मंत्रोंके अर्थसेभी जिनराज की पूजा निर्वध्य प्रत्यक्ष दीखतीहै सो उस एक मंत्रको लिखकर उसका अर्थ दिखाते हैं— ॐ आपोल्काया एकेन्द्रिया जीवाःनिर्वद्या ॥ अर्ह पूजायां निर्व्यथा संतुनिष्पापाः संतुसद्ग- तयः संतुनमोस्तु संघट्टन हिंसापापमर्हदर्चने ॥ अर्थ ॥ आपा क० एकेन्द्री जलके जीव॰ अर्हत्पूजायां क० जिनराजकी पूजामें, निर्व्यथा संतु क० तुम व्याधि करके रहित हो अ- र्थात् मिथ्यात्व रोग तुम्हारा दूरहोय, निष्पाप सन्तु क० निष्पापहो, सद्गताय संतु क० तुम्हारी सद्गतिहो इस लिये तुम्हारा जो संघट्टन हिंसा पाप जो है सो अर्हतकी पूजामें नमोस्तु क० मेरेको मतहो । —

इस ३१ के आंकले जो कोई पच्च खाण करे तो ७ भांगे वृत्तमें और ४२ अवृत्तमें रहते हैं उन ७ भागोंमें १ भांगातो प्रथम ३१ के आंकका और तीन २१ के और तीन ११ के आंकके इस रीतिसे ७ भांगे तो वृत्तमें रहे और शेप खुले रहे ॥

अं० ३२ क० ३ जो० २ भा० ३ { करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा वायसा / करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा कायसा / करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं वायसा कायसा } वृ २१ अवृ० २८

इस ३२ के आंक से पच्चखाण करने वाले के २१ तो वृत्त में और २८ भांगे अवृत्त में रहते हैं उन २१ भांगे में १ तो ३२ के आंकका और दो ३१ के, और तीन २२ के और छः २१ के आंक के और तीन १२ के और छः ११ के आंकके यह सर्व भांगे मिलकर २१ भांगे तो वृत्तमें और २८ खुले अर्थात् अवृत्त में रहे ॥

अं० ३३ क० ३ जो० ३ भा० १ (करूं नहीं कराऊं नहीं, अनमोदूं नहीं मनसा, वायसा कायसा) वृ० ४९

इस ३३ के आंकसे पच्चखाण करने वाले के ४९ भांगे बंध अर्थात् वृत में होगये और खुला अर्थात् अवृत्तमें कुछ न रहा अब इन ४९ में भी १ तो ३३ का और तीन ३२ के और तीन ३१के और तीनही २३के और नौ २२ के नौ भांगे२१के आंकके तीनभांगे १३ के आंक के और ९ भांगे १२ के आंकके और ९ भांगे ११ आंकके यह सर्व मिलकर ४९ भांगेवृत्त मे हैं और अवृत्त में कुछ बाकी न रहा ॥

अब इसजगह कई भोले जीव जिन आगम के अजान ऐसा कहते हैं (शंका) कि ३ कारण और ३ जोगसे तो साधुका पच्चखाण है श्रावक के ३ कारण और ३ जोगका पच्चखाण नहीं इसका समाधान देते हैं (समाधान) हे भोले भाई ! जो ३ करण और ३ जोग से श्रावकका पच्चखाण नहीं होता तो भगवती जीमें श्रावकका नाम लेकर ४९ भांगे श्री सर्वज्ञ देवनहीं कहता ४८ भांगेकाही वर्णन करता अब कोई जिनआगम के तो अजान हैं परन्तु वे अपने दिलमें ऐसाकहते हैं हम जिनआगमके जान हैं इसलिये वे लोग ऐसा कहते हैं कि ३ करण और ३ जोगसे उत्कृष्टा श्रावक पच्चखाण करे सो उनका भी यह कहना ठीक नहीं क्योंकि देखो कि श्री हरिभद्र सूरिजी महाराज "आवश्यक" सूत्रकी २२० टीका में लिखते हैं कि " स्वयंभू " रमण समुद्र अर्थात् छेहलासमुद्रके मच्छ का त्याग। ३ करण और ३ जोगसे होता है इसके सिवाय ३ करण ३ जोगसे और कोई पच्चखाण श्रावकके नहीं हो सकता इस वास्ते इस मत्स्यका त्याग तो हरेक कोई श्रावक त्याग कर सकता है इसलिये यह नियम न ठहरा कि उत्कृष्टा श्रावक ही करे इस वास्ते यह पच्चखाण हर एक श्रावक कर सकता है ॥ कोई अजान पुरुष ऐसी भी शंका करते हैं कि अबारके समय मे जो भांगेसे पच्चखाण करे तो वह उस मुजिबचल नहीं सकता तो हम कहते हैं कि यह कहना बहुत बे समझ और अज्ञान का है क्यों कि जैन मत में और अन्य मत में कोई तरहका भी फरक नहीं मालूम होगा क्योंकि त्याग पच्चखाण व्रत उपवास आदिक अन्यमतवाले भी करते हैं परंतु उन लोगोंसे इतनाही फर्क है कि जैनी लोग जानकर करते हैं क्योंकि देखो यह वचन भी प्रसिद्ध है कि समगतकी नौकारसी और मिथ्यात्वीका एक मासका उपवास परंतु जितना फल नौकारसी का है उतना एक

(१) पच्चखाणके गुरु करानेवाला जान हो और करनेवाला शिष्य जान हो यह प्रथम भांगा अत्यन्त शुद्ध उत्तम जानना (२) पच्चखाण करानेवाला गुरु जान और करनेवाला शिष्य अजान होय तब जानीकार गुरु पच्चखाण करनेवालेको कहे कि हे फलाने ! तुझको फलाना पच्च खाण कराया है इसी रीतिसे पालना वैसे शिष्यपण पाले तो शुद्ध भांगा जानना और न पूछे न पाले तो अशुद्ध भांगा जानना (३) पच्च खाण करनेवाला जान हो सो जानता हुवा गीतार्थ गुरुके अभाव में पर्याय करके मोटा ऐसा महात्माके समीपमें अथवा पित्रादिकको गुरु स्थानक में मानकर तिसकी साख करके पच्चखाण करे तो शुद्ध जानना परन्तु जो गीतार्थ हो और अपनी खुशी (इच्छा) से अजाण गुरुके पास पच्चखाण करे तो अशुद्ध भांगे जानना (४) पच्चखाण करानेवाला गुरु और पच्चखाण करनेवाला शिष्य ये दोनों अजाण हो तो यह भांगा अत्यन्त अशुद्ध श्री वीतराग देवने कहा है । इस वास्ते भव्यजीवोंको आत्मा अर्थकी इच्छा होय तो कदाग्रहको छोड़ कर वीतरागकी आज्ञानुसार अपनी शक्ति मूजिब चलना चाहिये जिस जगह अपनी शक्ति न चले उस जगह वीतरागके मार्गकी अनुमोदना और प्रवृत्तिकी श्रद्धा रक्खे और अपनी शक्ति न होनेकी समझकर पश्चात्ताप करे यह ही जिन धर्मका रहस्य है और चौदह नियम चितारनेकी विधि वा प्रतिक्रमण आदिककी विधि बहुत पुस्तकों में लिखी हुई प्रसिद्ध हैं और जो सामायकादिकका उत्सग करनेकी गुह्यविधि है सो तो हमने तुम लोगोंको उपदेश दिया ही है उससे तुमलोग जानते ही हो क्योंकि यह रीति सो पुस्तकों में लिखने की नहीं यह तो जो गुरु कुलवासके योग्य पुरुष होगा उसी को प्राप्ति होगी न तो अयोग्यको इन वचनों पर प्रतीति किसको होगी कि जिसके अनंतानुबंधी चौकड़ी और अप्रत्याख्यानी चौकड़ी क्षय हुई है उसी भव्यजीवकी श्रद्धा और प्रवृत्ति इस मार्गमें होगी सो पांचमें गुणठाणेका धणी है क्योंकि गुणठाणा तो प्रकृति क्षय वा उपसम होनेसे होता है कुछ प्रवृत्तिसे नहीं इसके मध्ये मिथ्यात्वी निरूपण कियेके बाद हम लिखेंगे अब किंचित् मिथ्यात्वका स्वरूप लिखते हैं कि भव्य जीवोंको मिथ्यात्व छोड़ना चाहिये जो इस चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप लिखा है उसके ऊपर जो श्रद्धा अर्थात् विश्वास आर जो अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंका क्षय होता है उसको सम्यगति कहते हैं और इससे विपरीति अर्थात् देव, गुरु, धर्मपर अविश्वास वा प्रकृतियों क्षय न होना और कुदेव कुगुरु कुधर्म पर विश्वास उसीका नाम मिथ्यात्व है उस मिथ्यात्वके चार भेद हैं प्रथम तो परूपना मिथ्यात्व जो श्री सर्वज्ञसे विपरीति कहे अथवा कारण कार्य्य द्रव्य भाव निश्चय व्यवहार उत्सर्ग अपवाद नयनिक्षेपा जाने बिना अपनी आत्मामें पंडित अभिमानीपणा मान करके ग्रन्थकारका आशय जाने बिना जो परूपना करना वह सब परूपना मिथ्यात्व हैं प्रवर्त्तन मिथ्यात्व जो कि मिथ्यात्वपनेकी करणी करे और उसीको अच्छा जाने तीसरा परिणाम मिथ्यात्व जो कि परिणाम अर्थात् मनमें विपरीति कदाग्रह बना रहे और शुद्ध अर्थको नहीं श्रद्धे अर्थात् न अंगीकार करे चौथा प्रदेश मिथ्यात्व जो कि सत्तागत मोहनी कर्मका दलिया प्रदेशों पर लगा है उसके प्रदेश मिथ्यात्व कहते हैं इस मिथ्यात्वके कर्मदल विपाक अर्थात् उदयमें आवें उस समय परिणाम

मिथ्यात्व होता है और जो वह दलीया ससारमेंही पड़ा रहे तो उपसम समकित क्षय उपसम समकित प्राप्त हो परन्तु परिणाम मिथ्यात्व हो उस समय समकितकी प्राप्ती नहीं होती इन चार मूल भेदके उत्तर भेद अनेक होते हैं परन्तु उत्तर भेद २१ यहां लिखते हैं:-(१) प्रथम तो जिन प्रणीत जो शुद्ध निर्वद्य धर्म तिसको अधर्म कहे (२) दूसरे हिंसा प्रवृत्ति आदिक आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म उसको धर्म कहे. (३) संभव भाव सेवनरूप जो मार्ग उसको उनमार्ग कहे (४) चौथे विषय आदिक सेवन जो उन मार्ग उसको मार्ग कहे (५) सत्ताईस २७ गुण करके जो विराजमान, काष्टना नाव समान तरण तारण समर्थ ऐसा जो साधु तिसको असाधु कहे. (६) छठा आरंभ परिग्रह विषय कषायसे भरा हुवा, लोभ मम, कुवासनादायी पाषाणकी नाव समान ऐसा जो अन्य लिंगी तथा कुलिंगी असाधु होय उसको साधु कहे परंतु ऐसा न विचारे कि जो खुदही दोषसे भरा हुवा है वह दूसरेको कैसे तार सके जैसे आप तो दरिद्री दूसरेको धनवान केसे करे (७) सातवें एकेन्द्रिया दिक जो जीव हैं उसे अजीव करके माने. (८) काष्ठ सुवर्णादिक अजीव पदार्थने जीव करके माने. (९) मूर्तिवंत रूपी जो पदार्थ है उसे अरूपी कहे जैसे स्पर्शवान् वायुको अरूपी कहे परंतु ऐसा न विचारे कि जो अरूपी है उसमें स्पर्श कैसे हो (१०) दशवां अरूपी पदार्थको रूपी कहे जैसे मुक्तिमें तेजका गोला माने पण ऐसा न विचारे कि जो अरूपी चीज हैं उसका तेज कैसे नजर आवे यह दश प्रकारका मिथ्यात्व हुवा दूसरे पांच मिथ्यात्व हैं इनकोभी मूल भेदमें लिखते हैं:- (१) जो अपनी मनेमां आया वह सांचा, दूसरा सर्व झूठा पण परिक्षा करवानी इच्छा राखे नहीं शुद्धाशुद्धनी खोल या विवेचन करे नहीं वह प्रथम अभिग्रहिक नामे मिथ्यात्व जाणना ॥ (२) अब सर्व धर्म समान हैं सर्व साधु लोग सरीखा हैं सर्व साधुओंको वन्दना नमस्कार करना सर्व देवतोंको मानना किसीकी निन्दा न करना क्योंकि सर्व जगत्में इकसार है अपनी २ सब कोई कह रहा है इस वास्ते किसीको बुरा भला न कहना ऐसा जिसका परिणाम है उस पुरुषको अमृत और विषय इन दोनों पदार्थोंकी खबर नहीं दोनोंको एक समझ लिया इस वास्ते इसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व जानना. (३) अभिनिवेष मिथ्यात्व कहते हैं कि जो पुरुष जान करके झूंठ बोले अपने अज्ञानपनेसे अथवा भूल करके परुपना करे और पीछे फेर कोई शुद्धमार्ग अनुसारी जीव अथवा कोई गीतार्थ उस पुरुषसे कहे कि यह तुम्हारा कहना सिद्धान्तोंसे विरुद्ध है यह तुम्हारा बोलना ठीक नहीं सर्वज्ञोंके वचनसे विपरीति कहना संसार बंधनेका हेतु है ऐसावचन दूसरेका सुनकर यह जीव पहिले की हुई परुपना को अपने वचन सिद्धिके वास्ते कदाग्रह सहित अनेक कुयुक्ति करके अपने वचन सिद्धि करनेकी अपेक्षा करे और दूसरेको झूठाकरे और अपनी झूंठको अपने वचनको जानता हुवा भी झूंठ न माने क्योंकि अपनी आत्मामें पण्डित अभिमानीपना मानकरके क्या विचारे कि जो मेरा वचन निकलगया और में अब इसको झूंठ मानलूंगा तो लोगों में मेरी पण्डिताई चलीजायगी परन्तु लोगों में पण्डिताई जानेका तो उसको ख्याल है और सर्वज्ञों के वचन का विरोधक होऊंगा और मेरेको बहुत भव भ्रमणकरना पड़ेगा ऐसा वह ख्याल न करे उस जीवको अभिनिवेष मिथ्यात्व जानना. (४) संशयकोमिथ्यात्व कहते हैं कि जो सर्वज्ञकी

ाणी में संशय उपजे क्योंकि देखो सर्वज्ञ के वचन अनेकान्त स्याद्वाद निश्चय व्यवहार द्रव्या-
र्थिकपर्यायार्थिक नयनिपेक्षा करके जो प्रभुकी वाणी है उसके सूक्ष्म अर्थ में अपनी बुद्धि न
ो अर्थात् सूक्ष्म अर्थ की खबर न पड़े उस संशयसे डिगमिगाता रहे अर्थात् निश्चय नहो
या जाने यह बात कैसे है ऐसा जिस पुरुषको संशय है उस पुरुषका संशय मिथ्यात्व जा-
ना (५) अनाभोगिक मिथ्यात्व कहते हैं कि अज्ञान पनेसे कोईतरहकी खबर नहीं और
मिथ्यात्व में पड़ाहुवा जीव मिथ्यात्व को भोग रहा है यह मिथ्यात्व एकेन्द्री आदिक जीवों
अनादि कालसे लगरहा है यह अनाभोगिक मिथ्यात्व जानना । अब तीसरे छःभेद लौ-
किक और लोकोत्तर मिथ्यात्वके भेद कहते हैं:-सो १ तो लौकिक देव. २ लौकिक गुरु.
लौकिक पर्व्व. ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु. ६ लोकोत्तर पर्व्व अब इनके जुदे २
द कहते हैं:-(१) लौकिकदेवके भेद कहते हैं कि जो रागद्वेष करके संयुक्त शास्त्र,
्री आदिक करके भी सहित अथवा ज्ञान, काम इत्यादिक चेष्टा में मग्न रहते हैं और किसी
ो वर देते हैं और किसीको शापदेते हैं और सावियभोग पश्चइन्द्रियों के लेलीन और जो
न्द्री का विषय नहीं है उसकी चाहना करना ऐसे को जो देवबुद्धि करके माने, पूजे, और
सा अपने जीमें जाने कि यह मोक्षके दाता हैं और उनके कहेहुवे मार्ग में प्रवृत्तिहोना
ौर हिंसामयी धर्मको करे और ऐसाकहे कि यह सर्वज्ञदेव है यहीमेरे को मोक्ष देगा ऐसा
ो माननेवाला है उसको प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जानना ॥ इस मिथ्यात्व के
नेक भेद हैं सो अन्य ग्रन्थों से जानलेना (२) लौकिक गुरु मिथ्यात्व कहते हैं:-कि जो
ावविधि परिग्रहधारी गृहस्थाश्रमी १८ पापस्थानक के सेवनेवाले अथवा कुलिङ्गी उनको
ुरु बुद्धिमानना अथवा दूसरे जोकि जैनमतमें जो लिङ्ग कहा है उस लिङ्ग से विपरीति
लिङ्ग जो नवे २ प्रकार के भेष बनाकर आडम्बरके सहित बाह्यपरिग्रहका त्यागकिया है
रन्तु अभ्यन्तर ग्रन्थी छूटी है नहीं अनादि कालकी भूल मिटी नहीं स्याद्वाद को लखा नहीं
ौर शुद्ध साधनकी इच्छा नहीं ऐसे भेषधारी ऊपर लिखेहुये को गुरुमाने और उनका
हुमान करे और ऐसाजाने कि यह मेरे को तारेंगे और उनको परमपात्र जान करके जो
ान आदिकदेना वो लौकिक गुरुत्व मिथ्यात्व जानना ॥ अब देखो पात्र चार प्रकार का
ोता है:-१ अपात्र कुत्ता, बिल्ली, चील आदिक को देना सो अपात्र है । २ कुपात्र उसे
कहते हैं कि खोटापात्र जो ऊपर लिखेहुये लौकिक गुरुके हैं सो सर्व कुपात्र जानलेना, पात्र
उसको कहते हैं कि जिसकी सरीखी कृपा और श्रद्धा अर्थात् साधर्मीपना उसको जो मानना
ा देना लेना वो पात्र है । सुपात्र उसको कहते हैं कि जो साधु मुनिराजकी वृत्ति शास्त्र
में कही है उसको शुद्ध मन, वच, काय करके दानदेना वोही सुपात्र है ॥ तीसरे लौकिक
र्व कहते हैं कि इसलोक में पुद्गलिक सुखकी इच्छा से अनेक मिथ्यात्व कल्पित लौकिक
पर्वदिवस, रक्षाबन्धन, गणेशचौथ, नागपंचमी, सोमप्रदोष, सोमवती, बुद्धाष्टमी, होली, द-
शहरा, वच्छद्वादश, निर्जला एकादशी, इत्यादिकों को सत पर्व मोक्षदायक श्रद्धाकरके आ-
ाधे उस में द्रव्य खर्चकरे उसको तीसरा लौकिकपर्व मिथ्यात्व जानना ॥ (४)
लोकोत्तर देव मिथ्यात्व कहते हैं:-देव श्री अरिहंत धर्म का आगर, विश्वो-
पकार सागर परमेश्वर, परमपूज्य सकलदोषरहित शुद्ध निरंजन उसकी स्थापना

नहीं किंतु चिंतामणि रत्नको कागलाके पीछे फेंकना है, क्योंकि देखो शास्त्रोंमें जिनमन्दिर बनानेका फल बारहवां देवलोक कहाहै और शास्त्र उक्त विधिसे अपने नाम कर्मकी इच्छा बिना और जो उस जगह जिनमन्दिर है उनकी असातना निवारण करै क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जो जिनमन्दिर प्राचीनोंका जीरण उद्धार करावे उस पुरुषको नवीन मन्दिरसे अठगुना फल होता है और धन आदिकसे या पुरुषार्थ अथवा कोई तरहका उद्यम करके जिनमन्दिरकी असातना टालना वो श्री संघकी वृद्धिका कारक है इसवास्ते प्राचीन जिनमन्दिरों की असातना को टालकर नवीन जिनमन्दिर बनाना वही भव्यजीवों को श्रेयकारी अर्थात् कल्याणकारी होगा ॥ अब स्वामिवत्सल कहते हैं:-कि स्वामि (वत्सला) क्या वस्तु है ॥ स्वामीवत्सल नाम जोकि साधर्मी अर्थात् जिसकी सरीखी क्रिया वा श्रद्धा मिले उसी का नाम साधर्मी है उसीको जो वत्सलता नाम सहायदेना, किस बात में कि जिसमें उसका सुख करके अर्थात् निर्विघ्नपने धर्म ध्यान निभे उसीका नाम स्वामीवत्सल है। अब इस का विशेष अर्थ खोलते हैं कि जैसे कोई दीनमनुष्य है और अशुभ कर्म के उदय से वह बहुपरिवारी है अर्थात् परिवार उसके बहुत और आजीविका थोडी है उसको अ-पना साधर्मी जानकर रोजगार अथवा जीविका से लगना अथवा धन आदि से उसे सहायदेना अथवा कोई अशुभ कर्म के उदय से किसी का कर्जा आदिक देना है वा कोई राजा आदिक की विपत्ति में फँसा हुवा है उन कठिनाइयों से उसको छुटाना और सहाय देकर उससे धर्मध्यान कराना उसीका नाम स्वामी वत्सल है केवल अपनी कीर्तिके वास्ते जो भोजन आदिकका खिलाना वा वर्तमानकी वि-वस्था जो स्वामी वत्सलकी हो रही है उसके मध्ये तो आत्मारामजीने "जैनधर्मविषयक प्रश्नोत्तर" में गधा गुरकनी करके लिखा है सो वहांसे देख लो, अब जो कि १२ प्रकृतिका क्षय होनेसे साधु मुनिराजकी पदवीको प्राप्त होते हैं सो उन साधु मुनिराजका वर्णन तो गुरुके स्वरूपमें लिख आये है परन्तु अब जिनकी अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी दूर हुई है ऐसे जो मुनिराज हैं उनका दिनभरका कृतशास्त्रके अनुसार किञ्चित् लिखते हैं:-कि जिस वक्त एक पहर रात रहे उस वक्त में साधु निद्रा दूर करे और २४ तीर्थकरों का नाम ले ९ तथा ७ नोकारगुणे जो लघु नीत बड़ नीत की बाधा होवे तो उसको मिटावे और मिटाय कर इरियापथकी प-डिक्कमें और (तस उत्तरी) (अनथ्य उसीसिया) कहइ का उसग्गा करे उसका उसग्गा की रीति गुरु कुलवास विना प्राप्ति होय नहीं किञ्चित स्वासोस्वाससे शास्त्रमें कहा है परन्तु असल रीति तो विना सच्चे गुरुके मिले नहीं किन्तु प्रसिद्ध में तो चार नोकार वा एक लोगस्सका उसग्गा करना है सो उस जगह करे फिर प्रगट लोगस्सक है फिर कुस्वप्न दुस्वप्न राई प्रायछित विशोदवा निमित्त करे मिश्र उसग्गा कहकेका उसग्गा करे फिर का उसग्गा पाठ करके प्रगट लोगस्स करे फिर श्री जिनराजका चैत्यवन्दन करे अब इस जगह चैत्यवन्दनके मध्ये कोई आचार्य्य तो कहते हैं कि कुस्वप्न दुस्वप्नका उसग्गा चैत्यवन्दनके पीछे करे कोई कहते है कि पहले करे फिर चैत्यवन्दन करके पश्चात् सिझाय करे अर्थात् सूत्रकी सिझाय करे सो जबतक प्रतिक्रमण करनेका समय

ठाणा नहीं बना तो फिर आगे गिनती कैसे चलेगी तो हम इसका समाधान देते हैं कि भोलेभाई; नेत्रमींचकर कुछ विचार करो कि जो पेश्तर मिथ्यात्व को गुणस्थान न कहते तो जिज्ञासुको ऊपले गुणस्थानों में प्रतीति न होती क्योंकि पदार्थ के ज्ञान होनेकेवास्ते उसके प्रतिपक्षी पदार्थ की अपेक्षा आवश्यक रहती हैं इसलिये पेश्तर मिथ्यात्व को गुणस्थान कहा और दूसरा एक समाधान यह है कि मिथ्यात्व भी एकतरह का गुण है इसलिये इसको गुणस्थान कहा तीसरा समाधान यह है कि जब वह सूक्ष्म निगोद राशीमेंसे निकलकर बादर एकेन्द्री आदिक में भ्रमण करता हुवा द्वे इन्द्री त्रै इन्द्री चतुर्थ वा पंचेन्द्री तिर्यंच मनुष्य आदि में भ्रमण करता हुवा मिथ्याधर्म आदि सेवन करके वा व्यवहार राशी निगोद वा और कोई द्वेइन्द्री त्रै इन्द्री आदि में भ्रमण करे ये सब जन्म मरण होने से जीव को शुद्ध धर्म की प्राप्ति न होवे इस से भी उसको मिथ्यात्व की प्रबलता होने सेही जन्म मरण नाना प्रकारके हुवे इस लिये उसको जगह जगह विपरीत धर्मके सेवनसे उसको मिथ्यात्व गुण स्थान कहा इस लिये गुणका जो स्थान उसीका नाम गुण स्थान यह सिद्ध हुवा तो अब तीन गुणस्थान जो हैं पहला, दूसरा, तीसरा इन गुण ठाणोंमें तो आत्म धर्म है नहीं क्योंकि प्रथम गुण ठाणा तो मिथ्यात्व है इस लिये इसमें नहीं. दूसरा गुणठाणा जो है उसका नाम सास्वादन है सास्वादनका अर्थ यह है कि वस्तु तो न रहे और वस्तुका स्वाद मात्र प्रतीति रह जाय जैसे कि किसी पुरुषने घी, खांड, क्षीर मिलायकर खाया और खायकर उसी समय वमन (के) कर दिया तो उसके घी खांड क्षीर कुछ पेटमें रहा नहीं परन्तु किञ्चित् थोड़ी देरके वास्ते स्वादमात्रका खयाल रहा इसी रीतिसे जो जीव समगतसे पड़ता हुवा जब उसने समगत वमन किया उसका किंचित् खयाल रहजाता है इस लिये इसका नाम सास्वादन गुणठाणा है तीसरा जो मिश्र गुणठाणा है उसमें जिन वचनके ऊपर न राग है और न द्वेष ह जैसे नारियलद्वीपमें जो मनुष्य होते हैं वह लोग नारियल खाकर अपनी गुजरान करते हैं परंतु जो उनको अन्नादिक मिले तो उस अन्नपर न उनका राग है न द्वेष है क्योंकि राग होता तो उस अन्नको प्यारा जानकर खाते और नारियलको न खाते और उस अन्नपर द्वेष होता तो उसको दृष्टिसे देखतेभी नहीं इसी रीतिसे वीतरागके वचनको न तो वे शरूस ग्रहण करते हैं और न उसको बुरा कहते हैं वे तीसरे गुणठाणेवाले है इस लिये इसका नाम मिश्र है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि यह तो मिश्र गुणठाणा बहुत उत्तम है क्योंकि इस गुणठाणेवालेको न राग है न द्वेष है; समाधानः—हे भोले भाइयो ! इस वचनको सुनतेही उत्तम जान लिया परन्तु इसके रहस्यको न जाना क्योंकि देखो जो वे नारियलद्वीपवाले अन्नके स्वादको और पराक्रमको जान लेते वो कदापि इस अन्नसे विरक्त भाव न करते इसी हेतुसे जो पुरुष वीतरागके धर्मका स्वाद और पराक्रम जन्ममरण मिटनेका हेतु नहीं जाननेसे उन मनुष्योंको राग नहीं होता कि जैसे अन्धपुरुष रूपको चक्षुसे न देखनेसे भला बुरा न कह सके इसी रीतिसे मिश्र गुणठाणेकोभी जानना (न तु आत्मस्वरूप जानकर वीतरागपना) अवशेष ११ गुणठाणे बाकी रहे। (प्रश्न) इनमें ज्ञान गुण ठाणे कितने हैं और दर्शन गुण

ठाणे कितने हैं, और चारित्र गुणठाणे कितने हैं ? और गुण ठाणा क्रिया करनेसे आता है या गुणठाणे आनेके बाद क्रिया करता है? जो कहोगे कि क्रिया करनेसे आता है तब तो जैन मतके अलावा और लोगभी नानाप्रकारकी क्रिया कर रहे हैं तब तो एक मतकाही नियम न रहा कि पांचवां गुणठाणा श्रावकका और छठा गुणठाणा साधुका है जो क्रिया करनेसे आता है तो जो क्रिया करनेवाले हैं उनको सर्वको कहना चाहिये और जो कहो कि गुण ठाणा प्राप्ति होनेके बाद क्रिया करते हैं तो जिस चीजकी इच्छा थी उसी चीजकी प्राप्ति हो गई तो फिर उसकी क्रिया करनाही वृथा है क्योंकि देखो जिस मनुष्यको भूख लगी है जब तक उसका पेट न भरे तब तक तो वो रोटी आदिकका यत्न करता है पेट भरेके बाद फिर वो यत्न नहीं करता इस वास्ते गुण ठाणोंकी कल्पना निष्प्रयोजन है? (उत्तर) अब हम इस जगह किञ्चित् अपनी बुद्ध्यनुसार द्रव्यानुयोग अर्थात् द्रव्यार्थिक और परियार्थिक नयकी विवक्षासे कुछ भावार्थ कहते हैं देखो कि ज्ञान नाम किसका है कि जानना (ज्ञ) अवबोधनेका ज्ञान बनता है और दर्शन नाम सामान्य उपयोगका है अथवा दर्शन नाम देखनेकाभी है क्योंकि दृश प्रेक्षने धातुसे दर्शन बनता है तो प्रेक्षा शब्दका अर्थ शास्त्रोंमें ऐसा कहा है कि सत् असत् विचारशीला इति प्रेक्षाः । इस अर्थके होनेसे इस शब्दको समगत अर्थात् श्रद्धामेंभी अंगीकार करते हैं इस वास्ते दर्शन नाम मानना अर्थात् विश्वासका है। अब चारित्र यह शब्द चरगति भक्षणयो धातुसे बनता है तो इससे क्या आया कि कर्मोंको भक्षण अर्थात् दूर करे उसका नाम चारित्र है अर्थात् यह तो इन शब्दोंका अर्थ हुवा तो ज्ञान गुण ठाणे तीन हैं चौथा आठवां और बारवां क्योंकि देखो चौथे गुण ठाणेमें जिस वक्त समगतकी प्राप्ति होती है उस वक्त निमित्त चित्तवृत्ति होकर शांतिरूप आत्मस्वरूपको जानता है इसी वास्ते समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष है समगतिको आत्मा प्रत्यक्षमें कितने शख्स जिनधर्मके रहस्यके अजान समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष नहीं मानते हैं तो अब हम कहते हैं कि जब समगतिको आत्माका प्रत्यक्ष नहीं तो समगत और मिथ्यात्वमें फरक क्या हुवा इस वास्ते इस विषयमें प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणको दिखाते हैं कि देखो बुद्धि पूर्वक अपने परिणाममें शुभ अशुभ कर्मरूप राग द्वेष धरता हुवा अर्थात् परिणाम जीव द्रव्यसे उठे हैं इस वास्ते जीव परिणामी द्रव्य है इस लिये बुद्धिपूर्वक अपने परिणामको देखे हैं इस अनुमानसे आत्माका देखना सिद्ध हुवा क्योंकि देखो जैसे बदल मेघकी घटाकरके घनघोर हैं परंतु अन्धकारमें कुछ मालूम नहीं होता किन्तु जब सूर्य उदय होता है उस समय वह मेघकी घटा काली बहुत छारही हैं तो भी प्रकाश हो जाता है तो देखो सूर्य प्रत्यक्ष न हुवा परंतु अनुमानसे मालूम होता है कि सूर्य्य उदय होगया इसी रीतिसे जब समगतकी प्राप्ति जिस जीवको हुई उस समय उस जीवके ५ भूषण प्रगट होते हैं. १ सम २ समवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकंपा और ५ आस्ता। इन पांचों भूषणोंसे तो अन्यको प्रतीति होती है और उस समगतवाले जीवको नैगमनय अपेक्षा लेकर अंशरूप अनुभव प्रत्यक्ष हो रहा है इस वास्ते जिन वचनपर प्रतीत रखकर स्याद्वादसैलीरूप समगतको आत्मा प्रत्यक्षही मानना ठीक क्योंकि देखो श्रीआनन्दघन जी महाराज १५ श्री धर्मनाथजीके स्तवनमें तीसरी गाथा कहते हैं कि "प्रवचन अंजन जो

सद्गुरु करे, देखो परमनिधान, और श्री यशविजयजी सवासौ गाथाके स्तवनकी बीसवीं गाथामें कह गये है, तो किंचित् चौथे समगत दृष्टी गुण ठाणेमें आत्मस्वरूप धर्मका बोध हुवा इस लिये ज्ञानगुणठाणा है बाकी पांचवां सो श्रद्धा लिये हुवे किंचित् दर्शन संयुक्त चारित्र गुण ठाणा है और छठा और सातवाभी चारित्र गुणठाणा है क्योंकि इसमें कर्मोंकी निर्जरा है और परवस्तु जानकर भव्य जीव त्याग करता है। अब (८) आटवें गुण ठाणेमें जो शुक्ल ध्यानका प्रथम पाया निरालंब आत्मरूपको जो विचारना और आत्म धर्मको मुख जानकर आत्मज्ञानमें आत्माकी प्रतीतिका जो ज्ञान इसी वास्ते इसको ज्ञानगुण ठाणा कहते हैं क्योंकि इसमें द्रव्य पर्यायरूप जो संक्रमण सविकल्परूप इस अपेक्षासे इसको ज्ञान गुणठाणा कहा (९) नवां (१०) दशवांभी चारित्र गुण ठाणा है क्योंकि इसमें प्रकृतिका क्षय हुवा चला जाता है अब (११) ग्यारवां गुणठाणा पडवाई भाव होनेसे इसको किसीमें न गिना क्योंकि ग्यारवें गुणठाणेवाला नियम करके पडे और ऊपरको न चढे इस लिये इसको किसीमें न गिना अब (१२) बारवें गुण ठाणेमें शुक्ल ध्यानका दूसरा पाया निर्विकल्प विचारता हुवा केवल ज्ञानके बल दर्शन सम्पूर्ण व्यक्तिभाव प्रगट होनेसे इसको ज्ञान गुण ठाणेमें अंगीकार किया फिर (१३) तेरवें गुण ठाणेमें कुछज्ञान प्राप्ती होनेका कारण बाकी न रहा क्योंकि केवल ज्ञान १२ के अंतमें सम्पूर्ण व्यक्ति भाव हो गया इस लिये यह तीन ज्ञान गुण ठाणे कहे और बाकी शेष रहे जो दर्शन और चारित्र गुण ठाणेमें जान लेना अब इस तेरमें गुणठाणे वाला वीतराग सर्वज्ञ श्री अरिहंत देव होनेहैं इनके चार कर्म शेष बाकी रहते हैं अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि वे चार कर्म क्यों बाकी रहते हैं और वे कर्म कैसे बाकी रहते हैं समाधान तो हम कहते हैं कि चार कर्म बाकी रहनेसे साम्भिरूढ नयवाला सिद्ध मानता है और जो तुमने कहा कि वे कैसे कर्म बाकी रहते हैं तो हम कहते हैं कि शास्त्रों में दो रीतिसे कहे हैं श्री हरिभद्रसूरिजी आवश्यककी २२ हजारी टीकामें चार कर्मजली जेवडीके समान कहते हैं और श्री सीलांग आचार्य्य महाराज सुगडांगजी की टीका में जीरण वस्त्रोंके समान कहते हैं यह दो रीतिसे चार कर्मोंकी स्थिति सिद्धान्तों में कही है (शंका) जली जेवडी और जीर्ण वस्त्र इस में तो बड़ा भारी फरक हो गया तो किसका वचन प्रमाण माने और जली जेवडीसे दिगम्बर आमना भी पुष्ट होती है क्योंकि वे भी जली जेवड़ीके समान मानते हैं तो इस में तो सुननेवालेको बड़े भारी सन्देह उत्पन्न हो गये और सन्देह दूर होना मुशकिल हो गया और सन्देह रहनेसे कषाय मोहिनी कर्म बन्धता है (समाधान) मेरी बुद्धिके अनुसार इन दोनों ग्रन्थकारोंका आपस मे जो विरोध उसके दूर करनेके वास्ते अथवा जिज्ञासुका सन्देह निवृत्ति होनेके वास्ते मे किंचित् अनुभव कहता हूँ कि देखो श्री हरिभद्र सूरिजी महाराजका जो जली जेवड़ीके समान कहना है सो जो कि केवली समुद्घात न करे उसकी अपेक्षा तथा अन्तगडकेवलीकी अपेक्षासे है परन्तु मुख्यता में तो जो केवली समुद्घात नहीं करनेवाला है उसीकी अपेक्षा है इस स्याद्वाद वीतराग मतके आचार्योंकी सैलीसे अज्ञान हुवे पुरुष एकान्त पक्षको खेंच कर अपने वचनको सिद्ध करते हैं सो जिन आगमके अजान हैं अब श्री सीलांगजी अचार्य्य महाराजका अभिप्राय कहते हैं

के जोरसे उस लाख रुपयेके काम लायक किसीसे भय नहीं करता है और जिसके पासमें लाख रुपया नहीं है खाली आडंबर करता है उसको अपने दिलमें भय बना रहे कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी कलई खुल जाय इसी रीतिसे जिनको गुण ठाणा नहीं वो सिर्फ क्रिया करनेमें भय रखते हैं और द्वेष भी रखते हैं और क्रिया करनेमें खेदभी मालूम पड़ता है अब तेरवें गुण ठाणेका वर्णन कर चुके अब चतुर दशवां गुण ठाणेसे रहता हुवा अरहंत देव शुक्ल ध्यानके दो पाये ध्याते हुवे सैलेसी करण करके मोक्षमें प्राप्त होते हैं इस करके किंचित् गुण ठाणेका स्वरूप कहा अब भो देवानुप्रिय ! और जो तुमने चौथे प्रश्नमें श्री वीतराग की स्याद्वादवाणी रूप मार्ग मोक्ष साधन समगतकी प्राप्तिका पूछा सो मेरी बुद्धि अनुसार किंचित् मैंने कहा इस स्याद्वादमार्गको इन्द्रादि असंख्य देवताभी मिलकर कहें तो भी इस स्याद्वाद मतको पूरा वर्णन न कर सकें सो इस वास्ते तुम लोगोंको अवारके काल मुजिब किंचित् श्री वीतरागके धर्मकी जो प्राप्ति हुई है इससेही और भी अपनी बुद्धि अनुसार स्याद्वाद वीतरागके मार्गकी खबर करते हुये अर्थात् चाहना रखते हुये अपनी आत्माका कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे चतुर्थप्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमप्रकरण-हठयोगवर्णन ॥

अब तुम्हारे पांचवें प्रश्नका उत्तर लिखते हैंः-कि तुमने पूछा कि हठयोग क्या है तो अब इस योगशब्दका अर्थ करते हैं-योग नाम मन, वचन, काय यह तीनों योग हैं अथवा अष्ट योग हैं उनका वर्णन हम आगे करेंगे अथवा ज्ञान दर्शनादि यहभी योग हैं अथवा करना कराना अनुमोदना यहभी योग है अथवा जिस २ वस्तुका मिलाना उसको भी योग कहते हैं १ अथवा इच्छायोग, २ शास्त्रयोग, ३ सामर्थ्य प्रतिज्ञा योग, इत्यादि अनेक नानाप्रकारके योग हैं परन्तु इस जगह तो हठ शब्द योग के संग मिलने से हठयोगका वर्णन किया जाता है इसवास्ते हठनाम जोरावरी अर्थात् जिद्दम करना उसका नाम "हठ" है उसमें जो दोनोंको मिलाना उसका नाम हठयोग है सो इस हठयोग में भी नानाप्रकार हठनाम जिद करके जो तप अथवा अनशन आदिकिना उसका नाम भी हठयोग है परन्तु इस जगह हठयोग अर्थात् आसन प्राणायाम आदिकों का करना इसीका वर्णन करते हैं सो इस जगह प्रथम आसनों का वर्णन करते हैं कि आसन किसको कहते हैं और क्या चीज है और आसन के करने से क्या फल होता है सो प्रथम आसन लिखते हैं सो आसन तो चौरासी लक्ष हैं जिनमें से भी चौरासी आसन मुख्य कहते हैं सो इस जगह इन आसनोंका वर्णन करते हैं क्योंकि जो विशेष करके शरीर आदिकों के रोग दूर करें और चित्तकी सुस्ती दूर करें और जो ध्यानादिक में सहायता देनेवाले

जैसे मुर्दा होता है उसकी तरह सरल हो करके सोय जाय, इस आसनसे शरीरका परिश्रम दूर होता है इस लिये परिश्रम दूर करनेके वास्ते यह आसन श्रेय है। अब सिद्ध आसन कहते हैं-कि डावे पगकी एडीको योनिके मध्य में लगावे (योनि नाम लिंग और गुदाके बीच मे है उस जगह का नाम योनि है) और जीमने पगको उठाय कर लिङ्गकी जड़मे एडी को लगावे इस रीति से बैठ कर ठोडी जो है सो हृदयसे चार अंगुल फरकसे रक्खे और नेत्रोंकी अचल रूप दृष्टिसे भ्रुकुटि के मध्य में देखे इसका नाम सिद्ध आसन इसका फल बहुत शास्त्रों में लिखा है। अब पद्म आसन कहते हैं:- बांई जांघ तिसके ऊपर जीमणा पग स्थापन करके बांये पैरको जीमणी जांघ पर स्थापन करके जीमणे हाथ को पीठ पीछे फेरके बाईं जांघ पर स्थित पगके अंगूठेको पकड़े और ऐसे ही बांये हाथको पीठ पीछे लेजा करके जीमणी जांघपर स्थित जो बांया पैर उसके अंगूठेको ग्रहण करे और हृदयके समीप ठोडीधरके नासिकाकी डंडीको देखे अथवा वो हाथ पीछे की ओर न ले जाय किंतु हाथोंको दोनों एडियोंके बीच में ऊपरतली रक्खे अर्थात् डांवानीचे और जीमणा ऊपर रक्खे अर्थात् जैसे वीतरागकी प्रतिमा मन्दिर में स्थापितकी हुई होती है उस तरह जान लेना यह दोनों रीति पद्मासनकी कही इत्यादिक आसनों की विधि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमें लिखी है सो उस योग शास्त्रसे जिस की इच्छा हो सो जान लेना । अब इन चीजोंका साधनेवाला कैसा हो कि अव्वल तो ब्रह्मचारी हो दूसरा उसमें क्षुद्रपना नहीं हो, अर्थात् गंभीर आशय वाला हो परीक्षाको जीतने वाला हो आलसी न हो क्रोधी न हो कपटाई न करे निरहंकारी हो लोभी न हो जितेन्द्रिय हो अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला हो गुरुका आज्ञाकारी हो आत्मार्थी हो मोक्ष अभिलाषी हो परिश्रममें थकने वाला न हो इत्यादि जिसमें गुण होंगे वोही इस हठ योगके लायक होगा अब जो हठ योगका करने वाला है उसके वास्ते आहारकी विधि लिखते हैं प्रथम तो जितनी उसकी क्षुधाहो उस क्षुधाके चार भाग करे उसमेंसे दो भाग तो अन्नसे उदरमें भरे और एक भाग जलसे भरे उदरका एक भाग खाली रक्खे क्योंकि एक भाग खाली रखनेसे श्वास उश्वास, वायुके आने जानेका प्रचार ठीक २ होगा क्योंकि जो वो अन्न और जलसे संपूर्ण पेट भर लेगा तो उस वायुका आना जाना ठीक नहीं होगा अब कहते हैं कि आहारका करने वाला किस आहारको अंगीकार न करे सो आहार कहते हैं प्रथम कटुक कहता कडुवा नीमके पत्ता, अपल, चिरायता, वगैरः अंगीकार न करे दूसरे अमल कहतां खटाई सो इमली कैरी, जामन, जमेरी नीम्बू आदिक जो नाना प्रकारकी खटाई हैं उनको न अंगीकार करे और तीसरा लाल, मर्चभी बहुत न अंगीकार करे लवणभी बहुत न खाय ४ अति उष्ण आहार न करे गुड़ तेलादिभी नहीखाय और हरित पत्र साग न खाय और तिल सरसों (शहत) मधु और मदिरा और मांस ये सब इस कामके करनेवाले के हक में बुरेहैं दही छांछ कुलथा बेर तिल पापड़ी लहसन, प्याज, गाजर, मूली, वासीअन्न रंधाहुवा (फिर सेंकके) अतिरूखा आहारनाम घृत करके रहित कांजी इत्यादि इस कामके करने वाले को आहार न करना, क्योंकि इस आहार के करने वालेको कदापि हठयोगकी प्राप्ति न होगी फिर इस कामका करनेवाला बहुत ऊंचा नीचा गमन करना भागना अग्निका सेवन करना स्नान करना

नीचेकी तरफ़ कषायला स्वाद वर्तुल आकार ४० पल अर्थात् १६ मिनिट पगतलीमें स्थान. (अग्नि तत्त्व) लाल रंग ४ अंगुल ऊंची तीखा अर्थात् मिर्चकासा स्वाद त्रिकोण आकार ३० पल अर्थात् १२ मिनिट स्थान कन्धा. (वायु रंग) हरा वा काला रंग तिर्छा. ८ अंगुल. खट्टा स्वाद. ध्वजारूप आकार नाभी २० पल वा ८ मिनिट० (आकाश तत्त्व) काला अथवा नाना प्रकारका रंग भीतरही चलता है शून्य आकार कडुवा स्वाद १०पल अथवा ४ मिनिट, मस्तक स्थान अथवा सर्वव्यापी ॥ इन तत्त्वोंके वर्ण आकार आदिक कहे। अब इनके देखने की रीति कहते हैं—कि प्रथम तो जो हम लिख आये हैं सो उन पांचरंगोंकी पांच गोलियां और १ गोली विचित्र रंगकी, इन छवों गोलियोंको पासमें रक्खे और जब तत्त्व बुद्धिमें विचारे उसी वक्त उन छवों गोलियोंमेंसे १ गोली आंख मींचकर निकाले जो वह बुद्धिमें विचारा हुवा और गोलीका रंग एक मिल जाय तब तो जाने कि यह तत्त्व मिलने लगा अथवा दूसरे पुरुषसे कहे कि तुम रंग चितो जब वो पुरुष अपने मनमें रंग चिन्तले उस वक्त अपने नाकके स्वरमें तत्त्वको देखे और अपने तत्त्वको विचार कर उस पुरुषके रंगको कहे कि तुमने फलाना रंग चिन्ताया जो उस पुरुषका रंग मिल जाय तो जाने कि मेरा तत्त्व मिलने लगा अथवा कांच अर्थात् दर्पण अपने मुख अर्थात् होठोंके पासमें लगाकर नाकका श्वास उसके ऊपर छोड़े उस कांचमें जैसे आकारका चिह्न होय उस आकारको ऊपर लिखे आकारमें मिलावे जिस आकारसे मिल जाय वही तत्त्व जान लेना अथवा अंगूठेसे दोनों कानोंको बन्द करे और दोनों तर्जनियोंसे दोनों आंखोंको बन्द करे और दोनों मध्यमा अँगुलियोंसे नासिकाके दोनों छिद्र बन्द करे और अनामिका, और कनिष्ठिका इन चारों अँगुलियोंसे होठोंको ऊपर नीचे दाबे इस रीतिसे करके एकाग्र चित्तसे गुरुकी बताई हुई रीतिसे मनको भृकुटीमें लेजाय उस जगह जैसा तिलुला अर्थात् बिन्द जिस रंगका होय वोही तत्त्व जान लेना इन रीतियोंसे तत्त्वोंका साधन करे जिस पुरुषको तत्त्वोंकी खबर पड़ने लगेगी वह पुरुष कार्य अकार्य शुभ, अशुभ, गमना, गमन, लोक और परलोकके होने वाले या न होने वाले तत्त्वोंके आश्रयसे कार्यको विचार लेता है और जो उन तत्त्वोंसे संसार कृत होते हैं सो तो स्वरोदयोंकी पुस्तकोंमें लिखे हैं सो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं इस वास्ते हमको कहनेकी कुछ जरूरत नहीं हमको तो इस जगह हठयोगका वर्णन करनेके वास्ते प्रथम हठ योगकी भूमिका लिखनेके अर्थ किञ्चित् स्वरका भेद लिखा है क्योंकि जब तक स्वरकी सिद्धी न होगी तबतक हठयोग सिद्ध न होगा इसलिये जो कोई हठयोगकी इच्छा करे वह पुरुष पेस्तर इसको सिद्धकरले ॥ अब जो तत्त्व ऊपर कहआये हैं वो तत्त्व दोनों स्वर में चलते हैं उनदोनों स्वरों में तीन नाड़ी बहती हैं सो नाड़ी तो शरीर में ७२ हैं उन में २४ नाड़ी प्रधान है, और उन २४ में भी १० प्रधान हैं, उन १० में भी ३ नाड़ी मुख्य है १ तो इंगला, २ पिंगला, ३ सुखम्णा, इनहीं तीनों को गंगा, यमुना, और सरस्वती कहते हैं और कोई इंगला. पिंगलाको सूर्य, चन्द्रमा, कहते है और दोनों के मिलापको सुखम्ना कहते है और कोई इनको दिन और रातभी कहते हैं इन दोनों के मिलाप को सायंकाल कहते है, कोई, हाथी जिमनी भी कहते हैं इसीरीति से वस्तु एक है परन्तु अनेक नाम से बोलते हैं कृष्ण पक्ष अर्थात् बदी को सूर्य्य कहते हैं इसमें दिन

सूर्य चले तो अच्छा और शुक्लपक्ष अर्थात् सुदीपक्ष एकमके दिन चन्द्रमा चले तो अच्छा कहते हैं इसीरीति से शनिश्चर, रवि, मंगल यह तीनवार तो सूर्य के हैं और सोम, बुध, शुक्र, यह तीन चन्द्रमा के हैं बृहस्पति दोनों का है इसी रीति से किञ्चित् करके हमने कहा॥ अब हम प्राणायाम का भेद कहते हैं परन्तु प्राणायाम का प्रयोजन क्या है? तो मुख्य प्रयोजन तो प्राणायाम का मलशुद्धी अर्थात् शरीर की शुद्धी होना है कि जिससे शरीर में कोई तरहका मल न बिगड़े क्योंकि जो मल बिगड़ाहुवा होगा तो प्राणायाम मुद्रा आदिक न हो सकेगा अथवा जिस पुरुष के मलादिक विशेष हो अथवा कफ आदिक हो वह पट्कर्म करे पहले उनका नाम लिखते हैं:-(१) नेती (२) धोती (३) ब्रह्म दातन (४) गजकर्म (५) नोली (६) वस्ती (७) गणेशकर्म (८) वागीकर्म (९) शंखपखाली (१०) त्राटिक; इन दशों बातों में से कई बातें तो अन्य मतके लोग कोई २ पुरुष करतेभी हैं और उन लोगोंमेंसे इस बातकी प्रसिद्धिभी है और जिनमतमें इन चीजोंके करनेवाले वर्तमान कालमें नहीं हैं और यह लिखी हुई सब बातें जलके आरंभ होनेसे उपयोगीभी नहीं हैं परन्तु जिनवातोंमें जल आदिकका बहुत आरम्भ नहीं है और अवश्य उपयोगी हैं उन बातोंको किञ्चित् वर्णन करके नीचे खोल देंगे कि इन बातोंमें आरम्भ नहीं और धर्म साधनमें उपयोगी है; अब हम (नेती) करनेकी रीति कहते हैं:-कि कच्चा सूत, मुलायम १। तथा १॥ हाथलम्बा ५१ तारका या ७१ तार इकट्ठे मिलावे उस लम्बे १॥ हाथमेंसे ऐंठके ८ अंगुल तो बटले और शेष खुला रक्खे परंतु वह दोनों छोड़की तरफ़से खुले हुये रक्खे और बीचमेंसे बटे फिर उसके ऊपर किञ्चित् मोम लगावे जिससे वो कड़ा सतर रहे और मुलायमभी रहे जब प्रातःकाल उसको करे तब उष्णपानीमें भिगावे और वह फिर अपनी नाकमें गेरे जब वह गलेके छिद्रमें पुग जाय उस वक्त मुहमें हाथ गेरके उस डोराको आहिस्ते २ खेंचकर मुँहके बाहिर निकालले और वह बटा हुवा तो एक हाथमें और खुला हुवा छोड़ दूसरे हाथमें दोनों हाथोंसे आहिस्ते २ ऐसे खेंचे कि जैसे छाछ (मट्ठा) बिलोते हैं इस रीतिसे दोनों नासिकाके छिद्रोंमें करे उसीका नाम नेती है॥ (२) (धोती) की विधि कहते हैं कि अच्छी मलमल जिसके सूतमें गांठें आदिक न हों अथवा और कोई कपड़ा हो परन्तु बारीक हो सो कपड़ा ४ अंगुल तो चोड़ा हो और १६ हाथ लम्बा हो उस कपड़ेको उष्ण पानीमें भिजोकर निचोड़ डाले फेर उसको झड़काय कर एक छोड़ मुँहमें देकर उसको कवा अथवा ग्रास निगलते हे वैसे निगले सर्व कपड़ा निगल जाय और शेष ४ अंगुल बाकी रहे जब कुछ पेट को हलावे और फिर आहिस्ते २ खेंचकर सम्पूर्ण बाहिर निकालले फिर उसको साफकर धोकर सुखादे इस धोतीके करने से कफ आदिक न रहे इसको धोती कहते हैं. (३) ब्रह्मदातन की विधि कहते हैं:-कि जैसे सूतका डोरा अच्छी तरहसे बटकर कच्चे सूतके ऊपर उसको लपेटे सो ऐसा कड़ा लपेटे कि तिरपनीका डोरा अथवा जैसे रामसनेही कमर में कंदोला लगाते हैं इसमाफक कड़ाहो और फिर उसके ऊपर मोम लगावे जिससे वो सचिक्कण होजाय परन्तु उसमें एक अंगुल सूतपर न तो डोरा लपेटे न मोम लगावे वो सूत मानिन्द कूंची के करले और वह बँधाहुवा सूतका डोरा सवाहाथ लम्बाहो उसको प्रातःकाल

नीचेकी तरफ़ कषायला स्वाद वर्तुल आकार ४० पल अर्थात् १६ मिनिट पगतलीमें स्थान. (अग्नि तत्त्व) लाल रंग ४ अंगुल ऊंची तीखा अर्थात् मिर्चकासा स्वाद त्रिकोण आकार ३० पल अर्थात् १२ मिनिट स्थान कन्धा. (वायु रंग) हरा या काला रंग तिर्छा. ८ अंगुल. मट्टा स्वाद. ध्वजारूप आकार नाभी २० पल या ८ मिनिट० (आकाश तत्त्व) काला अथवा नाना प्रकारका रंग भीतरही चलता है शुभ्र आकार कडुवा स्वाद१०पल अथवा ४ मिनिट, मस्तक स्थान अथवा सर्वव्यापी ॥ इन तत्त्वोंके वर्ण आकार आदिक कहे । अब इनके देखने की रीति कहते हैं–कि प्रथम तो जो हम लिख आये हैं सो उन पांचरंगोंकी पांच गोलियां और १ गोली विचित्र रंगकी, इन छवों गोलियोंको पासमें रक्खे और जब तत्त्व बुद्धिमें विचारे उसी वक्त उन छवों गोलियोंमेंसे १ गोली आंख मींचकर निकाले जो वह बुद्धिमें विचारा हुवा और गोलीका रंग एक मिल जाय तब तो जाने कि यह तत्त्व मिलने लगा अथवा दूसरे पुरुषसे कहे कि तुम रंग चिंतो जब वो पुरुष अपने मनमें रंग चिन्तले उस वक्त अपने नाकके स्वरमें तत्त्वको देखे और अपने तत्त्वको विचार कर उस पुरुषके रंगको कहे कि तुमने फलाना रंग चिन्ताथा जो उस पुरुषका रंग मिल जाय तो जाने कि मेरा तत्त्व मिलने लगा अथवा कांच अर्थात् दर्पण अपने मुख अर्थात् होठोंके पासमें लगाकर नाकका श्वास उसके ऊपर छोड़े उस कांचमें जैसे आकारका चिह्न होय उस आकारको ऊपर लिखे आकारमें मिलावे जिस आकारसे मिल जाय वही तत्त्व जान लेना अथवा अंगूठेसे दोनों कानोंको बन्द करे और दोनों तर्जनियोंसे दोनों आंखोंको बन्द करे और दोनों मध्यमा अँगुलियोंसे नासिकाके दोनों छिद्र बन्द करे और अनामिका, और कनिष्टिका इन चारों अँगुलियोंसे होटोंको ऊपर नीचे दावे इस रीतिसे करके एकाग्र चित्तसे गुरुकी बताई हुई रीतिसे मनको भ्रकुटीमें लेजाय उस जगह जैसा तिलुला अर्थात् बिन्द जिस रंगका होय वोही तत्त्व जान लेना इन रीतियोंसे तत्त्वोंका साधन करे जिस पुरुषको तत्त्वोंकी खबर पड़ने लगेगी वह पुरुष कार्य अकार्य शुभ, अशुभ, गमना, गमन, लोक और परलोकके होने वाले या न होने वाले तत्त्वोंके आश्रयसे कार्यको विचार लेता है और जो उन तत्त्वोंसे संसार कृत होते हैं सो तो स्वरोदयोंकी पुस्तकोंमें लिखे हैं सो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं इस वास्ते हमको कहनेकी कुछ जरूरत नहीं हमको तो इस जगह हठयोगका वर्णन करनेके वास्ते प्रथम हठ योगकी भूमिका लिखनेके अर्थ किंचित् स्वरका भेद लिखा है क्योंकि जब तक स्वरकी सिद्धी न होगी तबतक हठयोग सिद्ध न होगा इसलिये जो कोई हठयोगकी इच्छा करे वह पुरुष पेश्तर इसको सिद्धकरले ॥ अब जो तत्त्व ऊपर कहआये हैं वो तत्त्व दोनों स्वर में चलते हैं उनदोनों स्वरों में तीन नाड़ी बहती है सो नाड़ी तो शरीर में ७२ हैं उन में २४ नाड़ी प्रधान हैं, और उन २४ में भी १० प्रधान हैं, उन १० में भी ३ नाड़ी मुख्य हैं १ तो इंगला, २ पिंगला, ३ सुषम्णा, इनहीं तीनों को गंगा, यमुना, और सरस्वती कहते हैं और कोई इंगला, पिंगलाको सूर्य, चन्द्रमा, कहते हैं और दोनों के मिलापको सुषम्णा कहते हैं और कोई इनको दिन और रातभी कहते हैं इन दोनों के मिलाप को सायंकाल कहते हैं, कोई, हाथी जिमनी भी कहते हैं इसीरीति से वस्तु एक है परन्तु अनेक नाम से बोलते हैं कृष्ण पक्ष अर्थात् बदी को सूर्य्य कहते हैं एकमके दिन

छिद्रमें लगी हुई जो जिह्वा एक घड़ीमात्रभी जो स्थित रहे तो सर्प बिच्छू इनको आदि लेकर जो जन्तु तिनका जो विष उनको दूर करने की शक्ति उसको होजाती है अर्थात् उसको किसी जानवर का जहर (विष) नहीं चढ़ता और इस मुद्राके करनेवाले पुरुष आलस्य, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्च्छा आदिक विशेष करके नहीं होती है और तालवे के ऊपर छिद्रके सन्मुख जिह्वा लगाय स्थिरहो उस तालुवेपर छिद्रमें से पड़ता हुवा जो चन्द्र अमृत उसका पान करे है इसीसे सर्व कार्य्यकी सिद्धि होती है परन्तु यह रीति सब, गुरुके विदून नहीं होती है केवल पुस्तक के देखने से जो होती तो जगत्में प्रसिद्ध है इसलिये गुरुका विनय प्रतिपत्ती सुश्रूषा आदि करे जिससे गुरुअनुग्रह करके युक्तिको बताए देवे और वज्रोली, अमरोली से जोली आदिक मुद्रा हैं सो हठयोगप्रदीपादि ग्रन्थोंमें उनके साधन और रीति लिखी है परन्तु यह रीति मेरे अनुभव से अर्थात् जिस गुरुने मुझको इन बातों से किञ्चित् वाक़िफ़ किया है उनबातों से ग्रन्थकी रीति विलक्षण मालूमहोने से नहीं लिखा और जिसको इन बातों की चाहनाहो तो मेरेको सिद्ध तो नहीं है परन्तु गुरुकी बताई हुई युक्तियों से मेरी बुद्ध्यनुसार योग जिज्ञासुको कराय सक्ता हूं नतु ग्रन्थकी देखा देखी लिखताहूं क्योंकि बहुत लोग जो अवर ग्रन्थ बनाते हैं सो ग्रन्थ बांचकर आत्म अनुभव गुरु उपदेश विना अक्षरों का अर्थ युक्तिसे मिलायकर लिखते हैं सो उस रीति का मेरा अभिप्राय नहीं है जिसकी खुशीहो सो इस बातकी आज़माइश करे परन्तु सर्व बातें तो योग्यता होनेही से प्राप्त होती हैं और उन मुनी आदिक मुद्राभी कई तरहकी कही हैं और नादकुण्डली आदिक के कईभेद कहे हैं सो हम चक्रों के भेद कहे बाद कहेंगे. और देखो आनन्दघनजी महाराज इक्कीसमें श्री नमीनाथजीके स्तवन में लिखते हैं (९ *गाथा*) मुद्रा बीज धारण अक्षर ॥ न्यास अर्थ विनयोगरे ॥ जे ध्यावें ते नवी वांचीजे ॥ क्रिया अवंचक भोगरे ॥ ९ ॥ इस तुक का अर्थ तो हम चक्रोंका भेद कहके कहेंगे इस जगह तुकके कहने का मतलब यह था कि जो कोईलोग ऐसा समझते हैं कि जिनमत में हठयोग नहीं था या नहीं है; सो आगे था और अब भी है परन्तु प्रसिद्ध में दुःख गर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवालों के कारण से जाननेवाले हरएकको योगके अभाव होने से नहीं कहते परन्तु श्रीपाल से जो विधि जैन में है सो हरएक में नहीं ॥ प्रथम गुदा से दोअंगुल ऊपर मूलाधार नाम चक्र जिसको गणेशचक्रभी कहते हैं उसकी चार पांखड़ी हैं और उसका लालरंग है जैसे सूर्य्योदय वा अस्त समय में लाल हो जाता है इस तरहका उसका रंग है उन चारों पांखड़ियों पर चार अक्षर हैं सो यह हैं:—वं, शं, षं, सं। ये चार अक्षर चारों पंखड़ियों में हैं इसीके पास में कंद है वह कंद चार अंगुल विस्तारवाला सो गुदासे दो अंगुल ऊंचा और लिङ्गसे एक अंगुल नीचा चार अंगुलका विस्तार अण्डेके मुवाफ़िक़ है और इसी गुदाके ऊपर मेंढ़के बीच में योनि है त्रिकोण आकार है सो पश्चिममुखी है अर्थात् पीठको मुख है ब्रह्मनाल अथवा उर्द्धगमन मार्ग उसी में हो कर है उसी स्थान में सर्वदा कुंडलीनी की स्थिति है वह कुंडलीनी सकल नाड़ियों को घेर कर साढ़े तीन फेर कुटिल आकृतिसे अपने मुख से पूंछको लगाके सुखमणा विवर में स्थित है और कुण्डली नाड़ी सर्पके सादृश्य इसी

सूक्ष्म है कि जो बालक हवे का जो केश उससे भी सूक्ष्म और तप्त किया हुवा सुवर्णके मुवाफिक उसका तेज प्रकाश है और लाल लाल वर्णका कामबीज उसके शिर पर घूमता है जिस स्थान में कुंडली नाड़ी स्थित है उसी स्थान में कामबीजके साथ सुसुमणा स्थित है और यह कुंडली नाड़ी महा तेजमान् सर्व शक्तिसे युक्त होके शरीर में भ्रमण करती है कभी तो ऊर्द्धगामी कभी अधोगति कभी जलमें प्रवेश इसके जगाने की रीति तो हम आगे कहेंगे ये देदीप्यमान कामवीज सहित इस मूलाधार चक्रका ध्यान करनेवाले पुरुषको बारह महीनाके भीतर जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं किये उन शास्त्रोंके रहस्य सहित शक्ति उत्पन्न हो जाती है और जो कुछ दिन पर्य्यंत निरन्तर जो इसका ध्यान करे तो उसके सामने सरस्वती नृत्य करती है। अब दूसरा चक्र कहते हैं— स्वाधिष्ठान नाम अर्थात् लिंग मूलमें उस चक्रकी छः पांखुड़ी हैं उनके ऊपर छः अक्षर हैं वे छः अक्षर यह हैं, वं, भं. मं. यं. रं. लं. । यह छः अक्षर हैं इन्ही छः अक्षरोंसे पांखड़ी शोभायमान हैं और इसका रक्त वर्ण है कुछ एक पीलास झलकता है शरद पूनमके चन्द्रमाकी तरह सर्व कला पूर्ण करके सफेद रंगका चमकीली (वं) बीज सहित जो कोई इस चक्रका ध्यान करे उसको कविता करनेकी शक्ति होगी और सुसुमना नाड़ीके चलनेकी किञ्चित् अनहद नादका श्रवण करके आनन्दको प्राप्त होगा। अब तीसरे (३) मनी पूरक चक्रका वर्णन करते हैं। यह तीसरा पद्म जो नाभीकी जड़में सुवर्णके समान १० पांखड़ी उन १० पांखड़ियोंके १० अक्षर हैं सो वे अक्षर यह हैं—डं. ढं. णं. तं. थं. दं. धं. नं. पं. फं. यह अक्षर इस पर हैं इसमें सूर्यके समान वह्नि बीजके बाहिर एक सौस्तिक है यह अग्निबीज सूर्यके समान प्रकाशक है और इस मनीपूरक चक्रका बीज सहित जो कोई ध्यान करनेवाला पुरुष है उसको सुवर्ण आदिक सिद्धि करनेकी और देवताओंका दर्शन होना सुलभ है। अब (४) हृदयमें जो अनहद नाम जो चक्र है उसका वर्णन करते हैं— कि वह १२ पांखड़ीका कमठ है और १२ अक्षर करके संयुक्त हैं सो १२ अक्षर यह हैं—कं. खं. गं. घं. ङं. चं. छं. जं. झं. ञं. टं. ठं. इस पद्मका लालरंग है और इसका वायुबीज है इन क्रियाओं के बीच में बिजली के समान चमकती त्रिकोनी एकशक्ति उसके बीच में सुवर्ण के समान एक कल्याणरूप लिंग अर्थात् मूर्त्ति है उसके शिरपर छिदीहुई मणी चमकती है उस बीज समेत जो कोई इस पद्मका ध्यान करता है उसको साक्षात् उस कल्याणरूप मूर्त्तिका दर्शन होता है और नानाप्रकारकी सिद्धि और ज्ञान उत्पन्न होते हैं क्योंकि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज जो बहत्तरी में कहगये हैं सो उनके पदोंका जो कोई भावार्थ सुमझे तो यह सिद्ध स्पष्ट मिलते हैं बहत्तरी के पदके पदकी तुक:—"अवधू क्या सोवे तन मठमें? जाग विलोकन घट में ॥ अवधू ॥ जागी भागी आसनपर पट में, अजपा जाप जगावे । आनन्दघनचेतनमय मूर्त्ति, नाथ निरंजन पावे ॥ इस पदी तुकमें आनन्द घनजी महाराज कहते हैं. और एकपद में ऐसाभी कहा है "हृदयकमल दिसल के भीतर आत्मरूप प्रकाशे । ध्यावो ठाह कहत लेवे अजपा जपत सुहावे ॥ इत्यादिक जो कोई आत्मार्थी होगा सो इन बातों को जानेगा और करेगा ॥ अब पांचवां विशुद्धचक्र कहते हैं कि कंठस्थानमें १६ पांखड़ीका पद्म है सो १६ अक्षर १६ स्वर करके संयुक्त है सो १६ स्वर

यहहैः—अं. आं, इं, ईं. उं. ऊं. ऋं. ॠं. ऌं. ॡं. एं. ऐं. ओं. औं. अं. अंः, ॥ सो ये अक्षर तो स्वर्णके समान चमकते हुये हैं और कमलका रंग धुयेंके समान है इसका आकाश बीज है जो कोई पुरुष इस बीज सहित विशुद्ध पद्मका ध्यान करेगा वो पुरुष पंडित और योगियोंमें शिरोमणि और सब शास्त्रोंके रहस्यके जानने वाला और अनेक तरहकी शक्ति लब्धि प्रगट हो जायगी और मनकी चंचलता भी मिटजायगी. अब (६) आज्ञाचक्र कहते हैंः—इस आज्ञा चक्रके २ पांखड़िये और चन्द्रमाके नाई उज्ज्वल शोभायमान उनदोनों पांखड़ियों पर २ अक्षर हैं वो २ अक्षर यह हैंः—हं, क्षं, ॥ इस चक्रका सफेद वर्ण है और शरद चन्द्रके समान देदीप्यमान परमतेज चन्द्रबीज अर्थात् ठं, विराजमान है इस बीजका पद्म सहित जो कोई पुरुष ध्यान करे उसको जो इच्छा करे सो प्राप्ति होय और जो कोई इस चक्रका निरन्तर ध्यान करे उस पुरुषको पेश्तर तो दीपकका धुंधलासा प्रकाश मालूम होता है फिर चमकता हुआ दीपककासा प्रकाश मालूम होता है और फिर सूर्य्यका सा प्रकाश हो जाता है और परमानन्द मयी होकर मनकी चञ्चलता मिटाय कर आत्म समाधिमें प्राप्त होता है यह चक्रोंका स्वरूप कहा इन चक्रोंके ध्यान करणेका वर्णन श्री हेमाचार्य जी योग शास्त्रमें ऐसा लिखते हैं कि गुरुकी बताई हुई युक्तिसे नाभी हृदय और कण्ठ इन तीनों पद्मोंमें जो कोई वर्ण और बीज सहित १२ वर्ष तक ध्यान करे तो गण धरोंकी तरह द्वादशांगी रचे इस रीतिसे योगशास्त्रमें वर्णन कियाहै यह सर्व चक्रोंका जो ध्यान कहा सो राजयोगके अन्तर्गतहै । प्रश्न । सुसुमणा नाड़ीमेरुदंड द्वारा जहां इंद्र है उस स्थानमें गई है और इडा नाड़ी सुसुमणाके ऊपर आकृति आज्ञाचक्रके भाग होके नामनासा पुटमें गई है इसीको गंगा कहते हैं सो भेद हम अगाड़ी कह ब्रह्मेन्द्रमें जो सहस्रदल कमल है उस पद्मके कंदमें योनिहै उस योनिमें विराजमान उससे अमृत सर्वदा ईडा नाड़ीद्वारा सम्भावसे निरन्तर धारारूप गमन करता है हेतुसे इसके जानीकार पुरुष अर्थात् जोगीलोग इस ईडाको उदकवादनीभी कहते पिङ्गला नाड़ीभी कहते हैं और पिंगला नाड़ीभी उस आज्ञा कमलके . . पुटको गई है इसीको जमुना भी कहते हैं और कोई असीली भी कहते हैं . पद्म चार पांखड़ीसे युक्त है उस कमलके कंद में जो योनी है उस योनी में है उस सूर्य्यमण्डल से विष सदा पिंगलाद्वारा गमन करता है और इसी में नाद और बिन्दू शक्ति यह तीनों इस चक्र में विराजमान हैं जो इस करे उसपुरुषको पहिले कहे हुवे चक्रोंका जो फल पेश्तर कह आये हैं वह साधनसे सब प्राप्त हो जाते हैं और इसका अभ्यास करते २ ... नोका निरादर करके आनन्द लाभकी प्राप्ति करना है धन्य है वह पुरुष करता है. जो इस कमलका ध्यान करेगा वोही राज्यजोगका करणेवाला पद्मके ऊपर तालूमूलमें सहस्रदलकमल शोभायमान है अर्थात् उसकी हैं ऐसे कमल शोभायमान है उसी स्थानके ब्रह्मइन्द्र में ले जायकर ...

... ॥ सुस तान्द्र मूल अर्थात् कपाल मस्तकका जो ब्रह्म इन्द्र और नी ... योनिपर्यन्त जो सकल नाड़ी हैं । यह सर्वतत्त्व ज्ञान

मार्गकी अर्थात् आत्मस्वरूपकी दिखाने वाली जो सुखुमणा नाड़ी उसीके अवलम्बसे स्थित रहती है पहले मूलाधार में जो पद्म है उसके कन्द में एक योनि पश्चम मुखी अर्थात् पीछे को उसका मुख है उसी मार्ग हो करके जो सहस्त्रदल कमल मस्तक में विराजमान हैं उसके जानेका मार्ग यह है और यह सुखुमणा नाड़ीके रिन्द्र में कुंडलीनी सर्वदा विराजमान है इसके अन्तर्गत चित्रनाडी आदिके भी कई भेद हैं परंतु प्राणवायुके निरोध करनेसे सर्व नाडियोंमेंसे पूरण हो जायगा तब कुंडलीनी अपने बंधको त्यागकर ब्रह्मरन्ध्रके मुखको त्याग देगी तब प्राण वायुके प्रभावसे सुखुमणामें होकर उस सहस्त्रदल कमलके ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित हो जायगी जो पुरुष इन रीतियोंको यथावत् गुरुके उपदेशसे प्राप्ती करके जो इन चीजोंका अभ्यास करेगा वो पुरुष जन्म मरणरूपी बंधनोंसे छूटकर परम आनन्दको प्राप्त होगा परंतु इसके जानते वा इसकी कथा करनेसे कुछ न होगा इसलिये भव्यजीवोंको इसके अभ्यासमें परिश्रम करना चाहिये नतु जाननेमात्रसे सिद्धी अब जो असल राजयोगकी जो रीत उपसम श्रेणी और क्षप श्रेणी सो तो इस कालमें विच्छेद है परंतु उसके ध्यान करनेकी जो रीति शुद्ध ध्यानादि जो चार पायेहैं सो बहोतसे शास्त्रों में लिखे हैं और प्रसिद्ध हैं और नाममात्र देके स्वरूपमें जो हेय ज्ञेय उपादेय आदि उतारे हैं उनमें किंचित् वर्णन कर चुके हैं अब हम जो आनन्दघनजीके इक्कीसवें स्तवनकी गाथा जो हम पेशतर लिख आये हैं उसका अर्थ किंचित् लिखते हैं मुद्रा कहतां उन मुनी आदि मुद्रोमें मुद्रा इनको जाने–(बीज) कहता जो हमने चक्रोंपर वायुओंके बीज कहे हैं उनको जाने (धारणा कहतां) अक्षर समेत धारण करे किसीकी जो कमलोंपर हमने अक्षर कहे हैं; (न्यास कहतां) नाड़ियोंके अर्थको गुरुमुखसे जानकर विनयपूर्वक अर्थात् जिस गुरुने इनके गुह्य अर्थ बताये हैं उनके चरणकमलको स्मर्ण करता हुवा (योग कहता हुवा) उसमें योजना करे अर्थात् मनकी और पवनकी मुद्रा और बीज अक्षर आदिकोंकी एकता करके जो (ध्यावेकहतां) जो इसकी साधना करे (ते नववांची जे कहतां) उस पुरुषको कोई न ठग सके अर्थात् क्रोधमान माया, ईर्षा, लोभ, मोह राग द्वेषादि अथवा अष्ट सिद्धि आदिकोंसे जो उत्पन्न हो हर्ष आदि उसमें जो अहंकार मद आदि वो उस पुरुषको नहीं ठग सकते इस लिये जो पुरुष इस ध्यानका करने वाला है वह पुरुष (क्रियावंचक भोगेरे कहतां) शुद्ध सुभाव स्वरूप भोगी होय नाम अपने स्वभावकी क्रिया करे नतु पुद्गलीक क्रिया अर्थात् पुण्यादिककी इच्छासे क्रिया न करे इस पदका अर्थ जैसे मेरी बुद्धिमें भ्यासा तैसा मैंने कहा परंतु कर्त्ताका अभिप्राय तो कर्त्ता जाने कि उनके अभिप्रायको ज्ञानी जाने किंतु मैंने तो मुद्रा बीज इन अक्षरोंको देखकर अर्थ लिखा है इस करके भो देवानोप्रियो ! मेरी बुद्धिके अनुसार जो तुम लोगोंने पांच प्रश्न कियेथे उनका उत्तर उपदेश द्वारा दिया (प्रश्न)–इन ऊपरके चार प्रश्नोंके उत्तरके वाक्योंसे यह प्रसिद्ध मालूम होता है कि आपका अनुभवसिद्धि है और आपकी अमृतरूपी वाणीसेभी व्याख्यानमें पक्षपात रहित वाक्य निकलते हैं क्योंकि वर्तमान कालमें ऐसा होना बहुत कठिन है परन्तु इस हठयोग और राज्ययोगके अन्तर चक्रोंकी महिमा सुनकर हमको आश्चर्य उत्पन्न होता है किन्तु कः

नहीं सकते इसका सन्देह कृपा पूर्वक निवारण कीजिये ॥ (उत्तर) भोदेवानुप्रियों! तुम्हारे प्रश्नोका तात्पर्य यह है कि मेरी वर्त्तमान कालकी व्यवस्था देखकर तुम लोगोंको ऊपरका वर्णन सुननेसे मेरी वृत्ति देखकर सन्देह हुवा क्योंकि "किन्तु हम कह नहीं सकते" इस वाक्यसे सो तुम्हारा मेरी वृत्ति अनुसार सन्देहकरना ठीकही है क्योंकि मैंने जो चक्रोंके गुणकी महिमा और फल लिखाया है सो मेरेमें गुण दो चार आनाभरभी नहीं है इस वास्ते तुम्हारेको सन्देह होता है इस लिये तुमने मेरेको ऐसा प्रश्न किया है सो इस प्रश्नको सुनकर मेरेको हर्ष उत्पन्न होता है किन्तु खेद नहीं है क्योंकि मैंने तुम्हारेको किञ्चित् जो श्री जिनधर्म स्याद्वादमार्ग मेरी बुद्धि अनुसार बताया है उसमें तुम्हारेको इस स्याद्वादमार्गका किञ्चित् बोध होनेका अनुमान तुम्हारे प्रश्न से सिद्धिहोता है क्योंकि तुमने मेरे से दृष्टिराग न किया स्याद्वाद सेली जिनमार्ग के रहस्यकी और आत्मार्थ की इच्छा है कदाचित् जिनमार्ग स्याद्वादकी इच्छा न होती तो "किन्तु हम कह नहीं सक्ते इस वाक्यका आक्षेप मेरे ऊपर न करते और दृष्टि रागमें बँधे हुये मेरी शोभाही करते इस प्रश्न करने से मेरे को मालूम होताहै कि जो मैंने तुमको त्याग कराया है कि "जो कोई मेरा भेषधारी शत्रुहोय और बुराई करताहो और मेरी बहुत निन्दा करताही उससे तुमलोग द्वेष मत करो और जैसा मेरेको मानो वैसा उसको मानो" और दूसरा त्याग यह है " जबतक मैं इस वृत्तिमें हूं तब तक तो मेरे को मानना कदाचित् मेरी वृत्ति न्यूनहोकर धनादिक स्त्री आदिक का संग अथवा ऐसा कोई आचरण जिससे अन्यमति भी जिनधर्मकी हीलनाकरे ऐसो जो मेरे में देखो तो मेरेको वन्दना आदिक न करना व आहार आदिक मेरेको न देना और सर्व को मानना परन्तु मेरा तिरस्कार करके अपमान करदेना" ऐसे जो त्याग करायेहैं सो ययावत् पालोगे ऐसे प्रश्न के करने से निःसन्देह होगया अब मैं तुम्हारे सन्देह दूरकरने के वास्ते कहताहूं कि मैं ३५ की सालमें पावापुरीको छोड़कर इस देश में आयाहूं और जो इस ३५ की सालसे पहिले पावापुरी आदिक मगधदेश में ऊपर लिखे चक्रोंका किंचित् अनुभव जो मैने कियाया उस अनुभव से जो मेरे चित्तकी शांति और मेरागुण मेरेको मालूमहोता था सो अब वर्त्तमान काल में जैसे मोहर मेंसे घटते २ एक पैसामात्र रहजाता है इससे भी न्यून मेरेको मेरागुण मालूम होता है सो उसका कारण मैं तुमको कहताहूं सो सुनो कि जब मैं उस देशसे इस देशकी शोभा सुनकर आया तब मुझको इतना शास्त्र बांचने पढ़ने का भी बोध न था परन्तु किंचित् ध्यानादि गुणके होनेसे जो मैं शास्त्रादि श्रवणकरता तो सुनतेही उनका रहस्य किंचित् प्राप्तहोजाता और फिर मैं जिनके पास आयाथा उनकी प्रकृति न मिलने से जो २ मुझपर उपद्रव हुवेहैं सो यातो ज्ञानी जानता है या मेरी आत्मा जानती है और जो उन भेषधारियों के दृष्टिराग श्रावकोंने जो २ मेरे चारित्र भृष्टकरने के वास्ते उपद्रव कियेहैं सो ज्ञानी जानता है परन्तु लिख नहीं सकता और मैंनेभी अपने चित्त में विचारा कि श्री संघ मोटाहै और जो मैंने अपने भावसे निष्कपट पनेसे इस कामको किया है सो जिनधर्म मेरी रुचि मुवाफिक मुझको फलदेगा सो इनके उपद्रवोंका वर्णन ... करूं परन्तु एक दृष्टान्त ऊपर मैं दिखाताहूं कि—देखो एक किसी मकान में ...

रहताथा उसके पास में दो चार मनुष्य बैठे थे उस समय कोई एक रास्ता चलता हुवा चला जाताथा रास्तागीरने पूछा कि भाई ! यह मकान किसका है और इस में कौन रहता है जब किसीने कहा कि भाई इस मकान में एक शीतलगिरि जी साधु रहता है तब उस वक्त उस पूछनेवाले शख्स ने विचारा, चलो इसकी परीक्षा करूं और इसको लोगों में बुरादिखाऊं ऐसा विचारकर भीतर मकान में पहुंचा और उस शीतलगिरिजी संन्यासीको नमस्कार किया और बैठकर पूछनेलगा कि महाराज आपका नाम क्या है तब वह संन्यासी बोला भाई मेरा नाम शीतलगिरि है इतना सुनकर वह चुपहोरहा और बातें करनेलगा फिर पूछनेलगा कि महाराज आपका नाम क्या है मैं भूलगया तब उसने कहा कि मेरा नाम शीतलगिरिहै तब वह फिर चुप होरहा और दूसरी बातें करनेलगा फिर थोड़ी देरके पीछे पूछनेलगा महाराज आपका नाम क्या है मैं भूलगया इसरीतिसे दश बारह वार पूछा और वह विचारा कहता रहा कि मेरानाम शीतलगिरि है फिर थोड़ीसी देरकेबाद पूछनेलगा तब फिर उसने कुछ जोरसे कहा कि भाई मेरा नाम शीतलगिरिहै फिरभी थोड़ीदेर के बाद पूछनेलगा कि आपका नाम क्याहै ? तब वह लाचार होकरके कहनेलगा कि भाई मैंनेतुझ को इतनेदफा बताया और तू भूलगया मेरा नाम शीतलगिरि ! शीतलगिरि !! शीतलगिरि !!! है ऐसा उसने दो चार दफे नामको दोहराया तब वह उसका पूछने वाला कहनेलगा कि तुमको शीतलगिरि कौन कहता है तुमतो अग्निगिरि हो ऐसा उस विचारे को लोगों में बुरा बनाय कर आप चल दिया । इसी दृष्टान्त को बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि से विचार करें कि वह अग्निगिरि था कि शीतलगिरि था इसी रीति से मुझ को भी छेड़ २ कर लोगोंने बदनाम अर्थात् क्रोधी बनाया कि यहि ऐसे ऐंठ ऐंठ बोलता है और यहि ऐसे बकता है सो ऐसा भी बदनाम स्वमत के भेषधारियों के रागद्वेषी लोग करते हैं परन्तु परमत वाले जितने मनुष्य मेरे पास आतेहैं वो लोग मुझको जैसा भला और बुरा कहतेहैं सो भी जिस प्रकार से विचारशील [illegible] लोग जानते हैं सो इन उपद्रवोंसे मेरा लिखना ध्यानादि में [illegible] गया और [illegible] ध्यानादि [illegible] होता रहा और [illegible] ध्यानके होनेसे [illegible]

[illegible]

इस रीतिके अनेक सुयाल मेरे दिलमें पैदा होतेहैं और वर्तमान कालमें सिवाय [illegible] सहाय देनेवाला नहीं मिलता क्योंकि दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवालोंने जो [illegible] स्था कर रक्खी सो किंचित् तुमको सुनाता हूं सो सुनों और इसी वास्ते मैं कहता हूं कि मेरेमें साधुपना नहीं है अजी महाराज साहब ! इस बातको हमने लिख तो दिया परन्तु अब हमारा हाथ आगेको नहीं चलता और हमारे दिलमें ताज्जुब होताहै और आपसे अर्ज करते हैं सो आप सुनकर पीछे फरमावोगे सो लिखेंगे सो हमारी अर्ज यह है कि आपकी वृत्ति लोगोंमें प्रसिद्ध है और हम प्रत्यक्ष्य आंखोंसे देखते हैं कि आप एक दफा गृहस्थके घरमें आहार लेनेको जाते हो और पानीभी उसी समय आहारके साथ लाते हो और एक पात्र रखते हो उसीमें रोटी, दाल, खीच, साग पात अर्थात् आहारादिककी सर्व चीज साथ लेते हो और एक दफ़ै ही आहार अर्थात् भोजन करते हो और सियालेमें ऊनकी एक लूघड़ीसेही शीतकाल काटते हो क्योंकि बनात, कम्बल, अरण्डी लोकारादिका आपके त्याग है और पोथी पन्नाकाभी आपके संग्रह नहीं है अर्थात् बांचनेके सिवाय अपनी नेश्रामें नहीं रखते हो और अक्सर करके आप वस्तीके बाहर अर्थात् जंगलमें भी रहते हो और हर सालमें महीने वा दो महीने अथवा चार महीने जिस शहरमें रहो उस शहरके तोल (वजन) का एक सेर दुग्धके सिवाय और कुछ आहारादि नहीं लेते हो और जिन दिनोंमें दूध पीते हो उन दिनोंमें सात दिनमें एक दिन बोलना और बाकी मौन रखना ऐसा भी महीना दो महीना चार महीना रखते हो और मौनमें ध्यानभी करते हो इत्यादि प्रत्यक्ष वृत्ति देखते हैं और प्रायः करके और साधुवोंमें नहीं देखते हैं फिर आप कहते हो कि मेरेमें साधुपना नहीं है इसमें हमको बहुत ताज्जुब होताहै ? (उत्तर) भो देवानुप्रियो ! यह जो तुम मेरी वृत्ति देखते हो सो ठीक है परंतु मैं मेरी शक्तिमुवाफ़िक़ जितना बनताहै उतना करता हूं परंतु वीतरागका मार्ग बहुत कठिन है कि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज १४ वें स्तवनमें ऐसा कहते हैं कि-"धार तरवारनी सोहली दोहली चौदमें जिनतणी चरणसेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा सेवना धार पर रहे न देवा" ऐसे सत्पुरुषोंके वचनको विचारताहूं तो मेरी आत्मामें न देखनेसे और ऊपर लिखे कारणोंसे और नीचे भी तुमको लिखता हूं उन बातोंसे मैं अपनेको यथावत् साधु नहीं मानताहूं क्योंकि साधुका मार्ग बहुत कठिन है क्योंकि देखो प्रथम तो साधुको अकेला विचरना मना है क्योंकि श्री उत्तराध्ययनजीमें अकेले विचरनेवालेको पाप श्रवण कहा है सो मैं अकेला फिरताहूं। दूसरे शास्त्रोंमें आदमी संग रखनेकी मनाई है सोभी प्रथम तो मैंने इस देशसे असेंधा होनेसे आदमी रक्खाथा परंतु अबभी कभी २ आदमी साथ रखना पड़ता है और तीसरे यह है कि गर्म पानी अक्सर करके साधुवोंके निमित्तही होता है। सो मुझकोभी वही पानी पीना पड़ता है। और चौथा कारण यह है कि मैं सदासे अपना धारणा मूजिब वृत्त रखता आया हूं और जब मारवाड़में मैंने जावो जीवका समायक उच्चारणकी उस समयमें इन्द्रियोंके विषय भोगनेका त्याग किया परंतु कारणसे किसी गृहस्तीको अपना कारण बता देना और जब मैं किसी जगह मौकाके पडे अथवा ध्यानादिक करूं तो मैं एक जगहसेही लायकर दूध पान करूं और अन्नादिक न खाऊं क्योंकि पहले मुझको ध्यानका परिचय था। और पांचवा अन्य मतोंके ब्राह्मण लोगोंसे विद्या पढ़ते हैं तो उनको गृहस्ति-

से धन दिखाना यह कोई मत में बाकी नहीं रखते हैं और करते हैं परंतु मुझसे जहां तक बना अन्य मतके साधुवोंसे पढ़ता रहा कि जिसमें धन न दिखाना पड़े लेकिन अजमेर आनेसे किंचित् धन पढ़ानेके लिये दिखाना पड़ा यह पांचवां कारण है। इत्यादि अनेक तरहके कारण मुझको दीखते हैं इसी वास्ते मैं कहताहूं क्योंकि जिन आज्ञा अपनेसे न पले तो जो 'वीतराग' ने मार्ग परुपा है उसको सत्य २ कहना और उसकी श्रद्धा यथावत् रखना जो ऐसाभी इस कालमें बन जाय और पूरा साधूपन न पले तोभी शुद्ध श्रद्धा होनेसे आगेको जिनधर्म प्राप्त होना सुगम हो जायगा इस लिये मेरा अभिप्रायथा सो कहा क्योंकि मैं साधू बनूं तो नहीं तिरूंगा किंतु साधूपना पालूँगा तो तिरूंगा और जो शख्स जिन मार्गमें कपट वा दम्भसे अपनेमें साधुपना ठहराते हैं और बाह्य क्रिया बालजीवोंको दिखायकर अपने दृष्टिराग बांधकर उनलोगों में अपना साधुपना ठहराते हैं वेलोग अपने संसारको बधाते हैं और वर्त्तमानकाल में अपनी २ जुदी २ परुपना करते हैं उस जुदी २ परुपना होने से लोगों का विश्वास धर्मपर नहीं रहता है और कई लोग जो पेश्तर जैनी थे सो वल्लभकुली रामसनेही, दयानन्दी, अर्थात् आर्य्यसमाज में होते चलेजाते हैं सो इसका कारण वर्त्तमान काल में दुःखगर्भित, मोहगर्भित, वैराग्यका होना है, वे लोग उत्कृष्ट बनते हैं और उनकी जीभका लौल्यपना नहींगया क्योंकि कितने एकसाधु जगत् में उत्कृष्ट कहलाते हैं और उनके वाक्य ऐसे हैं कि जिससे वे लोग जीभ के लोलुपी मालूम होते हैं क्योंकि देखो वे लोग ऐसा कहते हैं कि साधु गोचरी को जाय उस वक्त में जो साधु के आहार होगया हो और किञ्चित् न्यूनहो फिर वो किसी भाविक गृहस्थ के घर में पहुँचे और वह गृहस्थीभाव से सचिक्कण सरस आहार ज्यादा वहरावे तो लेलें और अपने मकानपर आयकर पेश्तर आहार करे तो वह सरस आहार खाय कदाचित् निरस आहार बच रहै तो उसे परटदे और जो वो निरस आहार पहिलेही खाय और पेटभर जाय तो सरस आहार परटनेसे जीवादिककी उत्पत्ति हो इस लिये सरस आहार पहिले करना ठीक है ऐसा जो कहनेवाले हैं सो जिनधर्मके रहस्यके अजान जिह्वाके लोलुपी मालूम होते हैं क्योंकि देखो शास्त्रों में ऐसा कहते हैं कि साधु गोचरी को गया उस गोचरी में किसी गृहस्थने अनुपयोगसे सचित कच्चा पानी वहराया दिया और साधुको भी उस समय में उपयोग न रहा फिर वह उपासरे में आया और उस पानी में उपयोग देकर देखा तो साधुके योग्य न जाना तब उस जलको ले जाय कर साधु उस गृहस्थके घर जायकर कहे कि भाई यह जल जो तुमने वहराय दिया सो हमारे योग्य नहीं है सो तुम लो जो ग्रहस्थ जानीकार समझवारहो तो उस जलको लेलें कदाचित्त वह ग्रहस्थी ऐसा कहे कि मैं तो आपको वहराचुका अब तो मैं नहीं लेता तब साधु उस गृहस्थी को पूछे कि यह तालावका है या कुवे का है किस जगह का है जो गृहस्थी जगह बतादे तो उस जगह विधिपूर्वक परट आवे कदाचित् गृहस्थी कहे कि महाराज मुझको तो खबर नहीं तब तो साधु प्रासुक भूमि देख कर उसको परट आवे परंतु अंगीकार न करे और दूसरा जो गृहस्थी अनउपयोगसे करके अर्थात् शक्करके बदले लोण पिसा हुवा लायकर साधुके पात्र में वहरायदे और साधुको भी उपयोग न रहे तो

इस रीतिके अनेक सवाल मेरे दिलमें पैदा होतेहैं और वर्तमान कालमें सिवाय उपद्रवके सहाय देनेवाला नहीं मिलता क्योंकि दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवालोंने जो व्यवस्था कर रक्खी सो किंचित् तुमको सुनाता हूं सो सुनों और इसी वास्ते में कहता हूं कि मेरेमें साधुपना नहीं है अजी महाराज साहब ! इस बातको हमने लिख तो दिया परन्तु अब हमारा हाथ आगेको नहीं चलता और हमारे दिलमें ताज्जुब होताहै और आपसे अर्ज करते हैं सो आप सुनकर पीछे फरमावोगे सो लिखेंगे सो हमारी अर्ज यह है कि आपकी वृत्ति लोगोंमें प्रसिद्ध है और हम प्रत्यक्ष आंखोंसे देखते हैं कि आप एक दफा गृहस्थके घरमें आहार लेनेको जाते हो और पानीभी उसी समय आहारके साथ लाते हो और एक पात्र रखते हो उसीमें रोटी, दाल, खीच, साग पात अर्थात् आहारादिककी सर्व चीज साथ लेते हो और एक दफे ही आहार अर्थात् भोजन करते हो और सियालेमें ऊनकी एक कम्बलीसेही शीतकाल काटते हो क्योंकि बनात, कम्बल, अरण्डी छोकारादिक आपके त्याग है और पोथी पन्नाभी आपके संग्रह नहीं है अर्थात् बांचनेके सिवाय अपनी निश्रामें नहीं रखते हो और अक्सर करके आप बस्तीके बाहर अर्थात् जंगलमें भी रहते हो और हर सालमें महीने वा दो महीने अथवा चार महीने जिस शहरमें रहो उस शहरके तोल (वजन) का एक सेर दूधके सिवाय और कुछ आहारादि नहीं लेते हो और जिन दिनोंमें दूध पीते हो उन दिनोंमें सात दिनमें एक दिन बोलना और बाकी मौन रखना ऐसा भी महीना दो महीना चार महीना रखते हो और मौनमें ध्यानभी करते हो इत्यादि प्रत्यक्ष वृत्ति देखते हैं और प्रायः करके और साधुओंमें नहीं देखते हैं फिर आप कहते हो कि मेरेमें साधुपना नहीं है इसमें हमको बहुत ताज्जुब होताहै ? (उत्तर) भो देवानुप्रिय ! यह जो तुम मेरी वृत्ति देखते हो सो ठीक है परंतु मैं मेरी शक्तिमुवाफिक जितना बनताहै उतना करता हूं परंतु वीतरागका मार्ग बहुत कठिन है कि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज १४ वें स्तवनमें ऐसा कहते हैं कि—"धार तरवारनी सोहली दोहली चौदमें जिनतणी चरणसेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा सेवना धार पर रहे न देवा" ऐसे सत्पुरुषोंके वचनको विचारताहूं तो मेरी आत्मामें न देखनेसे और ऊपर लिखे कारणोंसे और नीचे भी तुमको लिखता हूं उन बातोंसे मैं अपनेको यथावत् साधु नहीं मानताहूं क्योंकि साधुका मार्ग बहुत कठिन है क्योंकि देखो प्रथम तो साधुको अकेला विचरना मना है क्योंकि श्री उत्तराध्ययनजीमें अकेले विचरनेवालेको पाप श्रमण कहा है सो मैं अकेला फिरताहूं। दूसरे शास्त्रोंमें आदमी संग रखनेकी मनाई है सोभी प्रथम तो मैंने इस देशमें अजान होनेसे आदमी रक्खाथा परंतु अबभी कभी २ आदमी साथ रखना पड़ता है। और तीसरे यह है कि गर्म पानी अवसर करके साधुओंके निमित्तही होता है। सो मुझकोभी वही पानी पीना पड़ता है। और चौथा कारण यह है कि मैं सदासे अपना धारणा सहित वृत्त रखता आता हूं और जब मारवाड़में मैंने जाती जीवका समागम उपाश्रयकी उस मुनपने इन्द्रियोंके विषय भोगनेका त्याग किया परंतु कारणसे किसी गृहस्थीको अपना कारण बता देना और जब मैं किसी जगह मौकाके पड़े अथवा ध्यानादिक करूं तो मैं एक जगहमेंही आवकार दूर पात्र करूं और अप्रासुक न लाऊं क्योंकि पहले मुझको ध्यानका शौक था। और पांचवा अन्य मतोंके आचरण आंखोंसे दिखा पड़ते हैं तो उनको ढूंढन-

से धन दिवाना यह कोई व्रत में बाकी नहीं रखते हैं और करते हैं परंतु मुझसे जहां तक बना अन्य मतके साधुवोंसे पढ़ता रहा कि जिसमें धन न दिवाना पड़े लेकिन अजमेर आनेसे किंचित् धन पढ़ानेके लिये दिवाना पड़ा यह पांचवां कारण है । इत्यादि अनेक तरहके कारण मुझको दीखते हैं इसी वास्ते मैं कहताहूं क्योंकि जिन आज्ञा अपनेसे न पले तो जो 'वीतराग' ने मार्ग परुपा है उसको सत्य २ कहना और उसकी श्रद्धा यथावत् रखना जो ऐसाभी इस कालमें बन जाय और पूरा साधूपन न पले तोभी शुद्ध श्रद्धा होनेसे आगेको जिनधर्म प्राप्त होना सुगम हो जायगा इस लिये मेरा अभिप्रायथा सो कहा क्योंकि मैं साधू बनूं तो नहीं तिरूंगा किंतु साधूपना पालूंगा तो तिरूंगा और जो शुरूस जिन मार्गमें कपट वा दम्भसे अपनेमें साधुपना ठहराते हैं और बाह्य क्रिया बालजीवोंको दिखायकर अपने दृष्टिराग बांधकर उनलोगों में अपना साधुपना ठहराते हैं वेलोग अपने संसारको वधाते हैं और वर्त्तमानकाल में अपनी २ जुदी २ परुपना करते हैं उस जुदी २ परुपना होने से लोगों का विश्वास धर्मपर नहीं रहता है और कई लोग जो पेश्तर जैनी थे सो वल्लभकुली रामसनेही, दयानन्दी, अर्थात् आर्य्यसमाज में होते चलेजाते हैं सो इसका कारण वर्त्तमान काल में दुःखगर्भित, मोहगर्भित, वैराग्यका होना है, वे लोग उत्कृष्ट बनते हैं और उनकी जीभका लौल्यपना नहींगया क्योंकि कितने एकसाधु जगत् में उत्कृष्ट कहलाते हैं और उनके वाक्य ऐसे हैं कि जिससे वे लोग जीभ के लोलुपी मालूम होते हैं क्योंकि देखो वे लोग ऐसा कहते हैं कि साधु गोचरी को जाय उस वक्त में जो साधु के आहार होगया हो और किञ्चित् न्यूनहो फिर वो किसी भाविक गृहस्थ के घर में पहुँचे और वह गृहस्थीभाव से सचिक्कण सरस आहार ज्यादा वहरावे तो लेलें और अपने मकानपर आयकर पेश्तर आहार करे तो वह सरस आहार खाय कदाचित् निरस आहार बच रहे तो उसे परटदे और जो वो निरस आहार पहिलेही खाय और पेटभर जाय तो सरस आहार परटनेसे जीवादिककी उत्पत्ति हो इस लिये सरस आहार पहिले करना ठीक है ऐसा जो कहनेवाले हैं सो जिनधर्मके रहस्यके अजान जिह्वाके लोलुपी मालूम होते हैं क्योंकि देखो शास्त्रों में ऐसा कहते हैं कि साधु गोचरी को गया उस गोचरी में किसी गृहस्थने अनुपयोगसे सचित कच्चा पानी वहराया दिया और साधुको भी उस समय में उपयोग न रहा फिर वह उपासरे में आया और उस पानी में उपयोग देकर देखा तो साधुके योग्य न जाना तब उस जलको ले जाय कर साधु उस गृहस्थके घर जायकर कहे कि भाई यह जल जो तुमने वहराय दिया सो हमारे योग्य नहीं है सो तुम लो जो ग्रहस्थ जानीकार समझवारहो तो उस जलको लेलें कदाचित्त वह ग्रहस्थी ऐसा कहे कि मैं तो आपको वहराचुका अब तो मैं नहीं लेता तब साधु उस गृहस्थी को पूछे कि यह तालाबका है या कुवे का है किस जगह का है जो गृहस्थी जगह बतादे तो उस जगह विधिपूर्वक परट आवे कदाचित् गृहस्थी कहे कि महाराज मुझको तो खबर नहीं तब तो साधु प्रासुक भूमि देख कर उसको परट आवे परंतु अंगीकार न करे और दूसरा जो गृहस्थी अनउपयोगसे करके अर्थात् शक्करके बदले लोण पिसा हुवा लायकर साधुके पात्र में वहरायदे और साधुको भी उपयोग न रहे तो साधु

उसने खातिर तवाज़ो किया और देशोंमें उसका नाम हुवा अर्थात् कीर्ति फैली फिर उसके यहां एक पंडित आया उसने उस राजाका भोलापन देखकर हज़ारों लाखों रुपयोंका धन ठगा और राजाको अपने वशमें कर रक्खा कई वर्ष होगये राजाको छोड़ कर कहीं जाय नहीं एक दिन अपने मनमें विचार करने लगा कि इतने दिन हो गये घरको जाऊं तो ठीक है कदाचित् में गया तो कोई पंडित इस राजाको वशमें करलेगा और इस भोले राजाका धन ठगेगा इस लिये ऐसा कोई उपाय करो कि जिससे राजा मेरे ही वश रहे और किसी को धन न दे ऐसा अपने चित्त में विचार कर राजा से कहनेलगा हे राजन्! अब हम अपने घर जायँगे परन्तु तेराप्रेम देखकर हमको तरस आता है किन्तु परमभक्त और गुणग्राही इसलिये तुझको इस भागवत का अपूर्व अर्थ बतानेकी इच्छा है सो उस अर्थ को कोई नहीं जानता है हम पण्डित लोगही उस अर्थको जानते हैं सो वह पण्डित लोग किसी को बताते नहीं हैं और सभामें भी नहीं कहते हैं और सिवाय पण्डितों के हरएकको नहीं बताते हैं सो भी पण्डितों में भी कोई २ बडे २ पण्डित हैं वही जानते हैं सो वह अर्थ हम किसी को नहीं कहते परन्तु और कई तरहके अर्थ तो हम बतादें परन्तु असल जो अर्थ है सो नहीं कहते जब तो राजा उस पण्डितको बहुत पीछेपड़ा कि महाराज मुझपर कृपाकरो और वह असल अर्थ बतावो जब दो चार दफा तो राजाकी नाईं करदीनी कोई दिन कुछहाल कहै कभी कुछ कहदे जब राजा अत्यंत होकर पीछेलगा तब एकदिन उसको अर्थ बतानेलगा कईतरहके अर्थ उस देवीभागवत के बताये और फिर असल अर्थ को छिपानेलगा जब राजा फिर पीछेपड़ा कि महाराज कैसेही कृपाकरके मुझे वह अर्थ बतावो जब वो पण्डित कहनेलगा कि हे राजन्! तेरा भोला भद्रक प्रणाम है तो तू किसी पण्डित के सामने अर्थ कहदेगा तो ठीक नहीं होगा जब राजा कहनेलगा महाराज में इतना राजपाट करताहूं इतनी बातें मेरेपेट में बनीरहती हैं सो क्या आपका बताया हुवा अर्थ नहीं रहसकेगा, मै किसी से नहीं कहूंगा। जब राजाको बन्दोबस्त में करलिया तब राजाको कहनेलगा कि देख राजन् में तुझे अर्थ कहताहूं किसी को मतकहियो यह अर्थ हम पण्डित लोगही जानते हैं और तेरीभक्ति देखकर मे तुझे कहताहूं "कोने बैठीदेवी चनाचाबे" यह असल अर्थ है यह सिवाय हमारे पंडित लोगोंके और कोई नहींजानते परन्तु देख किसी को कहना मत इस अर्थ को सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न और खुशीहुवा और खूब धनदिया और विदाकिया और कहनेलगा आप फिरभी पधारना आपने मुझपर बड़ीकृपा की आप फिर जल्दी पधारियो अब पंडित अपने देशको चलागया परन्तु राजाके सल गेर गया अब जो कोई पंडित विद्वज्जन आवे उसी से पूछे कि महाराज देवीभागवत का अर्थ क्या है तो पंडितलोग अनेक तरहका अर्थ करें परन्तु राजा के जो अर्थ बैठाहुवा है उस अर्थ के सिवाय दूसरा अर्थ न माने तब राजा पंडितोंका तिरस्कार करके निकालदे ऐसा उस राजा का हल्ला हड्डा कि किसीने उसको ऐसा बहकाया है कि किसी पंडितका सत्कार नहीं करता ऐसा जब हल्ला देशों में हुवा तब काश्मीर में एकपंडित था कि जिसके सरस्वती सिद्धथी उसने अपने दिल में विचारा कि यहांसे चलके उस राजाको प्रतिबोधदूं सो वह वहांसे चला और उस राजाके नगर में आया और रातको सोतीसमय सरस्वती ने उसके स्वप्न में आ॰

इच्छा है तो इन सब धर्मद्रोहोंको छोडकर शुद्धमार्ग वीतरागको अंगीकार करके अपनी आत्माका अर्थ करो और ऊपर लिखे कारणोंसे मैं अपनेमें यथावत् साधुपना नहीं मानताहूं क्योंकि श्री यशोविजयजी महाराज अध्यात्मसारमें लिखते हैं कि जो जिनके रागसे लिंगको न छोड़ सके वो समवेगपक्षमें रहे निष्कपट होकर जो कोई शुद्ध चारित्रका पालनेवाला गीतार्थ आत्मार्थी निष्कपट क्रिया करता हो उसकी विनय वियावच भक्ति करे सो मेरेभी चित्तमें यही अभिलाषा रहती है कि जो कोई ऐसा मुनिराज मिले तो मैं उसकी सेवा टहल बंदगी करूं ननु! देभी कपटियोंके साथ रहनेकी इच्छा है और जो श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका उस चतुर्विधसंघका दासहूं और जिनधर्मके लिंगसे मेरा राग होनेसे मैं अपनी बड़ाई करके भांडचेष्टासे कुलटाकी तरह पेट भरताहूं और मैं मेरेमें साधुपना नहीं मानताहूं क्योंकि वीतराग का मार्ग कठिन है सो मेरे में नहीं है और मैं ऐसा भी नहीं कहताहूं कि वर्तमानकालमें कोई साधु साध्वी नहीं है क्योंकि श्री-वीर भगवान्का शासन छेहडे आरे तक चतुर्विध संघ रहेगा और जो साधु साध्वी भगवत्की आज्ञामें चलनेवाले हैं उनको मैं वारम्वार त्रिकाल नमस्कार करताहूं परंतु मैं जिनमार्गकी योजना करने और शुद्ध शुद्ध जिनमार्गमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा करताहूं सो भो देवानु-प्रिय सो ! जो तुमने संदेह किया सो मैंने हाल कहा और तुमभी अपने चित्तमें विचार करो कि जो मैंने तुम्हारेको समायक चैत्यवन्दन वा काउस्सगकी रीति बताई है उस रीतिसे जो तुम्हारा चित्त अर्थात् मनका ठहरना होता होगा सो तुमको मालूम है मैं तुमसे क्या कहूं और सो तरहसे तुमको मैंने जो रीतिसे बताया है उसमें जो तुम्हारा मन ठहरता है सो तुम्हारी आत्मा जानती होगी या ज्ञानी जानता होगा सो तुम अपने दिलमें आपही विचार करलो और भी देखो जो मैंने तुमको हठयोगमें नोली बस्तीकर्म आदि कराये हैं सो उसका अनुभव तुम्हारी आत्मामें होगा परंतु मैंने ग्रंथोंके वर्णन मुजिब तुम्हारेको नहीं दिया सो उसका कारण मैं ऊपर तुमको लिखाय चुकाहूं और अब जिस किसीको इस लिखानेमें संदेह वर्तता हो वे वह शख्स इस चतुर्विध संघके दास कुलटेके पास आवे और कुछ दिन निवास करके आजमाइश करे जैसा कुछ हाल होगा वैसा उसको मालूम हो जायगा परंतु योग्यता देखनेसे जो ऊपर लिखी बातें हैं उनको बता सकताहूं मैं सदग्रन्थानुसार सज्जनपुरुषोंसे अर्ज करताहूं कि जिसकी मरजी हो वह मेरे पास आवे जो गृहस्थी होगा उसको इन बातोंका लक्षण कहांतक योग्य देखके बताऊंगा और जो जिनमतका लिंग धारण किया हुआ पुरुष होगा उसको निष्कपट गच्छादिकके जो ममत्व रहित देखूंगा तो बताऊंगा यह मेरा कहना नम्रता पूर्वक है ननु अभिमानसे ' (प्रश्न) आपने जो अपने मनके कारण लिखाये सो तो ठीक है परन्तु अब हम एक प्रश्न आपसे और पूछते हैं सो यह है कि जब हम किसी साधुसे कहते हैं कि महाराज साहब आपमें यथावत् साधुपना नहीं बतलाते हैं इस वक्त यह साधु लोग कहते हैं कि पंचमआरेका बकुशकुशीलपनेमें क्यों होते हैं क्या तुम सर्वज्ञके विरुद्ध कह सकोगा। इस बातको सुनकर हम लोग चुप हो जाते हैं इसका उत्तर आप लिखाइये। (उत्तर) इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि साधु लोग सो कहते सो ठीक परंतु बकुशकुशीलपना मुझमें न ठहराया क्या इस जगह दृष्टान्त देकर

दार्ष्टान्त समझाते हैं सो दृष्टान्त यह है-कि राजाके यहां एक बहुरूपिया स्वांग भरनेवाला आया उसने कहा कि मैं बहुरूपिया हूं और स्वांग भरताहूं सो मुझे इनाम देना चाहिये उस समय वह राजा कहने लगा कि जब तू स्वांग भरकर आवेगा और तेरे स्वांगको मैं पहचान लूंगा कि तू फलानेका स्वांग करके आया है तो मैं तेरेको इनाम नहीं दूंगा परंतु जब तू स्वांग करके आवे और मैं तुझे न पहचानूं कि तू बहुरूपिया है और तू उस स्वांगको हूबहू अर्थात् ज्यों का त्यों चिह्न और लक्षणोंसे दिखाय कर मेरेको भुलाय देगा उस वक्त में तेरेको इनाम दूंगा और उसी वक्त मैं जानूंगा कि तू सच्चा स्वांग भरके रूपको दरसाता है उस वक्त तेरेको इनाम दूंगा नहीं तो भांड चेष्टा करके जो रूप दिखावेगा तो इनाम नहीं दूंगा ऐसा जब उस राजाने कहा उस रोजसे लेकर उस शख्सने कई महीना तक अनेक २ कई स्वांग किये परंतु जब राजाके यहां जाता तो राजा कह देता कि तू फलानेके स्वांग करके आया है तब वह लाचार होके अपने मकानपर चला जाता एक दिन उसने साधुका स्वांग करा और उसी रूपसे हूबहू वह चलता हुवा उस राजाके दरबारके सामने हो कर निकला और राजाने उसको दूरसे देखकर उसमें साधुपनेका चाल चलन देखतेही मोहित हो गया और उसके सामने आया और नमस्कारादि करके बड़े आदर सत्कारसे अपने मकान पर ले गया और ऊंचे आसनपर बैठाकर और विनती करने लगा कि महाराज कुछ दिवस आप यहां ठहरो और मेरेकूं उपदेश आदि देकरके कृतार्थ करो अर्थात् मेरा जन्म मरण मिटावो ऐसा राजाकी चेष्टा देखकर के पासके बैठनेवालोंने राजासे इशारा किया कि हे राजन्! इस साधुके सामने धन आदिक रखके इसकी परीक्षा करो जो यह धन आदिको ग्रहण करेगा तो असल साधु नहीं और जो इन्होंने धन आदि लेनेकी चेष्टा न करी तो ऐसे महात्माकी सेवामें रहना बहुत अच्छी बात है उस वक्त राजाने लाख दो लाख रुपयेकी जवाहरात वगैरे भेटके उनके सामने रक्खी और कहा कि महाराज आप इस भेटको अङ्गीकार करो और मेरा जन्म सफल करो उस समय उस धन आदिको देखकर और उस राजाकी बात सुनकर उस बहुरूपिया स्वांग भरनेवालेने साधूपना यथावत् दरसानेके वास्ते वहांसे उठ खड़ा हुवा और उस भेटको तिरस्कार करके चल दिया उस वक्त रास्ता देखताही रह गया फिर वह शख्स थोडीसी दूर जायकर और अपने साधुपनेका स्वांग उतार कर राजाके पास आके मुजरा किया और कहा कि मुझे इनाम मिले उस वक्तमें राजा कहने लगा कि भाई किस बात-का इनाम मांगता है जब वह शख्स बोला कि हे राजन्! थोड़ी देर पहले मैं साधुका स्वांग करके आया था और आपने मेरेको नहीं पहचाना इस लिये मेरेको इनाम देना चाहिये उस वक्त राजाने इनाम दिया और कहने लगा कि जिस वक्त हम तेरेको इतना धन देतेथे क्यों नहीं लेके चला गया क्योंकि उस वक्त तो धन बहुत था इस वक्त तो तेरेको उस धनसे बहुत कम इनाम मिला है सो इस इनामसे राजी हो गया तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! मैंने उस वक्त में किसका स्वांगभरके रूप दरसाया था तब राजा कहने लगा कि तैंने साधुका स्वांग भराया तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! जब मैंने साधुका स्वांग भरा था तो उस वक्त यथावत् साधुका रूप न दरसाता किन्तु भांडका

इच्छा है तो इन सब बखेड़ोंको छोड़कर शुद्धमार्ग वीतरागको अंगीकार करके अपनी आत्माका अर्थ करो और ऊपर लिखे कारणोंसे मैं अपनेमें यथावत् साधुपना नहीं मानताहूं क्योंकि श्री यशविजयजी महाराज अध्यात्मसारमें लिखते हैं कि जो लिंगके रागसे लिंगको न छोड़ सके वो संवेगपक्षमें रहे निष्कपट होकर जो कोई शुद्ध चारित्रका पालनेवाला गीतार्थ आत्मार्थी निष्कपट क्रिया करता हो उसकी विनय वियावच भक्ति करे सो मेरेभी चित्तमें यही अभिलाषा रहती है कि जो कोई ऐसा मुनिराज मिले तो मैं उसकी सेवा टहल बंदगी करूं नतु! दंभी कपटियोंके साथ रहनेकी इच्छा है और जो श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका उस चतुर विधिसंघका दासहूं और जिनधर्मके लिंगसे मेरा राग होनेसे मैं अपनी दढ़ाई करके भांडचेष्टासे कूतराकी तरह पेट भरताहूं और मैं मेरेमें साधुपना नहीं मानताहूं क्योंकि वीतराग का मार्ग कठिन है सो मेरे में नहीं है और मैं ऐसा भी नहीं कहताहूं कि वर्तमानकालमें कोई साधु साध्वी नहीं हैं क्योंकि श्री-वीर भगवान्का शासन छेहले आरे तक चतुरविध संघ रहेगा और जो साधु साध्वी भगवत्की आज्ञामें चलनेवाले हैं उनको मैं वारम्वार त्रिकाल नमस्कार करताहूं परंतु मैं जिनमार्गकी पोलना करने और शुद्ध शुद्ध जिनमार्गमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा करताहूं सो भो देवानुप्रिय सो! जो तुमने संदेह किया सो मैंने हाल कहा और तुमभी अपने चित्तमें विचार करो कि जो मैंने तुम्हारेको सामायक चैत्यवन्दन वा काउसग्गकी रीति बताई है उस रीतिसे जो तुम्हारा चित्त अर्थात् मनका ठहरना होना होगा सो तुमको मालूम है मैं तुमसे क्या कहूं और सोकारका गुनना मैंने जो रीतिसे बताया है उसमें जो तुम्हारा मन ठहरता है सो तुम्हारी आत्मा जानती होगी या ज्ञानी जानता होगा सो तुम अपने दिलमें आपही विचार करलो और भी देखो जो मैंने तुमको हठयोगमें नोली वस्तीकर्म आदि कराये हैं सो उसका अनुभव तुम्हारी आत्मामें होगा परंतु मेरेमें चक्रोंके वर्णन मुजिब तुम्हारेको न दीखा सो उसका कारण मैं ऊपर तुमको लिखाय चुकाहूं और अब जिस किसीको इस लिखानेमें संदेह उत्पन्न होवे वह शख्स इस चतुरविध संघके दास कूतरेके पास आवे और कुछ दिन स्थिर करके आजमाइश करै जैसा कुछ हाल होगा वैसा उसको मालूम हो जायगा परंतु योग्यता देखनेमें जो ऊपर लिखी बाते है उनको बता सकताहूं मैं नम्रतापूर्वक सज्जनपुरुषोंसे अर्ज करताहूं कि जिसकी मरजी हो वह मेरे पास आवे जो गृहस्थी होगा उसको इन बातोंका त्याग करायकर जोग्य देखकर बताऊंगा और जो जिनमतका लिंग धारण किया हुवा पुरुष होगा उसको निष्कपट गच्छादिकके भी ममत्व रहित देखूंगा तो बताऊंगा यह मेरा कहना नम्रता पूर्वक है नतु अभिमानसे। (प्रश्न) आपने जो अपने मर्म्म कारण लिखाये सो तो ठीक है परंतु अब हम एक प्रश्न आपसे और पूछते हैं सो यह है कि जब हम किसी साधुसे कहते हैं कि महाराज साहब आपमें यथावत् साधुपना नहीं बतलाते हैं उस वक्त वह साधु लोग कहते हैं कि स्वांगधरकर बहुरूपियापनेसे क्यों बोलते हैं क्या इस स्वांगके बिदून पेट न भरेगा। इस बातको सुनकर हम लोग चुप हो जाते हैं इसका उत्तर आप लिखाइये। (उत्तर) इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि मैंने स्वांग तो देखे सब लिया परंतु बहुरूपियापन मुझसे न दरसाया गया इस जगह दृष्टान्त देकर

दार्ष्टान्त समझाते हैं सो दृष्टान्त यह है—कि राजाके यहां एक बहुरूपिया स्वांग भरनेवाला आया उसने कहा कि मैं बहुरूपिया हूं और स्वांग भरताहूं सो मुझे इनाम देना चाहिये उस समय वह राजा कहने लगा कि जब तू स्वांग भरकर आवेगा और तेरे स्वांगको मैं पहचान लूंगा कि तू फलानेका स्वांग करके आया है तो मैं तेरेको इनाम नहीं दूंगा परंतु जब तू स्वांग करके आवे और मैं तुझे न पहचानूं कि तू बहुरूपिया है और तू उस स्वांगको हूबहू अर्थात् ज्यों का त्यों चिह्न और लक्षणोंसे दिखाय कर मेरेको भुलाय देगा उस वक्त में तेरेको इनाम दूंगा और उसी वक्त में जानूंगा कि तू सच्चा स्वांग भरके रूपको दरसाता है उस वक्त तेरेको इनाम दूंगा नहीं तो भांड चेष्टा करके जो रूप दिखावेगा तो इनाम नहीं दूंगा ऐसा जब उस राजाने कहा उस रोजसे लेकर उस शख्सने कई महीना तक अनोखे २ कई स्वांग लिये परंतु जब राजाके यहां जाता तो राजा कह देता कि तू फलाणेके स्वांग करके आया है तब वह लाचार होके अपने मकानपर चला जाता एक दिन उसने साधुका स्वांग करा और उसी रूपसे हूबहू वह चलता हुवा उस राजाके दरबारके सामने होकर निकला और राजाने उसको दूरसे देखकर उसमें साधुपनेका चाल चलन देखतेही मोहित हो गया और उसके सामने आया और नमस्कारादि करके बड़े आदर सत्कारसे अपने मकान पर ले गया और ऊंचे आसनपर बैठाकर और विनती करने लगा कि महाराज कुछ दिवस आप यहां ठहरो और मेरेकूं उपदेश आदि देकरके कृतार्थ करो अर्थात् मेरा जन्म मरण मिटावो ऐसा राजाकी चेष्टा देखकर के पासके बैठनेवालोंने राजासे इशारा किया कि हे राजन्! इस साधुके सामने धन आदिक रखकरके इसकी परीक्षा करो जो यह धन आदिको ग्रहण करेगा तो असल साधु नहीं और जो इन्होंने धन आदि लेनेकी चेष्टा न करी तो ऐसे महात्माकी सेवामें रहना बहुत अच्छी बात है उस वक्त राजाने लाख दो लाख रुपयेकी जवाहरात वगैरे भेटके उनके सामने रखदी और कहा कि महाराज आप इस भेटको अङ्गीकार करो और मेरा जन्म सुफल करो उस समय उस धन आदिको देखकर और उस राजाकी बात सुनकर उस बहुरूपिया स्वांग भरनेवालेने साधुपना यथावत् दरसानेके वास्ते वहांसे उठ खड़ा हुवा और उस भेटको तिरस्कार करके चल दिया उस वक्त राजा देखताही रह गया फिर वह [illegible] [illegible] धूप आनकर और अपने साधुपनेका स्वांग उतार कर राजाके पास आके मुजरा किया और कहा कि मुझे इनाम मिले उस वक्तमें राजा कहने लगा कि भाई किस बातका इनाम मांगता है तब वह उत्तर बोला कि हे राजन्! थोड़ी देर पहले मैं साधुका स्वांग करके आया था और आपने मेरेको नहीं पहचाना इस लिये मेरेको इनाम देना चाहिये उस वक्त राजाने इनाम दिया और कहने लगा कि जिस वक्त मैं तेरेको इतना धन देताथा क्यों नहीं लेके चला गया क्योंकि उस वक्त तो धन बहुत था इस वक्त तो तेरेको उस धनसे बहुत कम इनाम मिला है सो इस इनामके वास्ते ही रह गया तब वह उत्तर बोला कि हे राजन्! मैंने उस वक्त मैं जिसका स्वांग [illegible] था [illegible] तब राजा कहने लगा कि तैंने साधुका स्वांग [illegible] तब वह उत्तर बोला कि हे राजन्! जब मैंने साधुका स्वांग भरा था तो उस वक्त यथावत् साधुका धर्म न छोड़ना किन्तु [illegible]

रूप हो जाता क्योंकि साधु आकिञ्चन अर्थात् परिग्रहके त्यागी हैं धन आदि को हाथ से भी न छूनेवाले हैं इस लिये उस वक्तका धन उस साधुपनेके स्वांग में लेना ठीक नहीं था इस वक्त जो आपने मेरे को इनाम दिया है सोही लेना मेरे को ठीक है यह दृष्टान्त हुवा। अब इसका दार्ष्टान्त तो खुलासा है सो सब कोई विचार सक्ता है परन्तु तो भी किञ्चित् भावार्थ दिखाते हैं कि इस संसार में जीवने अनादिकालसे स्वांग भर रक्खा है उस स्वांगके दो भेद हैं एक तो संसारी दूसरा पारमार्थिक सो जिस में संसारी स्वांग तो जीव जिस जोनि जिस गति में स्वांग लेकर जाता है उस गति उस जोनिका यथावत् रूपको दरसाता है परन्तु जिसने पारमार्थिक स्वांग भर कर यथावत् स्वरूप दरसाया उनका ही कार्य्य सिद्धि हुवा अर्थात् मोक्ष हो गई परन्तु जिन्होंने स्वांग भरा और यथावत् रूप न दरसाया उनका पारमार्थिक कार्य्य अर्थात् मोक्ष न हुई इसी लिये शास्त्रों में कहा है कि ओघा मुंह पत्ती लेकर मेरुके बराबर दिगला किया परंतु मोक्ष न हुई इसका यही कारण है कि स्वांग भर कर यथावत रूप न दरसाया गया सो मैंने भी स्वांग तो भरा परंतु मुझसे यथावत् रूप न दरसाया गया इसवास्ते मैं यथावत साधु भी न बना जैसा कुछ मेरे में गुण अवगुण था सो जाहिर किया क्योंकि अपने मुखसे आपही साधु बननेसे कुछ कार्य्य की सिद्धि नहीं होगी किंतु निष्कपट होकर भगवत् आज्ञासे जो साधुपना पालेगा वह साधुही है और उसीका कार्य्य सिद्धिहोगा और मुझको यथावत कहनेका कारण यही है किजिस पुरुषको जिस वस्तु में गिलानी बैठती है और गिलानी बैठनेसे जिसकी उस चीजसे निवृत्ति होती है फिर उस पुरुषकी उस वस्तु में प्रवृत्ति नहीं होती सो मैंने भी अनादिकालसे झूंठ, कपट, दंभ, धूर्तता जो जो की होंगी सो तो ज्ञानी जाने परंतु इस जन्म में जो मैंने धूर्तता, दंभ, कपट, छल आदि किये हैं सो मेरी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने क्योंकि जो सात विषन सेनेवाले हैं उनसे कोई दंभ, कपट, धूर्तता बाकी नहीं रहती सो मैं अपने कर्मोंको कहां तक लिखूं परंतु कुल धूर्तता दंभ और कपट मुझ में था सो जब मेरे शुभ कर्मका उदय आया तब इन चीजों में गिलानी बैठनेसे इनको छोड़ कर इस काम को किया अर्थात् भेष लेकर धीरे २ त्याग पच्चक्खानको बढाता हुवा निष्कपट होकर करता चलता हूँ नतु ! किसीके उपदेश या संग सोहबतसे मैने भेष अंगीकार किया और मेरी बुद्धि और अनुभव में यही बैठा हुवा है कि जो काम करना सो निष्कपट होकर करना देखो श्री आनन्दघन जी महाराज श्री ऋषभ देव स्वामीके स्तवन में कहते हैं– "कपट रहित थई आतम आपनो" इति वचनात् । और जो कहा कि स्वांगके बिगून पेट नहीं भरता है; सो ऐसे उनके कहने में मैं अपना बहुत उपकार समझता हूँ और उनकी यह शिक्षा मेरे हक में बहुत अच्छी है परंतु मैं लाचार हूँ और निर्लज्ज हो कर पेट भरता हूँ और जब यह मसल "दोनों दीनसे गये पांडे हलवा भये न मांडे" याद आती है तो बहुत पछताता हूँ और अपने मूर्ख मनसे कहता हूँ कि रे दुष्ट ! दुर्गतिके जानेवाले न तो तू गृहस्थीपनेका रहा और न यथावत् साधू ही बना क्योंकि कहा करते हैं "गृहस्थके टुकड़े बड़े २ दांत । भजन करे तो उबरे

रूप हो जाता क्योंकि साधु अकिञ्चन अर्थात् परिग्रहके त्यागी हैं धन आदि को हाथ से भी न छूनेवाले हैं इस लिये उस वक्तका धन उस साधुपनेके स्वांग में लेना ठीक नहीं था इस वक्त जो आपने मेरे को इनाम दिया है सोही लेना मेरे को ठीक है यह दृष्टान्त हुवा। अब इसका दार्ष्टान्त तो खुलासा है सो सब कोई विचार सक्ता है परन्तु तो भी किञ्चित् भावार्थ दिखाते हैं कि इस संसार में जीवने अनादिकालसे स्वांग भर रक्खा है उस स्वांगके दो भेद हैं एक तो संसारी दूसरा पारमार्थिक सो जिस में संसारी स्वांग तो जीव जिस जोनि जिस गति में स्वांग लेकर जाता है उस गति उस जोनिका यथावत् रूपको दरसाता है परन्तु जिसने पारमार्थिक स्वांग भर कर यथावत् स्वरूप दरसाया उनका ही कार्य्य सिद्धि हुवा अर्थात् मोक्ष हो गई परन्तु जिन्होंने स्वांग भरा और यथावत् रूप न दरसाया उनका पारमार्थिक कार्य्य अर्थात् मोक्ष न हुई इसी लिये शास्त्रों में कहा है कि ओघा मुंह पत्ती लेकर मेरुके बराबर ढिगला किया परंतु मोक्ष न हुई इसका यही कारण है कि स्वांग भर कर यथावत रूप न दरसाया गया सो मेंने भी स्वांग तो भरा परंतु मुझसे यथावत् रूप न दरसाया गया इसवास्ते में यथावत साधु भी न बना जैसा कुछ मेरे में गुण अवगुण था सो जाहिर किया क्योंकि अपने मुखसे आपही साधु बननेसे कुछ कार्य्य की सिद्धि नहीं होगी किंतु निष्कपट होकर भगवत् आज्ञासे जो साधुपना पालेगा वह साधुही है और उसीका कार्य्य सिद्धि होगा और मुझको यथावत कहनेका कारण यही है कि जिस पुरुषको जिस वस्तु में गिलानी बैठती है और गिलानी बैठनेसे जिसकी उस चीजसे निवृत्ति होती है फिर उस पुरुषकी उस वस्तु में प्रवृत्ति नहीं होती सो मैंने भी अनादिकालसे झूंठ, कपट, दंभ, धूर्तता जो जो की होंगी सो तो ज्ञानी जाने परंतु इस जन्म में जो मैंने धूर्तता, दंभ, कपट, छल आदि किये हैं सो मेरी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने क्योंकि जो सात विषन सेनेवाले हैं उनसे कोई दंभ, कपट, धूर्तता बाकी नहीं रहती सो मैं अपने कर्मोंको कहां तक लिखूं परंतु कुल धूर्तता दंभ और कपट मुझ में था सो जब मेरे शुभ कर्मका उदय आया तब इन चीजों में गिलानी बैठनेसे इनको छोड़ कर इस काम को किया अर्थात् भेष लेकर धीरे २ त्याग पञ्चक्खानको बढाता हुवा निष्कपट होकर करता चलता हूं नतु ! किसीके उपदेश या संग सोहबतसे मैंने भेष अंगीकार किया और मेरी बुद्धि और अनुभव में यही बैठा हुवा है कि जो काम करना सो निष्कपट होकर करना देखो श्री आनन्दघन जी महाराज श्री ऋषभ देव स्वामीके स्तवन में कहते हैं— " कपट रहित थई आतम आपनो " इति वचनात् । और जो कहा कि स्वांगके बिहून पेट नहीं भरता है; सो ऐसे उनके कहने में मैं अपना बहुत उपकार समझ ता हूं और उनकी यह शिक्षा मेरे हक में बहुत अच्छी है परंतु मैं लाचार हूं और निर्लज्ज हो कर पेट भरता हूं और जब यह मसल " दोनों दीनसे गये पांडे हलवा भये न मांडे " याद आती है तो बहुत पछताता हूं और अपने मूर्ख मनसे कहता हूं कि रे दुष्ट ! दुर्गतिके जानेवाले न तो तू गृहस्थीपनेका रहा और न यथावत् साधू ही बना क्योंकि कहा करते हैं " गृहस्थके टकके बड़े २ दांत । भजन करे तो टवें

को उपकार होगा जो तुम्हारी इच्छा है तो लिखलेना इसलिये ऐसे प्रश्नो के झगडे छोडकर किञ्चित् अब अध्यात्म सुनाताहूं सो सुनोः—

झूलना ॥

चिदानन्द तो साध अब घरे बैठा अंधिकोठड़ी कहो किम जाऊंगाजी ॥
लहूं नाम उसका धरूं ध्यान दीपक घट बीच में खोजने जाऊंगाजी ॥१॥
श्रद्धा सरायके बीच बैठूं पिछला भोग सारा भुगताऊंगा जी ॥
मारूं चार दुश्मन पर हाल करके समभाव को खेंचकर लाऊंगाजी ॥ २ ॥
मिलीथी नार मुझको जिन दुःख दीना उसे दूरकर दूसरी व्याहूंगा जी ॥
मिला अब आनके भ्रात मेरा लीना आलंब अर्हत गुण गाऊंगा जी ॥ ३ ॥
मिलेगी काल लब्धी जब आन मुझको अपने चितको आप समझाऊंगा जी ॥
देखूं रूप अपना सब भ्रम जावे चिदानन्द आनन्द जब पाऊंगा जी ॥ ४ ॥

कुंडली—गुरुकी कृपासे मन ठहरनेकाभेदः—

करसे जपे सो चूतिया मुखसे जपे सो कूर ॥
अजपा जाप जपावतां वही संत भरपूर ॥
वही संत भरपूर समझ गुरु बानी लीजो ॥
आतम मिलना चाहे दूर आशा तज दीजो ॥
सब मतका यह भेद गुरु जिन पूरा कीजो ॥
ज्ञान सुधा रस देख चिदानन्द मतको लीजो ॥ १ ॥
'अरहं' अक्षर अन्तका 'सोहं' अक्षर आदि ॥
ऊंकार ध्वनि जोड़कर संतो करो विचार ॥
संतो करो विचार शब्द और ध्वनि मिलावे ॥
करे पवन मन संघ इसी में प्रेम लगावे ॥
खोल दिया सब भेद इसे अब जो कोई धावे ॥
चिदानन्द यह भेद अनुपम मुक्ति पदको पावे ॥ २ ॥

काफी ।

टेक—आज आनन्द बधाई सखी तू अति सुखदाई ॥
पर घर रमवा चाल पियाकी खेलत उमर गमाई ॥

आज उलट घर आवत पीतम ॥
सुनत खबर हिये अति हुलसाई मोतियन चौक पुराई ॥१॥ सखी०॥
इंगला पिंगला घर तज भागी ॥
सुखमण श्रुत लगाई तिखैनी तीरथ कर प्यारी अजपा जपत सवाई ॥
हृदय मेरे अति हुलसाई ॥ २ ॥ सखी० ॥
नागन मुख मार्गको अचरजमो मुख वर्णि न जाई ॥
चिदानन्द संग खेलत मेरे जन्म सफल भयो माई ॥
जगत विच कीर्ति छाई ॥ ३ ॥ सखी० ॥

राग कल्याण।

टेक—हो अवधू क्यों तू भरम भुलाना ॥
चेतन नाम अनादि तेरा जड़ संगत सुध विसराना ॥ हो०
वहरात्म तज अंतर आतम सो परमातम पहचाना ॥ हो० ॥
सुख स्वासा संधि कर प्यारे जोखै कर्म करे सोई दाता ॥ हो० ॥
जन्म मरण नहीं काऊ कालमें इन्द्रि विच्छेद दुःख कर माना॥ हो०॥
चिदानन्द देखे जब मूर्ति अजपा जाप जपाना ॥ हो० ॥

राग वसंत ॥

टेक—आज ऋतु आई है वसंत। पारस दरस देख चित संत ॥
आवत जात गुलाल उडावत सुरत पिचकरा दंग ॥
मन अबीर ऊपर मूंदेकर अक्षर खेल अनंग ॥ आ० ॥
हृदय कमल विच प्राण पियारा मले उसीका अंग ॥
अजपा धार जमुनकी छोडो ऊपर छोडो गंग ॥ आ० ॥
वहां सूं चलत गली में खोजत नाभी पास भुजंग ॥
उसके मुख मार्ग में होकर अधर्म रूपी भंग ॥ आ० ॥
ब्रह्मेन्द्र आपुका पाला आसन धर सखियोंके संग ॥
चिदानन्द समुता संग खेलत खेलत खेल अनंग ॥ आ० ॥

होरी खम्माच।

टेक—समझ खेलो ऐसी होरी। मिटे जामें आवागवनकी डोरी ॥

को उपकार होगा जो तुम्हारी इच्छा है तो लिखलेना इसलिये ऐसे प्रश्नो के झगड़े छोड़कर किञ्चित् अब अध्यात्म सुनाताहूं सो सुनोः—

झूलना ॥

चिदानन्द तो साथ अब घरे बैठा अंधिकोठड़ी कहो किम जाऊंगाजी ॥
ठहूं नाम उसका धरूं ध्यान दीपक घट बीच में खोजने जाऊंगाजी ॥१॥
श्रद्धा सरायके बीच बैठूं पिछला भोग सारा भुगताऊंगा जी ॥
मारूं चार दुश्मन पर हाल करके समभाव को खेंचकर लाऊंगाजी ॥२॥
मेरी र्षी नार मुझको जिन दुःख दीना उसे दूरकर दूसरी व्याहूंगा जी ॥
मिटा अब आनके भ्रात मेरा लीना आलंब अर्हत गुण गाऊंगा जी ॥३॥
मिटेगी काल लब्धी जब आन मुझको अपने चितको आप समझाऊंगा जी ॥
रुं रूप अपना सब भ्रम जावे चिदानन्द आनन्द जब पाऊंगा जी ॥४॥

कुंडली—गुरुकी कृपासे मन ठहरनेकाभेदः—

करसे जपे सो तृतिया मुखसे जपे सो क्रूर ॥
अजपा जाप जपावनी वही संत भरपूर ॥
वही संत भरपूर समझ गुरु बानी लीजो ॥
आतम मिलना चाहि दूर आशा तज दीजो ॥
सब मनका यह भेद गुरु जिन पूरा कीजो ॥
ज्ञान सुधा रस देय चिदानन्द मनको लीजो ॥ १ ॥
'अहं' अक्षर अन्तका 'सोहं' अक्षर आदि ॥
ऊंकार ध्यान जोड़कर संतो करो विचार ॥
संतो करो विचार शब्द और ध्वनि मिलावे ॥
करे पवन मन संग इसी में प्रेम लगावे ॥
खोल दिया सब भेद इस अब जो कोई पावे ॥
चिदानन्द यह भेद अनुपम मुक्ति पदको पावे ॥ २ ॥

काफी ।

टेक—आज आनन्द बधाई सखी तू अनि सुखदाई ॥
पर घर रमता चाल विसारी गेलन उमर गमाई ॥

पूरनता द्रव्य रुचि जीवतो नवीन तिसे उपदेश कहे ॥
भाव रुची कहो कैसे कर संभारे ॥ १ ॥ अ० ॥
गच्छोंके भेद कहत, कर्म मिथ्याके लपेट बहुत ॥
स्याद्वाद नेम कहो कैसे कर पारे ॥ २ ॥ अ० ॥
दृष्टिका राग करत तहां समगत विचार कहत ॥
आना विन करत काज आतमको विसारे ॥ ३ ॥ अ० ॥
श्रद्धा विन चरण ज्ञान क्रिया सब करत अजान ॥
जैन नामको धराय कहो कैसे करतारे ॥ ४ ॥ अ० ॥
तत्त्व आगमको छन्द करत मिथ्या प्रपंच ॥
बहुजन सम्मतिको दिखाय अनेक भेद डाले ॥ ५ ॥ अ० ॥
अध्यातम सार देख वाचक जस विजय वचन ॥
ज्ञान वैराग्य विन करे पन्थ न्यारे ॥ ६ ॥ अ० ॥
गुरु शिष्य कथन भिन्न जैन धर्म छिन्न २ गाडर ॥
प्रभाव लोग आतमको न सारे ॥ ७ ॥ अ० ॥
तथा विधि शुद्ध गुरु बिना उपदेश होत ॥
मानव पिण आपना आप जन्म हारे ॥ ८ ॥ अ० ॥
श्रद्धा विन जैन धर्म जिम धारपर लेप होत ॥
किञ्चितना विचार संसार बहुतलारे ॥ ९ ॥ अ० ॥
चिदानन्द उत्तम पद जान उपदेश देख ॥
अनुभवकी बात करे मोह फंदसे किनारे ॥ १० ॥ अ० ॥

अर्जी–राग देशी ।

टेक–सुनो नाथ श्री मन्दिर स्वामी यही अर्ज हमारी ।
भरत क्षेत्र जिन लिंगी साधु आज्ञा न माने हो तुम्हारी ॥
भई व्यवस्था नाथ सुनो तुम ज्ञान भई घट २ की लेवो विचारी ॥
व्यवहार करत निश्चय बन जावे सो आतम हितकारी ॥ १ ॥
कपट क्रिया व्यवहार करे जो ऐसी करनी करे नहीं वो तारी ॥
ारख मुनिराज क्रिया सब करतो श्रद्धा विन आचारज दियो हो उतारीर सु-

आरज देश नाम इम करनी मम आतम तुम चरण कमल आधारी ॥
लन्ध नहीं वैक्रे की क्रिया नहीं कोई देवत आज्ञाकारी ॥३ सु० ॥

शहर देख उत्कृष्टे बनकर लेत आहार दोष सब टारी॥संग आदमी
रहे अदत्ता तीन लेत वे देव गुरु और जीव अदत्ता सारी ॥ ४ ॥सु०॥

घर छोड़ा रंगरेज बने अब उदर भरण हितकारी ॥
पीलेमेपासते बहु अब उदकष्टे रंग कौन निकारी ॥ ५ ॥ सु० ॥

नसीत आगमकी देख चूरिणीरंग पात्र वस्त्र कारण अनुस्वारी ॥
लोद धूल रंग तेल सात कहे त्रिस जीवकी हिंसा देखानेरी॥६॥सु०॥

जिस साधुके धुआं पड़े वहु जिस कारण हो रंगे सोई ये धारी ॥
कत्था चूना केसर रंग कर किस आगम हो साख तुम्हारी॥७॥सु०॥

वचन उथापन करे प्रभूको बहुल होत संसारी ॥
पक्षपात तज समगत धारो चलो सर्वज्ञ वचन अनुसारी ॥८॥सु०॥

गच्छ नाम समुदाय कह्यो छै समाचारीथी एक करो अवन्यारी ॥
सूत्र सरीखो धर्म नहीं कोइ उत सूत्र नरक ले डारी ॥ ९ ॥ सु० ॥

कमलप्रभा आचरज केरो सत वचन कहे एकही भव अवतारी ॥
मिश्र वचन कह नरक गयो वो थापो हो अव झूंठ गति क्या होय तुम्हारी १०॥

धावे न रंग न मने जिनकीयो आगम अचारंग लेओ विचारी ॥
वस्त्र धोय साधू जो पहरे होय विराधक वह साधू व्यभिचारी ॥११॥ सु० ॥

आगम सुगडंग वचन इम भाषो जो धोवो सो साधु पद नहीं धारी॥पग धोवत
स्नान कह्यो किम आगम रंजन कर क्यों कपट क्रिया करो भारी १२ सु०॥

त्रिविधि २ कियो त्याग साधुने मंदिर आप बनाय त्याग किम पारी ॥
श्रावक उपदेश दियो जिन बरजी मंदिर निरजरा हेतु सुखकारी॥१३॥सु०॥

गृहस्थ कृत साधु जब कीनो इन्द्रीको कर भोग द्रव्य लियो धारी ॥
चंद्र सरीखो धर्म तुम्हारो सो चलनी कर डारी ॥ १४ ॥ सु० ॥

परम परादई लोप अनादि करत विवाद अर्थकरे न्यारी ॥
समेगी जती ढुंढ सब मिल कर गच्छ बांध टोला कर राह विगारी॥१५॥सु०॥

तुम बिननाथ दुःख कौन खोवे यह विनती तुम सुनो आप उपकारी ॥ कर्म कटाक्ष निर्मल मोयकीनो यह अर्जी तुम चरण कमल बिच डारी ॥१६॥सु०॥ अज्ञान तिमर गति कर्म न जानू हा । हा ॥ करत हो नाथ पुकारी ॥ चिदानन्द विनती प्रभू धारो भेप लेन रख लीजो हो लाज हमारी॥१७॥सु०॥

अब इसजगह अन्तमङ्गल समाप्त होचुका शासनपति श्री वर्द्धमान स्वामी की परम्परा में सुधर्मा स्वामी से आदिलेकर बरावर चलते हुये कोटी गच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध के धारण करनेवाले पाटानुपाट चले आये सो वर्त्तमान काल में भट्टारकों में दो गद्दी मौजूद हैं एक में तो श्री जिनमुक्तिसूरिजी वर्त्तमान में विचरते हैं और दूसरी गद्दी में श्री जिनचन्द्रसूरिजी विचरते हैं इन दोनों गदियों के अनुमान चारपांच पीढ़ी के पहले श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्याय के गुरुमहाराजने कृपा उद्धार करके पीतवस्त्र धारण किये उन श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्यायजीकी परम्परा में त्यागी वैरागी श्री सुखसागरजी महाराज को बड़ी दिक्षा अर्थात् छेदो उपस्थापनी का गुरु मानता हुवा यथा नाम तथा गुण विक्रिभाव अर्थात् अविर्भाव करके रहित कोटीगच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध में चिदानन्दनामसे विचरता हूं। जो तुमने मुझ से प्रश्न इस विषय में किये उनप्रश्नों का उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार सम्वत् १९५० मिती कार्तिक शुक्ल ५ सोमवार के दिन अजमेर नगर में दिया अब जो इस में कुछ वीतराग की आज्ञासे ओछा अधिका मेरी तुच्छबुद्धि से निकलाहो तो श्री संघ अर्थात् साधु साधवी श्रावक श्राविका अथवा अर्हत सिद्ध साधू देव गुरु अपनी आत्माकी साख करके जो कोई भूलसे वचन निकला हो उसका मिच्छामि दुक्कडं देताहूं ॥ इति ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानन्द स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे पञ्चम प्रश्नोत्तरं सम्पूर्ण ॥

पृ०	पं०	शुद्ध.	अशुद्ध.	पृ०	पं०	शुद्ध.	अशुद्ध.
२३४	१३	अग्नि	अग्नि	२६३	१५	होले २	होल २
२३५	११	प्रूपना	प्रूप	२६४	२१	कृपा	क्रिया
२३५	१८	प्रतन	पतन	२६६	१४	अवार	अवर
,,	२१	भग्नई	भई	२६७	१	हुए	हव
,,	,,	वितइयारे	वितइयारे	,,	३०	तांजे	भारी
,,	२२	कुवा	कवा	२६९	१२	राजजोग	राजयोग
,,	२७	मुक्तिका फल	मुक्तिकी	२७४	१६	आहार	आहा
२३६	९	होती है इस अधिकारमें अल्प पाप बहु निर्जरा		२८१	३४	विधि	मोक्ष
						अब पदादिकोंकी शुद्धि लिखते हैं	
२३८	५	पच्चखान	पच्चखाता	२८२	१	वैर	वरे
,,	१०	हाजत होती	हाजत तो	२८३	१३	दाना	दाता
,,	२०	पच्चखान	पचूखाण	,,	२३	अचरज	अधर्म
,,	२५	सो इस	इस	,,	२४	आफू	आपू
२४०	२५	२२०००	२२०	,,	२६	अभंग	अवंग
२४१	३०	जिनमत	जिनमठ	२८४	१२	घर	घर
२४४	१०	शास्त्र	शास्त्र	२८५	११	विनान	वितान
,,	१७	२	४	,,	१६	ठहरावेरे	ठहरावे
,,	२७	क्रिया	कृपा	२८६	१	पूरनना	पूरनता
२४६	३१	कहके काउ सग्ग ये पुस्तकमें वेसी लिखा है		,,	१७	क्षारपर	धार पर
२४७	५	भगवन्	भगव्	२८७	१	नाप	नाम
२४९	१९	निर्मल	निमित्त	,,	८	देसनिवारी	देसानेरी
२५६	२९	७२०००	७२	,,	१७	धोवन	धावे
२६१	३२	७२०००	७२	२८८	१०	क्रिया	कृपा

इति सम्पूर्णम् ।

श्रीः ।

लावनी ।

श्री चिदानंद निर्पक्ष गुरु यह भेद बताया ॥
धन्यघड़ी धन्यभाग आजहम उत्तर पाया ॥ टेक ॥
प्रथम प्रश्न उत्तरमें स्वचरित्र सबरा कीना ॥
प्रश्न दूसरे उत्तरमें नय्यायिक वेदान्त दयानन्द लीना ॥
मुसलमान ईसाई मतके भ्रम खोल दीना ॥
दे प्रमाण उन्हींके घरका सच्चामार्ग चीना ॥
प्रश्न तीसरे उत्तर सुनके दिलमें छाया ॥ श्रीचि० ॥
किया दिगंबर खोल पांचका निर्णय है भारी ॥
थानक पंथ मूर्त्ति पूजन आगम युक्ति है न्यारी ॥
गच्छादिकके भेद खोल कर जिन आज्ञाधारी ॥
प्रश्न चतुर्थ उत्तर देनेमें जिनवानी सारी ॥
संबंध चतुष्टय सुनकर मनमें भाया ॥ श्रीचि० ॥
शुद्ध देव गुरु ख्याति कथनी द्रव्य स्वरूपले भाई ॥
अलपपाप मिथ्यात्वी कहते शुद्ध निर्जरा ठहराई ॥
गुणठाणोंका कथन सुनीने हृदय आनंद सुहाई ॥
हठयोग बताया जिनमत कृपा सब दिखलाई ॥
आसन कहकर षट्कर्म स्वरोदयभी जतलाया ॥ श्रीचि० ॥
कुंभक प्राणायाम भेदके उत्तम है विस्तारे ॥
मुद्रा देख अनुपम बंध भेद करदीने हैं न्यारे ॥
अक्षर चक्र ध्यान गति खोली योगशास्त्रमें है प्यारे ॥
भेद समाधि विधि सुनीने खुश होगये सारे ॥
स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर किंचित गुण मैंने गाया ॥ श्रीचि० ॥

इति ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर

संपूर्णम् ।

यह पुस्तक मुंबईमें खेमराज श्रीकृष्णदासके
"श्रीवेंकटेश्वर" छापखानामें छपवाई गई
शके १८१६ संवत् १९५१ ई०

पुस्तक मिलनेका ठिकाणा
लक्ष्मीचन्द मणोत
नयाबाजार
अजमेर